भारतकी प्रसिद्ध लड़ाइयाँ

[ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व से लेकर १८५७ ई० तक]

लेखक

श्री केशव कुमार ठाकुर

समाज, राजनीति, इतिहास और जीवन चरित्र आदि
विविध विषयों के प्रसिद्ध साहित्यकार

प्रकाशक

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४१९ अहियापुर, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण] अक्टूबर १९५५ ईसवी [छः रुपये

प्रकाशक

गिरिधर शुक्ल

आदर्श हिन्दी पुस्तकालय

४१९ अहियापुर,

प्रयाग

मुद्रक

इन्द्रमणि जायसवाल

मणि प्रिंटिंग प्रेस

मणि नगर

५१५ पूराबल्दी, कीटगंज, प्रयाग

इतिहास के प्रकाण्ड विद्वानों द्वारा प्रशंसायें

'भारतकी प्रसिद्ध लड़ाइयाँ' नामक पुस्तकके सम्बन्धमें, उसके प्रकाशित होने के साथ-साथ, भारतीय इतिहासके अनेक माननीय विद्वानों और अधिकारियोंकी प्रशंसायें हमें प्राप्त हुई हैं। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के बाद, स्थान के अभाव से केवल कुछ ही विद्वानों की सम्मतियों का हम यहाँ पर उल्लेख कर सके हैं।

प्रसिद्ध इतिहासकार डाक्टर ईश्वरी प्रसाद एम० ए० डी० लिट० भूत पूर्व अध्यक्ष इतिहास विभाग इलाहाबाद यूनीवर्सिटी लिखते हैं :

श्री केशव कुमार ठाकुर ने 'भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ' नामक इस पुस्तक मे २८ लड़ाइयों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। पुस्तक मे ईसा से ३२६ वर्ष पूर्व होने वाले झेलम के युद्ध से लेकर जो सिकन्दर और पोरस के बीच पंजाब मे हुआ था, सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम तक के युद्धों पर ऐतिहासिक तथा सैनिक दृष्टि से अच्छा प्रकाश डाला गया है। लेखक ने मूल ग्रन्थों का अवलोकन किया है, समकालीन इतिहासकारों के लेखों से लाभ उठाया है और परिणाम पर पहुँचने में सावधानी से काम लिया है।

इतिहास के पाठक इस पुस्तक को पढ़ने पर उपयोगी पाएँगे और भारतीय युद्धों के विषय में उन्हें एक ही पुस्तक में इतिहास की बहुत-कुछ सामग्री मिलेगी। पुस्तक में श्री केशव कुमार ठाकुर का परिश्रम सर्वथा प्रशंसनीय है। भाषा सरल होने के साथ-साथ, रोचक और गम्भीर है। इतिहास के विद्वानों के द्वारा लेखक को प्रोत्साहन मिलेगा, इसकी मुझे आशा है।

इतिहास के महान विद्वान और यशस्वी लेखक एवम् क्राइस्ट-चर्च कालेज, कानपुर के इतिहास विभाग के अध्यक्ष पण्डित लक्ष्मीकान्त जी त्रिपाठी एम० ए० ने लिखा है :

अपने चिर-परिचित मित्र श्री केशव कुमार ठाकुर के नये ग्रन्थ 'भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ' के प्रकाशन पर मैं लेखक और प्रकाशक दोनों को बधाई देता हूँ। लेखक के अथक परिश्रम और अध्यवसाय का प्रमाण पुस्तक के प्रत्येक परिच्छेद में मिलता है। इसमें सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ से इतिहास से अभिरुचि रखने वाले पाठकों के कुतूहल की वृद्धि होगी तथा यह सभी प्रकार के पाठकों को प्रेरणा प्रदान करने का सुरुचिपूर्ण साधन सिद्ध होगा। युद्धों के वर्णन उत्साह वर्द्धक होते ही हैं और जब वे रोचक शब्दों में लिखे जाते हैं तो सोने में सुगन्ध का आनन्द आता है। मैं लेखक के सत्प्रयास को स्तुत्य मानता हूँ।

बी० एस० एस० डी० कालेज, कानपुर के हिस्ट्री के प्रोफेसर माननीय कालीशंकर जी भटनागर :

श्री केशव कुमार ठाकुर की लिखी हुई प्रभावशाली पुस्तक 'भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ' शुरू से आखीर तक बड़ी दिलचस्पी के साथ मैंने पढ़ी है। इस पुस्तक में भारतीय इतिहास की करीब करीब सभी मशहूर लड़ाइयाँ अट्ठाईस परिच्छेदों में बड़ी खूबसूरती के साथ वर्णन की गयी हैं जो अलेक्जेण्डर के आक्रमण से आरम्भ होती हैं और सन् १८५७ की स्वाधीनता के प्रथम युद्ध में समाप्त होती हैं। पुस्तक में लड़ाइयों के वर्णन की शैली अत्यन्त आकर्षक और उनका आधार सर्वथा प्रिय होने के साथ-साथ देशभक्ति पूर्ण है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि पुस्तक अपने उद्देश्य में सर्वथा उपयोगी साबित होगी।

प्रोफेसर रामकृष्ण खरे एम० ए० कलकत्ता :

मुझे इतिहास सदा से प्रिय रहा है और इसीलिए जब श्री केशव कुमार ठाकुर की लिखी हुई 'भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ' नामक पुस्तक मुझे पढ़ने को मिली तो मुझे प्रसन्नता हुई। अवकाश पाते ही मैंने सम्पूर्ण पुस्तक आरम्भ से अन्त तक पढ़ डाली। जिस रोचक और ओजस्वी भाषा में पुस्तक लिखी गयी है, उसने युद्धों के वर्णन में जान पैदा कर दी है। प्रत्येक लड़ाई के पढ़ने में किसी दिलचस्प उपन्यास के पढ़ने का आनन्द आता है। पुस्तक में वर्णन किए गये युद्धों के लिखने में विद्वान लेखक ने एक सत्यवादी परीक्षक की हैसियत में काम किया है। समस्त युद्धों में ग्रन्थकार ने भारतीय राजाओं की कमजोरियों को आँखें खोलकर देखा है और उनको भविष्य में देश से मिटाने के लिए ग्रन्थकार ने पुस्तक की भूमिका में अपनी जिस पीड़ा का सजीव चित्रण किया है, उसको मैं पढ़कर कुछ समय के लिए अवाक हो गया। अभी तक हमारे देश में जो इतिहास पढ़ाये गये हैं, वे विदेशी इतिहासकारों के द्वारा लिखे गये हैं और जिनकी बहुत-सी बातें या तो पक्षपातपूर्ण हैं अथवा स्पष्ट नहीं हैं। अपने देश के शिक्षित युवकों से इस पुस्तक को पढ़ने के लिए मैं अनुरोध करूँगा।

भारतीय इतिहास की इस सुन्दर पुस्तक के लिखने और प्रकाशित करने के लिए मैं हृदय से लेखक और प्रकाशक को धन्यवाद देता हूँ।

इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान पण्डित रघुबर दयाल जी द्विवेदी एम० ए० साहित्यरत्न जबलपुर :

ईसा के ३२६ वर्ष पूर्व से लेकर सन् १८५७ ईसवी के प्रसिद्ध विप्लव तक भारत में जितने मशहूर युद्ध हुए हैं उनका सिलसिले-

वार वर्णन 'भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ' नामक पुस्तक में किया गया है। हिन्दी में इस प्रकार की पुस्तक का सर्वथा अभाव था। प्रसन्नता की बात है कि श्री गिरिधर जी शुक्ल ने श्री केशव कुमार ठाकुर लिखित 'भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ' नामक पुस्तक को प्रकाशित कर के उस आवश्यकता और अभाव की पूर्ति की है। पुस्तक में युद्धों की वर्णन शैली सरल और प्रिय है। उस समय के राज्यों के उत्थान और पतन एवम् देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों पर भी पुस्तक में प्रकाश डाला गया है। परम्परा से फैली हुई भारत के राजाओं में आपस की फूट और कलह के कारण भारत का जो विनाश हुआ है, विद्वान लेखक ने बड़े अच्छे ढंग से आवश्यकतानुसार स्थान-स्थान पर उसका वर्णन करके पुस्तक के महत्व को बढ़ा दिया है। इतिहास के विद्यार्थियों और उसके प्रेमी पाठकों के लिए पुस्तक बड़ी उपयोगी है।

इतिहास के माननीय विद्वान और रिटायर्ड प्रोफेसर श्री महेन्द्रपाल सिंह एम० ए० आगरा :

हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री केशव कुमार ठाकुर की लिखी हुई 'भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ' नामक पुस्तक को पढ़कर मुझे बहुत संतोष मिला। अभी कुछ दिन पहले आपकी लिखी हुई 'भारत में अँगरेजी राज्य के दो सौ वर्ष' नाम की राजनीतिक और ऐतिहासिक प्रसिद्ध पुस्तक मैंने पढ़ी थी। आपकी विचार-धारा सर्वथा देशभक्ति पूर्ण है। आपके शब्दों, वाक्यों और वर्णनशैली में एक अद्भुत आकर्षण रहता है। इस पुस्तक की प्रत्येक लड़ाई इतिहास के प्रेमी पाठकों के लिए सुन्दर सामग्री देती है। पुस्तक सर्वथा पढ़ने और संग्रह करने योग्य है।

गिरिधर शुक्ल

ग्रन्थकार का परिचय

साहित्य के साथ श्री केशव कुमार ठाकुर का प्रेम लगभग अठारह वर्ष की अवस्था से आरम्भ हुआ था और बीस वर्ष की अवस्था से पत्र-पत्रिकाओं में आपने लिखना शुरू किया था। करीब छब्बीस वर्ष की आयु में आपने पुस्तक-लेखन के कार्य में प्रवेश किया और पहली पुस्तक आपकी चाँद-कार्यालय, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई थी। उसके बाद अब तक आपने साहित्य के अनेक विषयों पर छोटी और बड़ी ४२ पुस्तकें लिखी हैं, जो विभिन्न प्रकाशकों के यहाँ से प्रकाशित हुई हैं। समाज, राजनीति, इतिहास और जीवन चरित आपके अत्यन्त प्रिय विषय हैं। अध्ययन और अनुशीलन मे आप एक तपस्वी हैं। हिन्दी आपकी मातृभाषा है। बंगला भाषा का अच्छा ज्ञान है और अँगरेजी साहित्य के आप अनन्य उपासक हैं। धर्म, समाज और राजनीति में आप आधुनिक विचारधारा के कट्टर अनुयायी हैं। आपके लिखने और बोलने की भाषा अत्यन्त ओजस्वी, संयत और नियन्त्रित होने के साथ-साथ प्रायः एक-सी रहती है।

श्री केशव कुमार ठाकुर

गिरिधर शुक्ल

भूमिका

संसार में सदा युद्ध हुए हैं और सदा होते रहेंगे। युद्धों के फल-स्वरूप, किसी भी देश का उत्थान और पतन होता है और उन्हीं के कारण स्वाधीनता और पराधीनता प्राप्त होती है। इसी-लिए प्रत्येक देश का उसके युद्धों के साथ अटूट सम्बन्ध है। भारतवर्ष आज गुलामी की जन्जीरों को तोड़ कर स्वतन्त्र हो चुका है, इसलिए उसको यह जानने की जरूरत है कि उसका इतिहास क्या है।

वर्तमान भविष्य की रचना करता है और अतीत वर्तमान की रक्षा करता है, इसलिए हमको और हमारे युवकों को अपना इतिहास जानने और पढ़ने की जरूरत है।

इतिहास की सही घटनायें इसलिए भी हमको जानने की जरूरत है कि आज संसार पहले से भी अधिक भयानक युद्धों में होकर गुजर रहा है। अभी थोड़े दिन पहले योरप का जो महा-युद्ध समाप्त हुआ है, उसने विश्व के बड़े-से-बड़े शक्तिशाली राष्ट्रों को अस्त्र धारण करने के लिए विवश किया था। यह पिछला महायुद्ध उन समस्त महायुद्धों से अधिक भयानक था, जो उसके पहले हो चुके थे। इन महायुद्धों के प्रलयकारी दृश्य निकट भविष्य में कितने भयंकर होंगे, भविष्य इसका उत्तर देने की तैयारी कर रहा है। संसार का कोई भी देश इन युद्धों से अलग नहीं रह सकता। जो जिन्दा रहना चाहता है, उसे युद्ध करना पड़ता है।

भारत की शक्ति और सामर्थ्य में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। लेकिन फूट, ईर्षा और आपस के द्वेष के, कारण उसकी अवस्था ठीक उस मशीन की सी हो गयी थी, जिसके पुर्जे

चलने पर आपस में टकराते हैं। एक देश में अनेक राजाओं का होना कभी भी हितकर नहीं होता। उनमें कलह का होना स्वाभाविक होता है। भारत की इन्हीं परिस्थितियों में विदेशी हमलों की शुरुआत हुई थी।

सामाजिक जीवन अव्यवस्थित होने के कारण देश में फूट और ईर्षा की वृद्धि होती है। उसको भारत में मिटाने का कभी कोई सामाजिक उपक्रम नहीं किया गया। बल्कि उसके कीटाणुओं को दबाने के लिए अहिंसा-धर्म का प्रचार हुआ। उसने फूट और ईर्षा में पड़े हुए देश के राजाओं को विलासिता का रोगी बनाकर सदा के लिए अयोग्य बना दिया।

संसार में ऐसा कोई भी देश नहीं है, जिसमें युद्ध की क्षमता को जाग्रत करने के लिए वीर साहित्य न हो। संसार के सभी उन्नत देशों में इस क्षमता को विकसित और जाग्रत करने के लिए समय-समय पर इस प्रकार के साहित्य की रचना की गयी है। हमारा देश इस साहित्य से सदा वञ्चित रहा है। हमारी इस आवश्यकता की पूर्ति महाभारत और आल्हा के काव्य-ग्रन्थों के द्वारा हुई। उन ग्रन्थों के पद्यों को हमने झूम-झूम कर गाना आरम्भ किया। उनका प्रत्येक पद्य हमारे जीवन का आदर्श बन गया। महाभारत में राज्य के लिए भाई-भाई लड़े थे और उस युद्ध में कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने के लिए उपदेश दिया था। आल्हा में छोटे-छोटे राजाओं ने आपस में लड़कर देश का सर्व-नाश किया था। हमने उन्हीं का अनुकरण किया। अहिंसा के द्वारा फूट के जिन कीटाणुओं को दबाने की चेष्टा की गयी थी, वे दब न सके और उस चेष्टा के फल-स्वरूप अहिंसा ने विला-सिता का और फूट ने आपस की घृणा का भयानक रूप धारण किया। विदेशी शत्रुओं के साथ लड़ने की शक्ति हमने खो दी और आपस में लड़ने की शक्ति हमने बढ़ा ली। उस समय से

लेकर आज तक यही हमारा सामाजिक जीवन है। हमें वह साहित्य पढ़ने को नहीं मिला, जिससे हम अपने देश के प्रत्येक भाई के साथ प्रेम करना जानते, उसके अपराधों पर भी उसे क्षमा करना सीखते और विदेशी आक्रमणकारी शत्रुओं का संहार करने के लिए अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक तैयार रहते।

हमें लज्जा के साथ मन्जूर करना पड़ता है कि हम अपने पतन के स्वयं ही कारण रहे हैं। विदेशी हमलों में, विदेशियों की अपेक्षा हम स्वयं अधिक अपराधी हैं। इतिहासकार जे० बी० बरी अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ ग्रीस' में साफ लिखता है—

"सिकन्दर का इरादा भारत के विजय करने का न था। वह काबुल और सिन्ध नदियों की खाड़ियों से आगे भारत की तरफ नहीं बढ़ना चाहता था। लेकिन भारत की बढ़ती हुई सम्पत्ति और फूट की खबरों ने भारत में आक्रमण करने के लिए उसे तैयार किया था और उसके आक्रमण करने पर यहाँ के राजाओं ने एक दूसरे का नाश करने के लिए उसका साथ दिया था।"

अनेक विदेशी इतिहासकारों ने स्वीकार किया है कि विदेशी आक्रमणकारियों को परास्त करने की ताकत भारतीय राजाओं में थी, लेकिन आपस की फूट के कारण वे संगठित होकर शत्रुओं से लड़ न सके और उस दशा में उनका सर्वनाश हुआ।

देश की स्वतन्त्रता के बाद आज फिर हमारे सामने संसार का निष्ठुर संघर्ष है। अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए भारत के स्वाभिमानी युवकों को उन संघर्षों का सामना करना है। इसके लिए जरूरी है कि हमको अपने इतिहास का—अपने देश के युद्धों का सही-सही ज्ञान हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रस्तुत पुस्तक 'भारत की प्रसिद्ध लड़ाइयाँ' अपने देश के स्वतन्त्रता प्रिय युवकों के हाथों में देने का मैंने प्रयास किया है।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे जिन कठिनाइयों का सामना

करना पड़ा है, उनमें केवल एक ही बात का मैं यहाँ पर उल्लेख करना चाहता हूँ। इस देश के क्रमबद्ध इतिहास का अभी तक अभाव है। भारत के सम्बन्ध में अँगरेजी में जो इतिहास लिखे गये हैं, वे आक्रमणकारी जातियों की उन पुस्तकों से प्रभावित हैं, जिनमें भारतीय शौर्य के प्रति भीषण उपेक्षा है। उन दिनों में इतिहास लिखने की प्रथा भारत में न थी। इसलिए यहाँ के धार्मिक ग्रन्थों में ऐतिहासिक घटनाओं को शामिल कर दिया गया था। उन ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर अतिशयोक्ति और अस्वाभाविकता है। हमारे इन प्राचीन ग्रन्थों में भारत की ऐतिहासिक सामग्री उसी प्रकार अलक्षित रूप से मिली हुई है, जिस प्रकार दही में मक्खन रहता है। इसलिए उन ग्रन्थों से ऐतिहासिक घटनाओं के सही अंशों को निकालना और उनको ऐतिहासिक क्रम देने का कार्य बहुत कुछ असाध्य हो गया है। मैंने शक्ति भर ईमानदारी से काम लेने की चेष्टा की है। यहाँ पर मैं यह भी स्वीकार करना चाहता हूँ कि इस पुस्तक के लिखने में मुझे अपने मित्र श्रद्धेय पण्डित गिरिधर जी शुक्ल से प्रेरणा मिली है और शुक्ल जी ने उदारता किन्तु कठोरता के साथ मेरे इस कार्य का निरीक्षण किया है। इतना सब होने पर भी सन्, समय, स्थानों और अनेक मौकों पर घटनाओं के मतभेदों ने मेरे सामने बड़ी कठिनाइयाँ पैदा की हैं। इन ऐतिहासिक मतभेदों ने मुझे अनेक स्थानों पर सुरक्षित न रखा होगा, इसका मुझे भय है। इसलिए इसकी जो भूलें इतिहास के विद्वानों के द्वारा मुझे मालूम होंगी, उन विद्वानों के प्रति कृतज्ञ होकर, मैं पुस्तक के दूसरे संस्करण में भूलों का संशोधन करूँगा।

केशव कुमार ठाकुर

विषय सूची

—::०::—

भारतकी प्रसिद्ध लड़ाइयाँ

पहला परिच्छेद

झेलम का भीषण संग्राम

[ईसा से ३२६ वर्ष पहले]

दो हजार वर्ष पहले भारत की राजनीतिक अवस्था, फ़ारस वालों का इस देश में आगमन, सिकन्दर और यूनान, मध्य एशिया के देशों में सिकन्दर की जीत, काबुल नदी की ओर सिकन्दर, सिकन्दर और भारत, पोरस और सिकन्दर का युद्ध, सिकन्दर की विजय।

भारत की राज-शक्तियाँ

आज से लगभग दो हज़ार तीन सौ वर्ष पहले यूनान के विजयी सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था और इस देश के छोटे-छोटे कई एक राज्यों पर उसने अपना अधिकार कर लिया था। उन दिनों में भारत की राजनीतिक शक्तियाँ बहुत निर्बल हो गयी थीं। इस निर्बलता का प्रारम्भ महाभारत के बाद हुआ था। अपने जिस प्रताप और शौर्य के लिए इस देश ने ख्याति पायी थी, वह सब का सब महाभारत में ही क्षय हो चुका था और उसके बाद, देश की शासन-सत्ता छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गयी थी।

देश में कोई बड़ी राजनीतिक शक्ति न होने के कारण, शासन व्यवस्था लगातार गिरती जाती थी। प्राचीन राजवंशों के शूरवीर, देश के भिन्न-भिन्न भागों में अपनी-अपनी स्वतंत्र सत्ता के साथ शासन कर रहे थे। इस प्रकार की शासन-शक्तियाँ देश में सैकड़ों की संख्या में थीं। हालत यह थी कि जो राजा राज्य कर रहे थे, उनमें से कुछ छोटे थे और कुछ बड़े। लेकिन किसी पर किसी का आधिपत्य न था।

भारत में सैकड़ों की संख्या में जो राजा और नरेश शासन कर रहे थे, उनमें परस्पर बहुत द्वेष फैला हुआ था। जो नरेश जिससे सबल होता था, अपने से निर्बल के लिए वह घातक हो जाता था। सबल एक निर्बल को मिटा कर बड़ा शासक बनने की चेष्टा करता था। इस प्रकार का द्वेष-भाव सभी के बीच में चल रहा था। इसका परिणाम यह हुआ था कि देश के वर्तमान नरेशों में कोई किसी का सहायक और शुभचिंतक न था।

इन भयानक परिस्थितियों में ही देश में जैन धर्म और बौद्ध धर्म का जन्म हुआ था। जिस समय के राजनीतिक जीवन का वर्णन हम करने जा रहे हैं, उससे लगभग दो शताब्दी पूर्व भारत में अहिंसा की शीतल वायु चल रही थी। जैन धर्म उससे भी पहले देश के प्रत्येक भाग में अपना प्रभाव डाल चुका था। दोनों ही अहिंसा के प्रचारक और प्रवर्तक थे। देश में सम्पत्ति का अभाव न था, अहिंसा की बढ़ती हुई शिक्षा और दीक्षा में विलासिता का जन्म हुआ और देश के राजाओं और नरेशों ने विलास-प्रियता का आश्रय लिया। इसके फल स्वरूप राजनीतिक दूरदर्शिता और युद्ध कुशलता क्षीण होने लगी। अहिंसा के प्रचार में आसानी के साथ सफलता मिलने का कारण यह हुआ कि फूट और द्वेष में पड़े हुए देश के शासकों को युद्ध की अपेक्षा

शान्ति प्रिय मालूम हो रही थी। इस प्रकार की शान्ति में विलासिता की वृद्धि स्वाभाविक हो जाती है।

फ़ारस का बादशाह दारायु

एशिया के पश्चिम में उन दिनों एक शक्तिशाली देश फ़ारस था। ईरान और परशिया इसी फ़ारस के दूसरे नाम हैं। बादशाह दारायु ने अपने शासन-काल में अनेक देशों को विजय किया था और इस विजय के इरादे से ही उसने ईसा से पाँच सौ सोलह वर्ष पहले अपने सेनापति स्काईलाक्स को भारत की ओर रवाना किया था। भारत में उसके आने के सम्बन्ध में कहीं पर अधिक विवरण नहीं मिलते। लेकिन इतना पता चलता है कि उसने सिन्ध और पंजाब के करीब भारत के कुछ स्थानों पर अधिकार कर लिया था। इस अधिकार के सम्बन्ध में भी कुछ स्पष्ट विवरण नहीं मिलते। केवल इतना पता चलता है कि जब सिकन्दर आक्रमण के उद्देश्य से भारत में आया, उन दिनों में सिन्ध नदी फ़ारस और भारत के बीच की सीमा मानी जाती थी और पंजाब तथा सिन्ध में भारतीय राजाओं का राज्य था। इस अवस्था में इतना ही अनुमान होता है कि फ़ारस वालों ने भारत के बाहरी—जंगली और पहाड़ी स्थानों में जो अधिकार कर लिया था, उसे भारतीय राजाओं ने थोड़े ही दिनों में नष्ट कर दिया था।

सिकन्दर और यूनान

सिकन्दर मक़दूनिया के राजा फ़िलिप का लड़का था। मक़दूनिया यूनान के अन्तर्गत एक छोटी-सी रियासत थी। वहाँ के निवासियों को प्राचीन भारतवासी यवन कहा करते थे। समस्त

यूनान छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। यूनान के उत्तर में मक़दूनिया एक पहाड़ी देश था। यूनान के दूसरे राज्यों के निवासी मक़दूनिया के निवासियों को जंगली और असभ्य कहा करते थे। लेकिन ईसा से चार सौ वर्ष पहले मक़दूनिया के राजा फ़िलिप ने सभ्य यूनान के सभी राज्यों को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया था।

सिकन्दर छोटी अवस्था से ही समझदार और लड़ाकू स्वभाव का था। उसका शरीर स्वस्थ और बलवान था। फुर्ती और तेजी के साथ साथ, उसके स्वभाव में निर्भीकता थी और आरम्भ से ही वह अत्यन्त साहसी था।

आरम्भ से ही सिकन्दर के स्वभाव में युद्ध करने का उत्कट भाव था। वह पहले से ही संसार के दूसरे देशों के जीतने के लिए तरह-तरह की बातें किया करता था। अपने बचपन में वह जितनी बातें करता था, सभी करीब-करीब युद्ध सम्बन्धी होती थीं। वह विश्व विजय के स्वप्न प्रायः पहले ही देखा करता था और उसकी बातों को सुन कर लोग हँसा करते थे। उन दिनों में यूनान के उत्तर और पश्चिम में जो योरप के देश थे, वे बिल्कुल जंगली थे।

सिकन्दर की विजय-यात्रा

बीस वर्ष की अवस्था में सिकन्दर मक़दूनिया के राज-सिंहासन पर बैठा और राजा होते ही वह विश्व विजय करने के लिए निकल पड़ा। विशाल फ़ारस का साम्राज्य इन दिनों में बहुत निर्बल हो गया था।

यूनान के साथ फ़ारस की पुरानी शत्रुता थी। ईसा से चार सौ

बानवे वर्ष पहले फ़ारस के सम्राट मारडोनियस ने यूनान पर आक्रमण किया था और ईसा से चार सौ अस्सी वर्ष पूर्व यूनान को जीतकर उसने यूनान की राजधानी एथेन्स को जलाकर भस्म कर डाला था।

फ़ारस का साम्राज्य उन दिनों तक शक्तिशाली माना जाता था। सिकन्दर ने तीस हजार पैदल और पांच हजार सवारों की सेना लेकर फ़ारस देश पर आक्रमण किया और उसको जीत कर उसने उस पर अपना अधिकार कर लिया।

फ़ारस के बाद सिकन्दर एशिया के प्रदेशों को विजय करने के लिए निकला। उसने एक-एक करके मध्य एशिया के कई देशों को जीतकर तुर्किस्तान, अफ़ग़ानिस्तान और दूसरे कई राज्यों को अपने अधिकार में कर लिया। इसके पश्चात् अपनी विशाल और विजयी सेना के साथ वह एशिया के पूर्व, सुदूरवर्ती देशों की ओर बढ़ा और अफ़ग़ानिस्तान होकर बलख से काबुल का सीधा मार्ग उसने पकड़ लिया और हिन्दू कुश को पार करता हुआ कोहेदामन की घाटी के पास पहुँचा। वहाँ से भारत के रास्ते पर चलकर जलालाबाद के पश्चिम की ओर एक स्थान पर सिकन्दर ने अपनी सेना के साथ मुकाम किया। यहाँ पर कुछ समय तक विश्राम करके सिकन्दर ने अपनी सेना का विभाजन किया और सेना का एक भाग देकर अपने दो सेनापतियों को उसने भारत की ओर रवाना किया और बाकी सेना के साथ सिकन्दर पीछे-पीछे चला। रास्ते में मिलने वाले नगरों, राज्यों और पहाड़ी सरदारों के किले की सेनाओं ने सिकन्दर के प्रभुत्व को स्वीकार किया और जिसने इससे इनकार किया, यूनानी सेना ने उसका विनाश किया। इस प्रकार भारत की ओर आगे

बढ़ते हुए यूनानी सेना ने अनेक लम्बे-लम्बे पहाड़ी रास्तों, घाटियों और नदियों को पार किया।

मार्ग में आरनोस के करीब सिकन्दर ने अपना एक डिपो कायम किया और उसका अधिकार उसने अपने एक सेनापति को दे दिया। फिर वहाँ से चलकर यूनानी सेना ओहिन्द नामक स्थान पर पहुँच गयी। इधर बहुत दिनों से लगातार यात्रा करने के कारण यूनानी सेना बहुत थक गयी थी। इसलिए उसको विश्राम की जरूरत थी। यह समझ कर सिकन्दर ने उस स्थान पर तीस दिनों तक अपनी सेना को रुकने और विश्राम करने की आज्ञा दी। इससे यूनानी सेना बहुत प्रसन्न हुई और उसने पूरी स्वतन्त्रता के साथ खेल-कूद एवम् आमोद-प्रमोद में तीस दिन व्यतीत किये।

भारत में यूनानी सेना का प्रवेश

सिन्ध नदी के कुछ फासिले पर तक्षशिला का राज्य था। राजा आम्भी ने कुछ ही दिन पहले इस राज्य के सिंहासन को प्राप्त किया था। जिन दिनों में यूनान की सेना ओहिन्द में विश्राम कर रही थी, राजा आम्भी के एक प्रतिनिधि ने यूनान-सम्राट सिकन्दर से मुलाकात की और तक्षशिला की ओर से यूनानी सेना के स्वागत की सम्पूर्ण तैयारियों का उसने जिक्र किया। इसके पहले, तक्षशिला का स्वर्गीय राजा, जो राजा आम्भी का पिता था, सिकन्दर के सेनापतियों से मिलकर आत्म-समर्पण करना स्वीकार कर चुका था। ओहिन्द में राजा आम्भी के प्रतिनिधि ने स्वर्गीय राजा के प्रस्ताव का समर्थन किया और तक्षशिला-राज्य की ओर से श्रेष्ठ सात सौ घोड़ों, तीस हाथियों, तीन हजार मजबूत बैलों

और दस हजार भेड़ों के साथ चाँदी के बहुत से सिक्के उसने सम्राट सिकन्दर को भेंट में दिये।

इस मुलाकात में राजा आम्भी के प्रतिनिधि ने सम्राट सिकन्दर को बताया कि राजा तक्षशिला आत्म-समर्पण करके यूनान के सम्राट की सहायता चाहता है। पंजाब के महाराज पोरस और अभिसार-नरेश के साथ राजा आम्भी की शत्रुता चल रही है।

बसंत ऋतु का प्रारम्भ हो चुका था। मौसिम के अच्छे दिन सामने थे। तीस दिनों तक विश्राम करने के बाद, सिकन्दर ने अपनी सेना की रवानगी और सिन्ध नदी को पार करने का निर्णय किया। यूनानी सेना विश्राम करने के बाद फिर उत्साह-पूर्वक तैयार हुई और एक दिन प्रातःकाल होते-होते उसने तक्षशिला के राजा की सहायता से सिन्ध नदी को पार कर भारत की पवित्र भूमि पर पदार्पण किया।

तक्षशिला-राज्य में सिकन्दर का स्वागत

सिन्ध नदी पार कर यूनानी सेना सीधे तक्षशिला की ओर रवाना हुई। जब नगर चार-पांच मील की दूरी पर रह गया तो सिकन्दर ने देखा, एक सशस्त्र सेना तेजी के साथ चली आ रही थी। उसके हृदय में आशंका उत्पन्न हुई। अभी तक सिकन्दर के सामने तक्षशिला के राजा का व्यवहार ही दूसरा था। उसका ख्याल हुआ कि अभी तक राजा आम्भी ने अपने प्रतिनिधि के द्वारा जो बातें की हैं, हो सकता है कि उनमें धोखा दिया गया हो और अवसर पर अगर तक्षशिला की सेना का आक्रमण हो जाय तो यूनानी सेना बड़े खतरे में पड़ जायगी।

इस प्रकार की आशंका में सिकन्दर ने अपनी सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया और राजा आम्भी की आने वाली सेना पर आक्रमण करने की वह तैयारी करने लगा। ऐसे मौकों पर आँखें मूँदकर विश्वास करना वह कोरी मूर्खता समझता था। वह बड़ी सावधानी के साथ सम्मुख आने वाली सेना की ओर देख रहा था। इसी अवसर पर तक्षशिला का राजा आम्भी अपने कई एक मंत्रियों के साथ आता हुआ दिखाई पड़ा। उसने अपनी सेना को बहुत दूर पीछे छोड़ दिया था। राजा आम्भी ने आकर जाहिर किया कि तक्षशिला की सेना, यूनान सम्राट के स्वागत में सम्मान प्रदर्शन करने के लिए आयी है और राज्य की सम्पूर्ण सेना यूनान-सम्राट के अधिकार में है।

राजा आम्भी की इन बातों को सुनकर सिकन्दर की आशंका दूर हुई और यूनान सेना फिर आगे की ओर रवाना हुई। तक्षशिला नगर में पहुँचने पर सम्राट सिकन्दर और उसकी सेना का अद्भुत स्वागत और सम्मान किया गया। सिकन्दर के सम्मान में राजा आम्भी ने एक विशाल उत्सव किया और उस उत्सव में उसने सिकन्दर को अपना अधिपति स्वीकार किया। इसके साथ-साथ उसने सोने और चाँदी के बहुत-से सिक्के भेंट में दिये, जिनकी एक बड़ी कीमत होती थी। और यूनानी सेना को राशन-सम्बन्धी सभी प्रकार की सामग्री उस समय तक दिये जाने की उसने अपने यहाँ व्यवस्था कर दी, जब तक वह तक्षशिला राज्य में मुकाम करे।

इस स्वागत और सम्मान के उपलक्ष में सिकन्दर ने कम उदारता से काम नहीं लिया। फ़ारस की विजय में उसने सोने और चाँदी के बेशुमार सिक्के लूटे थे और वहाँ की बहुत बड़ी लूट की सम्पत्ति उसके साथ थी। उसी में से एक बड़ी रकम बदले

में देकर सिकन्दर ने राजा आम्भी का सम्मान किया। यद्यपि उसकी यह उदारता, उसकी सेना के अधिकारियों को समयोचित नहीं मालूम हुई। फिर भी किसी ने सिकन्दर का विरोध नहीं किया। इस उत्सव के समय सम्मान-प्रदर्शन में दोनों ओर से जो बड़ी-बड़ी सम्पत्तियाँ भेंट की गयीं, उनकी आलोचना करते हुए इतिहासकारों ने लिखा है कि इन भेंटों के आदान-प्रदान में जो सम्मान प्रदर्शन किये गये, उनके मूलाधार में एक राजनीतिक दूरदर्शिता के सिवा और कुछ नहीं था।

अभिसार-राज्य में सिकन्दर का राजदूत

यूनानी सेना ने कुछ समय तक तक्षशिला राज्य में विश्राम किया। राजा आम्भी ने उसके सुख और सुभीतों के प्रबन्ध में कोई कसर न रखी। सिकन्दर और उसकी सेना को प्रसन्न करने में तक्षशिला राज्य की सम्पत्ति पानी की तरह व्यय की गयी। यूनानी सेना के अधिकारियों और सैनिकों के ये दिन बड़े आमोद-प्रमोद के साथ बीते। यूनानियों के इस अद्भुत सत्कार में राजा आम्भी अपना एक आत्म-संतोष अनुभव करता था। यूनान के विजयी सम्राट सिकन्दर के साथ इस प्रकार मैत्री करके वह अपने शत्रु महाराज पोरस और राजा अभिसार को अपनी एक महान शक्ति के संकलन का प्रमाण दे रहा था। देश के जिन शत्रु राजाओं को वह स्वयं कभी पराजित न कर सका था और जिनकी शत्रुता के कारण वह बार-बार नीचा देख चुका था, आज सिकन्दर के साथ अपनी मित्रता करके मानो वह उनको लज्जित कर रहा था।

तक्षशिला नगर में मुकाम करके सिकन्दर ने आस-पास के

राज्यों पर अधिकार करने का सूत्रपात किया और राजा अभिसार के पास अपने राजदूत के द्वारा आधीनता स्वीकार करने का सन्देश भेजा। राजा आम्भी के साथ, राजा अभिसार की शत्रुता पहले से थी और सिकन्दर के भारत में आने पर वह युद्ध के लिए तैयार था। महाराज पोरस की सहायता में अपनी शक्तिशाली सेना भेजकर सिकन्दर को पराजित करके और भारत से उसे भगाने का उसने पहले से अपना इरादा बना रखा था। लेकिन यूनानी राजदूत के पहुँचने पर वह असमंजस में पड़ गया। इसके सम्बन्ध में महाराज पोरस की तरफ से क्या होगा, उसे इस बात के समझने का मौका न मिला। एक भयानक दुविधा में पड़कर और यह सोचकर कि तक्षशिला का राजा आम्भी सिकन्दर की मित्रता का लाभ उठावेगा, उसने यूनानी सम्राट के प्रति आत्म-समर्पण करना स्वीकार कर लिया।

प्रसन्नता पूर्वक अभिसार-राज्य से लौटकर राजदूत ने राजा अभिसार के आत्म-समर्पण का पत्र सम्राट सिकन्दर को दिया। इससे सिकन्दर को बड़ी प्रसन्नता हुई। आत्म-समर्पण की मंजूरी क ो यूनानी सेना के अधिकारियों ने अपनी विजय के रूप में अनुभव किया।

आधीनता के सन्देश में पोरस का उत्तर

अब सिकन्दर के सामने महाराज पोरस का प्रश्न था। उसने तक्षशिला में मुकाम करके पोरस के सम्बध में अनेक प्रकार की बातें सुनी थीं, लेकिन सिकन्दर एक असाधारण योद्धा था। उसने अपने राजदूत को तैयार किया और नियमानुसार, राजा पोरस के पास जाकर मिलने और आत्म-समर्पण करने का उसने सन्देश भेजा।

महाराज पोरस का देश पंजाब में झेलम और चिनाब नदियों के बीच में था और उसके राज्य में बड़े-बड़े तीन सौ नगर थे। राजा आम्भी को छोड़कर दूसरे कितने ही राजाओं के साथ पोरस की मित्रता का सम्बन्ध था। पंजाब में अनेक राजा राज्य करते थे, लेकिन उनमें उस समय पोरस ही एक बड़ा राजा था और युद्ध में पराक्रमी तथा शूरवीर था।

महाराज पोरस के दरबार में, अपने विजयी सम्राट सिकन्दर का सन्देश लेकर यूनानी राजदूत पहुँचा और अपना सन्देश सुनाया। राजदूत के मुँह से आधीनता स्वीकार करने और यूनानी सम्राट से जाकर मिलने का सन्देश सुनते ही भारतीय नरेश पोरस के सम्पूर्ण शरीर में बिजली दौड़ गयी। उसने अपने बड़े-बड़े नेत्रों से एक बार राजदूत की ओर देखा और मन ही मन कहा, इस देश के सभी राजा और नरेश, राजा आम्भी नहीं हैं। आधीनता! आत्म-समर्पण! इस जीवन में? सिकन्दर ने समझने में भूल की है।

पोरस ने राजदूत को जवाब देते हुए कहा: "मैं आऊँगा और अपनी सेना के साथ सीमा पर युद्ध के लिए तैयार मिलूँगा।"

पोरस का उत्तर लेकर राजदूत वहाँ से लौटा और अपनी सेना में पहुँच कर उसने सिकन्दर को पोरस का जवाब सुनाया। सिकन्दर ने सावधानी के साथ राजदूत के मुँह से पोरस के कहे हुए शब्दों को सुना। राजदूत उसके पास से चला गया। सिकन्दर ने समझ लिया, अब पोरस के साथ युद्ध होगा और भारत का संग्राम यहीं से प्रारम्भ होगा। उसने यह भी समझा कि राजा आम्भी और पोरस में क्या अन्तर है। पोरस के अन्तःकरण में छिपे हुए शौर्य और स्वाभिमान को भी उसने अनुभव किया। तक्षशिला-

राज्य में काफी समय तक रह कर, स्वागत-सत्कार के अपूर्व सम्मान के साथ कुछ दिनों को बिताकर सिकन्दर युद्ध की तैयारी करने लगा। पोरस के पास राजदूत को भेजने के पहले उसका ख्याल था कि अभिसार के राजा ने आत्म-समर्पण करना स्वीकार कर लिया है। इस दशा में पोरस भी आधीनता स्वीकार करेगा और युद्ध के लिए वह तैयार न होगा। लेकिन पोरस के दरबार से राजदूत के लौटने के बाद और पोरस का उत्तर सुन लेने पर सिकन्दर का भ्रम दूर हो गया। भारतीय वीरों के स्वाभिमान का अन्दाज सिकन्दर को उन दिनों में नहीं हुआ, जब उसने यूनान छोड़कर एशिया के अनेक देशों को पराजित किया था और भारत में आक्रमण करने के लिए उसने सिन्ध नदी तक के भयानक पहाड़ी रास्तों और नदियों को अपनी विजय के साथ पार किया था। तक्षशिला के राजा आम्भी के अद्भुत स्वागत-सत्कार को पाकर और अभिसार के राजा का आत्म-समर्पण सुनकर भी उसने स्वाभिमान से भरे हुए जिस भारतीय वीरता के गौरव का अनुभव नहीं किया था, आज सहज ही उसने भारत की वीर वसुन्धरा पर कदम रखते ही पोरस के शब्दों में उसका संस्पर्श किया।

पोरस की सेना में युद्ध की तैयारियाँ

पोरस को सिकन्दर का सन्देश मिल चुका था। उस संदेश में अपमान और पराजय की चिनगारियाँ थीं। उस सन्देश को सुनते ही पोरस ने सावधान होकर उसका जवाब दिया। लेकिन उसके बाद उसे सब कुछ युद्धमय दिखायी देने लगा। वह एक भारतीय नरेश था और शूर-वीर था। विजयी सिकन्दर के साथ युद्ध करने में उसका हृदय हतोत्साह न हुआ। वह

जानता था, आज देश की शक्तियाँ सैकड़ों भागों में विभाजित हैं और सभी शक्तियाँ एक दूसरे से अलग हैं। फिर भी उसको देश की वीरता और शूरता पर अभिमान था। वह क्षत्रियोचित कर्तव्य का पालन करना जानता था। वह जानता था, एक वीर पुरुष को युद्ध करने में सुख मिलता है। उसे विश्वास था, अभी भारतीय वीरता का अन्त नहीं हुआ। सिकन्दर और उसकी यूनानी सेना के साथ युद्ध करने के लिए उसके अन्तःकरण में उत्साह और उमङ्ग की बाढ़ आने लगी।

सिकन्दर के साथ युद्ध करने और भारतीय स्वाधीनता की मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए पोरस ने अपनी सेना में युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। एशिया के अनेक देशों के विजेता सिकन्दर के मुकाबिले में युद्ध करने के लिए आज पोरस का उत्साह बढ़ रहा था। यूनान की विशाल सेना को पराजित करने के लिए उसने अपने शूर-वीर सैनिकों को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी। जिन वीर सैनिकों ने युद्ध की भयानक मार के सामने कभी मुँह न मोड़ा था और जो संग्राम में मारे जाने पर एक वीर पुरुष के मोक्ष पर विश्वास करते थे, इस प्रकार के चुने हुए वीर सैनिकों की उसने एक सेना तैयार की। उसकी इस सेना में चार हजार ऐसे सवार सैनिक अपने उछलते हुए घोड़ों पर तैयार होकर सामने आये, जो पोरस की सेना में प्रसिद्ध अश्वारोही सैनिक समझे जाते थे। युद्ध-क्षेत्र पर जाने के लिए दो सौ भयानक लड़ाकू हाथी तैयार हुए, जिनको देखकर ही भय मालूम होता था। इन सब के साथ-साथ, तीन सौ रथों पर बैठकर पंजाब के वीर योद्धा धनुष बाण लिए दिखायी देने लगे। युद्ध के जोशीले बाजों के साथ बड़ी तेजी में सेना की तैयारियाँ हो रही थीं। अधिकारी सेनापतियों ने अपनी तैयारी की सूचना

दी। उसके बाद अपने शक्तिशाली हाथी पर बैठकर पचास हज़ार सेना के साथ पोरस युद्ध के लिए रवाना हुआ।

इस रवानगी के पहले पोरस ने अपने विश्वस्त सेनापतियों के साथ युद्ध का नकशा तैयार किया था। पोरस ने झेलम के तट पर पहुँच कर मुकाम किया और नदी के दूसरी तरफ आने वाली यूनानी सेना पर निगरानी रखने के लिए उसने अपने सैनिकों का नदी के किनारे पर एक पहरा लगा दिया।

युद्ध के लिए यूनानी सेना की रवानगी

सिकन्दर अपनी विशाल सेना के साथ, अभी तक तक्षशिला में मौजूद था। यहाँ पर बहुत दिनों तक रह कर उसने और उसकी सेना ने विश्राम किया था। पोरस के साथ युद्ध करने के लिए उसने तैयारी शुरू कर दी और जिस समय वह तक्षशिला से रवाना हुआ, उसके साथ सम्पूर्ण सेना के सैनिक एक लाख बीस हज़ार थे। इन सैनिकों में पचास हजार से अधिक योरोपियन सैनिक थे, तक्षशिला के राजा आम्भी ने भी पोरस को परास्त करने के लिए अपनी सेना दी थी और खुद भी वह सिकन्दर के साथ युद्ध करने के लिए गया था। जिन दूसरे राजाओं और सरदारों ने आत्म-समर्पण किया था, उनकी सेनायें भी सिकन्दर के अधिकार में थीं। इस विशाल सेना को लेकर सिकन्दर तक्ष-शिला से झेलम की ओर रवाना हुआ। झेलम के तट पर जहाँ उसे पहुँचना था, तक्षशिला से उसका फासिला एक सौ दस मील का था। इस रास्ते को सिकन्दर ने पन्द्रह दिनों में पार किया और झेलम के किनारे 'बाई' ओर जलालपुर के करीब उसने जाकर अपनी सेना का मुकाम किया। ठीक उसके सामने नदी की दूसरी तरफ पोरस की सेना का शिविर था। सिकन्दर को पोरस

की सेना में, उसके युद्ध का एक भयानक अस्त्र, हाथियों का समूह दिखायी पड़ा।

ईसा के तीन सौ छब्बीस वर्ष पूर्व मई के महीने में जब भयानक गर्मी पड़ रही थी और पहाड़ों से पिघल-पिघल कर आने वाली बर्फ के कारण झेलम नदी पूरी बाढ़ के साथ बह रही थी, सिकन्दर ने झेलम के तट पर मुकाम करके समय और स्थान की परिस्थितियों का अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। दोनों ओर की सेनाओं में इस समय फासिला था, फिर भी दोनों सेनायें, एक दूसरे को देख सकती थीं। झेलम के किनारे आकर यूनानी सेना ने पोरस की सेना पर दृष्टिपात किया और पोरस की सेना को भी यूनानी सेना का आ जाना मालूम हो गया।

युद्ध के सम्बन्ध में दो महान वीरों की दूरदर्शिता

पोरस का राज्य पंजाब में चिनाब नदी से लेकर झेलम तक फैला हुआ था और इस तरफ झेलम उसके राज्य की सीमा थी। सिकन्दर के साथ युद्ध करने के लिए पोरस अपनी शक्तिशाली सेना को लेकर सीमा पर आ गया था। उसने झेलम को पार कर, सिकन्दर के साथ युद्ध करने का प्रयास नहीं किया। नदी की बायीं ओर अपनी सेना को रोक कर उसने सिकन्दर के सामने आक्रमण करने की जो भयानक परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी, सिकन्दर उसे बार-बार अनुभव करने लगा। वह खूब समझता था कि अगर यूनानी सेना नदी को पार करने की कोशिश करती है तो बिना किसी सन्देह के वह मारी जाती है। ऐसी सूरत में भारतीय सेना के साथ युद्ध कैसे हो सकता है और पोरस को पराजित करने में कैसे सफलता मिल सकती है, इन प्रश्नों को बड़ी गम्भीरता और तत्परता के साथ सिकन्दर सोचने लगा।

झेलम के तट पर आकर उसने जरा भी जल्दबाजी से काम नहीं लिया, अनेक दिनों तक अपने शिविर में रहकर युद्ध की समस्या को हल करने की वह कोशिश करने लगा। पोरस यूनानी सेना की चालों को सावधानी के साथ समझने की चेष्टा में था और सिकन्दर युद्ध की सफलता का सरल-मार्ग खोज रहा था। उसके साथ पैदल और सवारों की एक बहुत बड़ी सेना थी। नदी के इस उमड़ते हुए गहरे प्रवाह को सेना के घोड़े पार न कर सकेंगे, इस बात को वह भली भाँति समझता था। वह यह भी समझता था कि अगर यूनानी सेना ने नदी को पार करने की कोशिश की भी तो पोरस की सेना नदी में ही उसका अन्त कर देगी। इसलिए उसको ऐसा रास्ता पैदा करना था, जिससे दोनों सेनाओं का मैदान में आमना-सामना हो सके। इसके बाद भी सिकन्दर के सामने एक और कठिनाई थी। पोरस की सेना में हाथियों का एक बड़ा समूह था। युद्ध आरम्भ होने पर उनकी मार भयानक होगी। उन हाथियों पर बैठकर जो भारतीय सैनिक बाणों की मार करेंगे, उसका मुकाबिला करना कठिन हो जायगा। लेकिन इसकी रोक के लिए उसने पहले से अपनी तैयारी कर रखी थी। इस समय उसको किसी प्रकार नदी पार करनी थी।

अपने शिविर में अरसे तक रहकर सिकन्दर अपनी समस्या को हल करने की कोशिश कर रहा था। भीषण ग्रीष्म के अन्त होने के पहले नदी के अगाध-जल के कम होने की आशा न थी। इसीलिए वह इन दिनों को व्यतीत करना चाहता था। उसके साथ युद्ध की जोरदार तैयारियाँ थीं। एक विशाल और शक्तिशाली सेना उसके अधिकार में थी। फिर भी झेलम के दूसरे तट पर युद्ध के लिए एकत्रित भारतीय सेना के साथ संग्राम करना सिकन्दर के लिए उस समय तक कठिन और भयानक मालूम

हो रहा था, जब तक नदी को सफलता पूर्वक वह पार न कर ले। इसलिए उसको स्थानीय बातों की जानकारी की सब से बड़ी जरूरत मालूम हुई। वह जानता था कि इसके बिना काम न चलेगा। वह यह भी समझता था कि स्थानीय परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करने पर ही नदी के पार करने की समस्या हल हो सकती है। अनेक दिनों तक लगातार विचार करने के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचा कि नदी को किसी प्रकार छिप कर पार किया जाय। इसके सम्बन्ध में सब से अच्छा तो यह होता कि अक्टूबर और नवम्बर तक धैर्य के साथ अवसर की प्रतीक्षा की जाती और उसके बाद नदी के जल के कम हो जाने पर उसे पार करने की कोई योजना तैयार की जाती। लेकिन इतनी बड़ी प्रतीक्षा शक्तिशाली सिकन्दर को किसी प्रकार सहन न थी।

सिकन्दर ने राजनीति से काम लिया। उसने यह अफवाह फैलाने की कोशिश की कि यूनानी सेना मौसिम के बदलने का इन्तजार कर रही है। अनेक उपायों से इस खबर को इधर-उधर फैलाने की कोशिश की गयी। सिकन्दर जानता था कि इस खबर का पोरस की सेना में पहुँचना अत्यन्त स्वाभाविक है। यही हुआ भी। भारतीय सेना में इस सम्वाद के फैलने पर स्वाभाविक रूप से शिथिलता उत्पन्न हो गयी और निकट भविष्य में सिकन्दर के आक्रमण की आशंका बहुत-कुछ नष्ट हो गयी। सावधानी के लिए नदी के किनारे जो भारतीय सैनिकों का पहरा था, वह कायम रहा।

यूनानी सेना ने झेलम नदी को पार किया

कुछ दिन और बीत गये। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ हो जाने से झेलम नदी में पानी की और भी वृद्धि हो गयी। एक ओर वर्षा

के दिन चल रहे थे और दूसरी ओर सिकन्दर अनेक उपायों से नदी की स्थानीय परिस्थितियों के खोजने और समझने का काम कर रहा था।

सिकन्दर अपने अन्वेषण में सफल हुआ। यूनानी सेना के शिविर से सोलह मील ऊपर की तरफ उसे नदी में एक टापू मिला। यह स्थान जंगली वृक्षों से आच्छादित था। दूर से और बिना गम्भीर छान-बीन के, आसानी के साथ उस स्थान पर टापू होने का किसी को अनुमान न हो सकता था। इस स्थान को देख कर और उसके द्वारा मिलने वाली सुविधा को समझ कर सिकन्दर बहुत प्रसन्न हुआ।

अपने शिविर में लौट कर सिकन्दर ने सेनापति क्रैटरस के साथ बातचीत की और नदी को पार करने की एक योजना तैयार की। उस योजना में वे सभी बातें निश्चित हुईं, जो नदी के पार करने से लेकर होने वाले युद्ध तक आवश्यक समझी गयीं। सम्पूर्ण योजना सिकन्दर और सेनापति क्रैटरस तक ही सीमित रही।

कुछ यूनानी सेना के साथ, तक्षशिला और दूसरे राजाओं तथा सरदारों से मिली हुई फौज को दस हजार की संख्या में शिविर की रक्षा के लिये सेनापति क्रैटरस के अधिकार में देकर सिकन्दर ने शिविर और मिले हुए टापू के बीच में थोड़े से सैनिकों को नियुक्त किया और बाकी सम्पूर्ण विश्वस्त यूनानी और योरोपियन सवारों और पैदल सेना को लेकर सिकन्दर ने नदी को पार करने की चेष्टा की। कई दिनों के बादलों के समूह ने आसमान को आच्छादित करके दिन को रात बना रखा था। लगातार पानी की वृष्टि हो रही थी और तेज वायु के निरंतर भयानक झोंकों ने रात और दिन को भयावह बना रखा था।

टापू की ओर रवाना होने के पूर्व सिकन्दर ने एक दूसरी राज-नीति का भी प्रयोग किया। रात के आरम्भ होते ही निश्चित योजना के अनुसार, शिविर के यूनानी सवारों ने नदी के किनारे अपने घोड़ों को पानी में उतारा और कुछ थोड़ी-सी गहराई में उसको ले जाकर, नदी के किनारे-किनारे, पानी में चलने की आवाज करते हुए, वे कुछ दूर तक इधर से उधर और उधर से इधर चलने लगे। इसके साथ ही बाजों की एक आवाज भी शुरू हुई। नदी की दूसरी तरफ पोरस के पहरेदार सैनिकों ने अपने शिविर में जाकर यूनानी सेना के नदी पार करने का समाचार दिया। भारतीय सेना बड़ी तेजी के साथ युद्ध के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर तैयार हो गयी और पोरस उसे लेकर नदी के किनारे पर आकर डटा। बरसात का पानी किसी प्रकार रुक न रहा था और तेज हवा के झोकों से ठंढक बढ़ गयी थी। समस्त रात पोरस अपनी सेना के साथ बरसते हुए पानी में नदी के किनारे मौजूद रह कर यूनानी सेना के नदी में आगे बढ़ने का इन्तजार करता रहा। सबेरा होते-होते भारतीय सेना अपने शिविर में वापस चली गई। दिन में फिर एक-दो बार वैसा ही हुआ और खबर पाते ही अपनी सेना के साथ पोरस नदी के किनारे पर आ गया, लेकिन यूनानी सेना के आगे न बढ़ने पर भारतीय सेना वापस लौट गयी। रात शुरू होने पर फिर उसी प्रकार की घटना हुई और उसके फलस्वरूप, बरसते हुए पानी में सारी रात 'पोरस अपनी सेना के साथ नदी के किनारे पर मौजूद रहा। लेकिन कोई परिणाम न निकला।

इसी प्रकार, एक-एक करके कई दिन और रातें बीत गयीं। मौसिम की भीषणता जरा भी कम न हो रही थी और अनेक रात-दिन बरसते हुए पानी में नदी के किनारे मौजूद रहकर पोरस

की सेना बहुत थक गयी थी। उसे अंत में यह मान लेना पड़ा कि यूनानी सेना इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न करके धोखा दे रही है। जिन रातों में पोरस अपनी पूरी सेना के साथ, नदी के किनारे पर आकर यूनानी सेना के आगे बढ़ने का रास्ता देखता रहा, उन्हीं में एक रात को पानी की तीव्र वृष्टि और भयानक आँधी एवम् अंधकार में सिकन्दर अपनी यूनानी और योरोपियन सेना के साथ उस टापू की ओर रवाना हुआ, जहाँ से अपना उद्देश्य पूरा करने की उसने तैयारी की थी और रात के उसी अंधकार में टापू के मार्ग से अपनी सेना को लेकर सिकन्दर झेलम के दूसरे किनारे पर पहुँच गया। परन्तु अभी तक उसकी समस्या हल न हुई, दूसरे किनारे पर पहुँचते ही उसे मालूम हुआ कि वृष्टि के साथ आँधी और अंधकार में वह नदी की जिस धारा से होकर दूसरे किनारे पर पहुँचा, वहाँ से नदी के एक दूसरे प्रवाह को पार करने पर वह अपने अभीष्ट मार्ग पर पहुँच सकता था। परिस्थिति की भीषणता उसके सामने ज्यों की त्यों बनी रही। बड़ी तत्परता और सावधानी के साथ वह फिर किसी मार्ग की खोज का काम करने लगा। इसमें रात का बहुत सा समय बीत गया। लेकिन उसका प्रयत्न निष्फल नहीं गया। उसको वहाँ पर एक ऐसी घाटी मिल गयी, जहाँ से उसने और उसकी सेना ने फिर नदी को पार किया। उस समय रात बीत चुकी थी और सबेरा हो रहा था।

युद्ध का सूत्रपात

अभी तक सिकन्दर भारतीय सेना के शिविर में आक्रमण के लिए मार्ग की खोज न कर सका था। पोरस का लड़का अपनी एक छोटी सी सेना के साथ झेलम के किनारे मौजूद था। सिकन्दर

की सेना का आभास होते ही, उसने अपनी अधिकृत सेना को आगे बढ़ाया और तेजी के साथ वहाँ पर पहुँचा, जहाँ पर यूनानी सेना आगे बढ़ने की कोशिश में थी। दो हजार सवारों और एक सौ बीस रथों के साथ आकर भारतीय सेना ने यूनान की विशाल सेना के साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इस छोटी-सी फौज के सैनिकों को पराजित करने में यूनानी सेना को कितनी देर लग सकती थी। इतनी बड़ी सेना के सामने आकर युद्ध शुरू कर देने में भारत के इन थोड़े से सैनिकों के साहस की बात थी। सिकन्दर की सेना ने सामना करने के बाद थोड़े समय में ही उन भारतीय सैनिनों का विध्वंस किया। चार सौ आदमियों के मारे जाने और समस्त रथों के नष्ट हो जाने पर भारतीय सैनिक पीछे हट गये और उनमें से बहुतों ने तेजी के साथ भाग कर पोरस की सेना के शिविर में सिकन्दर की सेना के आ जाने का समाचार दिया।

युद्ध-क्षेत्र में दोनों ओर की सेनायें

नदी को पार कर यूनानी सेना के आ जाने का समाचार सुनते ही भारतीय शिविर में तेजी के साथ तैयारी हुई। झेलम के उस पार पड़ी हुई यूनानी सेना के सामने, संरक्षण के लिए एक छोटी-सी फौज छोड़ कर, पोरस अपनी सम्पूर्ण सेना को लेकर सिकन्दर का मुकाबिला करने के लिए रवाना हुआ। दूसरी तरफ से यूनानी सेना बादलों के समान गरजती चली आ रही थी। झेलम के तट से कुछ दूरी पर कर्री के मैदान में भारतीय सेना जाकर रुक गयी।

उस मैदान में पहुँच कर, पोरस ने युद्ध के लिए अपनी सेना की व्यूह-रचना की। सब से आगे उसने अपने दो सौ हाथियों की पंक्ति लगा दी और उन हाथियों को इस तरीके से खड़ा किया

कि प्रत्येक हाथी का दूसरे हाथी से फासिला एक सौ फीट का रहे। भारतीय सेना का यह प्रमुख मोर्चा था। उन हाथियों की बगलों में उसने तीन सौ रथ और चार हजार सवार सैनिक खड़े किये। प्रत्येक रथ को चार घोड़े खींचने का काम कर रहे थे और प्रत्येक रथ में छः आदमी बैठे थे। उनके हाथों में धनुष बाण थे और जो भयानक बाणों की वर्षा करने वाले थे। हाथियों, सवारों और रथों के पीछे पोरस की पैदल सेना थी। प्रत्येक सैनिक के एक हाथ में चमकती हुई तेज तलवार और दूसरे हाथ में मजबूत ढाल थी। पैदल सेना के बहुत से सैनिकों के हाथों में लम्बे और तेज भाले थे। इस प्रकार अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयार करके पोरस ने सिकन्दर की सेना की तरफ देखा। युद्ध को आरम्भ करके उन शत्रुओं के रक्त का वह प्यासा हो रहा था, जो उसके देश की स्वाधीनता का अपहरण करके अपना शासन कायम करने के लिए आये थे, आज वह इन शत्रुओं के साथ युद्ध करना चाहता था। पोरस साधारण शूर-वीर न था। उसका स्वस्थ और बलिष्ठ शरीर, उसके शक्तिशाली सैनिक होने का प्रमाण दे रहा था। उसका व्यक्तित्व उसकी शूरता का परिचायक था। साढ़े छः फीट ऊँचा शूर-वीर पोरस अपने लड़ाकू हाथी पर बैठा हुआ, जिस समय वह युद्ध-क्षेत्र में, अपनी सेना के बीच घूमा, उस समय वह युद्ध-क्षेत्र का एक दैत्य मालूम हो रहा था।

युद्ध के लिए आगे बढ़ने से पहले ही सिकन्दर ने अपनी सेना को व्यवस्थित कर लिया था। उसके साथ यूनानी और योरोपियन लड़ाकू वीरों की एक अपार सेना थी। उसके सवार और पैदल सेना के सैनिक भयानक मार करने वाले थे। तलवारों, भालों से लड़ने के साथ-साथ, उसकी सेना में धनःसैनिकों की बड़ी संख्या थी, जो बाणों की भीषण वर्षा करते थे। सिकन्दर स्वयं विश्व-

विजयी हो रहा था। युद्ध में आज तक उसकी कहीं पराजय न हुई थी। उसका उत्साह और साहस बढ़ा हुआ था। अपनी सेना को लेकर युद्ध में वह सिंह की भाँति आगे बढ़ता था। उसके सैनिक युद्ध-शिक्षा में चिर-अभ्यस्त, शक्ति और साहस में अद्वितीय और शत्रु को पराजित करने में अत्यन्त श्रेष्ठ थे। सिकन्दर अपनी इस सेना के साथ आगे बढ़कर कर्री के मैदान में—पोरस की सेना के सामने पहुँच गया।

यूनानी और भारतीय सेनाओं का युद्ध

रण-स्थल में दोनों सेनाओं का सामना हुआ। भारतीय सेना को देखकर सिकन्दर ने युद्ध की परिस्थिति का विचार किया। भारतीय सैनिकों के आगे दुर्ग के समान खड़े हुए हाथी उसे अत्यन्त भयानक मालूम हुए। इस बात के समझने में उसे देर न लगी कि युद्ध-आरम्भ होने पर यदि ये भीमकाय हाथी यूनानी सेना की ओर बढ़े तो उनका रोकना असम्भव हो जायगा और उसके परिणाम में हमारी पराजय होगी। इन हाथियों का मुका-बिला किसी प्रकार सामने युद्ध करके नहीं हो सकता।

युद्ध के लिए दोनों ओर की सेनायें आमने-सामने हो चुकी थीं। दोनों ओर से सैनिक कुछ आगे बढ़े और युद्ध का प्रारम्भ हो गया। सबसे पहले दोनों ओर से वाणों की वर्षा हुई। प्रत्येक दल के सैनिक एक-दूसरे को पीछे हटाने की कोशिश करने लगे और घायल होकर वे लड़ाई के मैदान में गिरने लगे। हाथियों पर बैठे हुए सैनिकों की वाण-वर्षा के कारण आरम्भ में यूनानी सेना की हिम्मत कमजोर पड़ने लगी। सिकन्दर इस बात को पहले से ही जानता था। वह समझता था कि भारतीय सेना को पराजित करने के लिए सामने का युद्ध अनुकूल न होगा।

युद्ध की बढ़ती हुई भीषण परिस्थिति को देखकर सिकन्दर के एक सेनापति ने अपनी सेना के कुछ सैनिकों को लेकर बाईं ओर से भारतीय सेना पर आक्रमण किया। इस मौके पर पोरस की सेना के अचानक बहुत से सैनिक मारे गये। पोरस ने इस परिस्थिति पर नियन्त्रण करने की चेष्टा की और अपनी सेना के कुछ भाग को उस ओर मोड़ा, जिधर से यूनानी सेना का नया आक्रमण हुआ था। भारतीय सैनिकों ने यूनानी सेना के इस नये आक्रमण को रोका और अपने बाणों की भयानक मार से उनको आगे बढ़ने का मौका न दिया।

युद्ध-क्षेत्र में दोनों ओर से भयानक मार हो रही थी और बाणों की वर्षा से एक भीषण तूफान का दृश्य उपस्थित हो गया था। घायल होकर गिरने वाले सैनिकों के रक्त से युद्ध-क्षेत्र की पृथ्वी रक्तमयी हो गयी थी। दोनों ओर के सैनिक अपने प्राणों का मोह छोड़कर जिस प्रकार की मार कर रहे थे, उससे मालूम होता था कि युद्ध का निर्णय होने में अब अधिक देर न लगेगी।

सिकन्दर की सेना का जोर बाईं ओर से बढ़ता जाता था। पोरस ने अपनी सेना को युद्ध के लिए जिस प्रकार व्यवस्था दी थी, उसमें आमने-सामने का ही युद्ध था। लेकिन सिकन्दर ने भारतीय सैनिकों की शक्ति को देखकर अपने युद्ध की दिशा ही बदल दी। सम्मुख युद्ध के साथ-साथ उसने अपनी शक्ति बाईं ओर बढ़ा दी, जिसके फल स्वरूप, पोरस की सेना के सामने लड़ने की एक नयी दिशा पैदा हो गयी। युद्ध ने दोपहर का समय पूरा ले लिया लेकिन उसके निर्णय के सम्बन्ध में किसी प्रकार का अनुमान लगाना अभी तक असम्भव दिखायी दे रहा था।

सिकन्दर ने जितनी आसानी के साथ पोरस को विजय करने का अनुमान लगाया था, उसका वह ख्याल अभी तक सही

साबित नहीं हुआ। दोनों ओर के बहुत-से सैनिक मारे गये। युद्ध की भीषणता बढ़ती जा रही थी। बरसात के पानी की तरह युद्ध-क्षेत्र में वीर सैनिकों का रक्त बह रहा था। लड़ाई के मैदान में सर्वत्र लाशें दिखायी देती थीं।

सिकन्दर की सेना का नदी की ओर प्राबल्य देखकर पोरस ने अपने हाथी को युद्ध में आगे की ओर बढ़ाया और अपनी सेना का पूरा जोर लगा कर उसने यूनानी सेना पर आक्रमण किया। भारतीय शूर-वीरों की भयानक मार के सामने कुछ देर के लिए यूनानी सेना पीछे हट गयी। लेकिन उसके पश्चात सम्हल कर वह फिर युद्ध करने लगी। इस समय दोनों ओर की सेनायें एक दूसरे के सन्निकट आ गयी थीं। बाणों की वर्षा के साथ-साथ, तलवारों और भालों की मार भीषण रूप धारण करती जाती थी।

सिकन्दर की जिस सेना ने ईरान की शक्तिशाली सेना को आसानी के साथ पराजित किया था और जिस पराक्रमी सेना ने एशिया के अनेक देशों को जीत कर संसार में अपनी वीरता की पताका को फहराया था, आज उसी यूनानी: सेना को पोरस की भारतीय सेना के सम्मुख युद्ध में लोहे के चने चबाने पड़ रहे थे। युद्ध-क्षेत्र में जिस प्रकार की भीषण मार हो रही थी, उसमें कभी यूनानी सेना पीछे की ओर हटती हुई दिखायी देती थी और कभी भारतीय सेना। तलवारों और भालों की भयानक मार से कट-कटकर और घायल होकर सैनिक धराशायी हो रहे थे। यूनानी सैनिकों के बाणों की मार से पोरस के हाथी भयानक आवाजें करते हुए बार-बार भागने की कोशिश करते थे, लेकिन उनके महावत उनको नियन्त्रण में रखकर युद्ध से पीछे नहीं हटना चाहते थे। कुछ हाथियों के सैनिक मारे गये थे और कुछ

हाथियों के महावत घायल होकर पृथ्वी पर कराह रहे थे। बाणों के लगने से हाथियों के शरीरों में सैकड़ों जख्म हो गये थे और उनसे रक्त के फव्वारे निकल रहे थे। सैनिकों और महावतों के मारे जाने से कितने ही हाथी भाग कर बाहर निकल गये थे।

युद्ध की भीषणता ने अत्यन्त भयावह परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी। पोरस के बहुत से रथ चूर-चूर हो गये थे, उनमें बैठे हुए सैनिक और जुते हुए घोड़े जख्मी होकर भूमि पर गिर गये थे। सवारों के मारे जाने पर दोनों ओर के सैकड़ों जख्मी घोड़े जमीन पर तड़प रहे थे और कितने ही युद्ध-क्षेत्र से भाग कर बाहर निकल गये थे। इस भयानक परिस्थिति में भी दो में से एक भी सेना पीछे हटने का नाम न लेती थी। पोरस का हाथी जिस ओर घूम जाता था, उसी तरफ भारतीय सेना आगे बढ़ती हुई दिखायी देती थी।

अचानक युद्ध की गति बदलती हुई दिखायी पड़ी। जिस समय दोनों ओर से विकराल युद्ध हो रहा था और मर कर तथा घायल होकर गिरने वाले सैनिकों के उस मैदान की जमीन पर चतुर्दिक ढेर दिखायी देते थे। इसी मौके पर झेलम नदी की दूसरी तरफ शिविर में पड़ी हुई यूनानी सेना के दस हजार सैनिकों को लेकर सेनापति क्रैटरस ने झेलम नदी को पार किया और कर्री के मैदान की तरफ बढ़कर उसने पीछे से पोरस की सेना पर भयानक आक्रमण किया। सिकन्दर की विशाल सेना ने भारतीय सैनिकों को चारों ओर से घेर लिया। इस संकट पूर्ण परिस्थिति को देखकर भारतीय वीरों ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर मार शुरू कर दी। यूनानी सेना का जोर लगातार बढ़ता जा रहा था। इस भीषण मार-काट के समय पोरस के हाथी चिग्घाड़ते हुए युद्ध के क्षेत्र से भागने लगे। उनके भागने में मित्र और शत्रु

का कोई विवेक न रहा। सैकड़ों और हजारों सैनिक हाथियों की भगदड़ में कुचल कर और दब कर मर गये। हाथियों के भागने के समय शत्रु पक्ष की अपेक्षा, भारतीय सेना का ही अधिक नुकसान हुआ। अधिक संख्या में सैनिक जख्मी होकर गिर गये और इसके साथ-साथ, भारतीय सेना तितर-बितर हो गयी। इसी अवसर पर यूनानी सेना को आगे बढ़ने का मौका मिला और शत्रुओं की सेना ने भारतीय सैनिकों का अधिक संहार किया।

परिस्थिति को प्रतिकूल देखकर पोरस ने अपनी सेना को एक बार फिर से सम्हाला और जोर के साथ आक्रमणकारी यूनानी सेना का मुकाबिला किया। इस समय भारतीय सैनिक बहुत कम संख्या में रह गये थे। शत्रु-सेना का जोर अब भी लगातार बढ़ रहा था। फिर भी पोरस ने एक बार भयानक मार की, उस मार में यूनानी सेना के आदमी भी बहुत मारे गये। अब भारतीय सैनिकों की संख्या और भी कम हो गयी। जो रह गये थे, वे भी युद्ध-क्षेत्र से भागने लगे। इस भगदड़ में यूनानी सेना ने आगे बढ़कर बहुत से भारतीय सैनिकों को कैद कर लिया। युद्ध में सिकन्दर की विजय हुई।

युद्ध करते-करते पोरस थक गया था। उसके शरीर में वाणों के बहुत-से जख्म थे। उनमें नौ जख्म अधिक गहरे थे, जिनसे अब भी खून गिर रहा था। युद्ध के अंतिम समय, जब भारतीय सेना तितर-बितर होकर लड़ाई के मैदान से भागी, उस समय पोरस का हाथी, अपने गहरे जख्मों के कारण घायल होकर जमीन में गिर गया। पोरस उसी स्थान पर खड़े होकर युद्ध के दृश्य को देखने लगा। उसने भागने की इच्छा नहीं की। अगर वह चाहता तो बहुत आसानी के साथ भागकर निकल जाता। जैसा कि ईरान का प्रसिद्ध वीर सम्राट दारायु दो बार युद्ध में

पराजित होने पर भागकर अपने प्राण बचा चुका था। लेकिन पोरस ने ऐसा नहीं किया। ऐसा करना वह एक वीर आत्मा के लिए अपमान पूर्ण समझता था। युद्ध के समाप्त होते ही सिकन्दर के भेजे हुए सैनिकों ने पोरस को जाकर घेर लिया और वे सैनिक अपने साथ पोरस को अपनी सेना में ले गये।

युद्ध के बाद सिकन्दर

सिकन्दर उस वीर पुरुष पोरस को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुआ। सिकन्दर ने पोरस से पूछा : "किस प्रकार का व्यवहार आपके साथ में हो ?"

पोरस ने स्वाभिमान के साथ उत्तर दिया : "एक राजा की हैसियत में।"

सिकन्दर इस बात को सुनकर प्रसन्न हुआ। पोरस को उत्तर देते हुए उसने कहा, 'मैं वही करूँगा।' इसके बाद तुरन्त सिकन्दर ने पोरस के साथ अत्यन्त स्नेहपूर्ण व्यवहार किया और जितना राज्य पोरस का था, न केवल पोरस उसका अधिकारी रहा, बल्कि सिन्ध और झेलम के बीच जीते हुए कई एक राज्यों को पोरस के अधिकार में देकर सिकन्दर ने उसको अपना विश्वस्त मित्र बनाया।

दूसरा परिच्छेद

सिल्यूकस की पराजय

[ईसा से ३०५ वर्ष पहले]

पोरस के साथ सिकन्दर की मित्रता, पंजाब के दूसरे राज्यों की ओर यूनानी सेना की रवानगी, पहाड़ी स्वतंत्र जातियों के साथ संघर्ष, यूनानी सेना का विरोध, भारत से सिकन्दर की वापसी, सिल्यूकस का भारत में आक्रमण और उसकी पराजय।

सिकन्दर के स्मारक

युद्ध के बाद सिकन्दर ने पोरस को अपना मित्र बना लिया था। इस मित्रता की प्रतिष्ठा में सिकन्दर की राजनीतिक दूरदर्शिता थी। वह जितना ही वीर और बहादुर था, उतना ही वह राजनीतिज्ञ भी था। मनुष्य को पहचानने में उसे अद्भुत सफलता मिली थी। कर्री (झेलम) के युद्ध के बाद उसे आगे बढ़ना था और सम्पूर्ण भारत को विजय करने का वह स्वप्न देखने लगा था। इस विजय के लिए पोरस जैसे शूर-वीर भारतीयों की उसे जरूरत थी, जो आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता कर सकें। पोरस के साथ उसकी उदारता का इतना ही रहस्य था।

कर्री के युद्ध के बाद सिकन्दर ने झेलम के निकट एक उत्सव किया। उस उत्सव में दोनों ओर के शूर-वीर योद्धा और सरदार शामिल हुए। इस सम्मेलन में अनेक भारतीय राजाओं ने भी

भाग लिया। सिकन्दर ने पोरस के साथ अपनी मित्रता की घोषणा की और इस सम्बन्ध को मजबूत बनाने के लिए सिकन्दर ने जीते हुए राज्यों का अधिकार पोरस को दिया।

झेलम के पास से रवाना होने के पहले सिकन्दर ने दो नगरों के निर्माण की नींव डाली। एक नगर उस स्थान पर बनाये जाने का निर्णय हुआ, जहाँ पर पोरस के साथ सिकन्दर का युद्ध हुआ था और दूसरे नगर की नींव उस स्थान पर डाली गयी, जहाँ से सिकन्दर ने झेलम को पार किया था। ये दोनों नवनिर्मित नगर किले का काम करेंगे। झेलम नदी के बायें हाथ पर—युद्ध-स्थल के सन्निकट बना हुआ नगर सिकन्दर का विजय-स्मारक होगा और झेलम के दाहिने हाथ पर बना हुआ नगर सिकन्दर के उस प्रसिद्ध घोड़े का स्मारक होगा, जो युद्ध होने के कुछ ही पहले मर गया था और जिसने झेलम को पार करने में सिकन्दर की बड़ी सहायता की थी। सिकन्दर उस घोड़े के साथ बड़ा प्रेम करता था और वह प्रायः कहा करता था कि युद्ध के भीषण अवसरों पर यह घोड़ा ही मेरी रक्षा करता है।

झेलम के पास से रवाना होने के पूर्व इन दोनों नगरों के निर्माण की नींव डाली गयी और उनकी प्रतिष्ठा का कार्य सेनापति क्रैटरस के अधिकार में दिया गया। साथ ही, सेनापति क्रैटरस की अधीनता में एक सेना छोड़ कर सिकन्दर अपनी विशाल सेना के साथ भारत-विजय के लिए आगे रवाना हुआ।

पंजाब के दूसरे राज्यों पर सिकन्दर के आक्रमण

पोरस के सिवा, पंजाब में और भी कितने ही भारतीय राजा राज्य करते थे। उनमें से कुछ राजाओं के साथ पोरस की शत्रुता थी। कर्री के युद्ध के बाद सिकन्दर अपनी सेना के साथ

दूसरे राज्यों की ओर बढ़ा और एक-एक राज्य को उसने पराजित करना आरम्भ कर दिया। उत्तर की ओर, काश्मीर की सीमा पर कुछ पहाड़ी जातियाँ रहती थीं और उन पर एक पहाड़ी राजा का शासन था। सिकन्दर की विशाल सेना का वह सामना न कर सका और उसने बिना विरोध के अधीनता स्वीकार कर ली।

वहाँ से कुछ दूरी पर अभिसार लोगों की बस्तियाँ थीं और उनका शासक अभिसार का राजा था। यह वही राजा है, जिसने करीं के युद्ध के पहले, यूनानी प्रतिनिधि के पहुँचने पर आत्म-समर्पण करना स्वीकार कर लिया था। उसके राज्य के निकट यूनानी सेना के पहुँचते ही, खतरे की सम्भावना होने पर राजा अभिसार ने आकर अधीनता स्वीकार कर ली और उसने युद्ध करना स्वीकार नहीं किया।

इसके बाद सिकन्दर की सेना पहाड़ियों के किनारे-किनारे आगे बढ़ी और उसने चिनाब नदी को पार किया। वहाँ पर एक हिन्दू राजा का शासन था और वह राजा पोरस का वंशज था, जो पोरस का चाचा होता था। दोनों में बहुत दिनों से शत्रुता चल रही थी। इस शत्रुता के कारण, दोनों ही एक दूसरे के अशुभचिंतक थे। इसी का यह परिणाम हुआ कि पोरस ने स्वयं उस राजा के पास संदेश भेजा कि वह आकर सिकन्दर के सामने आत्म-समर्पण करे।

पोरस का यह संदेश उस राजा को अत्यन्त अपमानजनक मालूम हुआ। वह न तो पोरस के सामने आत्म-समर्पण करना चाहता था और न सिकन्दर के सामने। उसका एक छोटा-सा राज्य था और सैनिक शक्ति भी साधारण थी। फिर भी आत्म-समर्पण करना उसे समुचित नहीं मालूम हुआ। एक शक्तिशाली और विशाल सेना के साथ युद्ध करके अपने सैनिकों का बलिदान

होना उसे बुद्धि-संगत नहीं मालूम हुआ। वह न तो युद्ध-क्षेत्र में जाकर अधीनता स्वीकार करना चाहता था और न युद्ध ही करना चाहता था। इस दशा में उसने बीच का मार्ग अपने लिए श्रेयस्कर समझा। पोरस के संदेश पर उसने स्वाभिमान के साथ आत्म-समर्पण करने से इनकार कर दिया और युद्ध की परिस्थिति उत्पन्न होने के पहले ही वह अपना राज्य छोड़कर चला गया।

उस राजा के राज्य छोड़कर चले जाने का समाचार जब सिकन्दर को मालूम हुआ तो उसके बाद उसने किसी प्रकार की विध्वंसक नीति का वहाँ पर प्रयोग नहीं किया और उस राज्य का प्रबन्ध अपने एक सेनापति को देकर, वह आगे बढ़ा।

सांकल का कठिन संग्राम

यहीं पर सिकन्दर को मालूम हुआ कि आगे पहाड़ियों के निकट कई एक लड़ाकू स्वतन्त्र जातियाँ रहती हैं। उनको पराजित करने के लिए पोरस और अभिसार के राजा ने उन पर किसी समय पहले चढ़ाई की थी, लेकिन उन जातियों का पराजित करना असम्भव हो गया था और दोनों आक्रमणकारी राजा एक बड़ी क्षति उठाकर अपने-अपने राज्य को वापस चले गये थे।

इस प्रकार की बहुत-सी बातें सिकन्दर को बतायी गयीं और निश्चय किया गया कि उनको पराजित करना जरूरी है। निर्णय के बाद, उन स्वतन्त्र जातियों को पराजित करने के लिए सिकन्दर की सेना आगे बढ़ी। पूर्व की ओर बढ़ते हुए सिकन्दर को कई छोटे-छोटे राज्यों के साथ युद्ध करना पड़ा। रावी और व्यास नदियों के बीच, कठ नामक एक राज्य था और उसकी राजधानी सांकल थी। सिकन्दर की सेना राजधानी सांकल की ओर रवाना हुई। सांकल राजधानी को एक ओर पहाड़ी ने

सुरक्षित बना रखा था और दूसरी ओर एक झील ने उसे घेर रक्खा था। लाहौर के उत्तर-पश्चिम में, अमृतसर के निकट सांकल राजधानी थी। कठ राज्य के आस-पास जो अन्य जातियाँ रहती थीं, वे सब की सब युद्ध में बड़ी बहादुर थीं और कठ-राजा के साथ हमेशा सहयोग करती थीं।

सांकल के मार्ग पर यूनानी सेना के आगे बढ़ते ही कठ-राज्य की सेना ने युद्ध की तैयारी की और राजधानी के बाहर जाकर उसने यूनानी सेना का मुकाबिला किया। कठ-राज्य की ओर से जो सेना युद्ध करने के लिए आयी, उसमें कई एक पहाड़ी जातियों के लोग थे। वे लड़ने में अत्यन्त प्रबल और बहादुर थे। भारतीय सेना ने युद्ध में लड़ने वाले रथों का एक घेरा बनाकर शत्रु के साथ मार-काट आरम्भ कर दी। दोनों ओर की भयानक बाणों की वर्षा से भीषण तूफान का दृश्य पैदा हो गया। युद्ध आरम्भ होने के कुछ घन्टों में ही विशाल यूनानी सेना को आगे बढ़ना मुश्किल हो गया। भारतीय सैनिकों की मार के कारण कुछ घण्टों में ही सिकन्दर के बहुत-से सैनिक मारे गये और अधिक संख्या में घायल हुए। इस भयानक अवस्था में सिकन्दर की सेना को पीछे हटना पड़ा। एक बड़ी क्षति उठाकर भी यूनानी सेना ने युद्ध बन्द नहीं किया। भारतीय बराबर आगे बढ़ रहे थे और यूनानी सेना को पीछे हटने के सिवा और कोई चारा न था। यह देखकर सिकन्दर ने युद्ध की स्थिति को सम्हालने की कोशिश की। पीछे हटने के बाद फिर यूनानी सेना आगे की ओर बढ़ी और उसने भयानक मार आरम्भ कर दी। दोनों ओर से जम कर बहुत समय तक युद्ध होता रहा। भारतीय सैनिकों का एक ओर का घेरा कमजोर पड़ गया। बहुत-से रथों का विध्वंस हुआ और उनमें बैठे हुए योद्धा युद्ध में मारे गये।

युद्ध की इस दुरवस्था में भी भारतीय सेना ने साहस नहीं छोड़ा। दोनों ओर से भयानक मार होती रही। इस अवसर पर भारतीय सेना फिर आगे की ओर बढ़ी और यूनानी सेना पीछे की ओर लगातार हटने लगी। सिकन्दर की सेना के सामने एक निराशा पैदा होने लगी। उसी मौके पर पोरस की सेना आकर कठ-राज्य की सेना पर टूट पड़ी। पोरस की सेना को इसी अवसर के लिए सिकन्दर ने पहले से अलग रखा था। सांकल से आयी हुई सेना, पोरस की सेना की ओर बढ़ी और मौके पर यूनानी सेना ने बढ़कर सांकल के सैनिकों का भयानक संहार किया। युद्ध की परिस्थिति लगातार भयंकर होती गयी। युद्ध-क्षेत्र में सिकन्दर की ओर से सैनिकों की संख्या अब फिर अधिक हो गयी और सांकल की ओर से कोई सेना न आ सकी। शत्रु-सेना का दबाव बढ़ने पर और अपने सैनिकों के बहुत-से मारे जाने पर कठ-राज्य की सेना ने पीछे हटना आरम्भ किया। शत्रुओं का जोर अधिक देखकर साँकल से आयी हुई सेना भागने लगी और थोड़ी देर में ही युद्ध का मैदान एक ओर से बिलकुल खाली हो गया। सांकल के युद्ध में यूनानी सेना विजयी हुई।

सांकल के युद्ध का प्रभाव

सिकन्दर की इस युद्ध में विजय हुई। लेकिन एक बड़ी क्षति उठाने के बाद। उसके बहुत-से सैनिक मारे गये और बड़ी संख्या में वे घायल हुए। कठ-राज्य की सेना की पराजय पोरस की सेना के कारण हुई। अगर पोरस और राजा अभिसार की पुरानी शत्रुता न होती और युद्ध के अंतिम समय में अचानक छिपे तौर पर एक बड़ी सेना लेकर पोरस ने सिकन्दर की ओर से आक्रमण न किया होता तो कदाचित् युद्ध का परिणाम कुछ और ही

होता। फिर भी युद्ध में यूनानी सेना को जिस प्रकार सैनिक क्षति उठानी पड़ी, उसने यूनान के बहादुर सैनिकों की हिम्मत तोड़ दी।

इसके बाद सिकन्दर अपनी सेना के साथ व्यास नदी की ओर रवाना हुआ। मार्ग में ही उसे मालूम हुआ कि पंजाब की कई एक शक्तियाँ अभी बाकी हैं, जिनके साथ यूनानी सेना को भयानक युद्ध करना पड़ेगा। उसे यह भी खबर मिली कि व्यास नदी पार करने के बाद नन्द-साम्राज्य मिलेगा और उस राज्य की एक विशाल सेना युद्ध के लिए तैयार है। इन खबरों से यूनानी सेना का साहस टूटने लगा।

सिकन्दर ने व्यास नदी के पास जाकर अपनी सेना का मुकाम किया और विश्राम लेने के बाद, वह व्यास नदी को पार करने की योजना तैयार करने लगा। सिकन्दर व्यास नदी को पार करके आगे बढ़ना चाहता था। इसलिए आगे बढ़ने पर जिन भारतीय राजाओं का उसे सामना करना पड़ेगा, उनका वह अनुमान लगाने लगा। अभी तक जितने भी युद्ध सिकन्दर को लड़ने पड़े थे, उनसे उसके साहस को धक्का न पहुँचता था। पूरे साहस के साथ सिकन्दर व्यास नदी को पार करने के उपायों को सोचने लगा।

यूनानी सेना का विद्रोह

सिकन्दर की सेना जब व्यास नदी के तट पर पहुँची, उस समय वह युद्ध करते-करते इतनी थक चुकी थी कि अब उसका साहस किसी नये युद्ध के लिए काम न करता था। व्यास नदी की ओर आते हुए यूनानी सैनिकों ने सुना था कि व्यास नदी को पार करने के बाद जो युद्ध करने पड़ेंगे, वे अधिक भयानक होंगे। इन बातों को सुनने के बाद यूनानी सैनिकों को यह भी मालूम हो गया था कि अभी तक भारत के शक्तिशाली राजाओं के

साथ युद्ध नहीं हुआ। यह ख्याल उन सैनिकों की घबराहट का एक अधिक कारण हो गया। सिकन्दर के सैनिकों से यह छिपा न था कि भारत की सीमा में प्रवेश करने के बाद अब तक दो ही युद्ध करने पड़े हैं। एक पोरस के साथ करीं के मैदान में और दूसरा सांकल में। इन दोनों युद्धों में यूनानी सेना की विजय हुई थी, लेकिन युद्ध की कठोरता और भीषणता ने सिकन्दर की सेना को भारत में युद्ध करने के लिए साहसी नहीं रखा था। विजय के बाद भी, करीं के युद्ध ने यूनानी सेना को निर्बल बना दिया था। यही अवस्था सांकल के युद्ध में भी हुई।

इस टूटते हुए साहस की दशा में जब यूनानी सैनिकों को मालूम हुआ कि व्यास नदी को पार करने के बाद भयानक युद्धों का सामना करना पड़ेगा तो यूनानी सेना एक साथ घबरा उठी और उसने सिकन्दर से आगे बढ़ने और युद्ध करने के लिए साफ-साफ इनकार कर दिया। सिकन्दर प्रत्येक अवस्था में व्यास नदी पार करना चाहता था। अपनी सेना का विरोध और विद्रोह जानकर उसने सेना को समझाने और प्रोत्साहित करने की चेष्टा की। लेकिन सेना पर सिकन्दर के प्रोत्साहन का कोई प्रभाव न पड़ा और सेना युद्ध करने से बराबर इनकार करती रही।

सेना के साथ सिकन्दर का मतभेद

सिकन्दर युद्ध करना चाहता था और उसकी सेना युद्ध करने से इनकार कर रही थी। इस मतभेद ने सिकन्दर और उसकी सेना के बीच एक भयानक संघर्ष उत्पन्न कर दिया। व्यास नदी के किनारे लगातार यह संघर्ष बढ़ने लगा। शुरू में सिकन्दर ने सेना को समझाने की चेष्टा की लेकिन समझाने का प्रभाव न

पड़ने पर सिकन्दर ने युद्ध करने के लिए सेना से साफ-साफ आग्रह किया। दोनों तरफ के आग्रह बराबर जोर पकड़ते गये।

किसी प्रकार का निर्णय न होने पर सिकन्दर ने अपनी सेना के अफसरों और सेनापतियों की एक बैठक की और अपने सेना नायकों के द्वारा सेना को समझाने की कोशिश की। सेना में बहुत-से अफसर और कितने ही सेनापति थे। उस बैठक में सिकन्दर ने अपनी विजय-यात्रा की बहुत-सी बातें कहीं और अपने सैनिकों की उसने प्रशंसा की। उसके बाद सेना के विरोध को उसने उपस्थित किया और साथ ही उसने आग्रह-पूर्वक कहा कि सेना को व्यास नदी पार करनी होगी और उसके बाद होने वाले संग्रामों में शामिल होना पड़ेगा।

उस बैठक में समस्त सेना और सेनापतियों की ओर से सेनापति क्वाइनस ने बोलने का काम किया। उसने बड़ी नम्रता के साथ सिकन्दर को समझाने का प्रयत्न किया। उसने कहा कि सेना को अपना देश छोड़े हुए और लगातार युद्ध करते हुए पूरे आठ वर्ष बीत चुके हैं। इन लगातार युद्धों से सैनिक इतने थक गये हैं कि अब उनका साहस आगे के युद्धों के लिए काम नहीं करता। सवार सैनिकों के घोड़ों की टापें इस लम्बी यात्रा में इतनी घिस गयी हैं, जिससे चलने में तकलीफ हो रही है। युद्ध करते-करते सैनिकों के अस्त्र कमजोर पड़ गये हैं। इन सभी कारणों को लेकर सेना ने विरोध किया है, इसका दूसरा और कोई कारण नहीं है।

सिकन्दर और उसके सेनापतियों में कोई निर्णय न हुआ। दोनों तरफ के विरोध और आग्रह ज्यों के त्यों बने रहे। इस अवस्था में सिकन्दर ने तड़पते हुए कहा :

"सेना ने आगे बढ़ने का विरोध किया है। वह न बढ़े। मैं अकेले व्यास नदी पार करके अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आगे बढ़ूंगा। सेना आगे नहीं बढ़ना चाहती, वह न बढ़े। वह लौट कर मक़दूनिया चली जावे और वहाँ के लोग इन सैनिकों की जबानी सुनें और जानें कि मक़दूनिया की सेना किस प्रकार अपने बादशाह को शत्रुओं के देश में छोड़कर मक़दूनिया भाग कर आयी है।"

सिकन्दर और उसकी सेना के बीच कोई समझौता न हो सका। सिकन्दर अपना आग्रह छोड़ना नहीं चाहता था और सेना अब आगे युद्ध नहीं करना चाहती थी। इस जबरदस्त विरोध में सिकन्दर एक दिन अपने कैम्प से गायब हो गया और दो दिनों तक वह बिल्कुल लापता रहा। ऐसा करने से सिकन्दर का ख्याल था कि सेना घबरा उठेगी और उस अवस्था में जो प्रस्ताव किया जायगा, उसके लिए वह तैयार हो जायगी। लेकिन सिकन्दर का यह ख्याल सही न निकला। उसके दो दिनों तक लगातार गायब रहने के बाद भी सेना ने अपना विरोध कायम रखा। अंत में सिकन्दर को सेना की बात माननी पड़ी और व्यास नदी के पास से उसने लौट जाना स्वीकार कर लिया।

यूनानी सेना की वापसी

सिकन्दर और उसकी सेना के मतभेद में सिकन्दर को सेना का आग्रह स्वीकार करना पड़ा। उसे यह भी स्वीकार करना पड़ा कि जो सिकन्दर विश्व-विजय की यात्रा में, कहीं किसी युद्ध में पराजित न हुआ था, उसे आज अपनी सेना के सामने पराजित होना पड़ा। सिकन्दर ने वापस होने की आज्ञा दी और उस आज्ञा के अनुसार, ईसा से ३२६ वर्ष पहले, सितम्बर के महीने

में यूनानी सेना व्यास नदी के किनारे से पीछे की ओर लौटी और भारत छोड़ कर अपने देश मक़दूनिया की ओर वह रवाना हुई।

यूनानी सेना अब चुपचाप वापस जाना चाहती थी। कहीं पर भी उसका इरादा युद्ध करने का न था। जिस रास्ते से यूनानी सेना वापस जा रही थी, उसमें रावी नदी के किनारे मालव वंश के एक राजा का राज्य मिला। उसके पूर्व दिशा की ओर क्षुद्रकों का राज्य पड़ता था। दोनों राज्यों की ओर से यूनानी सेना के साथ युद्ध करने की तैयारी थी। लेकिन सिकन्दर ने उनको किसी प्रकार की खबर न होने दी और अकस्मात् मालवों के कुछ गावों पर उसने अपनी सेना का आक्रमण कर दिया। इस पर बिना किसी तैयारी के वहाँ के निवासियों ने मुलतान से करीब चालीस मील उत्तर-पूर्व के एक स्थल पर यूनानी सेना का मुकाबिला किया और एक छोटा-सा युद्ध हो गया। उस युद्ध में सिकन्दर की छाती में एक भाला इतने जोर से लगा, जिससे वह घायल होकर जमीन पर गिर गया। सिकन्दर की छाती से इतना अधिक खून निकला, जिससे उसे बहुत देर तक होश नहीं आया। यूनानी सेना के सेनापतियों ने सिकन्दर को उठा कर सम्भाला और वे उसको वहाँ से अपने साथ ले गये।

यहाँ से चलकर यूनानी सेना पातालप्रस्थ नामक उस स्थान में पहुँची, जहाँ पर आज कल हैदराबाद है। इसके पश्चात् सिकन्दर की सेना कुछ जल-मार्ग से और कुछ स्थल मार्ग से पश्चिम की ओर रवाना हुई। अपने देश, मक़दूनिया पहुँचने के पहले ही काबुल में सिकन्दर बीमार पड़ा और सोलह दिनों तक बीमार रह कर अंत में वहीं पर ईसा से ३२३ वर्ष पूर्व, जून के महीने में उसकी मृत्यु हो गयी।

सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य

मौर्य नामक क्षत्रिय वंश में चन्द्रगुप्त ने जन्म लिया था और इसीलिए वह चन्द्रगुप्त मौर्य के नाम से विख्यात हुआ। ईसा से छः शताब्दी पूर्व चन्द्रगुप्त के पूर्वज पिपलोन नामक एक छोटी-सी रियासत में राज्य करते थे। उन दिनों में मगध का राज्य शक्तिशाली हो रहा था। उसने अनेक छोटे-छोटे राज्यों पर आक्रमण करके उनको अपने राज्य में मिला लिया था। उसके द्वारा जो राज्य पराजित हुए थे, उनमें पिपलोन का राज्य भी था।

अपना राज्य खो कर चद्रगुप्त मौर्य के पूर्वज परतंत्र हो गये थे। उनके जीवन में इस परतंत्रता की पीड़ा थी। चन्द्रगुप्त मौर्य अपनी छोटी आयु में ही इस बात को सुना करता था कि हमारे राज्य को जीत कर मगध के राजा ने अपने साम्राज्य में मिला लिया है। नन्द-साम्राज्य के प्रति चन्द्रगुप्त के हृदय में पहले से ही यह द्वेष भरा हुआ था और इसी कारण वह उस साम्राज्य का शत्रु हो रहा था। मगध में नन्द-वंश के राजाओं का शासन था, इसीलिए वह राज्य नन्द-साम्राज्य और मगध राज्य—दोनों नामों से प्रसिद्ध था।

उन दिनों में राजकुमारों को शिक्षा देने के लिए तक्षशिला में एक विद्यालय था, उसमें सभी प्रकार की ऊँची शिक्षा दी जाती थी। चन्द्रगुप्त भी उस विद्यालय में पढ़ने के लिए तक्षशिला गया था और वहीं पर रहकर वह अध्ययन कर रहा था। भारत में आक्रमण करने के लिए जब सिकन्दर तक्षशिला में पहुँचा, उस समय चन्द्रगुप्त वहाँ के विद्यालय में पढ़ रहा था। उस विद्यालय में चाणक्य नामक एक विद्वान् अध्यापक शिक्षा देने का काम करता था, उसके साथ चन्द्रगुप्त की मित्रता थी।

चाणक्य राजनीति का पण्डित था। सिकन्दर के सम्बन्ध में बहुत-सी बातों की जानकारी प्राप्त करने के बाद उसने चन्द्रगुप्त को परामर्श दिया कि अगर वह सिकन्दर से मिले और नन्द-साम्राज्य के सम्बन्ध में वह उसको प्रोत्साहन दे तो बहुत-कुछ लाभ उठा सकता है। चन्द्रगुप्त मगध-साम्राज्य के साथ शत्रुता रखता था और अपने पूर्वजों का उससे वह बदला लेना चाहता था।

चाणक्य के साथ परामर्श करके तक्षशिला में चन्द्रगुप्त सिकन्दर के पास गया और मगध-साम्राज्य के सम्बन्ध में उसने बहुत-सी बातें सिकन्दर से कहीं। उसने सिकन्दर को बताया कि मगध का राजा महापद्मनन्द जाति का नाई है और उस देश की रानी को मिलाकर उसने राजा को मार डाला है और स्वयं राज-सिंहासन पर बैठ गया है। महापद्मनन्द के इस अपराध के कारण, राज्य की प्रजा उसका साथ न देगी और इस तरीके से इस राज्य को अपने अधिकार में कर लेना आपके लिए बड़ा सरल होगा। लेकिन सिकन्दर ने इन बातों को पंसद नहीं किया। इस दशा में चन्द्रगुप्त को कोई सफलता नहीं मिली और वह सिकन्दर के पास से चुपचाप लौट आया।

चन्द्रगुप्त अपनी कोशिशों में निराश नहीं हुआ। इस समय उसकी अवस्था लगभग पच्चीस वर्ष की थी। वह किसी भी प्रकार मगध के राजा से अपने पूर्वजों का बदला लेना चाहता था और चाणक्य उसके इस उद्देश्य में सहायक और मित्र था। व्यास नदी के पास से सिकन्दर अपनी सेना के साथ अपने देश की ओर लौट गया था और काबुल पहुँचने पर उसकी मृत्यु हो गयी थी। यह समाचार कुछ विलम्ब के बाद भारत में पहुँचा। सिकन्दर ने भारतीय राज्यों को जीत कर कुछ राज्य पोरस के

अधिकार में दे दिये थे और अनेक राज्यों का प्रबन्ध करने के लिए उसने अपने सेनापति नियुक्त कर दिये थे।

शासक की हैसियत में चन्द्रगुप्त मौर्य

सिकन्दर की मृत्यु का समाचार मिलने के बाद, भारत में यूनानी सरदारों और सेनापतियों के विरुद्ध क्रान्ति की आवाजें उठने लगीं। भारतीय प्रजा यूनानी शासन नहीं चाहती थी। चन्द्रगुप्त एक उत्साही युवक था। उसने इस अवसर का लाभ उठाया। चाणक्य उसका सलाहकार था ही। चन्द्रगुप्त ने यूनानी सेनापतियों के विरुद्ध, भारतीय विद्रोहियों का साथ दिया और अपनी बुद्धिमत्ता के कारण वह विद्रोहियों का नेता हो गया। विदेशी शासन के विरुद्ध क्रान्ति करने में चन्द्रगुप्त को सफलता मिली। कुछ साधारण और असाधारण संघर्षों के बाद विद्रोहियों ने यूनानी शासन को छिन्न-भिन्न कर दिया और सिकन्दर के सेनापति अपने प्राण बचाकर वहाँ से भाग गये।

इस अवसर पर चन्द्रगुप्त के अधिकार में विद्रोहियों की एक अच्छी सेना हो गयी थी। चाणक्य से इस समय चन्द्रगुप्त को बड़ी सहायता मिली। उसने विद्रोहियों से मिलकर चन्द्रगुप्त को राजा घोषित किया और पंजाब से यूनानी शासन मिटाकर चन्द्रगुप्त शासन करने के लिए सिंहासन पर बैठा। चन्द्रगुप्त की इस सफलता का श्रेय चाणक्य को मिला और इस प्रकार के अधिकारों के साथ वह चन्द्रगुप्त मौर्य का मन्त्री बनाया गया।

राजा होने के बाद थोड़े ही दिनों में चन्द्रगुप्त ने भारत की अनेक उत्तरीय और पश्चिमीय रियासतें अपने अधिकार में कर लीं। इस समय उसकी सैनिक शक्ति प्रबल हो गयी थी। अवसर पाकर उसने मगध-राज्य पर आक्रमण किया और उसके

राजा महापद्मनन्द को युद्ध में मार कर, उसने उसके राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। ईसा से ३२१ वर्ष पहले चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन पर बैठा और यहीं से उसने मौर्य साम्राज्य का विस्तार किया।

चन्द्रगुप्त स्वयं बुद्धिमान था और चाणक्य जैसे राजनीतिज्ञ का मन्त्रीत्व उसे प्राप्त था। इसीलिए अपने राज्य के विस्तार में उसे अद्भुत सफलता मिली। कुछ ही दिनों में उत्तर-भारत के समस्त राज्य उसके अधिकार में आ गये। हिमालय से विन्ध्या-चल तक और पंजाब-सौराष्ट्र से लेकर बंगाल तक मौर्य-साम्राज्य का विस्तार हो गया।

सिल्यूकस का भारत में आक्रमण

अपने राज्य का विस्तार करके जिन दिनों में चन्द्रगुप्त उसको मजबूत बना रहा था, ठीक उन्हीं दिनों में एशिया के मध्य भाग और पश्चिमी देशों में सिल्यूकस अपनी राज-शक्ति को दृढ़ करने में लगा हुआ था। सिकन्दर के आक्रमण में वह एक सेनापति की हैसियत में भारत आया था और भारतीय राज्यों को जीत कर उसने यूनानी शासन कायम किया था।

ईसा से ३२१ वर्ष पूर्व, सिकन्दर के मरने के बाद उसके सेना-पतियों में उसके राज्य का विभाजन हुआ। उसमें सिल्यूकस को अपने हिस्से में सीरिया, एशिया माइनर और पूर्वीय प्रान्त मिले। विरोधियों के साथ बहुत दिनों तक संघर्ष करने के बाद, ईसा से ३१२ वर्ष पहले वह बेबीलोन का बादशाह हुआ। इसके बाद सिल्यूकस ने उन देशों पर अधिकार करने का इरादा किया, जिनको सिकन्दर विजय कर चुका था। उसने भारत को

पराजित करने के लिए, ईसा से ३०५ वर्ष पूर्व सिन्ध नदी को पार किया।

सिल्यूकस का आत्म-समर्पण

पंजाब में सिकन्दर के सरदारों और सेनापतियों को पराजित करके उनके राज्यों पर चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपना अधिकार कर लिया था। इसलिए सिल्यूकस सीधे मौर्य-साम्राज्य पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा। चन्द्रगुप्त मौर्य को जब मालूम हुआ कि सिल्यूकस अपनी सेना के साथ युद्ध करने के लिए आया है तो उसने तुरन्त युद्ध की तैयारी की और अपने साम्राज्य के बाहर उसने एक विशाल सेना लेकर सिल्यूकस का मुकाबिला किया।

लड़ाई के मैदान में चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना के आते ही सिल्यूकस की सेना आगे बढ़ी और दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया। कुछ घण्टों के बाद ही युद्ध ने भीषण रूप धारण किया। सिल्यूकस ने भारतीय सैनिकों के सम्बन्ध में जो अनुमान किया था, वह अनुमान सिल्यूकस को धोखा देता हुआ दिखायी देने लगा। भारतीय सेना की मार के सामने सिल्यूकस के सैनिकों के पैर उखड़ने लगे। सिल्यूकस के बहुत जोर मारने पर भी उसकी सेना युद्ध में डटती हुई मालूम न हुई। दूसरी तरफ भारतीय सेना बराबर आगे बढ़ती हुई आ रही थी। सिल्यूकस और उसकी सेना का साहस टूट गया। उसने पीछे हटकर अपने अस्त्र गिरा दिये और संधि का झण्डा ऊँचा किया।

सिल्यूकस के आत्म-समर्पण की प्रार्थना पर चन्द्रगुप्त ने अपनी सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया। अन्त में सिल्यूकस ने

चन्द्रगुप्त मौर्य के पास जाकर संधि का प्रस्ताव किया। ईसा से ३०३ वर्ष पूर्व, चन्द्रगुप्त के साथ सिल्यूकस ने संधि की और उसकी शर्तों के अनुसार, उसने अपने राज्य के चार प्रान्त काबुल, हिरात, कन्दहार और मकरान चन्द्रगुप्त मौर्य को भेंट में दिये और चन्द्रगुप्त मौर्य की तरफ से सिल्यूकस को पाँच सौ हाथी दिये गये। इस संधि के बाद, सिल्यूकस ने अपने सम्बन्ध को चिर-स्थायी और गम्भीर बनाने के लिये चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया।

तीसरा परिच्छेद

अयोध्या का युद्ध

[ईसा से १७३ वर्ष पहले]

मौर्य शासन-काल में भारत, शक्तिशाली अशोक, बौद्ध धर्म का प्रभाव, अहिंसा और शासन, विलासिता की वृद्धि, विदेशी आक्रमण, पाटलिपुत्र में गृह-युद्ध, मेनेण्डर के साथ युद्ध, यूनानी सेना की पराजय।

मौर्य शासन का विकास

पिछले परिच्छेद में चन्द्रगुप्त मौर्य की अनेक बातों का उल्लेख किया जा चुका है और यह बताया जा चुका है कि उसने किस तरीके से देश के एक बड़े भाग पर अपना शासन कायम किया था और सिल्यूकस के आक्रमण करने पर उसने विजय प्राप्त की थी। शासक होने के बाद वह एक सफल राजनीतिज्ञ साबित हुआ और बड़ी-से-बड़ी सेना को अपने अधिकार में रख कर उसने लगभग सम्पूर्ण भारत में अपनी सत्ता कायम कर ली थी।

चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद उसका बेटा बिन्दुसार मौर्य साम्राज्य का शासक बना और करीब-करीब पच्चीस वर्ष तक उसने बड़ी योग्यता के साथ शासन किया। चन्द्रगुप्त की सफलता का बहुत कुछ कारण चतुर राजनीतिज्ञ चाणक्य था और चन्द्रगुप्त के बाद, बिन्दुसार के शासन-काल में भी चाणक्य प्रधान मंत्री के पद पर रहा। यही कारण था कि चन्द्रगुप्त के बाद, मौर्य साम्राज्य

में किसी प्रकार की कमजोरी नहीं पैदा हुई, बल्कि राज्य का विस्तार पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गया था और मौर्य साम्राज्य की सीमा देश के पूर्व-पश्चिम की ओर समुद्र के किनारे तक पहुँच गयी थी।

विन्दुसार के पश्चात् उसका लड़का अशोक मौर्य साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा। अशोक छोटी अवस्था में ही समझदार और दूरदर्शी मालूम होता था और इसीलिए विन्दुसार ने उसे अपने समय में ही उज्जैन और तक्षशिला के राज्य-प्रबन्ध का भार सौंप दिया था। साम्राज्य का शासन-भार प्राप्त करने पर अशोक के अन्तःकरण में दिग्विजय की अभिलाषा बार-बार उठने लगी। अभी तक कलिंग का राज्य, मौर्य साम्राज्य से बाहर था और स्वतन्त्र था। अपने शासन के बारहवें वर्ष में अशोक ने कलिंग-राज्य पर आक्रमण किया। कलिंग लोग युद्ध में बहादुर थे। दोनों ओर से भीषण युद्ध हुआ। भयानक नर-संहार के बाद, अशोक ने विजय प्राप्त की और कलिंग का राज्य भी मौर्य साम्राज्य में शामिल कर लिया गया।

अशोक का दिग्विजय

अशोक बौद्ध धर्म का समर्थक था। शूर-वीर और पराक्रमी होने के बाद भी, उसके अन्तरात्मा में अहिंसा ने दृढ़ता के साथ अधिकार कर लिया था। इसी अहिंसा के प्रभाव के कारण, कलिंग-राज्य को जीतने के पश्चात् अशोक को प्रसन्नता नहीं हुई। उस युद्ध में दोनों ओर से जो भयानक नर-संहार हुआ, उसने उसके हृदय को निर्बल बना दिया। उसके अन्तःकरण में एक ओर दिग्विजय की अभिलाषा थी और दूसरी ओर अहिंसा के प्रति आकर्षण था। दोनों भावनाओं का एक साथ और

एक स्थान पर रहना असम्भव था। वह दोनों की रक्षा करना चाहता था। इसीलिए रक्तपात के द्वारा दिग्विजय करने की अपेक्षा, उसने उस विजय को महत्व देने का निश्चय किया, जिसका सम्बन्ध धर्म के साथ था और जिसके द्वारा अहिंसा की रक्षा होती थी। भारतीय सीमा के भीतर जो राज्य अभी तक अपराजित थे, उनको अशोक ने धार्मिक विजय के द्वारा पराजित करने की कोशिश की और भारत से बाहर, मध्य एशिया, पश्चिमीय एशिया, मिस्र और उत्तरी अफ्रीका से लेकर यूनान तक उसने अपने धर्म-विजय का झण्डा फहराया।

अशोक के शासन काल में भारत ने बहुत बड़ी उन्नति की थी। छोटे-छोटे राजाओं और नरेशों का अंत हो गया था और मौर्य साम्राज्य का शक्तिशाली शासन चल रहा था। उस समय सम्पूर्ण संसार में यूनानी, भारतीय और चीनी—शक्तियाँ प्रधान हो रही थीं।

मौर्य शासन का पतन

भारत की छिन्न-भिन्न शक्तियों को एकत्रित करके अशोक ने अपने शासन-काल में भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाने में पूरी सफलता प्राप्त की थी। यदि बौद्ध धर्म की शिक्षा-दीक्षा ने उसे अहिंसा का उपदेश न दिया होता तो इसमें किसी को संदेह नहीं हो सकता कि उस समय भारत ने संसार के दूसरे देशों पर अपना आधिपत्य कायम किया होता और उसका परिणाम यह होता कि इस देश पर विदेशी क्रूर जातियों ने आक्रमण करने, लूटने और सर्वनाश करने का साहस न किया होता। लेकिन बौद्ध धर्म की अहिंसा के उपदेशों ने भारत के राजाओं को ऐसा नहीं करने दिया। अशोक के शासन-काल में बौद्ध धर्म को

प्रधानता दी गयी और उसके बाद भी यह प्रधानता देश में बराबर कायम रही। मौर्य साम्राज्य की गद्दी पर राजा सम्प्रति के बैठते ही भारतीय राजनीति की परिस्थितियाँ और भी अधिक गम्भीर हो उठीं। अशोक ने अपने शासन-काल में बौद्ध-धर्म के प्रचार और विस्तार में अपनी समस्त शक्ति अर्पण की थी और राजा सम्प्रति ने जैन धर्म की प्रतिष्ठा और व्यवस्था में अपनी पूरी सामर्थ्य का प्रयोग किया। इन दोनों धर्मों ने देश में अहिंसा के सिवा और कुछ बाकी नहीं रखा।

सम्प्रति के शासन के बाद, मौर्य साम्राज्य का पतन आरम्भ हुआ। बौद्ध धर्म और जैन धर्म से प्रभावित देश के शासक कर्त्तव्य विमुख होने लगे। शासकों की अकर्मण्यता देश में सर्वत्र भीषण अकर्मण्यता की कारण बन गयी। ईसा से दो शताब्दी पूर्व से ही भारत की शक्तिशाली शासन-व्यवस्था फिर छिन्न-भिन्न होने लगी और मौर्य साम्राज्य के टुकड़े होने आरम्भ हो गये।

मौर्य साम्राज्य के अंतिम राजा यहाँ तक निर्बल हो गये कि वे अपने राज्य की प्रजा पर भी ठीक-ठीक शासन न कर सके। अहिंसा के प्रति बढ़ती हुई भावना ने अकर्मण्यता, निर्बलता और विलासिता पैदा कर दी। राज्य की प्रजा और सेना के जीवन का अनुशासन नष्ट हो गया। इस बढ़ती हुई अराजकता में प्रजा के विद्रोहात्मक व्यवहार बढ़ते गये और मौर्य साम्राज्य के अन्तिम राजा वृहद्रथ को ईसा से १८५ वर्ष पूर्व मार कर उसके सेनापति पुष्य मित्र ने शासन की सत्ता अपने हाथों में ले ली। इस प्रकार अशोक की मृत्यु के पचास वर्षों के भीतर ही मौर्य साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

मौर्य साम्राज्य का अन्त राजा वृहद्रथ के शासन-काल में हुआ। वह अहिंसा का पक्षपाती था। इसी अवस्था में वह लगातार

विलासी हो गया। विलासिता, कायरता की जननी है। वह अपने महलों में रानियों के साथ अपना अधिक समय व्यतीत करता था। शासन की व्यवस्था बहुत ढीली चल रही थी। राज्य के अधिकारी स्वयं लुटेरे और प्रबन्ध में अयोग्य होते जाते थे। राज्य के कर्मचारियों पर राजा का आतंक नष्ट हो गया था, प्रबन्ध और व्यवस्था में सर्वत्र अंधेर चल रही थीं; प्रजा का जीवन बहुत-कुछ अशान्त हो गया था। अहिंसा के शीतल और घने बादलों की छाया में शासन की व्यवस्था नष्ट हो रही थी और अनुशासन हीनता के साथ-साथ राज्य में अराजकता बढ़ती जा रही थी।

डेमिट्रिअस का आक्रमण

सिकन्दर के मरने के बाद, उसके एक सेनापति सिल्यूकस ने अपनी सत्ता स्थापित की थी और पश्चिमी एशिया से लेकर मध्य एशिया तक उसने अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। लेकिन उसके वंशजों में जो उसके शासन के अधिकारी बने, वे सिल्यूकस की तरह वीर, पराक्रमी और राजनीतिज्ञ न थे। इसीलिए 'सिल्यूकस का कायम किया हुआ विस्तृत राज्य धीरे-धीरे निर्बल होने लगा और अशोक के शासन-काल में ही वह निर्बल होकर टूटने लगा था। ईसा से २४८ वर्ष पहले ईरान ने उससे अलग होकर अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की थी। इसके बाद, जिन छोटे-छोटे राज्यों और पहाड़ी सरदारों को जीत कर सिल्यूकस ने अपने अधिकार में कर लिया था, वे एक-एक करके स्वतंत्र होने लगे और सिल्यूकस के वंशज, जो राज्य पर शासन कर रहे थे, उनको अपने अधिकार में न रख सके। इस समय तक बाख्ती का राज्य सिल्यूकस के साम्राज्य में शामिल था। उसके राजा

डेमिट्रिअस ने साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया और उसने अपने राज्य बाख्ती को सिल्यूकस के साम्राज्य से स्वतंत्र कर लिया।

जिन दिनों में मौर्य साम्राज्य निर्बलता की सीमा पर पहुँच गया था और प्रजा के विद्रोह साम्राज्य के प्रति बढ़ते जा रहे थे, डेमिट्रिअस अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध हो रहा था। अपने राज्य को स्वतंत्र करने के बाद उसने ईसा से १९० वर्ष पूर्व अफ़ग़ानिस्तान पर आक्रमण किया और उसे जीतकर वह पंजाब की ओर बढ़ा। डेमिट्रिअस ने पश्चिमी पंजाब और सिंध को जीत कर अपने अधिकार में कर लिया। लेकिन उसकी सत्ता अधिक समय तक कायम न रह सकी। पहलव और दूसरी जातियों ने पश्चिम और उत्तर की तरफ से आकर बाख्ती पर हमला किया और उन्होंने भयानक युद्ध करके उस पर कब्जा कर लिया। वहाँ का राजा डेमिट्रिअस अपने राज्य से भागकर पंजाब चला आया और यहीं पर वह रहने लगा। कुछ दिनों में उसकी मृत्यु हो गयी और उसके मरते ही, उसका भारतीय राज्य कई एक छोटी-छोटी रियासतों में बंट गया।

मेनेण्डर का आक्रमण

डेमिट्रिअस ने भारत में आक्रमण करके जिन स्थानों पर अपनी सत्ता कायम कर ली थी, वे पहले सब मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत थे। पश्चिम की ओर मौर्य साम्राज्य के जो राज्य थे, उनकी राजधानी मौर्य सम्राटों की ओर से तक्षशिला में थी। वहाँ पर यूनानी नरेश डेमिट्रिअस का अधिकार हो जाने पर, मौर्य सम्राट अपनी राज-धानी पाटलिपुत्र में रह कर शासन करते रहे। उन दिनों में पाटलिपुत्र संसार का सब से बड़ा नगर माना

जाता था। उसका घेरा साढ़े इक्कीस मील था और उन दिनों में इतना बड़ा संसार में कोई दूसरा नगर न था।

मौर्य सम्राट बृहद्रथ के मारे जाने पर समस्त मौर्य-साम्राज्य में एक भयानक अशान्ति उत्पन्न हो गयी। पाटलिपुत्र में भी विद्रोह उठ खड़ा हुआ। सेनापति पुष्यमित्र ने उस विद्रोह को दबाने की कोशिश की। लेकिन आसानी से उसको सफलता न मिली। राज्य में जितने बौद्ध मन्दिर और मठ थे, उनके अधिकारी बौद्धों ने प्रजा को भड़काने का काम किया। राज्य में उनकी भी संख्या कम न थी, जो बौद्ध-धर्म और अहिंसा-धर्म के कट्टर विरोधी थे। इसलिए राजधानी पाटलिपुत्र से लेकर समस्त मौर्य राज्य में विद्रोह की आग भभक उठी। इस गृह युद्ध में भयानक रक्तपात हुआ और एक गिरोह ने दूसरे गिरोह का सर्वनाश करने में कुछ उठा न रखा। शासन का भय लोगों का जाता रहा। राज्य की ओर से कोई किसी का उस समय अधिकारी न रहा। सर्वत्र विद्रोह की आग जलने लगी। उस विद्रोह की भीषणता बढ़ जाने पर सेनापति पुष्यमित्र ने साहस और सावधानी से काम लिया। उसने विद्रोहियों को दबाने के लिए अपनी सेना के सैनिकों से काम लिया और सेना के सख्ती करने पर विद्रोही अपने-अपने स्थानों से भागने लगे। अशान्ति की आग जब बुझती हुई दिखायी दी, उस समय राज्य की सेना ने उन लोगों के साथ क्रूरता के व्यवहार किये, जिन्होंने विद्रोह को भड़काने का काम किया था और इस अपराध के अपराधी बौद्ध-धर्म के मठाधीश थे। उनके मन्दिरों, मठों और आश्रमों को खूब लूटा गया और बौद्ध-भिक्षुक ढूँढ़-ढूँढ़ कर मारे गये।

डेमिट्रिअस के मर जाने के बाद उसका भारतीय राज्य चार छोटी-छोटी रियासतों में बंट गया था, उनमें एक रियासत शाकल

थी। ये चारों रियासतें भारत में यूनानी राज्य के नाम से प्रसिद्ध थीं। शाकल का यूनानी राजा मेनेण्डर शूर-वीर और बहादुर था। उसने मौर्य-साम्राज्य और पाटलिपुत्र के गृह-युद्ध के जब समाचार सुने तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मौर्य साम्राज्य को जीतने और उस पर अपना अधिकार करने का विचार किया। मेनेण्डर जितना ही वीर था, उतना ही वह अवसरवादी भी था। उसने अपनी एक सेना मथुरा में छोड़कर दूसरी बड़ी सेना के साथ वह आगे बढ़ा और गंगा को पार कर उसने साकेत को, जो आजकल अयोध्या के नाम से प्रसिद्ध है, जाकर घेर लिया।

यूनानी सेना का आक्रमण

पाटलिपुत्र का विद्रोह अभी तक पूर्ण रूप से शान्त नहीं हुआ था। इसलिए सेनापति पुष्यमित्र अभी तक वहीं पर था और अपनी पूरी शक्ति को लगाकर वह विद्रोहियों के दमन करने में लगा था। इन्हीं दिनों में मेनेण्डर ने अयोध्या पर आक्रमण किया। मौर्य-साम्राज्य की ओर से अयोध्या और उसके आस-पास के राज्य की रक्षा के लिए दस हजार मालव सेना अयोध्या में मौजूद थी। इस मालव सेना को यूनानी नरेश मेनेण्डर के आक्रमण की पहले से कोई खबर न थी।

अयोध्या के आस-पास दूर तक कोशल राज्य फैला हुआ था। मेनेण्डर ने अयोध्या को घेर कर अपनी सेना को कोशल राज्य में फैला दिया और वहाँ पर सर्वत्र यूनानी सेना के अत्याचारों से त्राहि-त्राहि मच गयी। यूनानी सेना ने कोशल राज्य में भीषण अत्याचार किये। भयानक रूप में नर-संहार हुआ और समस्त कोशल-राज्य मार-काट, लूट मार से उजाड़ हो गया।

मेनेण्डर के ऐसा करने का अभिप्राय यह था कि जिससे अयोध्या में मालव सेना को बाहर से कोई सहायता न मिल सके।

यूनानी राजा मेनेण्डर ने अयोध्या में पहले से ही घेरा डाल दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन दिनों में यूनानी सैनिक कोशल राज्य का विनाश कर रहे थे, मालव सैनिकों को बाहर का कोई समाचार न मिल सका। अयोध्या के आस-पास के सम्पूर्ण स्थानों का सर्वनाश करके यूनानी सेना ने मालव सैनिकों पर आक्रमण शुरू किया।

मालव सैनिक युद्ध करने में सदा से बहादुर माने जाते थे। तलवार से युद्ध करने और शत्रुओं पर अपने बाणों का प्रहार करने में वे बहुत मशहूर थे। युद्ध की भयानक परिस्थितियों में भी वे डरना नहीं जानते थे। मालव सरदार ने यूनानी सेना के आक्रमण का स्वागत किया और बड़ी निर्भीकता के साथ अपने सैनिकों की तैयारी करके उसने युद्ध आरम्भ कर दिया।

मालव सैनिकों के साथ युद्ध करते हुए यूनानी सेना को तीन दिन बीत गये। लेकिन अयोध्या के भीतर प्रवेश करना उसके लिए असम्भव हो गया। मेनेण्डर के साथ एक बड़ी सेना थी और उसने अयोध्या को आसानी के साथ विजय करने का अनुमान किया था। लेकिन उसका वह अनुमान कहाँ तक सही निकला, इस बात को मेनेण्डर ही जान सका। मालव सैनिकों की संख्या शत्रु-सेना को देखते हुए साधारण थी और इस युद्ध की पहले से उनको कोई सूचना न थी। फिर भी उन वीर सैनिकों ने शत्रुओं के साथ जिस बहादुरी के साथ युद्ध किया, उससे मेनेण्डर के साहस को एक बड़ा धक्का लगा।

दोनों ओर से भयानक युद्ध चलता रहा। दोनों ओर के सैनिक युद्ध-क्षेत्र में बलिदान होते रहे। लेकिन कोई भी पक्ष

कमजोर पड़ता हुआ दिखायी न दे रहा था। मालव सरदार ने यह निश्चय कर लिया था कि जब तक हमारा एक भी सैनिक बाकी रहेगा, हम यूनानी सेना को अयोध्या में अधिकार करने न देंगे। युद्ध की इसी अवस्था में अनेक दिन बीत गये। एक बड़ी संख्या में मालव सैनिक मारे गये और घायल हुए, लेकिन उनके सामने घबराने का कोई कारण पैदा न हुआ।

युद्ध के कारण अयोध्या की दशा बिगड़ रही थी। यूनानी सैनिकों के अत्याचारों और उनकी लूट-मार से नगर की अवस्था धीरे-धीरे सोचनीय हो उठी। मालव सैनिकों के पास खाने-पीने की सामग्री की कमी हो गयी और उसके प्रबन्ध का कोई भी उपाय न हो सकता था। युद्ध के दिनों की संख्या एक महीने तक पहुँच गयी। खाने-पीने के अभाव में मालव सैनिक कमजोर पड़ने लगे। उनकी कमजोरी मेनेण्डर से छिपी न रही। उसने इस दुरवस्था का लाभ उठाया और अन्तिम दिनों में उसने पूरी शक्ति लगा कर भयानक युद्ध किया। उसका फल यह हुआ कि मालव सरदार की पराजय हुई और अयोध्या में यूनानी सेना ने अपना अधिकार कर लिया।

मालव सेना को पराजित करने के बाद, मेनेण्डर ने अयोध्या में अपनी सत्ता कायम की और कई दिनों के विश्राम के बाद, उसने अपनी सेना को दो भागों में विभाजित किया और अपनी एक सेना, जिसमें पचास हजार यूनानी सैनिक थे, पटना की ओर रवाना करके दूसरी सेना को, जिसमें सैनिकों की संख्या अधिक थी, अपने साथ लिया और मिथिला-राज्य पर आक्रमण करने के लिए, उसकी राजधानी बैशाली की ओर वह चला गया।

सेनापति पुष्य मित्र अभी तक पाटलिपुत्र में था। मौर्य सम्राट के मारे जाने पर वहाँ जो अशान्ति उत्पन्न हुई थी, वह

बहुत अंशों में शान्त हो आयी थी। लेकिन उसके सामने कुछ और खतरे पैदा हो गये थे। जिन दिनों में यूनानी नरेश मेनेण्डर ने अयोध्या में आक्रमण किया, उसी मौके पर सेनापति पुष्यमित्र को पाटलिपुत्र में कलिंग राज्य की ओर से होने वाले आक्रमण का समाचार मिला। अशोक ने अपने शासन-काल में कलिङ्ग राज्य को जीत कर मौर्य साम्राज्य में मिला लिया था, लेकिन अशोक के बाद, मौर्य साम्राज्य की शासन-सत्ता निर्बल होने पर, दूसरे अनेक राज्यों के साथ-साथ, कलिङ्ग का राज्य भी स्वतंत्र हो गया था।

कलिङ्ग का राजा .खारवेल भी जैन मत का अनुयायी था। पाटलिपुत्र में बौद्ध मत के समर्थक मौर्य सम्राट बृहद्रथ के मारे जाने पर जो विद्रोह उत्पन्न हुआ, उसमें वहाँ के बौद्ध मत के समर्थक लोगों का ही बिनाश किया गया था। मार-काट के साथ-साथ वे लोग लूटे भी गये थे। बहुत दिनों से मौर्य साम्राज्य में दो बिरोधी धार्मिक विचारों का संघर्ष चल रहा था। सम्राट के मारे जाने के बाद इस संघर्ष ने और भी जोर पकड़ा। कलिङ्ग का राजा पहले ही मौर्य साम्राज्य का विरोधी था। वह अपने पूर्वजों का बदला लेना चाहता था। इसीलिए वह किसी अच्छे अवसर की घात में था। मौर्य-साम्राज्य में और विशेष कर पाटलिपुत्र में पारस्परिक युद्ध का समाचार पाकर राजा कलिङ्ग ने इसे अपने लिए एक अच्छा अवसर समझा और उसने बड़ी तेजी के साथ अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। अपने साथ एक लाख सेना को लेकर वह रवाना हुआ। उसके साथ तीन हजार लड़ाकू हाथी सेना में थे। .खारवेल ने मौर्य-साम्राज्य में जाकर कई एक स्थानों पर अधिकार कर लिया और पाटलिपुत्र पर हमला करने के लिए उसने अपनी सेना के साथ नागार्जुन पर्वत के निकट मुकाम किया।

सेनापति पुष्यमित्र के सामने भयानक परिस्थिति थी। अयोध्या में सर्वनाश करके मेनेन्डर ने अपना अधिकार कर लिया था और वहाँ पर मालव सैनिकों की पराजय हो चुकी थी। इधर कलिङ्ग का राजा ख़ारवेल एक विशाल सेना के साथ मौर्य-साम्राज्य को विध्वंस करने के लिए पाटलिपुत्र की ओर आ रहा था। इस भीषण परिस्थिति में भी सेनापति ने अपना साहस नहीं तोड़ा। अभी तक सम्राट बृहद्रथ का स्थान खाली था। प्रजा के विद्रोह के कारण सेनापति ने किसी को सम्राट नहीं बनाया था। उसने अपने विश्वासी सेनाध्यक्षों और साम्राज्य के चतुर मंत्रियों को बुलाकर गुप्त सभा की और सब के परामर्श से उसने अपने पुत्र अग्निमित्र को मौर्य-साम्राज्य का सम्राट घोषित किया।

सेनापति पुष्यमित्र को मेनेण्डर की यूनानी सेना के साथ भी युद्ध करना था और ख़ारवेल के आक्रमण से पाटलिपुत्र की भी रक्षा करनी थी। इसके लिए उसने एक विशाल सेना की तैयारी की। सेनापति पुष्यमित्र एक असाधारण योद्धा और चतुर सेनापति था। उसके अधिकार में मालव सैनिकों की एक शक्तिशाली सेना थी जो युद्ध में भयानक मार करती थी। पुष्यमित्र ने पाटलिपुत्र की रक्षा का भार अग्निमित्र के बेटे वसुमित्र को सौंपा और उसके अधिकार में उसने एक बड़ी सेना पाटलिपुत्र में छोड़ दी। सम्राट अग्निमित्र के अधिकार में तीस हजार की शक्तिशाली सेना देकर, मथुरा में अधिकार करने को उसने भेजा और अपने साथ सत्तर हजार वीर क्षत्रिय सैनिकों और सरदारों की सेना को लेकर वह स्वयं मेनेण्डर का सामना करने के लिए ईसा से १७२ वर्ष पहले वैशाली की ओर रवाना हुआ।

मेनेण्डर अपनी सेना के साथ वैशाली में मौजूद था और उसके यूनानी सैनिक वैशाली से लेकर आस-पास के निकटवर्ती

और दूरवर्ती स्थानों में जबरदस्ती रसद इकट्ठा करने का काम कर रहे थे। जो लोग रसद देने में इनकार करते थे, यूनानी सैनिक उनका कत्ल कर देते और उनके घरों को लूट लेते। यूनानी सैनिकों के इन अत्याचारों से वहाँ पर लोगों का सभी प्रकार विनाश हो रहा था। लेकिन प्रजा के पास इन जुल्मों से बचने के लिए कुछ उपाय न था।

इन्हीं दिनों में सेनापति पुष्यमित्र अपनी विशाल सेना को लेकर बैशाली पहुँच गया और नगर के बाहर एक स्थान पर डेरा डाल कर उसने यूनानी सैनिकों पर आक्रमण करने का आदेश दिया। यूनानी नरेश मेनेण्डर को सेनापति पुष्यमित्र के आने का कोई समाचार पहले से न था। इसलिए उसको युद्ध के लिए तैयार होने का अवसर न मिला। सेनापति की मालव सेना चारो तरफ फैल गयी और मिलने वाले यूनानी सैनिकों का उन्होंने कत्ल करना आरम्भ कर दिया।

बैशाली और उसके आस-पास के स्थानों में तीन दिनों तक मालव सैनिकों का यह कत्ले-आम बराबर जारी रहा। इस नर-संहार में मेनेण्डर के सैनिक बहुत बड़ी संख्या में मारे गये और जो बच गये, वे अपने-अपने प्राण बचाकर वहाँ से भागने लगे। बैशाली से मेनेण्डर के भाग जाने पर सेनापति ने अपनी मालव सेना के साथ वहाँ पर विश्राम किया और इसके बाद वह अपनी विजयी सेना को लेकर अयोध्या की ओर रवाना हुआ। मेनेण्डर ने अयोध्या को विजय कर, उसकी रक्षा के लिए एक यूनानी सेना छोड़ दी थी और वह बैशाली की ओर चला गया था। मालव सेना ने अयोध्या पहुँच कर उसको तीन ओर से घेर लिया और वहाँ पर जो यूनानी सेना रक्षा के लिए मौजूद थी, उस पर आक्रमण कर दिया। इसी अवसर पर मेनेण्डर अपनी सेना

के साथ अयोध्या में आ गया और उसने मालव सेना के विरुद्ध भयानक युद्ध आरम्भ कर दिया। अयोध्या में यूनानी सेना एक पहले से मौजूद थी और दूसरी विराट सेना मेनेण्डर के साथ आ जाने से अयोध्या के युद्ध-क्षेत्र में यूनानियों की ताकत जोरदार हो गयी। लेकिन सेनापति पुष्यमित्र ने इसकी परवाह न की और उसने यूनानी नरेश मेनेण्डर को ललकार कर युद्ध की चुनौती दी। युद्ध के आरम्भ होते ही सेनापति पुष्यमित्र ने जिस साहस और पराक्रम से यूनानी सेना पर आक्रमण किया, उससे मालूम होता था कि जिस समय वह पाटलिपुत्र में मौजूद था और वहाँ से उसके न आ सकने की हालत में यूनानी सेना ने जो अयोध्या को सर्वनाश करके अपना अधिकार कायम किया था, इस समय सेनापति उसका बदला लेना चाहता था।

सेनापति पुष्यमित्र को अपने बहादुर मालव सैनिकों पर विश्वास था। अपने साथियों और सरदारों की वीरता पर गर्व होने के कारण ही वह विशाल यूनानी सेना की परवाह न कर रहा था। दोनों ओर की घमासान लड़ाई में मारे गये सैनिकों के रक्त से अयोध्या की पुण्य नगरी रक्तमय हो उठी और युद्ध-क्षेत्र में पानी की तरह रक्त बहने लगा। आरम्भ में मालव सैनिक बड़ी देर तक यूनानी सेना को पराजित करते हुए आगे बढ़ते गये, लेकिन उसके बाद एक साथ यूनानी सेना का जोर बढ़ा और मालव सेना ने पीछे हटना शुरू किया। इस समय युद्ध की अवस्था पलटती हुई दिखायी पड़ी और यह साफ-साफ मालूम होने लगा कि यूनानी सेना के मुकाबिले में मालव सेना की पराजय में अब अधिक देर नहीं है। भारतीय सेना लगातार पीछे हटती गयी और यूनानी सेना बहुत दूर तक उसे पीछे खदेड़ कर ले गयी। इसके बाद युद्ध की गति फिर बदली और मालव सेना

ने जमकर फिर युद्ध किया। इस समय उनके भालों की मार के सामने थोड़े समय में ही बहुत-से यवन सैनिक मारे गये और वे पीछे की ओर हटने लगे। इसी समय सेनापति के मालव वीरों ने यूनानी सेना को घेर लिया और भीषण नर-संहार शुरू कर दिया। यूनानी सेना का साहस टूट गया और वह युद्ध-क्षेत्र से छावनी की ओर भागने लगी। मालव सेना ने उसका पीछा किया और एक साथ यूनानी सेना की छावनी पर जाकर वह टूट पड़ी। छावनी में मेनेण्डर घायल होकर अपने दो हजार सवारों और अट्ठाइस हजार पैदल सेना के साथ भागा और वह मथुरा की ओर रवाना हुआ। भारतीय सेना ने यूनानी सेना की छावनी में अधिकार कर लिया और उसकी रसद तथा बहुत-सी युद्ध-सामग्री अपने अधिकार में कर ली। इसके बाद मालव सेना ने यूनानी सेना का पीछा किया। मेनेण्डर की सेना जैसे ही मथुरा पहुँची, अग्निमित्र ने अपनी फौज लेकर उस पर आक्रमण किया। यूनानी सेना ने अग्निमित्र की सेना का सामना किया और दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया। इसके कुछ ही समय बाद सेनापति पुष्यमित्र अपनी विजयी सेना के साथ मथुरा में आ पहुँचा और अपनी विशाल सेना के साथ वह यूनानी सेना पर टूट पड़ा। इस समय यूनानी सेना बड़े खतरे में पड़ गयी। उसने दोनों भारतीय सेनाओं का मुकाबिला करते हुए मथुरा से भी भागने की कोशिश की। यूनानी सेना पर एक ओर से अग्निमित्र की सेना मार कर रही थी और दूसरी ओर से सेनापति पुष्यमित्र की सेना उसका सर्वनाश करने में लगी थी।

यूनानी सेना के पैर उखड़ गये। युद्ध-क्षेत्र से प्राण बचाकर भागने के सिवा उसके सामने और कोई उपाय न था। इसी दुविधा में यूनानी सैनिक बड़ी संख्या में मारे गये और वे बुरी

तरह से घायल हुए। अपनी बची हुई सेना को लेकर मेनेण्डर अपने राज्य शाकल की ओर भागा। अग्निमित्र ने अपनी सेना को लेकर उसका पीछा किया और शाकल के निकट जाकर यूनानी सेना पर फिर आक्रमण किया।

शाकल में जमकर दोनों ओर से फिर युद्ध हुआ। पराजित सेना का एक बार जब साहस टूट जाता है तो फिर उसका युद्ध में रुकना कठिन हो जाता है। मेनेण्डर की सेना लड़ते-लड़ते बहुत थक गयी थी और बार-बार की पराजय से उसका उत्साह और साहस खतम हो चुका था। अन्त में यूनानी सेना के साथ मेनेण्डर शाकल से भी भागा और उसने सिन्ध की तरफ जाने का रास्ता पकड़ लिया। इस भगदड़ में अग्निमित्र की मालव सेना ने यूनानी सेना का भयानक विनाश किया। अग्निमित्र ने सिन्ध तक यूनानी सेना का पीछा किया और भारतीय सीमा के बाहर उसको भगाकर सीमा पर उसने विश्राम किया। अग्निमित्र को जब विश्वास हो गया कि यूनानी सेना भारत की सीमा से दूर निकल गयी और अब उसके इस तरफ लौटने की कोई आशा नहीं है तो उसने अपनी सेना वहाँ पर छोड़ दी और वह मथुरा में लौटकर आ गया। यहाँ पर सेनापति पुष्यमित्र अपनी सेना के साथ मौजूद था। अग्निमित्र ने मथुरा आकर अपनी सेना को विश्राम करने की आज्ञा दी और उसने अपने पिता सेनापति पुष्यमित्र के साथ युद्ध के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें कीं। मेनेण्डर को पराजित करके मालव सेना ने उसके अधिकार किए हुए स्थानों पर अपना कब्जा कर लिया।

अब सेनापति पुष्यमित्र और अग्निमित्र के सामने पाटलिपुत्र का प्रश्न था। जिस मौके पर पुष्यमित्र ने मेनेण्डर की सेना पर आक्रमण किया था, कलिङ्ग के राजा खारवेल ने अपनी सेना को

लेकर पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया। वसुमित्र ने पाटलिपुत्र के बाहर ही उसका मुकाबिला किया और ,खारवेल की सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया।

दोनों ओर की सेनाओं के बीच कई दिनों तक बराबर युद्ध होता रहा। वसुमित्र के अधिकार में उस समय जितनी सेना थी, उसको देखते हुए ,खारवेल की सेना बहुत बड़ी थी और उसके साथ तीन हजार युद्ध के लड़ाकू जो हाथी थे, वे और भी अधिक युद्ध-क्षेत्र में चिन्ताजनक हो रहे थे। लेकिन युवक वसुमित्र ने इन बातों की परवाह न की। उसका साहस किसी प्रकार कमजोर न पड़ा। अपने सरदारों और सैनिकों के साथ उसने निश्चय कर लिया था कि प्राणों के रहते हुए हम लोग किसी प्रकार कलिङ्ग सेना को आगे बढ़ने न देंगे। वसुमित्र के इस निर्णय पर वीर मालव सैनिक युद्ध में बड़ी बहादुरी के साथ युद्ध करते रहे।

मेनेण्डर को पराजित करने के बाद, पुष्यमित्र ने अयोध्या की रक्षा का भार एक मालव सेना के साथ अग्निमित्र को सौंपा और स्वयं अपनी सेना के साथ वह पाटलिपुत्र की ओर रवाना हुआ। पाटलिपुत्र में होने वाले युद्ध से वह अपरिचित न था, लेकिन मेनेण्डर के साथ होने वाले युद्ध को छोड़कर किसी प्रकार वह पाटलिपुत्र आना नहीं चाहता था।

पुष्यमित्र के पाटलिपुत्र पहुँचते ही ,खारवेल के साथ होने वाले युद्ध की परिस्थिति बदल गयी। युद्ध करते-करते वसुमित्र और उसकी सेना थक गयी थी और ,खारवेल के हाथियों की मार से उसके बहुत-से सैनिक मारे भी गये थे। इन सभी हालतों में वसुमित्र की सेना एक बड़ी कमजोरी के साथ युद्ध के क्षेत्र में मौजूद थी। सेनापति पुष्यमित्र और उसकी सेना के आ जाने पर वसुमित्र का साहस और उत्साह बढ़ गया। पाटलिपुत्र के

जिस युद्ध को .खारवेल बहुत थोड़े समय के भीतर खतम करना चाहता था, उसकी जिन्दगी अब फिर से बढ़ गयी, यह बात .खारवेल और उसके सैनिकों से भी छिपी न रही।

.खारवेल ने जिस अवसर का लाभ उठाकर पाटलिपुत्र पर अधिकार करने की बात सोची थी, उसकी परिस्थिति में इस समय बहुत परिवर्तन हो गया। पाटलिपुत्र का गृह-युद्ध भी शान्त हो गया था और पुष्यमित्र, यवन नरेश मेनेण्डर को पराजित करके पाटलिपुत्र लौट आया था। इन दिनों में उसकी सेना का उत्साह बढ़ा हुआ था। पाटलिपुत्र में पहुँच कर उसने .खारवेल की सेना के साथ भयानक युद्ध आरम्भ किया। उसके पक्ष में इस समय सैनिकों की कमी न थी और पुष्यमित्र स्वयं एक राजनीतिज्ञ, चतुर और दूरदर्शी सेनापति था।

कई दिनों तक दोनों ओर से पाटलिपुत्र के बाहर युद्ध होता रहा। इस युद्ध में मालव सेनाओं की पराजय का अब कोई प्रश्न ही न था। हार-जीत दोनों ओर से असंदिग्ध अवस्था में थी। इसी दशा में सन्धि का प्रस्ताव उठा और उसके लिए दोनों ओर से मंजूरी हो गयी। ऐसा मालूम हो रहा था कि सन्धि की आवश्यकता दोनों ओर अनुभव की जा रही थी।

युद्ध बन्द हो गया। .खारवेल की सेना पीछे हट गयी और पाटलिपुत्र की सेनायें भी युद्ध-क्षेत्र से वापस चली गयीं। दोनों ओर के प्रतिनिधियों का सम्मेलन हुआ और बिना किसी उलझन के उपस्थित की गयी सन्धि की शर्तें स्वीकृत हो गयीं। उसके बाद .खारवेल अपनी सेना के साथ अपने राज्य की ओर लौट गया।

चौथा परिच्छेद

अवन्ती में शकों के साथ युद्ध

[ईसा की प्रथम शताब्दी के आरम्भ में]

मगध-साम्राज्य के अन्तिम दिन, शक जाति के लड़ाकू लोग, शकों का भारत में प्रवेश, शकों के साथ मालवों की लड़ाई, अवन्ती के बाहर शकों की भयानक हार।

भारत में आपस के संघर्ष

मौर्य-साम्राज्य के पतन के विवरण पिछले परिच्छेद में लिखे जा चुके हैं। अन्तिम मौर्य-सम्राट बृहद्रथ को मार कर पुष्यमित्र पाटलिपुत्र के सिंहासन पर बैठा था। उन्हीं दिनों में यूनानियों का आक्रमण हुआ था और उन्हें पुष्यमित्र ने अन्त में पराजित किया था। लेकिन उसके बाद भारतीय राजाओं की शक्तियाँ फिर क्षीण होने लगीं।

पुष्यमित्र शुङ्ग वंशीय था। इसीलिए जब वह मौर्य वंश के शासन का अन्त करके सिंहासन पर बैठा, उस समय का मौर्य शासन, शुङ्ग वंशीय शासन के रूप में परिणत हो गया। पुष्य-मित्र स्वयं एक शूर-वीर और साहसी सेनापति था। इसलिए उसके जीवन-काल में साम्राज्य की अवस्था अच्छी रही। उसके बाद उसके शासन में शिथिलता पैदा हो गयी।

यूनानियों को पराजित करके पुष्यमित्र ने उनकी राजधानी

शाकल को, जिसे आजकल स्यालकोट कहा जाता है, जीतकर अपने अधिकार में कर लिया था। अग्निमित्र उसका बेटा था और वसुमित्र उसके पोते का नाम था। दोनों ही बुद्धिमान शासक थे। शुङ्ग वंशीय साम्राज्य के अंतर्गत, अनेक छोटे-छोटे राज्यों में उसके सरदारों और सामंतों का शासन चल रहा था। पुष्यमित्र जब तक जीवित रहा, वह अपनी राजधानी पाटलिपुत्र में ही रहा करता था। लेकिन उसके बाद शुङ्ग-शासक पाटलिपुत्र के स्थान पर कभी-कभी अयोध्या और विदिशा में भी रहा करते थे। पुष्यमित्र यहीं का निवासी था। उसके मरने के बाद मथुरा को छोड़ कर उसका विस्तृत राज्य समाप्त हो गया।

मौर्य वंशीय अन्तिम शासकों के समय में जो मगध-साम्राज्य निर्बल हो गया था, वह लगातार क्षीण होता गया। पुष्यमित्र के समय उसकी शक्तियाँ कुछ उन्नत हो सकी थीं। लेकिन उसके पश्चात् फिर कोई शासक उस साम्राज्य में शक्तिशाली न हुआ। इस बढ़ती हुई निर्बलता के दिनों में मगध-राज्य के अनेक शत्रु पैदा हो गये थे। दक्षिण में आन्ध्र प्रान्त के शासकों ने एक विशाल साम्राज्य की प्रतिष्ठा की थी और मगध-साम्राज्य के बचे हुए राज्यों पर उनके आक्रमण आरम्भ हो गये थे। इन्हीं दिनों में पश्चिम की ओर से यूनानी और सिथियन जातियों के आक्रमण भी जारी हो गये थे। इन परिस्थितियों में मगध-साम्राज्य लगातार कमजोर हुआ और शुङ्ग-वंशजों के बाद वह कण्व-शासकों के हाथों में पहुँच गया था।

शासन और विलासिता

शुङ्ग-वंश का अन्तिम राजा देव भूमि अत्यंत विलासी था। इसके परिणाम-स्वरूप, शासन में वह अयोग्य साबित हुआ।

राज्य के छोटे और बड़े कर्मचारियों पर उसका नियन्त्रण लगातार निर्बल होता गया।

देवभूमि के मंत्रियों में वासुदेव नामक एक व्यक्ति भी था जो अत्यन्त चतुर और कपटी स्वभाव का था। अपने शासक की अयोग्यता का उसने लाभ उठाना आरम्भ कर दिया था। राज्य के कर्मचारियों और दूसरे अधिकारियों को उसने अपने अधिकार में कर लिया था। देवभूमि कभी उसकी चालों को समझ न सका। वासुदेव इतना व्यवहार-कुशल था कि उसने राजा को सही बातों के समझने का कभी मौका न दिया और इस बात का बहुत बड़ा कारण देवभूमि की अयोग्यता थी।

राज्य में एक ओर प्रबन्ध सम्बन्धी परिस्थितियाँ बिगड़ती जाती थीं और दूसरी ओर वासुदेव का प्रभाव छोटे और बड़े अधिकारियों पर बढ़ता जाता था। देवभूमि की अकर्मण्यता ने वासुदेव के हृदय में राज्य का प्रलोभन पैदा कर दिया और उसने बड़ी बुद्धिमानी के साथ अपनी सफलता के लिए षड़यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया। कुछ दिनों के बाद, अवसर पाकर वासुदेव ने देवभूमि को मरवा डाला और स्वयं वहाँ के सिंहासन पर बैठ गया। यह घटना ईसा से ७२ वर्ष पहले की है। उसके बाद वहाँ का शासन कण्व वंशजों के द्वारा आरम्भ हुआ। इस वंश के चार राजा वहाँ के सिंहासन पर बैठे और उसके अन्तिम राजा सश्रुमन को दक्षिण भारत के आन्ध्र नरेश ने पराजित किया और मगध के राज्य को उसने अपने राज्य में मिला लिया।

मद्रास-प्रान्त में गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच में आन्ध्र-वंश के शासक बहुत पहले रहा करते थे। वहाँ से उन्होंने पश्चिम की ओर बढ़ना आरम्भ किया और उन दोनों नदियों के बीच के इलाकों को जीत कर उन्होंने अपने अधिकार में कर

लिया। परन्तु वे अपने इस राज्य की रक्षा बहुत समय तक न कर सके। सम्राट-अशोक ने आन्ध्र-राज्य का अंत कर दिया था और उसे लेकर उसने अपने राज्य का विस्तार किया था। परन्तु आन्ध्र राजाओं की पराधीनता बहुत दिनों तक नहीं चली। अशोक के मरने के बाद वहाँ के राजा फिर स्वतंत्र हो गये थे। वहाँ का तीसरा राजा सातकर्णी अत्यंत प्रतिभाशाली, सुयोग्य और बहादुर था। गोदावरी के उत्तर में उसकी राजधानी प्रतिष्ठान नगर में थी। यह नगर आजकल पैठान के नाम से प्रसिद्ध है और हैदराबाद रियासत के औरंगाबाद जिले में वह नगर बसा हुआ है। सातकर्णी ने अपने शासन-काल में बड़ी उन्नति की थी और उसका राज्य बहुत विस्तृत हो गया था।

सिथियन-आक्रमण

ईसा से लगभग दो शताब्दी पूर्व भारत में यूनानियों ने कई स्थानों को जीतकर अपना राज्य कायम कर लिया था। उनके प्रतापी राजा मेनेण्डर ने मगध राज्य के कई नगरों को जीत कर अपने राज्य में मिलाने की चेष्टा की थी। लेकिन पुष्यमित्र ने उसको पराजित कर के उसके इरादों को मिट्टी में मिला दिया था। उसके बाद कुछ समय तक भारत सुरक्षित रहा। परन्तु यह अवस्था बहुत दिनों तक नहीं चली। मध्य एशिया में सिथियन लोगों का प्रभुत्व बढ़ा और वे लोग भारत में आकर यहाँ के राजाओं को परास्त करने और अपना प्रभुत्व कायम करने की कोशिश करने लगे।

इन दिनों में भारतीय राजा फिर निर्बल हो गये थे। इस निर्बलता का कारण उनकी आपसी फूट और विलासिता थी। पह्लव, शक, यूचि, कुशाण और अन्य कई एक जातियाँ,

सिथियन जाति की शाखायें थीं। सिथियन मध्य एशिया के रहने वाले थे। इनमें पहलव और शक जातियों के आक्रमण भारतीय इतिहास में विशेषता रखते हैं।

पश्चिमी और मध्य एशिया में जब सिल्यूकस का शासन था, पहलव पार्थिया में रहते थे और पराधीन थे। लेकिन सिल्यूकस के वंशजों की निर्बलता और अयोग्यता के कारण पहलव स्वतंत्र हो गये थे और उनके राजा ने फ़ारस, काबुल, सीस्तान और तक्षशिला को जीतकर अपने साम्राज्य को शक्तिशाली बना लिया था। लेकिन अधिक समय तक उनका शासन चल न सका और शकों ने उनको जीतकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था।

शकों का प्रभुत्व

अभी तक जिन विदेशी जातियों ने भारत में आक्रमण किये थे, उनमें शकों के आक्रमण अधिक शक्तिशाली थे। मध्य एशिया की यह एक अशिक्षित और जंगली जाति थी। लेकिन आपस में संगठित हो कर रहना ये लोग खूब जानते थे। युद्ध में ये लोग लड़ाकू और आक्रमणकारी थे। युद्ध करने के सिवा उनका और कोई जीवन न था। इस जाति के सभी लोग मिलकर एक साथ रहते थे और जहाँ कहीं ये लोग जाते थे, एक साथ मिलकर सब जाते थे। शक लोग मूल निवासी कहाँ के थे और वे किस प्रकार भारत में पहुँचे थे, इस विषय पर यहाँ स्पष्ट लिखने की आवश्यकता है। शकों के सम्बन्ध में जो विवरण मिलते हैं, उनमें कहीं-कहीं मतभेद हो जाता है। इसलिए उनके विषय में सीधी और सही बातों को हम आगामी पंक्तियों में व्यक्त करने की चेष्टा करेंगे।

चीन में तिब्बत और मंगोलिया के बीच का हिस्सा कानसू

प्रान्त कहलाता है। उसके पश्चिम की ओर चीनी तुर्किस्तान है। यहाँ पर यह समझ लेने की जरूरत है कि ऐतिहासिक पुस्तकों में तुर्क और हूण नामों से जिस जाति का उल्लेख किया गया है, वह एक ही है। तुर्कों और हूणों की अलग-अलग जातियाँ नहीं हैं, एक ही जाति के दो नाम हैं। ये हूण अभी तक एशिया के पूर्व में रहते थे और मध्य एशिया में उनका अभी तक प्रवेश न हुआ था। कानसू प्रान्त से लेकर यूनान की सीमा तक शक जाति के लोग रहा करते थे। ये शक लोग भी आर्य माने जाते थे, लेकिन आर्यों और शक लोगों में इतना ही अन्तर था कि शक लोग असभ्य, गँवार और जंगली थे। उनके रहने का कोई निश्चित देश और स्थान न था। कानसू प्रान्त की सीमा के पास ही जिस जाति के लोग रहा करते थे, उसे चीन के लोग युचि कहते थे। इसी युचि जाति को भारतीय ग्रन्थों में ऋषिक के नाम से सम्बोधन किया गया है। तारीम नदी के उत्तर में ऋषिकों के निकट जो लोग रहते थे, वे तुखार कहलाते थे।

ऋषिकों को निर्बल समझ कर हूणों ने आक्रमण किया और उन्हें पराजित किया। ऋषिक लोग वहाँ से भाग कर तुखारों के देश में पहुँचे और वहाँ पर उन्होंने अपना अधिकार कर लिया। लेकिन ऋषिकों के साथ वहाँ पर भी संघर्ष पैदा हुआ, इसलिए वे वहाँ से भी भागे और उनके साथ तुखार लोगों ने भी अपना देश छोड़ दिया। ऋषिक तुखारों के साथ पश्चिम की ओर चले गये और थियानशान पहाड़ के आगे निकल गये। वहाँ से वे लोग दो गिरोहों में हो गये और उनके एक गिरोह ने पामीर-बदख्शाँ का रास्ता पकड़ लिया और दूसरे गिरोह ने मुग्ध प्रान्त में जाकर शक लोगों पर आक्रमण किया। शक लोग अपना देश छोड़कर भागे और हरात होकर पार्थव राज्य में चले गये।

वहाँ पर शकों की पुरानी बस्ती थी। वहाँ पहुँच कर इन शक लोगों को युद्ध करना पड़ा और वे अन्त में वहाँ पर भी पराजित हुए। वहाँ से हार कर शक लोग भारत की ओर रवाना हुए और ईसा से लगभग १२० वर्ष पूर्व इन लोगों ने सिन्ध में आकर अपना अधिकार कर लिया। यहाँ पर अपनी सत्ता कायम करके वे भारत के दूसरे प्रान्तों की ओर बढ़ने लगे।

भारत में शक-राज्य का विस्तार

सिन्ध में अपना राज्य कायम करने के बाद, शक लोग भारत के दूसरे प्रान्तों पर राज्य कायम करने की कोशिश करने लगे। पंजाब और दूसरे प्रान्तों में भी कोई भारतीय राजा उस समय ऐसा न था, जो शक-राज्य के विस्तार को रोकता और उनको इस देश में जमने न देता। शक लोगों ने सिन्ध के बाद सबसे पहले ईसा से एक सौ वर्ष पहले उज्जैन पर हमला किया और उसे जीतकर उन्होंने उसे अपने राज्य में मिला लिया। इन्हीं दिनों में शकों का आक्रमण काठियावाड़ पर भी हुआ और वहाँ पर भी उनकी विजय हुई। उज्जैन और काठियावाड़ को जीत कर उन लोगों ने भयानक लूट-मार की और उसके बाद वे दूसरे राज्यों की तरफ बढ़े।

शक लोगों का नहपान नामक एक सरदार जो बड़ा शूर वीर और पराक्रमी हुआ। उसके बढ़ते हुए हमलों को देखकर प्रतिष्ठान के राजा विक्रमादित्य ने उसके साथ युद्ध करने का निर्णय किया और अपनी सेना तैयार करके उसने नहपान की शक सेनाओं के साथ युद्ध किया। शक सेना ने भारत में आकर कई स्थानों पर युद्ध किया था और अब तक वह विजयी हुई थी। इसलिए उसका उत्साह बढ़ा हुआ था। लेकिन विक्रमादित्य के साथ युद्ध

में शक सेना के पैर उखड़ गये और नहपान सरदार की बुरी तरीके से पराजय हुई। विक्रमादित्य ने उज्जैन पर अपना अधिकार कर लिया।

शक-सेना के साथ मालवों का युद्ध

मध्य एशिया में कनिष्क नामक एक शक राजा बड़ा प्रतापी हुआ। उसका राज्य मध्य एशिया से लेकर काबुल और फ़ारस तक फैला हुआ था। नहपान राजा कनिष्क का एक बहादुर सरदार था। उसने काश्मीर और पंजाब के कुछ भागों पर भी अधिकार कर लिया था। विक्रमादित्य के साथ पराजित होने के बाद सरदार नहपान ने एक बहुत बड़ी सेना का प्रबन्ध किया और एक लाख सैनिकों और सवारों की सेना लेकर उसने दक्षिण पंजाब के मालव राज्य पर पहली शताब्दी के शुरू में आक्रमण किया।

मालव-युद्ध में किसी प्रकार निर्बल न थे, लेकिन उनके साथ इतनी बड़ी सेना न थी, जो वे इस विशाल शक सेना के साथ युद्ध करके उसे पराजित कर सकते। इसके सिवा, एक बात और हुई। नहपान की इस विशाल सेना के आक्रमण का उन मालवों को पहले से पता न था। अचानक शक सेना के आक्रमण करने पर वीर मालव सैनिकों ने तैयार होकर युद्ध किया। शक सेना के मुकाबिले में मालवों की सेना बहुत कम थी और युद्ध की कोई तैयारी न थी। फिर भी वे बड़ी बहादुरी के साथ युद्ध में लड़े और आसानी के साथ शक सेना को विजयी होने का मौका न दिया। लेकिन एक छोटी-सी सेना इतनी बड़ी सेना के मुकाबिले में कितनी देर ठहर सकती थी। अन्त में मालव सैनिकों की पराजय हुई। उनके बहुत-से सैनिक युद्ध में मारे गये और

जो बाकी रह गये, वे मुलतान छोड़कर मरुभूमि की तरफ चले गये।

पराजित होने के बाद मालव सेना के भाग जाने पर नहपान की शक सेना ने मालवों के नगरों को खूब लूटा और उनको विध्वंस किया। पंजाब के इन हरे-भरे नगरों को तहस-नहस करने के बाद नहपान पूर्व की तरफ रवाना हुआ और आगे बढ़कर उसने मथुरा में जाकर अधिकार कर लिया।

नहपान मथुरा के बाद कन्नौज-राज्य की तरफ जाना चाहता था। लेकिन वहाँ पर आन्ध्र की एक सेना मौजूद थी और वह युद्ध के लिए तैयार थी। इसलिए उसने उस तरफ का रास्ता छोड़ दिया और वह दक्षिण की ओर घूमकर आनर्त, लाट और कच्छ राज्य को पराजित कर महाराष्ट्र में पहुँच गया। इसके बाद नहपान सम्पूर्ण मार्ग में लूट मार करता हुआ उत्तर की तरफ चला गया।

शक सेना की पराजय

नहपान के आक्रमण के बहुत पहले ही अनेक शूर-वीर मालव सरदार मुलतान छोड़कर अवन्ती प्रदेश में आकर रहने लगे थे। मुलतान में मालव सेना को पराजित कर नहपान अपनी विशाल सेना के साथ अवन्ती की तरफ बढ़ा। वहाँ के रहने वाले मालव सरदारों को जब शक सेना के होने वाले आक्रमण का समाचार मिला तो सभी सरदारों ने नहपान के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। बड़ी तेजी के साथ सरदारों ने अपनी-अपनी सेनाओं को युद्ध के लिए तैयार किया और अवन्ती की सीमा के बाहर निकल कर अपनी सेना का शिविर तैयार किया। मालव

सेना ने अपने शिविर में विश्राम किया और उसके सभी सैनिक शक सेना की प्रतीक्षा करने लगे।

इन दिनों में आन्ध्र के नरेशों का प्रताप बढ़ रहा था और पाटलिपुत्र भी उन्हीं के अधिकार में आ गया था। आन्ध्र के नरेशों से यह छिपा न था कि भारत में शक शासन बढ़ता जा रहा है और शकों की इस बढ़ती हुई शक्ति से भारत के प्रत्येक राजा और नरेश को खतरा है। इसलिए नहपान को पराजित करने और उसकी शक्ति को मिटाने के लिए आन्ध्र के राजा गौमती पुत्र भी अपनी एक प्रबल सेना लेकर मालव सरदारों की सहायता के लिए अवन्ती प्रदेश की सीमा के निकट क्षिप्रा नदी के तट पर पहुँच गया। शक-सेना का मुकाबिला करने के लिए अवन्ती की सीमा के बाहर जो भारतीय सेनायें और सरदार एकत्रित थे, वे किसी प्रकार शक सेना से निर्बल न थे।

नहपान की विजयी सेना अवन्ती देश पर आक्रमण करने के लिए आँधी की तरह चली आ रही थी। अवन्ती के निकट पहुँचने के पहले ही नहपान को मालूम हो गया कि शक सेना के साथ युद्ध करने के लिए मालव सरदारों की सेनायें, अवन्ती देश की सीमा के बाहर पड़ी हुई हैं।

नहपान ने आगे बढ़कर और अवन्ती के निकट पहुँच कर अपनी विशाल सेना का मुकाम किया। उसने सेना को विश्राम करने की आज्ञा दी और वह मालव सरदारों के साथ युद्ध करने की योजना तैयार करने लगा। इस तरफ आन्ध्र के नरेश बहादुर गौतमी पुत्र और अवन्ती के सभी सरदारों को समाचार मिला कि नहपान की शक सेना ने आकर कुछ दूरी पर अपना मुकाम किया है। इसीलिए इधर से भी युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं।

दोनों ओर से युद्ध के बाजे बजे और दोनों सेनायें एक, दूसरे

की ओर आगे बढ़ीं। युद्ध आरम्भ हुआ। कई दिनों के लगातार संग्राम से शक सेना को यह मालूम हुआ कि अवन्ती के मालव सरदारों के साथ का युद्ध, ऐसा युद्ध नहीं है, जिसे आसानी के साथ पराजित किया जा सके। मालव सैनिकों के साथ, आन्ध्र के वीर सैनिकों ने भी युद्ध-क्षेत्र में वह भीषण मार की जिससे नहपान की शक सेना पीछे की ओर भागने लगी। उसकी बड़ी कोशिश के बाद भी उसकी सेना के पैर युद्ध-स्थल पर न रुके। भारतीय सेनायें लगातार आगे बढ़ीं और शक सेना की भगदड़ में नहपान को घेर कर उन्होंने उसे जान से मार डाला। शक सेना जितनी संख्या में अवन्ती का सर्वनाश करने के लिए आयी थी, उसमें आधे से अधिक उसके सैनिक और सरदार इस युद्ध में मारे गये और शक सेना के साथ की समस्त सामग्री और रसद भारतीय सेनाओं ने लेकर अपने कब्जे में कर ली।

नहपान के मारे जाने के बाद शक जाति का प्रभुत्व भारत से खतम हो गया। उज्जैन को विक्रमादित्य ने पहले ही अपने अधिकार में कर लिया था। अवन्ती की पराजय के बाद शक लोगों का पूर्ण रूप से विनाश हुआ। आन्ध्र के राजा गौतमी पुत्र ने शकों के उन सभी स्थानों को लेकर अपना आधिपत्य स्थापित किया, जहाँ पर उनके अधिकार हो चुके थे। इस प्रकार भारत में शक जाति के शासन का बढ़ता हुआ आधिपत्य समाप्त हुआ।

पाँचवाँ परिच्छेद

हूणों के साथ युद्ध

[५२८ ईसवी]

हूणों की क्रूरता, भारत की बढ़ती हुई फूट, गुप्त-साम्राज्य की उन्नति, हूणों के आक्रमणों का प्रारम्भ, हूणों की पराजय, हूण नरेश के अत्याचार, हूणों की विजय, यशोधर्मन की जीत, हूणों का सर्वनाश !

अत्याचारी हूण

देश की शक्ति निर्बल और छिन्न-भिन्न होने पर ही बाहरी आक्रमण होते हैं। आपस की फूट और द्वेष से भारत सदा निर्बल रहा है और इसी प्रकार के अवसरों पर बाहरी आक्रमण-कारियों ने देश का सर्वनाश किया है । इस परिच्छेद में हूण जाति के लोगों के आक्रमण और उनके द्वारा होने वाले विनाश का वर्णन किया जायगा। लेकिन हूणों के साथ इस देश के जो भयानक युद्ध हुए, उनके पहले की परिस्थितियों पर प्रकाश डालना जरूरी है।

हूणों से भी पहले जिन आक्रमणकारी जातियों ने भारत में अपना आधिपत्य कायम किया, उनमें शक विशेषता रखते हैं। इस देश में जब अशोक का शासन चल रहा था, करीब-करीब उन्हीं दिनों में चीन में एक शक्तिशाली राजा हुआ था। उसने चीन की अनेक रियासतों को जीतकर और उन पर अपना

अधिकार कायम कर के चीन में अपनी एक बड़ी सत्ता बना ली थी। इसके पहले जब चीन छोटे-छोटे राज्यों में चल रहा था, उन दिनों में उसके सामने बार-बार खतरे पैदा होते थे। चीन के आस-पास रहने वाली जो जातियाँ शक्तिशाली होती थीं, वही चीन में आक्रमण करके लूट मार किया करती थीं। चीन के उत्तर में इर्तिश और आमूर नदियों के बीच रहने वाले हूणों ने चीन को निर्बल पाकर बार-बार लूटा था और सभी तरीकों से उसका विनाश किया था। छोटी-छोटी चीन की रियासतें उन हूणों से नष्ट होती रहती थीं। लेकिन चीन के उस शक्तिशाली राजा ने हूणों के आक्रमण को रोका और उनके चीन में प्रवेश करने का रास्ता बन्द कर दिया।

हूणों की बरबरता और विशेषता

भारत में हूणों के होने वाले आक्रमणों पर लिखने के पूर्व, उनके जीवन की कुछ बातों का उल्लेख यहाँ पर जरूरी मालूम होता है। उन दिनों तक मध्य एशिया की अनेक जातियाँ अपनी असभ्यता, भीषणता और नृशंसता के लिए प्रसिद्ध थीं। हूणों की जाति उनमें से एक थी और वह बरबरता में उन जातियों में सब से अधिक भयानक थी।

हूण भी मध्य एशिया के रहने वाले थे और वहाँ पर वे जिस देश के निवासी थे, उसका नाम येथा था और यह प्रदेश सर और आमू नदियों के उत्तर में था। कुछ लेखकों ने येथा का अर्थ हूण के साथ किया है। लेकिन वास्तव में येथा हूणों के प्रदेश का नाम था। उनके देश में नदियों की बड़ी अधिकता थी। वहाँ की समस्त भूमि को उन नदियों ने आवश्यकता से अधिक पानी दे रखा था। इसीलिए वह भूमि बहुत उपजाऊ हो गयी थी।

येथा पहाड़ों के नीचे एक निकटवर्ती प्रदेश था। उसके निवासी हूण गर्मियों में पहाड़ों पर चले जाते थे और उसके बाद वे लौट कर अपने गाँवों में आ जाते थे। हूणों की जाति अत्यन्त भयानक लड़ाकू थी। उनकी संख्या अन्य जातियों की अपेक्षा बहुत अधिक थी। उनमें जातीय संगठन बहुत मजबूत था। टीड़ी दल की तरह वे लाखों की संख्या में दूसरी जातियों और देशों पर टूट पड़ते थे और भयानक रूप से उनका संहार करते थे। उनके आक्रमण से उन दिनों में मध्य एशिया की अन्य लड़ाकू जातियाँ भी घबराती थीं और हूणों को कर देकर वे अपनी रक्षा किया करती थीं।

हूणों के विषय में यह बताया जा चुका है कि मध्य एशिया की यह जाति जंगली, असभ्य और भयानक क्रूर थी। हूणों के शरीर मोटे, स्थूल, नाक चपटी, कन्धे चौड़े और नेत्र डरावने होते थे। उनके शरीर की बनावट कुछ ऐसी थी कि उनको देखकर सहज ही भय उत्पन्न होता था। उनकी आवाज तेज और जंगली थी। उनके अत्याचार मनुष्यत्व की सीमा के बाहर होते थे। उनका टीड़ी-दल जब अपने प्रदेश से निकलता था तो वह रास्ते में मिलने वाले ग्रामों और नगरों का सर्वनाश करता हुआ चलता था। चौथी शताब्दी में उन हूणों ने अपना प्रदेश छोड़कर दूसरे स्थानों पर अधिकार कर लिया था। उनमें से बहुत लोग पश्चिम की ओर योरप में जाकर वोलगा तथा डैन्यूब नदियों के बीच वाले प्रदेश में रहने लगे थे और कुछ लोग आक्सस तथा आमू नदी की घाटी में बस गये थे। इतिहासकारों ने श्वेत हूणों के नाम से उनका उल्लेख किया है।

हूणों के जीवन की बहुत-सी बातें खूँख्वार जंगली जानवरों के साथ मिलती थीं। कई एक विदेशी यात्रियों ने उनके सम्बन्ध

में लिखा है कि हूण लोग जीवित प्राणियों को मार कर उनका माँस खा जाते थे। हूणों के आक्रमण केवल भारत में ही नहीं हुए थे, बल्कि उन्होंने मध्य एशिया की दूसरी जातियों का भी विनाश किया था। वे मंगोल जाति के वंशज थे। जब उनकी संख्या अधिक हो गयी थी तो वे मध्य एशिया से निकल कर योरप की तरफ भी बढ़े थे। हूणों ने अतीला के सेनापतित्व में कुस्तुन्तुनिया और दूसरे प्रदेशों में भी आक्रमण किया था।

आन्ध्र राज्य का उत्थान और पतन

प्राचीन काल में दक्षिण महाराष्ट्र में आन्ध्र देश के नाम से एक छोटा-सा राज्य था। उसकी राजधानी प्रतिष्ठान में थी, जिसका नाम बाद में पेठान पड़ा। शुङ्ग सम्राटों की विजय के बाद दक्षिण में बड़ा परिवर्तन हुआ। इसी अवसर पर आन्ध्र नरेशों ने अपनी शक्तियाँ बढ़ा लीं और गौतमी पुत्र, सातकर्णी आदि कई प्रतापी राजाओं का वहाँ पर राज्य रहा। पहली शताब्दी से लेकर, तीसरी शताब्दी तक आन्ध्र के राजाओं ने शक सेनाओं के साथ लगातार युद्ध किये और उनको भारत में राज्य-विस्तार करने का अवसर नहीं दिया। शक लोगों ने बहुत कोशिश की, लेकिन वे सौराष्ट्र से आगे नहीं बढ़ सके। उन दिनों में यद्यपि शक लोगों ने अपनी वीरता से भारतीय अनेक राजाओं को भयभीत कर दिया था और देश के अनेक भागों पर उनका आतंक फैल गया था, फिर भी आन्ध्र-राजाओं के सामने उनकी शक्तियाँ बार-बार विफल हुईं।

दूसरी शताब्दी के बाद से ही आन्ध्र-राज्य की शक्ति घटने लगी और तीसरी शताब्दी में फिर कोई भारतीय राजा शक्ति-शाली न रहा। आपस के युद्ध में देश का शासन छोटे-छोटे राज्यों

में बदलने लगा। छोटी-मोटी रियासतों को लेकर क्षत्रिय राजा अपने आपको स्वतन्त्र घोषित करने लगे। इस अवस्था में उत्तरी भारत की ओर आन्ध्र राज्य की बढ़ी हुई शक्ति निर्बल हो गयी। देश की इस अवस्था में मगध देश के एक सरदार श्रीगुप्त ने पंजाब के शक लोगों की सहायता से पाटलिपुत्र पर अपना आधिपत्य कायम किया और श्रीगुप्त के पुत्र घटोत्कच गुप्त अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करके, एक स्वतंत्र राजा हो गया।

गुप्त वंश का शासन-काल

चन्द्रगुप्त प्रथम राजा घटोत्कच का लड़का था। सिंहासन पर बैठने के बाद, कन्नौज आदि अनेक राज्यों को जीतकर उसने गुप्त वंशीय साम्राज्य की नींव डाली। उस वंश में जितने भी सम्राट हुए, सभी वैष्णव साम्प्रदायिक थे। उनके शासन-काल में बौद्ध धर्म को बहुत आघात पहुँचा और गुप्त साम्राज्य में उसका प्रभाव बहुत कम हो गया।

चन्द्रगुप्त प्रथम बुद्धिमान और बहादुर राजा था। शासन का अधिकारी होने के बाद से ही उसने अनेक युद्ध किये और लगातार उसने अपने राज्य का विस्तार किया। चन्द्रगुप्त ने दक्षिणी मगध, तिरहुत और अवध को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था और उसके बाद भी वह अपने राज्य के विस्तार मे लगा रहा। इसमें उसे बराबर सफलता मिली।

चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु के बाद उसका लड़का समुद्रगुप्त राज्य का अधिकारी हुआ। वह अपने पिता की तरह वीर और चतुर था। धार्मिक बातों के साथ उसे बहुत प्रेम था और उसके इस प्रेम ने उसमें लोकप्रियता की भावना उत्पन्न कर दी थी। वह धार्मिक विद्वानों के बीच में बैठकर बातें किया करता, उनके

तर्क को सुनता और स्वयं उसमें भाग लेता। उसकी लोकप्रियता के कुछ और भी कारण थे। कवियों और दूसरे कलाकारों के साथ भी वह प्रेम करता था।

समुद्र गुप्त ने विदेशी जातियों के साथ बराबर युद्ध किया और उन जातियों ने भारत में जहाँ अपना शासन कायम कर रखा था, उनको जीत कर उसने अपने राज्य में मिला लिया था। समुद्रगुप्त ने अपने शासन-काल में बड़ी उन्नति की। पंजाब और राजपूताना के लगभग सभी राजा और नरेश उसके प्रभुत्व को स्वीकार करने लगे थे। विंध्याचल पर्वत के दक्षिण में उस समय कई एक छोटी-छोटी रियासतें थीं। समुद्रगुप्त ने उनको जीत कर अपने अधिकार में कर लिया था। इसके बाद अपनी विजय की पताका फहराता हुआ वह पाटलिपुत्र के दक्षिण की ओर रवाना हुआ और छोटा नागपुर, उड़ीसा एवम् गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के बीच के स्थानों पर भी उसने अपना अधिकार कर लिया। समुद्रगुप्त ने महाराष्ट्र, खान देश आदि अनेक प्रदेशों को भी जीत लिया था।

सन् ३७५ ईसवी में समुद्रगुप्त की मृत्यु हो गयी। उसने अपने शासन काल में अशोक की भाँति राज्य का विस्तार किया था। उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पश्चिम में यमुना नदी के पूर्व से ब्रह्मपुत्र नदी तक उसका साम्राज्य फैला हुआ था। समुद्रगुप्त के बाद उसका पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य राजगद्दी पर बैठा। अपने पिता के समान वह भी समझदार, वीर और दूरदर्शी था। अपने शासन काल में उसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। अभी तक शक लोगों का शासन भारत के अनेक स्थानों पर कायम था, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने उनको जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। इन दिनों में गुप्त साम्राज्य की सीमा अरब सागर तक पहुँच गयी थी।

हूणों के आक्रमण

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के बाद उसका लड़का कुमारगुप्त राज सिंहासन पर बैठा। अपने पिता की भाँति वह भी तेजस्वी और शक्तिशाली राजा हुआ। सन् ४५५ इसवी में उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका लड़का स्कन्दगुप्त राजा हुआ। अपने जीवनकाल में वह बौद्ध धर्म से अधिक प्रभावित हुआ।

स्कन्दगुप्त के शासक होते ही मध्य एशिया के हूणों के आक्रमण आरम्भ हो गये। स्कन्दगुप्त के शासन काल में हूणों का पहला हमला भारत में सन् ४५५ ईसवी में हुआ। स्कन्दगुप्त शूर-वीर और बहादुर राजा था। उसने अपनी सेना लेकर आक्रमणकारी हूणों का मुकाबिला किया। हूण लोग अपनी असभ्यता और बर्बरता के लिए प्रसिद्ध थे। ये लोग भयानक लड़ाकू थे और अनेक देशों पर आक्रमण करके उनका विनाश कर चुके थे। स्कन्दगुप्त भयभीत नहीं हुआ और युद्ध करके उसने हूणों को पराजित किया। आक्रमणकारी हूण भीपण क्षति उठाकर और स्कन्दगुप्त से पराजित हो कर अपने देश लौट गये। लेकिन उसके बाद भी हूणों के संगठित और जोरदार आक्रमण भारत पर होते रहे। स्कन्दगुप्त ने बार-बार उन हूणों को पराजित किया। लेकिन वे निराश न हुए। पराजित होने के बाद वे मध्य एशिया की तरफ लौट जाते और उसके बाद वे फिर जोरदार तैयारी करके भारत पर हमला करते। हूणोंके हमलोंका यह क्रम बराबर जारी रहा। दस वर्षों के बाद सन् ४६५ में भारत पर हूणों का जो आक्रमण हुआ, वह अधिक भयानक था। इस बार भारतके पश्चिम-उत्तर की सीमा से हूणों का आगमन हुआ। उनकी संख्या, पहले की अपेक्षा, बहुत अधिक थी। काबुल से आगे बढ़ कर समस्त

उत्तरीय और पश्चिमीय पंजाब पर उन्होंने अपना प्रभुत्व कायम किया। इस बार के आक्रमण में हूणों के अत्याचार अत्यन्त क्रूर और भयानक हो गये। इसके पहले भी भारतमें अनेक विदेशी हमले हुए थे, लेकिन वे इस प्रकार क्रूर और निर्दय न थे।

इसके बाद हूण आगे की ओर बढ़े और यमुना के तट के अनेक राज्यों पर उन्होंने अपना अधिकार कर लिया। इन दिनों में गुप्त साम्राज्य की शक्तियाँ क्षीण होने लगी थीं, फिर भी स्कन्दगुप्त जब तक जीवित रहा, हूणों का मुकाबिला वह बराबर करता रहा। लेकिन आक्रमणकारी हूणों की संख्या बराबर बढ़ती गयी और आखीर में स्कन्दगुप्त उनके दमन में धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगा। धन के अभाव के साथ-साथ स्कन्दगुप्त के साथ सैनिकों की भी कमी होती गयी। इस अवस्था में स्कन्दगुप्त की अन्त में हूणों के मुकाबिले में पराजय हुई।

स्कन्दगुप्त के बाद, गुप्त-साम्राज्य में कई एक सम्राट हुए, लेकिन उनमें से कोई ऐसा शूर-वीर और प्रतापी न था जो हूणों का सामना कर सकता और उनको पराजित कर के भारत की सीमा से बाहर निकाल देता।

गुप्त साम्राज्य के अन्तिम शासकों के समय भारत में हूणों के आक्रमण और अत्याचार बढ़ गये। नरसिंह गुप्त बालादित्य के सिंहासन पर बैठते ही यह आशा की गयी कि देश की अवस्था में कुछ परिवर्तन होगा और हूणों के अत्याचारों से देश की कुछ रक्षा होगी। इस आशा का कारण यह था कि नरसिंह गुप्त बालादित्य आरम्भ से ही बुद्धिमान और वीर मालूम होता था। सिंहासन पर बैठने के बाद ही उसका ध्यान दर्शन शास्त्र की ओर अधिक खिंचा और वह उस विषय के पंडितों के साथ बातें करने में अपना समय अधिक व्यतीत करने लगा। दार्शनिक आकर्षण

ने नरसिंहगुप्त वालादित्य के अन्तःकरण को राज्य की परिस्थितियों की ओर से उदासीन बना दिया और उसका परिणाम यह हुआ कि उसने देश में बढ़ते हुए हूणों के हमलों की तरफ ध्यान न दिया। उन दिनों में हूणों की विजय और सफलता का यह एक प्रधान कारण हो गया।

हूण सरदार तोरमान की विजय

पिछले जिन दिनों में भारत हूणों के जोरदार और लगातार हमलों से मटियामेट हो रहा था, उन्हीं दिनों में हूणों का युद्ध फ़ारस के बादशाह फ़ीरोजशाह के साथ चल रहा था। सन् ४८४ ईसवी में हूणों के सरदारों ने फ़ीरोजशाह का अन्त किया और उसके राज्य में अपना अधिकार कर लिया। फ़ारस को विजय करने के बाद, हूणों की सम्पूर्ण शक्तियाँ भारत की ओर रवाना हुईं और हूण-सरदार सम्पूर्ण भारत को जीत कर अपना आधिपत्य कायम करने की कोशिश करने लगे।

इन दिनों में हूणों का एक सरदार तोरमान युद्ध में बड़ी प्रसिद्धि पा रहा था। उसके साथ हूणों की एक बड़ी सेना थी और उसमें बहुत-से चुने हुए लड़ाकू हूण सैनिक थे। सन् ४९५ ईसवी में सरदार तोरमान ने अपनी सेना लेकर नरसिंह गुप्त वालादित्य के राज्य पर आक्रमण किया। नरसिंह गुप्त वालादित्य ने अपनी सेना लेकर तोरमान की हूण सेना का मुकाबिला किया। हूण सेना में सैनिकों की संख्या बहुत अधिक थी और वे सभी युद्ध में भयानक लड़ाकू थे। नरसिंह गुप्त वालादित्य धार्मिक और दार्शनिक पुरुप था। धार्मिकता और युद्ध-प्रियता, परस्पर दो विरोधी प्रकृति रखती हैं। हूण सरदार तोरमान के साथ युद्ध में नरसिंहगुप्त वालादित्य की पराजय हुई। उसकी सेना युद्ध-क्षेत्र

से भाग गयी और तोरमान की हूण सेना ने मालवा-राज्य पर अपना अधिकार कर लिया।

नरसिंह गुप्त बालादित्य की सेना को पराजित कर तोरमान ने गुप्त-साम्राज्य के अनेक राज्यों पर अपना अधिकार कर लिया और राजा की उपाधि लेकर उसने स्यालकोट में अपनी राजधानी कायम की। इसके बाद भी वह अपने राज्य के विस्तार की कोशिश करता रहा। भारत के पूर्व में यमुना से चम्बल नदी तक और दक्षिण की ओर नर्मदा नदी तक उसके राज्य का विस्तार हो गया। तोरमान का प्रभुत्व तेजी के साथ भारत में बढ़ा और मध्य भारत के कितने ही राजाओं ने उसके आधिपत्य को स्वीकार किया। अनेक छोटी-बड़ी रियासतें, जो समुद्रगुप्त के द्वारा पराजित हुई थीं, तोरमान के अधिकार में आ गयीं। उसके राज्य-विस्तार के कारण, गुप्त साम्राज्य दिन-पर-दिन क्षीण और निर्बल हो गया। और जो कुछ बाकी रह गया, हूण लोग उस पर भी अपनी सत्ता कायम करने की लगातार चेष्टा करने लगे।

भारतके अनेक राज्योंपर अपना शासन कायम करके तोरमान सन् ५१० में संसार से बिदा हो गया और उसके मरने के बाद, उसका लड़का मिहिरकुल अपने पिताके राज्यका अधिकारी बना।

हूण राजा मिहिरकुल की नृशंसता

मिहिरकुल अपने पिता की तरह बुद्धिमान न था, लेकिन अत्याचारों में वह अपने पिता तोरमान से भी आगे निकल गया। राज्य का अधिकार प्राप्त करने के बाद ही उसने भयानक अत्याचार आरम्भ कर दिये। वह स्वभाव से ही अत्यन्त निर्दयी था। बौद्ध धर्मावलम्बियों के साथ उसने उस निर्दयता का व्यवहार किया, जिसे जानकर सहज ही रोंगटे खड़े होते हैं।

मिहिरकुल के अत्याचार लगातार बढ़ते गये। अपने विस्तृत राज्य में भी उसने भीषण निर्दयता का व्यवहार किया। उसके द्वारा होने वाली क्रूरता सीमा पार कर गयी। इन अत्याचारों से ऊब कर लोग बड़ी बेचैनी के साथ विद्रोहात्मक विचार करने लगे। लेकिन मिहिरकुल के ऊपर कोई प्रभाव न पड़ा और उसकी क्रूरता का सिलसिला बराबर जारी रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तरी भारत में मिहिरकुल के आतंक से हाहाकार मच गया और कुछ हिन्दू राजाओं ने मिलकर मिहिरकुल के साथ युद्ध करने के लिए संगठन करना आरम्भ किया।

हूण सेना की पराजय

मिहिरकुल ने भारतीय राजाओं के साथ जिन राक्षसी अत्याचारों का प्रयोग किया, उनसे राजा और प्रजा की बड़ी अधोगति हुई। उसने लूटने, मार-काट करने और मन्दिरों के विध्वंस करने का कार्य बराबर जारी रखा। उसके इन अत्याचारों का बदला देने के लिए, उस समय कोई एक शक्तिशाली हिन्दू राजा न था। हूणों के आधिपत्य से जो भारतीय राज्य बाकी रह गये थे, वे सभी छोटे-छोटे थे और अपनी-अपनी कुशल मनाया करते थे। संगठित होकर वे एक दूसरे का साथ देना जानते थे। उनके बीच में कोई एक ऐसा राजा भी न था, जो सभी को एकता के बन्धन में बाँधकर हूणों के उपद्रवों और उत्पातों का अन्त करता। मिहिरकुल ने जिन अत्याचारों की वृष्टि की थी, उनसे सभी राजा भयानक विपदाओं में पड़े हुए थे। अपनी रक्षा का कोई उपाय उनके सामने न था।

मिहिरकुल के द्वारा जो भारतीय नरेश सताये जा रहे थे, उनकी समझ में यह आया कि हम लोग संगठित होकर अपनी

रक्षा कर सकते हैं और इस अत्याचारी हूण नरेश के उत्पातों का बदला दे सकते हैं। इसी आधार पर हिन्दू राजाओं का संगठन हुआ। इस संगठनका कार्य मन्दसोर के मालव सरदार यशोधर्मन के द्वारा आरम्भ हुआ। यशोधर्मन एक शूर-वीर सरदार था और युद्ध कौशल में वह बड़ा निपुण था। हिन्दू राजाओं को संगठित करके उसने मिहिरकुल को परास्त करने का निश्चय किया।

यशोधर्मन ने सब से पहले गुप्त वंश के राजा बालादित्य से मुलाकात की और अपने उद्देश्य के सम्बन्ध में उसने, बहुत-सी बातें कीं। नरसिंह बालादित्य बुद्धिमान था, लेकिन धार्मिक भीरुता ने उसे निर्बल बना दिया था। यशोधर्मन की बातों को बालादित्य ने स्वीकार कर लिया। यशोधर्मन की सफलता यहीं से आरम्भ हुई। उसने दूसरे हिन्दू राजाओं से भी परामर्श किया और सभी राजाओं ने उसके प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृतियाँ दीं। यशोधर्मन के इस प्रयत्न के फलस्वरूप, उत्तर और दक्षिण के सभी राजा और सरदार हूणोंके साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो गये। सभी ने मिलकर यशोधर्मन के नेतृत्व में इस युद्ध का निर्णय किया और जिन राजाओं तथा सरदारों ने युद्ध करना स्वीकार किया, वे अपनी-अपनी सेनायें लेकर उज्जयिनी में आकर एकत्रित हुए।

इस विशाल भारतीय सेना का नेतृत्व सरदार यशोधर्मन ने स्वीकार किया और वह साहस के साथ इन एकत्रित सेनाओं को अपने अधिकार में लेकर हूण नृपति मिहिरकुल पर आक्रमण करने के लिए सन् ५२७ ईसवी में रवाना हुआ। इस आक्रमण का समाचार मिहिरकुल को मिला। युद्ध के लिए अपनी सेना को उसने तैयार होने की आज्ञा दी और दोनों ओर की सेनायें युद्ध-क्षेत्र में पहुँच गयीं। बहुत दिनों से हूण सेना भारत में विजयी हो रही थी और आज के युद्ध-क्षेत्र में भारतीय सैनिक

भी दिल खोलकर लड़ना चाहते थे। युद्ध के लिए रवाना होने के पूर्व, पराक्रमी सरदार यशोधर्मन ने एकत्रित सेनाओं के सामने प्रतिज्ञा की थी—हम लोग या तो इस युद्ध में हूण सेना को पराजित करेंगे अथवा मातृ-भूमि के सम्मान में रण-भूमि पर बलिदान होंगे, इस प्रतिज्ञा के साथ यशोधर्मन युद्ध-क्षेत्र की तरफ रवाना हुआ था।

रण-भूमि में दोनों ओर की सेनाओं का आमना-सामना हुआ और युद्ध आरम्भ हो गया। बहादुर हूण भारतीय सैनिकों के साथ युद्ध करते हुए आगे बढ़ने की कोशिश करने लगे और भारतीय सैनिक अपनी भयानक मार से उनको पीछे हटाने की चेष्टा करने लगे। दोनों ओर से युद्ध की गति तीव्र हो उठी और घमासान युद्ध के रूप में बदलती गयी। हूण सेना की तरफ से मिहिरकुल के साथ कितने ही हूण सरदार भयानक मार कर रहे थे और भारतीय सेना की ओर से कितने शूर-वीर राजा और सरदार हूणों का संहार करने में लगे हुए थे। कई घन्टे के भयानक युद्ध में दोनों ओर के बहुत से सैनिक युद्ध में मारे गये। लेकिन युद्ध की गम्भीरता में कोई कमजोरी नहीं पैदा हुई।

यशोधर्मन स्वयं युद्ध-क्षेत्र में मौजूद था और अपनी भीषण मार से हूणों को काट-काट कर वह ढेर कर रहा था। उसकी आँखें मिहिरकुल की तरफ लगी हुई थीं। उसने आगे बढ़कर मिहिरकुल पर जोर के साथ प्रहार किया, लेकिन एक हूण सरदार के सामने पड़ जाने के कारण वह साफ बच गया।

इसी मौके पर भारतीय सैनिक आगे बढ़ते हुए दिखायी पड़े। यह अवस्था देखकर मिहिरकुल ने हूण सेना को भयानक मार करने और आगे बढ़ने के लिए ललकारा। उसकी आवाज सुनते ही हूण सैनिक एक साथ आगे बढ़े। उनके आगे बढ़ते ही भारतीय

सैनिक आँधी की तरह उन पर टूट पड़े और उस भीषण संघर्ष में इतने जोर का संग्राम कुछ समय तक हुआ, जिसमें अपने और पराये के समझने का ज्ञान सैनिकों को न रहा। इस भयानक मार-काट के समय यशोधर्मन ने मिहिरकुल पर हमला किया और उसे गिरफ्तार कर लिया। मिहिरकुल के कैद हो जाने पर हूण सेना पीछे की तरफ हटी और वह युद्ध के क्षेत्र से भागने लगी। कुछ दूर तक भारतीय सेना ने हूण सेना का पीछा किया और उसके बाद वह लौट आयी।

भारतीय सैनिकों की सुपुर्दगी में मिहिरकुल को उज्जयिनी में लाया गया और एकत्रित हिन्दू राजाओं ने यशोधर्मन के साथ परामर्श करके इस बात का निर्णय करना चाहा कि हूण नरेश मिहिरकुल के सम्बन्ध में क्या होना चाहिए। कुछ लोगों का कहना था कि जिसने अरसे से अपनी क्रूरता, निर्दयता और नृशंसता में संसार का कोई अत्याचार उठा नहीं रखा, उसके अक्षम्य अपराधों का बदला देने के लिए उसको जान से मार डाला जाय। लेकिन नरसिंह गुप्त बालादित्य ने इसका विरोध किया। बालादित्य स्वयं बौद्ध धर्म का अनुयायी और अहिंसा का पक्षपाती था। यही अवस्था उज्जयिनी में एकत्रित अधिकांश हिन्दू राजाओं और नरेशों की थी। इसीलिए मिहिरकुल की हत्या नहीं की गयी और उसे उसके राज्य से निर्वासित करके काश्मीर भेज दिया गया।

हूण सेना के साथ दूसरा युद्ध

हिन्दू राजाओं ने मिहिरकुल को क्षमा प्रदान की थी, लेकिन इस क्षमा के लिए हूण नरेश मिहिरकुल ने बन्दी अवस्था में भी प्रार्थना नहीं की थी। इसीलिए इस मिली हुई क्षमा को उसने हिन्दू

राजाओं की कायरता के रूप में स्वीकार किया और वह काश्मीर चला गया। वहाँ पहुँच कर उसने भारतीय राजाओं से बदला लेने का उपाय सोचा। काश्मीर राज्य की सेना में उसने विद्रोह पैदा करा दिया और वहाँ के राजा को सिंहासन से उतार कर वह स्वयं वहाँ का नरेश बन बैठा।

मिहिरकुल को किसी प्रकार भारतीय राजाओं से बदला लेना था। लेकिन इसके लिए काश्मीर की सेना काफी न थी। गाँधार में एक दूसरे हूण सरदार का शासन था और उसी सरदार को हिन्दू राजाओं ने मिहिरकुल को निर्वासित करने के बाद, उसका राज्य सौंप दिया था। मिहिरकुल ने काश्मीर राज्य की सेना को अपने साथ लेकर गाँधार राज्य के हूण सरदार पर आक्रमण किया। वहाँ की समस्त हूण सेना ने मिहिरकुल का साथ दिया और इस प्रकार मिहिरकुल अपने राज्य के साथ-साथ, गाँधार राज्य का भी शासक हो गया।

इस समय मिहिरकुल के अधिकार में फिर एक विशाल हूणोंकी सेना हो गयी थी। उसने हिन्दू राजाओं पर आक्रमण करने के लिए अपनी सेनाकी तैयारी की और एक लाखसे अधिक सैनिकों तथा सवारों की विशाल सेना को लेकर मिहिरकुल रवाना हुआ। हूण सेना ने अजमेर में पहुँच कर मुकाम किया।

यशोधर्मन को हूण सेना के आक्रमण का समाचार मिला। उसने उन सभी भारतीय राजाओं और सरदारों को युद्ध के लिए फिर आमन्त्रित किया, जिन्होंने संगठित होकर कुछ महीने पहले हूणों की सेना को पराजित किया था। उज्जयिनी में फिर से भारतीय राजाओं की सेनायें एकत्रित हुईं और वहाँ से यशोधर्मन के नेतृत्व में सन् ५२८ ईसवी में हूणों की बलिष्ठ सेना के साथ दूसरा युद्ध करने के लिए वे रवाना हुईं।

अजमेर में पहुँच कर भारतीय सेनाओं ने अकस्मात् मिहिर-कुल की हूण सेना पर आक्रमण किया और हूणों को तैयार होने तक का मौका न देकर भारतीय सैनिक बिजली की तरह उन पर टूट पड़े। बड़ी तेजी के साथ तैयार होकर हूण सेना ने भारतीय सेना के साथ युद्ध किया। कुछ समय तक दोनों ओर से भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में भारतीय सेना ने हूणों का बुरी तरह से संहार किया। मिहिरकुल की सेना युद्ध में टिक न सकी और उसके सैनिकों ने पराजित होकर इधर-उधर भागना शुरू कर दिया। भारतीय सेना ने उन भागते हुए हूणों का पीछा किया और भयानक रूप से उनका विनाश किया। अजमेर में हूणों की छावनी में भारतीय सेना ने लूट की और हूणों की सेना की समस्त सामग्री तथा रसद अपने अधिकार में कर ली। हूणों की सेना में भागते हुए मिहिर कुल जान से मारा गया। इस भगदड़ में जो हूण सैनिक बचे, वे भागकर लापता हो गये और अन्त में वे मरुभूमि की ओर जाकर लूनी नदी को पार करके दूसरी तरफ चले गये। मिहिरकुल के जीवन का यह अन्तिम युद्ध था, जिसमें वह एक लाख सैनिकों को लेकर युद्ध के लिए आया था और उसकी सेना के लगभग चौथाई आदमी भागकर अपने प्राणों की रक्षा कर सके।

मिहिरकुल के मरते ही भारत में हूणों की सत्ता का अन्त हो गया और मध्य एशिया में भी तुर्कों की शक्तिशाली सेना के साथ युद्ध में हूणों को पराजित होना पड़ा, जिसके परिणाम स्वरूप मध्य एशिया में भी उनके राज्य का अन्त हो गया।

छठा परिच्छेद

ख़ैबर का कठिन संग्राम

[१००८ ईसवी]

भारतीय राजाओं की फूट, भारत में अरब लुटेरे, इस्लामी सेना की लूट, महमूद गुलतान, जयपाल की पराजय, शूर-वीर भाटिया, विद्रोही सुखपाल, ख़ैबर के युद्ध में प्रलय के दृश्य।

आपस की ईर्षा का परिणाम

भारत के राजाओं और नरेशों की फूट और ईर्षा ने न केवल उनको निर्बल और अयोग्य बना दिया था, बल्कि उनकी इन कमजोरियों ने विदेशी विजेताओं को इस देश में विध्वंसकारी आक्रमण करने, लूटने और अमानुषिक अत्याचार करने के लिए द्वार खोल दिया था। इसका लाभ विदेशियों ने उठाया। ईरान वाले आगे बढ़े और देश की सीमा तक आकर, किनारे के कुछ स्थानों और नगरों में थोड़े समय के लिए अपना आधिपत्य स्थापित कर के लौट गये। उनके बाद, यूनानियों ने भारत में प्रवेश किया और पंजाब के अनेक स्थानों को युद्ध-क्षेत्र बनाकर अपने रण-कौशल का प्रदर्शन किया।

इन विदेशी हमलों का एक दुष्परिणाम यह निकला कि इस देश में बाहरी लुटेरों के आने का रास्ता खुल गया। किसी भी शक्तिशाली देश के निवासी, सम्पत्ति की लूट करने के लिए बिना

किसी भय के भारत में आने लगे और यहाँ की अपरिमित सम्पत्ति को लूटकर ले जाने लगे। अपने देशों को सम्पत्तिशाली बनाने के लिए उनको सब से आसान रास्ता यह मिला कि वे लाखों की संख्या में आकर इस देश में टूट पड़े, मारें-काटें और जितनी सम्पत्ति यहाँ से वे लूट कर ले जा सकें, लेजावें। इस देश के राजाओं और नरेशों के पास इसकी रोक का कोई उपाय न रहा। देश में सम्पत्ति की अधिकता थी। उस अपार सम्पत्ति का कोई एक संरक्षक न था। जिनके ऊपर देश की लक्ष्मी के संरक्षण का भार था, वे सैकड़ों की संख्या में इधर-उधर बिखरे हुए थे। वे आपस में लड़कर, अपनी संख्या बढ़ाते जाते थे। देश में कोई एक बड़ी शक्ति न थी। छिन्न-भिन्न शक्तियों में भी परस्पर स्नेह न था। सभी एक, दूसरे का पतन देखना चाहते थे। अपने द्वेष से भरी हुई इस अभिलाषा में उन्होंने एक दूसरे को मिट्टी में मिलते हुए देखा और उसके साथ ही वे खुद भी मिट्टी में मिल गये।

भारत में अरब वालों के आक्रमण

गीता में दी गयी कृष्ण की युद्ध-शिक्षा भारत में लोप हो चुकी थी और त्याग तथा वैराग्य ने उसके स्थान पर अधिकार कर लिया था। ईसा से ७०० वर्ष पहले जैन धर्म ने और ६०० वर्ष पहले बौद्ध धर्म ने अहिंसा की शिक्षा देना आरम्भ किया था। इन उपदेशों और शिक्षाओं से अभिभूत होकर जिस भारत ने अहिंसा को ही अपने जीवन का सर्वस्व समझा था, उसी भारत की भूमि को हिंसामय बनाकर उसकी प्यारी संतानों के रक्त की देश में खूब नदियाँ बहाई गयीं। पाँचवीं शताब्दी के मध्य काल से हूणों के आक्रमण आरम्भ हुए थे और छठी शताब्दी के मध्य काल तक उनके हमलों के सिलसिले बराबर जारी रहे।

सातवीं शताब्दी किसी प्रकार बीत गयी । अभी तक पिछले हमलों से होने वाली क्षतियों की पूर्ति न हो पायी थी, अकस्मात अरब वालों ने लालायित नेत्रों से भारत की ओर देखा । उनके कानों में सुनायी पड़ा था कि भारत में सम्पत्ति बहुत है । उन लोगों ने यह भी सुना था कि मध्य एशिया की आक्रमणकारी जातियों ने भारत का धन लूट कर अपने देश को माला-माल कर दिया है । इन सम्वादों को सुनकर अरब वाले भारत पर हमला करने और यहाँ का धन लूटने की तैयारी करने लगे ।

सब से पहले लगभग ६३७ ई० में अरब वालों का एक गिरोह भारत की ओर रवाना हुआ । लेकिन वह गिरोह वहीं तक पहुँचा, जहाँ पर आज बम्बई बसा हुआ है । उन दिनों में अरब का शासन खलीफ़ा ओमर के अधिकार में था । उसके बाद अरब वालों के दूसरे गिरोह भी भारत की ओर चले और वे भारत की सीमा तक पहुँच गये । इस प्रकार अरब से भारत में आने वाले केवल रोजगारी थे । भारतीय देशों को जीतने के उद्देश्य से नहीं, बल्कि साफ-साफ वे लूटने के ख्याल से भारत में आये थे । इन आने वाले गिरोहों में जो अधिक शक्तिशाली था, वह मकरान से रवाना होकर यहाँ आया था । इन दिनों में इस्लाम का अभ्युदय-काल था और जो लोग अरब से भारत में उन दिनों आये, वे इस्लाम की सेना बनाकर वहाँ पर पहुँचे थे । उनके आने का उद्देश्य था एक मात्र भारत के किसी स्थान में लूट-मार करना और जो कुछ मिले, उसे लेकर भाग जाना ।

मोहम्मद बिन क़ासिम पहला मुसलमान था, जिसने सन् ७१२ ईसवी में एक शक्तिशाली इस्लामी सेना लेकर भारत पर आक्रमण किया और सिन्ध को जीत कर उसने मुलतान पर

अधिकार कर लिया। बहुत-से मन्दिर नष्ट किये गये और धन की लूट हुई।

इन दिनों में भारत के राजाओं की शक्तियाँ बहुत क्षीण हो चुकी थीं। सम्राट हर्षवर्द्धन के बाद फिर कोई प्रतापी राजा इस देश में न हुआ। सम्राट हर्ष ६०६ ई० में सिंहासन पर बैठा और ६४७ ई० तक बड़ी बुद्धिमानी के साथ उसने शासन किया। सम्राट हर्ष के मर जाने के बाद भारत की राज-व्यवस्था लगातार गिरती गयी। देश का शासन छोटे-छोटे राजाओं के द्वारा चल रहा था। किसी पर किसी का अधिकार न था। जो राजा थे, वे धार्मिकता की लहरों में बह रहे थे। उनके निकट राज-व्यवस्था और राजनीति का कोई महत्व न था। देश में कभी अहिंसा की वायु तेज दिखायी देती थी और कभी अध्यात्मवाद की।

इस्लाम का जोर

नवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में इस्लाम का जोर काफी बढ़ चुका था।

लगभग पहली शताब्दी में इस्लाम धर्म ईरान, मिश्र और एशिया के कई देशों में बहुत विस्तार पा चुका था। उसके मानने वालों की संख्या लगातार बढ़ती जाती थी। इन्हीं दिनों में अरब वालों के आक्रमण काबुल पर हुए और वहाँ के राजा को पराजित करके उन लोगों ने नवीं शताब्दी में काबुल पर अपना अधिकार कर लिया।

इसके बाद वे आगे बढ़ने की कोशिश करने लगे। सन् ९६२ ई० में अलप्तगीन नामक एक तुर्क गुलाम ने अपने साथ तीन हजार तुर्क सवारों को लेकर अफ़ग़ानिस्तान में ग़ज़नी के मजबूत किले पर आक्रमण किया। उस किले का संरक्षण भाटिया लोगों के

हाथों में था। अचानक हमला हो जाने पर उन लोगों ने मुस्लिम सेना का मुकाबिला किया। भाटिया युद्ध में शूर-वीर थे लेकिन किले में उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी और इस आक्रमण की पहले से उनको कोई सूचना न थी। अकस्मात् किला घेरे जाने पर भी उन लोगों ने बड़ी बहादुरी के साथ काफी समय तक युद्ध किया। लेकिन अन्त में उनकी पराजय हुई। इसलिए किले को छोड़कर उनको भागना पड़ा और वे वहाँ से भागकर पंजाब के दक्षिण में आ गये।

मुस्लिम सेना ने भारत की सीमा को पार किया

सन् ९७६ में अप्तगीन की मृत्यु हो गयी। उसके स्थान पर सुबुक्तगीन अधिकारी हुआ। कुछ ही दिनों के बाद, उसने अपने आस-पास के राज्यों पर हमला करना आरम्भ कर दिया और क़ाबुल, खुरासान, जुर्जन, बोस्ट, हिरात को विजय कर उसने उन पर अपना अधिकार कर लिया। इसके उपरान्त उसने पंजाब के महाराज जयपाल के साथ युद्ध किया और अन्त में उसे पराजित करके उसने पेशावर पर भी अपना कब्जा कर लिया। सुबुक्तगीन ने उत्तर-पश्चिम के मार्ग से भारत में आकर आक्रमण किया, यद्यपि वह अधिक दूर तक नहीं पहुँच सका। सुबुक्तगीन पेशावर के बाद आगे बढ़ना चाहता था। लेकिन वह एकाएक बीमार पड़ा और उस बीमारी में उसकी मृत्यु हो गयी। सुबुक्तगीन के मर जाने पर उसका बड़ा लड़का महमूद सुलतान के नाम से बादशाह हुआ और महमूद गजनवी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। महमूद सुलतान स्वस्थ, बलवान और बहादुर था। छोटी अवस्था से ही वह इस्लाम का पक्का पक्षपाती था।

बादशाह होने के बाद से ही महमूद सुलतान ने भारत पर

आक्रमण करने और उसकी सम्पत्ति को लूटने के इरादे शुरू कर दिये। एक बहुत बड़ी सेना लेकर भारत में चढ़ाई करने के उपायों को वह सोचने लगा। उसने अपने मन्त्रियों और मौलवियों के साथ परामर्श किया। अन्त में उसने भारत पर हमला करने के लिए इस्लामी झण्डा खड़ा किया और उस झण्डे के नीचे आने तथा इस्लामी सेना में शामिल होने के लिए उसने मौलवियों को चारों ओर भेजना आरम्भ कर दिया।

भारत में आक्रमण करने के लिए सुबुक्तगीन ने अपनी जिन्दगी में बड़े-बड़े इरादे कर रखे थे, लेकिन उनको पूरा करने के पहले ही वह संसार से बिदा हो गया। उसका लड़का महमूद उसी की तरह बहादुर और लड़ाकू था। उसने अपने पिता से भी अधिक विपैले साधनों के साथ भारत में हमला करने की पूरी तैयारी की।

महमूद ग़ज़नवी और भारत

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, महमूद सैनिक मनोवृत्ति का एक अत्याचारी मुसलमान था। मज़हबी-ताअसुब ने उसे भारत का शत्रु बना दिया था। इस्लाम का अभ्युदयकाल था। एशिया के अनेक देश इस्लाम के झण्डे के नीचे आ चुके थे। इस्लाम के नाम पर समस्त मुस्लिम देशों में जोश फैलाने का काम महमूद ने किया और उसे आशातीत सफलता मिली।

महमूद के इस कार्य में मौलवियों ने प्रचार का काम किया। बग़दाद के खलीफा ने संसार में इस्लाम को फैलाने और इस्लामी विजय के लिए महमूद को अधिकारी बनाया। उसने इस्लाम के इस महान् कार्य के लिए महमूद को ग़ज़नी और खुरासान का न्यायोचित अधिपति मानकर हर्ष पूर्वक अपनी अनुमति प्रदान

की। महमूद ने इन मिले हुए अधिकारों के बदले में स्वीकार किया कि मैं प्रत्येक वर्ष इस पवित्र इस्लामी युद्ध के लिए हिन्दुस्तान पर आक्रमण करूँगा।

महमूद ग़ज़नवी ने अपने वादों को पूरा किया। उसने १००० ई० से लेकर १०२६ ई० तक भारत में सोलह भयानक आक्रमण किये और सिन्ध नदी से लेकर गंगा के किनारे तक के राज्यों को उसने विशाल इस्लामी सेना के द्वारा विध्वंस किया। उसका पहला आक्रमण सीमा के पास .ख़ैबर के निकटवर्ती शहरों पर हुआ। उसके पिता सुबुक्तगीन के पुराने शत्रु पंजाब के राजा जयपाल ने फिर से पेशावर पर अपना अधिकार कर लिया था। महमूद ने सब से पहले जयपाल को पराजित करने का निश्चय किया।

पेशावर में मुस्लिम सेना का मुकाबिला

ग़ज़नी से रवाना होने के पहले, महमूद सुलतान के पास इस्लामी सेना का एक बहुत बड़ा लश्कर तैयार हो चुका था। समस्त इस्लामी देशों के वीर लड़ाकू सैनिक ग़ज़नी में आकर एकत्रित हुए थे। लोहे के जिरह-बख़्तर पहने हुए अरब वालों का एक बड़ा रिसाला भी ग़ज़नी में आ चुका था। मध्य एशिया के भयानक तीरंदाज़ों की एक खासी सेना महमूद ने अपने अधिकार में कर ली थी। भारतीय सेना के हाथियों को भगाने के लिए भयंकर आतिशबाज़ों का एक बड़ा दल इस्लामी सेना के साथ हो चुका था। इस प्रकार सब मिलाकर जो सैनिक ग़ज़नी में एकत्रित हुए, उनकी संख्या एक लाख से अधिक हो चुकी थी।

.ख़ैबर के रास्ते को पार कर महमूद अपनी विशाल सेना के साथ पेशावर की ओर रवाना हुआ। उस समय उसके साथ

जो लश्कर था, उसमें पैदल सैनिकों के सिवा पन्द्रह हजार चुने हुए लड़ाकू सवार थे। इस विशाल सेना के साथ इस्लाम का ऊँचा झण्डा था, जिसे लेकर इस्लामी सेना भारत की पवित्र भूमि पर उमड़ती हुई पेशावर की तरफ चली जा रही थी।

राजा जयपाल को अचानक खबर मिली कि गजनी के महमूद सुलतान की एक बहुत बड़ी सेना आ रही है। उसने थोड़े समय में जो सैनिक तैयारी सम्भव हो सकती थी, उसे लेकर वह सिन्ध नदी पार कर पेशावर के करीब पहुँच गया। दोनों ओर की सेनायें एक मैदान की ओर बढ़ीं। बादलों के समान उमड़ती और गरजती हुई इस्लामी सेना के सामने जयपाल की सेना बहुत कम दिखाई पड़ी। दोनों ओर से एक साथ आक्रमण हुए। बहुत देर तक दोनों सेनाओं के सैनिक बाणों की वर्षा करते रहे और उसके बाद, मुस्लिम सेना ने आगे बढ़कर तलवारों और भालों की मार आरम्भ कर दी।

महमूद की सेना के सामने भारतीय सेना बहुत थोड़ी थी, फिर भी जयपाल के सैनिकों ने पूरी शक्ति के साथ उसका मुकाबिला किया। दोनों ओर की फौजें एक, दूसरे के निकट पहुँच गयी थीं और कई घन्टे से घमासान युद्ध हो रहा था। दोनों सेनाओं के सैनिक एक बड़ी संख्या में मारे गये। युद्ध के मैदान में उन घायल सैनिकों का खून पानी की तरह बह रहा था।

महमूद की सेना को कई गुना अधिक देख कर जयपाल इस बात को समझ गया था कि मुस्लिम सेना का जोर रोकना किसी भी दशा में सम्भव नहीं है। फिर भी वह कस कर युद्ध कर लेना चाहता था। उसकी सेना थोड़ी थी, लेकिन युद्ध में पीठ दिखाने वाली न थी। भारतीय सेना के सैनिक अधिक संख्या में मारे जा रहे थे, फिर भी वे युद्ध करने में अपनी बहादुरी का प्रमाण दे

रहे थे। अचानक महमूद की सेना का जोर बढ़ा। मुस्लिम सेना को आगे बढ़ते हुए देखकर भारतीय सैनिकों ने प्राणों का मोह छोड़कर वह भयंकर मार शुरू कर दी, जिससे महमूद की सेना को एक बार पीछे हट जाना पड़ा, लेकिन जयपाल के साथ में आयी हुई सेना थी ही कितनी। युद्ध में उसके बहुत-से सैनिक मारे गये। बहुत-से हाथी घायल हुए और बाकी हाथी भागने की कोशिश करने लगे। अपनी सेना की इस हालत को देख कर जयपाल की सवार सेना ने आगे बढ़ कर युद्ध की स्थिति को सम्हालने की कोशिश की। लेकिन उसके साथ बहुत थोड़े सैनिक रह गये थे। अभी तक भारतीय सेना के सब मिलाकर पाँच हजार सैनिक और अफसर मारे जा चुके थे। जो लोग युद्ध-क्षेत्र में बाकी रह गये थे, उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। मुस्लिम सेना फिर आगे की ओर बढ़ी और उसके बाणों की मार से घायल हो कर जयपाल के हाथी पीछे की ओर भागे। यह दशा देख कर जयपाल के बाकी सैनिकों का साहस टूट गया। वे पीछे हट कर बहुत-से लड़ाई के मैदान से भाग निकले और बहुत-से पकड़ कर कैद कर लिये गये। इसी समय महाराज जयपाल भी अपने पन्द्रह भाई वंशजों और प्रमुख सरदारों के साथ कैद कर लिया गया।

महाराज जयपाल की पराजय के बाद, उसकी सेना की बहुत-सी सामग्री मुस्लिम सेना के अधिकार में आ गयी। अन्य कैदियों के साथ जब महाराज जयपाल, महमूद सुलतान के सामने लाया गया, उस समय जयपाल के गले में बहुमूल्य एक हार था और उसकी कीमत दस लाख रुपये से कम की न थी। महमूद ने इस हार को जयपाल के गले से उतरवा कर अपने अधिकार में कर लिया।

महमूद सुलतान ने आज्ञा दी, जो इस्लाम को मंजूर करें,

उनको छोड़ दिया जाय और इस्लाम को न मानने वाले कत्ल कर दिये जाँय। महमूद की यह आज्ञा भारतीय कैदी सैनिकों के लिए बड़ी भयानक हो गयी। इस्लाम मंजूर न करने के कारण वे करीब-करीब सभी मारे गये। अंत में जयपाल के साथ महमूद सुलतान की संधि हुई और उसके अनुसार महाराज को उसके साथियों के साथ छोड़ दिया गया।

युद्ध समाप्त हो जाने के बाद मुस्लिम सेना पेशावर के आस-पास के स्थानों की ओर घूमी। चारों ओर उसने लूट मार की और जिन लोगों ने इस्लाम स्वीकार किया, उनको छोड़ कर बाकी सब को एक तरफ से मार डाला गया। इसी सिलसिले में वहाँ के बहुत-से पहाड़ी सरदार भी मारे गये।

पराजित होने पर जयपाल का प्राण-त्याग

पराजय का यह अपमान जयपाल के लिए असह्य हो गया। कैद हो जाने के बाद वह जिस प्रकार महमूद के सामने पेश हुआ और बंदी दशा में जो दृश्य उसके सामने आये, उनका स्मरण उसे बार-बार पीड़ा पहुँचाने लगा। एक वीर पुरुष के लिए युद्ध में मृत्यु अपमान का कारण नहीं होती, लेकिन यदि वह शत्रुओं के द्वारा कैद कर लिया जाय और उसके बाद उसे शत्रु की शर्तों पर संधि करना पड़े तो यह अपमान उसके लिए मृत्यु की अपेक्षा अधिक भयानक होता है। इन बातों को सोच-सोच कर जयपाल का हृदय लज्जा से विदीर्ण होने लगा।

आत्म-अपमान के आघात से दुखी होकर जयपाल ने अपने मन्त्रियों और सरदारों के साथ परामर्श किया। उसकी इस पीड़ा को दूर करने के लिए मन्त्रियों और सरदारों ने उसे बहुत-कुछ समझाने का प्रयत्न किया। लेकिन जयपाल के पीड़ित अन्तःकरण

को किसी प्रकार संतोष न हुआ। उसका पुत्र अनंगपाल युवावस्था में पहुँच कर सभी प्रकार समर्थ हो चुका था। अपने मन्त्रियों और सरदारों से बातें करके जयपाल ने राज्य का भार अपने पुत्र को सौंपा और उसके बाद उसने राज धर्म पर अनंगपाल को कई प्रकार की शिक्षायें दीं। राज्य के उत्तरदायित्व से पृथक होकर जयपाल ने आत्म-हत्या की और अपमान की एक असह्य पीड़ा को लेकर वह इस संसार से बिदा हो गया।

भटनेर का युद्ध

जयपाल के स्थान पर उसका लड़का अनंगपाल राजा हो चुका था। आत्म-सम्मान के नष्ट हो जाने पर जिस जयपाल ने आत्म-हत्या की, उसे अनंगपाल भूल न सका। लेकिन शत्रु की प्रबल शक्ति देखकर उसने समय का इन्तजार किया और इस समय चुपचाप रहना ही उसने आवश्यक समझा।

महमूद सुलतान की शर्तों को मान कर जयपाल ने सन्धि की थी और उन्हीं शर्तों के आधार पर वह छोड़ा गया था। उस सन्धि के अनुसार कर देने के लिए उसने अपने सरदारों और अधिकृत राजाओं से बातें कीं। अनंगपाल बिना अपनी शक्ति का सञ्चय किये, सन्धि को तोड़ना नहीं चाहता था, लेकिन भटनेर के राजा विजयचन्द्र ने कर देने से इन्कार किया। उसने साफ-साफ कहा कि मुझे कर देना मंजूर नहीं है, शत्रु के साथ युद्ध करना मंजूर है।

इस प्रकार की बातें करके ही विजयचन्द्र चुप नहीं हो गया। वह जानता था कि इसके बाद तुरन्त ही मुस्लिम सेना का आक्रमण होगा और उस समय युद्ध करना ही पड़ेगा। इसलिए उसने सोचा कि युद्ध की तैयारी पहले से ही क्यों न कर ली जाय।

विजयचन्द्र का छोटा-सा राज्य था। उसकी सैनिक शक्ति भी बहुत साधारण थी। लेकिन उसकी सेना के भाटिया सैनिक युद्ध में अत्यन्त बहादुर थे। उनके बल पर विजयचन्द्र अपने मान की रक्षा करना चाहता था। बिना लड़े हुए और बिना पराजय के वह शत्रु की अधीनता स्वीकार नहीं करना चाहता था। महमूद सुलतान की सेना के साथ युद्ध करने की विजयचन्द्र ने तैयारी शुरू कर दी। सब से पहले उसने अपने परिवार को भटनेर से हटा कर दूर छिपा कर रखा। अपने राज्य का कोष शत्रु की पहुँच से बाहर, अपने नियंत्रण में रखा। राज्य के सम्पूर्ण स्थानों को सचेत और सावधान किया। इसके बाद उसने अपनी सेना की तैयारी आरम्भ की।

विजयचन्द्र अपनी छोटी-सी सेना के पराक्रम पर विश्वास करता था। उसने चुने हुए भाटिया सैनिकों की पाँच हजार सेना तैयार की और अपने किले के बाहर एक ऊँचे स्थान पर जाकर उसने शिविर बनाया। वहाँ पर मुकाम कर के वह विशाल मुस्लिम सेना के साथ युद्ध करने के उपायों पर विचार करने लगा।

महमूद सुलतान ने मुलतान में अपनी सेना का अधिकारी अबुलफ़तह दाऊद को बनाया था। अबुलफ़तह न केवल युद्ध में वीर और बहादुर था, बल्कि वह एक कट्टर इस्लामी मुसलमान और सुलतान की समझ में अत्यन्त होशियार आदमी था। विजयचन्द्र को इस बात का पता था। अबुलफ़तह दाऊद को मालूम न था कि विजयचन्द्र ने भटनेर से निकलकर अपनी सेना के साथ, बाहर कहीं मुकाम किया है। भारतीय लूट का खजाना एक मुसलमान सेना लेकर वहाँ कहीं एक दूर के मार्ग से निकली। विजयचन्द्र को खबर मिली कि महमूद की सेना लूट का खजाना

लेकर जा रही है। उसने तुरन्त अपनी सेना को लेकर उस पर हमला किया और उस खजाने को लूट लिया।

खजाने के लूटे जाने की खबर अबुलफ़तह को मिली। वह इस समाचार को सुनते ही तिलमिला उठा और अपनी सेना लेकर विजयचन्द्र से मुकाबिला करने के लिए वह रवाना हो गया। पचास हज़ार सेना के साथ अबुलफ़तह ने सन् १००३ ई० में भटनेर के बाहर विजयचन्द्र पर हमला किया।

विजयचन्द्र बड़ी सावधानी के साथ इस युद्ध का रास्ता देख रहा था। मुस्लिम सेना के करीब आते ही भाटिया सेना ने आगे बढ़कर आक्रमण का उत्तर दिया और एक साथ वह मुस्लिम सेना पर टूट पड़ी। मुस्लिम सेना घबराकर पीछे की ओर हट गयी। यह देखकर भाटिया सेना कुछ दूर आगे की ओर बढ़ गयी और फिर दोनों सेनाओं में संग्राम शुरू हो गया। विजयचन्द्र यदुवंशी राजपूत था। अपनी छोटी सेना के कारण उसने विशाल मुस्लिम सेना की परवाह न की। कुछ समय के बाद दोनों ओर से युद्ध का जोर बढ़ गया और प्रलय के दृश्य दिखायी देने लगे।

अबुलफ़तह के सेनापतित्व में मुस्लिम सेना ने पूरा जोर लगाकर युद्ध किया। उसने पहले से ही भाटिया सेना को पराजित करने का विश्वास कर लिया था। लेकिन युद्ध के मैदान में वीर भाटिया सैनिकों के सामने मुस्लिम सैनिकों का रुकना कठिन मालूम होने लगा। लगातार कुछ देर तक भीषण मार होने के बाद उस थोड़ी-सी भाटिया सेना के सामने अबुलफ़तह की सेना को दूर तक पीछे हट जाना पड़ा और इसी मौके पर उसके बहुत-से सैनिक और बहुत-से बहादुर सरदार युद्ध में मारे गये। मुस्लिम सेना का साहस टूट गया और वह युद्ध-क्षेत्र से हट गयी।

भाटिया सेना शत्रुओं को मैदान से पीछे हटाकर अपने शिविर में लौट गयी और वहाँ जाकर उसने विश्राम किया।

भटनेर का दूसरा युद्ध

भटनेर में मुस्लिम सेना का खजाना लूटे जाने और अबुल-फ़तह् की पराजय का समाचार महमूद सुलतान को मिला। वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और विजयचन्द्र को परास्त करने के लिए वह स्वयं तैयार हुआ। अपने साथ पचास हजार तुर्की सेना लेकर वह भटनेर की तरफ रवाना हुआ। उसकी सेना में इस्लाम का ऊँचा झण्डा था। पैदल और सवार मुस्लिम सेना तेजी के साथ भटनेर की ओर रवाना हुई।

विजयचन्द्र पहले से इस बात को जानता था। वह जानता था कि अबुलफ़तह् की हार को सुनकर महमूद स्वयं अपनी विजयी सेना को लेकर आवेगा। भाटिया सेना पहले से ही थोड़ी संख्या में थी और उसमें भी उसके बहुत-से सैनिक अबुलफ़तह् के साथ युद्ध करने में मारे गये थे। भाटिया सेना एक बार मुस्लिम सेना को पराजित कर चुकी थी, लेकिन वह थक गयी थी और उसके बहुत से सैनिक जख्मी हो चुके थे। फिर भी वह साहस में कमजोर न पड़ी थी।

तुर्की सेना के आने पर भाटिया सेना ने भटनेर के बाहर ही उसका मुकाबिला किया। आरम्भ से ही तुर्की सेना का आक्रमण बड़े जोर का हुआ। आमना-सामना होते ही भीषण संग्राम शुरू हो गया।

बहुत समय तक भाटिया सेना ने तुर्की सेना के साथ युद्ध किया। उसने अपनी भयङ्कर मार से सेना को आगे बढ़ने से रोक रखा, लेकिन उसके मुकाबिले में तुर्की सेना बहुत बड़ी थी।

उसके साथ युद्ध में भाटिया सेना के बहुत-से आदमी मारे गये। इस दशा में विजयचन्द्र का पक्ष युद्ध में कमजोर पड़ने लगा। तुर्की सेना का ज़ोर बढ़ने लगा और भाटिया सेना को धीरे-धीरे पीछे की ओर हटना पड़ा। महमूद की सेना ने आगे बढ़कर भाटिया सेना को घेरना शुरू कर दिया। अब विजयचन्द्र के साथ पाँच सौ से अधिक सैनिक न रह गये थे। इतने थोड़े आदमियों के रह जाने पर भी, भाटिया सेना का एक भी सैनिक युद्ध से भाग न सका। वे मर जाना चाहते थे, परन्तु इस्लाम धर्म मन्जूर नहीं करना चाहते थे।

अपने पाँच सौ वीर सैनिकों को लेकर विजयचन्द्र युद्ध के क्षेत्र से निकल कर अपने किले में चला गया। महमूद की तुर्की सेना ने भटनेर को जाकर घेर लिया। इस संकट को विजयचन्द्र पहले से जानता था, इसीलिए उसने भटनेर-निवासियों की रक्षा के लिए पहले से प्रबन्ध कर रखा था। भटनेर के भीतर सशस्त्र ऐसे लोगों की संख्या मौजूद थी, जिन्होंने अनेक अवसरों पर युद्ध का काम किया था। तुर्की सेना के भटनेर में घुसते ही उन वीरों ने अपने-अपने मकानों की छतों से बाणों की मार शुरू कर दी। तुर्की सेना को पहले से इसका कुछ पता न था। इस असावधानी में महमूद की सेना के बहुत-से सैनिक घायल हो गये और महमूद सुलतान स्वयं घायल हुआ। तुर्की सेना को घबराकर भटनेर के बाहर की ओर भागना पड़ा।

महमूद सुलतान की सेना भटनेर के भीतर प्रवेश करने की कोशिश करने लगी। लेकिन उसके आस-पास एक गहरी खाई थी और वह एक भयानक बाधा थी। महमूद उस खाई को पाटने का प्रबन्ध करने लगा। तुर्की सेना उस खाई को पाटने में जुट गयी। रात के अन्धकार में विजयचन्द्र अपने सैनिकों और सरदारों के

साथ किले से निकला और तुर्की सेना पर टूट पड़ा। मुस्लिम सेना को इस आक्रमण का कुछ भी ख्याल न था। महमूद के बहुत से सैनिक और सरदार मारे गये और तुर्की सेना के तैयार होते-होते भाटिया सैनिक और सरदार पहाड़ी के घने जंगलों में जाकर विलीन हो गये।

रात के अचानक आक्रमण से महमूद की सेना का भयानक संहार हुआ। उसने भटनेर के किले में आग लगवा दी और उसके बाद उसने भटनेर पर फिर आक्रमण किया। तुर्की सेना ने वहाँ पर खूब लूट-मार की और सन् १००४ ई० में भटनेर पर अपना अधिकार करके वह ग़ज़नी की तरफ वापस चली गयी।

अनंगपाल के साथ युद्ध

महमूद सुलतान के ग़ज़नी चले जाने के बाद अभी कुछ ही महीने बीते थे, सुलतान की ओर से मुलतान के अधिकारी अबुल-फ़तह दाऊद ने अपना रंग बदलना शुरू कर दिया। अब उसे इस्लाम धर्म की अपेक्षा बौद्ध-धर्म अच्छा दिखायी देने लगा। इन दिनों में उसने अनंगपाल के साथ मित्रता का सम्बन्ध कायम कर लिया था। अबुलफ़तह दाऊद ने इस्लाम छोड़कर बौद्ध-धर्म स्वीकार कर लिया और इसके साथ ही उसने महमूद को कर भेजना बन्द कर दिया।

अबुलफ़तह के धर्म-परिवर्तन का समाचार महमूद को ग़ज़नी में मिला और उसे यह भी मालूम हो गया कि अबुलफ़तह ने मुलतान की ओर से कर भेजना भी बन्द कर दिया है। इसी सिलसिले में उसने जब सुना कि अबुलफ़तह की मित्रता अनंगपाल के साथ हो चुकी है, तो उसे विश्वास हो गया कि अबुलफ़तह की इन सभी बातों का कारण अनंगपाल है।

इसी आधार पर उसने अनंगपाल के पिता जयपाल के साथ जो सन्धि की थी, उसे तोड़कर उसने अनंगपाल पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया।

अपने साथ एक लाख तुर्की सेना को लेकर महमूद सुलतान ग़ज़नी से रवाना हुआ। इस्लामी सेना के आने की खबर पाकर अनंगपाल ने भी युद्ध की तैयारी की और अपनी सेना को लेकर वह पेशावर के पास पहुँच गया। तुर्की सेना ने आकर अनंगपाल की सेना पर आक्रमण किया। दोनों सेनाओं ने मार-काट आरम्भ कर दी और उस भीषण युद्ध में सारा दिन बीत गया। भारतीय सेना के मुकाबिले में तुर्की सेना बहुत बड़ी थी। इसीलिए भारतीय सेना के पैर उखड़ गये और उसके सैनिकों ने भागना आरम्भ कर दिया। यह देखकर तुर्की सेना ने उसका पीछा किया।

अनंगपाल अपनी सेना के साथ भाग कर पहाड़ी रास्ते से होता हुआ काश्मीर चला गया। पेशावर के इस युद्ध में अनंगपाल को जीत कर तुर्की सेना भटिण्डे की तरफ रवाना हुई। रास्ते में मिलने वाले गाँवों को उसने लूटना और जलाना शुरू कर दिया और जहाँ कहीं मंदिर दिखाई पड़े, उनको लूटकर उसने नष्ट कर दिया। जो नगर और कस्बे मिले, उनको उसने लूटा और उनमें आग लगा दी। इस प्रकार लूट मार के साथ नगरों तथा मंदिरों को बरबाद करती हुई महमूद की सेना मुलतान की तरफ आगे बढ़ी। वहाँ पर मुलतान का अधिकारी अबुलफ़तह युद्ध के लिए तैयार था। तुर्की सेना के मुलतान पहुँचते ही अबुलफ़तह की सेना ने उसके साथ युद्ध किया और सात दिनों तक दोनों ओर से घमासान संग्राम होता रहा। अन्त में अबुलफ़तह की पराजय हुई। वह कैद कर लिया गया और महमूद सुलतान ने सन् १००६ ई० में मुलतान का राज्य सुखपाल को दे दिया। यह सुखपाल,

महाराज जयपाल का भाई था और पेशावर की लड़ाई में जयपाल की हार हो जाने पर उसने इस्लाम स्वीकार कर लिया था। उसके मुसलमान हो जाने पर महमूद ने उसको अपनी सेना में अफसर बनाकर एक ऊँचा पद दिया था।

महमूद के साथ सुखपाल का विद्रोह

अभी महमूद भारत में ही मौजूद था। उसे खबर मिली कि तातार के बादशाह एलिक .खान ने .खुरासान पर आक्रमण किया है। .खुरासान में बहुत पहले से महमूद का कब्जा था। महमूद भारत से ग़ज़नी चला गया और वहाँ जाकर उसने तातार के बादशाह के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। कुछ दिनों तक लगातार वह संग्राम चलता रहा।

सुखपाल मुलतान में राज्य कर रहा था, लेकिन उसका शासन महमूद सुलतान की अधीनता में था। सुखपाल एक ऐसे अवसर की खोज में था, जब वह महमूद सुलतान के साथ अपना सम्बन्ध तोड़ सके और वह अपने आपको स्वतंत्र राजा घोषित करे। तातार के बादशाह के साथ महमूद को फँसा हुआ देखकर सुखपाल ने अपने लिए एक अच्छा अवसर समझा। उसने इस्लाम-धर्म को छोड़कर मुस्लिम पराधीनता का बन्धन तोड़ दिया और मुलतान का वह एक स्वतंत्र राजा हो गया।

तातार के बादशाह के मुकाबिले में महमूद सुलतान की विजय हुई। .खुरासान के युद्ध से छुटकारा मिलने के बाद ही उसने सुना कि मुलतान के अधिकारी सुखपाल ने इस्लाम-धर्म छोड़ दिया है और उसने अपने आपको मुलतान का स्वतंत्र राजा घोषित किया है। महमूद ने .खुरासान से छुट्टी पाते ही भारत में आने और मुलतान को फिर विजय करने का निश्चय किया।

सुखपाल को इसकी खबर पहले से ही हो गयी। उसने महमूद के साथ युद्ध करने का साहस किया और एक बड़ी सेना एकत्रित करके स्वयं युद्ध के लिए रवाना हुआ। सुखपाल ने मुलतान से चलकर सिन्ध नदी के किनारे मुकाम किया और इस बात का पूरा प्रबन्ध किया कि तुर्की सेना सिन्ध नदी को पार न कर सके।

तातार के बादशाह को पराजित करके महमूद तुरन्त एक बड़ी सेना लेकर सुखपाल पर हमला करने के लिए रवाना हुआ। वह सुखपाल के बल और साहस को पहले से जानता था। सुखपाल तुर्की सेना को सिन्ध पार करने में रोक न सका। महमूद की सेना ने सुखपाल को जीतकर उसे कैद कर लिया। इस बार तुर्की सेना ने भयानक अत्याचार किये। सुखपाल को बन्दी दशा में ग़ज़नी भेजा गया और इस्लामी सेना ने चारों ओर लूटमार शुरू कर दी। इस्लाम का झण्डा लेकर एक ओर से हिन्दुओं को उस झण्डे के नीचे आने और इस्लाम-धर्म स्वीकार करने के लिए विवश किया गया। लोगों के इनकार करने पर एक तरफ से कत्ल किया गया और उन स्थानों को आग लगाकर भस्म कर दिया गया। मन्दिरों और तीर्थ स्थानों को नष्ट-भष्ट कर के मिट्टी में मिला दिया। इन अत्याचारों के समय तुर्की सेना के साथ दो लाख आदमी थे। इस प्रकार सन् १०१० ई० में महमूद सुलतान ने जो अमानुषिक और भीषण अत्याचार किये, उनके साथ किसी देश के और किसी युग के अत्यचारों की तुलना नहीं की जा सकती। इसके बाद महमूद अपनी सेना के साथ फिर ग़ज़नी लौट गया।

अनंगपाल का दूसरा युद्ध

जिस स्वाभिमान की रक्षा के लिए जयपाल ने आत्म-हत्या की

थी, अनंगपाल उसे भूला न था। पेशावर के मैदान में उसे स्वयं तुर्की सेना के सामने पराजित होना पड़ा था और युद्ध से भागकर वह काश्मीर चला गया था। उसने समझ लिया था कि छोटी-मोटी सेना के द्वारा तुर्की सेना का मुकाबिला नहीं किया जा सकता। वह महमूद के साथ युद्ध करना चाहता था और युद्ध के सिवा, उसके सामने अब कोई दूसरा रास्ता न रह गया था। इस लिए वह काश्मीर में जाकर उन उपायों को सोचने लगा, जिनसे सेना एक बड़ी संख्या में एकत्रित की जा सकती थी।

अनंगपाल ने पंजाब के दूसरे राजाओं से सैनिक सहायता लेने का निर्णय किया और उसी आधार पर उसने उनके पास अपने प्रतिनिधि भेजे। अनंगपाल ने सैनिक तैयारी का कार्य आरम्भ कर दिया। उन दिनों में केकय लोग युद्ध करने में बहुत मशहूर थे और वे अब गक्कर के नाम से प्रसिद्ध थे। तुर्की सेना के साथ युद्ध करने के लिए अनंगपाल को तीस हजार गक्कर सेना की सहायता मिली। उसके साथ पहले से ही जो अपनी सेना थी, उसकी संख्या भी पाँच हजार से कम न थी। इन पैंतीस हजार सैनिकों को लेकर अनंगपाल रवाना हुआ और उसने ख़ैबर का रास्ता रोक लिया। गक्कर सैनिक तीरन्दाजी में बहुत प्रसिद्ध थे। अनंगपाल ने उनको पहाड़ी के ऊँचे स्थानों पर नियुक्त किया और उनके नीचे ख़ैबर के रास्ते में उसने हाथियों की सेना लगा दी। अपनी इस मजबूत तैयारी के साथ, वह महमूद की तुर्की सेना के आने का रास्ता देखने लगा।

गजनी में महमूद को खबर मिली कि अनंगपाल युद्ध करने के लिए एक बड़ी सेना लेकर ख़ैबर के रास्ते पर आ गया है। उसने गजनी में युद्ध की तैयारी शुरू की और इस्लाम का झण्डा ऊँचा किया। इस्लामी देशों से सैनिक लाने के लिए महमूद के

दूत रवाना हुए और बहुत थोड़े समय के भीतर ग़ज़नी में जो सेना युद्ध के लिए तैयार हुई, उसकी संख्या दो लाख तक पहुँच गयी। इस महती सेना को लेकर महमूद सुलतान ग़ज़नी से रवाना हुआ और सन् १००८ ईस्वी में .ख़ैबर के पास वह पहुँच गया।

अनंगपाल की सेना युद्ध के लिए पहले से ही तैयार थी। जिन दूसरे राजाओं ने सैनिक सहायता देने का वचन दिया था, उनमें से किसी की सेना अभी तक अनंगपाल के पास न पहुँची थी। फिर भी वह युद्ध के लिए तैयार था। तुर्की सेना अपने अस्त्रों से सुसज्जित होकर .ख़ैबर के रास्ते की तरफ बढ़ी और उसे आगे बढ़ते देखकर अनंगपाल के गक्कर सैनिकों ने बाणों की वर्षा शुरू कर दी। दोनों ओर से युद्ध का आरम्भ हो गया।

महमूद की सेना .ख़ैबर के मार्ग में आगे बढ़ना चाहती थी और अनंगपाल की सेना उसे पीछे हटाने की कोशिश कर रही थी। दो दिन तक भयंकर मार होती रही। गक्कर सैनिकों ने तीसरे दिन बाणों की वह भीषण वर्षा शुरू की जिससे तुर्की सेना बहुत दूर तक पीछे की ओर चली गयी। युद्ध के इस दृश्य के समाचार आस-पास फैलने लगे और जिन राजाओं ने अनंगपाल को सहायता देने का वचन दिया था, वे युद्ध की परिस्थितियों की जानकारी का इन्तजार कर रहे थे। दो दिनों के भयंकर युद्ध में अनंगपाल की सेना ने तुर्की सेना को मार कर पीछे हटा दिया। इस समाचार के फैलते ही कई एक राजाओं की सेनायें .ख़ैबर की ओर रवाना हुईं और कन्नौज, अजमेर, कालिंजर, उज्जयिनी तथा त्रिपुरी के राजाओं की सेनायें पंजाब होती हुई अनंगपाल के पास .ख़ैबर में पहुँच गयीं।

महमूद सुलतान को इस बात की खबर मिल गयी कि

अनंगपाल की सहायता के लिए भारत के कई राजाओं की सेनायें आकर एकत्रित हो गयी हैं। उसने समझ लिया कि इस युद्ध में साधारण तरीके से विजय होना मुश्किल है। उसने युद्ध की दूसरी चालों से काम लिया और एक लम्बी और गहरी खाई खुदवाने का काम शुरू कर दिया। एक खाई तैयार हो जाने के बाद उसने कुछ फासिले पर दूसरी खाई भी खुदवाई। यह दूसरी खाई और भी अधिक गहरी थी।

कई दिनों तक युद्ध बन्द रहा। तुर्की सेना फिर लड़ाई के लिए तैयार हुई और भारतीय सेना को जब मालूम हुआ तो उसने तैयार होकर युद्ध आरम्भ कर दिया। चालीस दिनों तक युद्ध की हालत इसी प्रकार चलती रही। इस समय अनंगपाल के साथ भी एक बड़ी सेना हो गयी थी और वह सेना ख़ैबर के रास्ते से आगे बढ़कर तुर्की सेना को पराजित करना चाहती थी। अनंगपाल ने अपनी सेना को आगे बढ़ने और जोरदार हमला करने की आज्ञा दी। सम्पूर्ण सेना का जोर एक साथ आगे बढ़ा। गक्कर सैनिकों ने अपनी भयंकर बाणों की मार से प्रलयकारी तूफान का दृश्य उपस्थित कर दिया। कुछ समय तक यही हालत बनी रही। भारतीय सेना के सैनिकों ने तीरों की मार बन्द करके अपने दोनों हाथों में तलवारें लीं और वे भीषण प्रहार करते हुए तुर्की सेना पर टूट पड़े। महमूद की सेना ने भी पूरा जोर लगाकर भारतीय सेना का मुकाबिला किया। दोनों ओर के सैनिक बहुत बड़ी संख्या में मारे गये।

कुछ समय तक युद्ध की भीषणता इसी प्रकार बनी रही। अकस्मात् तुर्की सेना आगे बढ़ती हुई दिखायी पड़ी। यह देखकर अनंगपाल ने भारतीय सेना को जोर के साथ ललकारा। उस आवाज को सुनते ही भारतीय सैनिक एक साथ आगे बढ़े

और भयानक रूप से उन्होंने तुर्की सेना का संहार किया। इस थोड़े समय में ही महमूद की सेना के बेशुमार आदमी युद्ध-क्षेत्र में मारे गये। तुर्की सेना कमजोर पड़ती हुई दिखायी देने लगी। भारतीय सेना का साहस बढ़ता जा रहा था। गक्कर सैनिक और सरदार अपनी तलवारों से इस्लामी सेना का संहार करते हुए आगे बढ़ने लगे। भारतीय सेना आज इस्लामी सेना का नाश कर देना चाहती थी। वह क्रोध में अन्धी हो चुकी थी। युद्ध का विस्तृत मैदान लाशों से पटा हुआ था। उस मैदान में बरसाती पानी की तरह खून बह रहा था। तुर्की सेना को पीछे हटने और भागने के सिवा कुछ न सूझ पड़ता था। भारतीय सेना उसको पीछे हटाती हुई आगे की ओर बढ़ रही थी। अचानक सामने खाई के पड़ते ही भारतीय सेना रुकी। लेकिन अनंगपाल की ललकार सुनते ही वह जोर के साथ आगे बढ़ी और उस खाई को पार कर आगे निकल गयी। तुर्की सेना पीछे की ओर भागने लगी। भारतीय सैनिक अपनी भीषण मार के साथ आगे बढ़ते चले जा रहे थे। तुर्की सेना को पीछे हटते देखकर वे सब के सब एक साथ इस्लामी सेना पर टूट पड़ने के लिए आगे बढ़े और कुछ फासिले के बाद दूसरी खाई में जाकर वे पहुँच गये। यह खाई अधिक गहरी और लम्बी थी। भारतीय सेना के खाई में पहुँचते ही महमूद सुलतान ने तुर्की सेना को एक साथ हमला करने के लिए ललकारा। तुर्की सेना भारतीय सेना पर टूट पड़ी और खाई के भीतर होने के कारण भारतीय सेना का उस समय भयंकर संहार हुआ।

इसी समय युद्ध की परिस्थिति बदली। तुर्की सेना ने खाई के भीतर भारतीय सेना को घेर लिया और ऊपर से उसने भयंकर मार शुरू कर दी। खाई के भीतर पहुँच जाने के कारण भारतीय

सेना का अब कोई उपाय काम न कर रहा था। थोड़े समय के भीतर ही वे बहुत बड़ी संख्या में मारे गये और जो बचे, वे घायल हुए। इसी अवसर पर तुर्की सेना के एक गिरोह ने आगे बढ़कर अनंगपाल के हाथी को घेर लिया। अपनी रक्षा करने के लिए अनंगपाल ने बहुत जोर के प्रहार किये। लेकिन उसका हाथी बुरी तरीके से जख्मी हुआ और वह भयानक आवाज के साथ युद्ध से भागा। तुर्की सेना के सैनिकों ने उसका पीछा किया। भारतीय सेना बहुत मारी जा चुकी थी। उसने अपना साहस तोड़ दिया। उसे जब मालूम हुआ कि अनंगपाल अपने हाथी पर पीछे की ओर भाग रहा है तो बची हुई भारतीय सेना भी युद्ध-क्षेत्र से भागने लगी। कुछ दूर तक तुर्की सेना ने उसका पीछा किया और उसके बाद वह अपने शिविर की ओर लौट आयी।

अनंगपाल के मुकाबिले में तुर्की सेना की विजय हुई। लेकिन उसके मुस्लिम सैनिक इतने अधिक मारे गये थे कि उसकी यह विजय, उसके लिए अनेक बार की पराजय से भी अधिक भयानक हो गयी।

महमूद सुलतान अपनी बची हुई और घायल सेना के साथ गज़नी लौट गया।

सातवाँ परिच्छेद

तौसी नदी का युद्ध

[१०१९ ईसवी]

भारत में सुलतान महमूद के हमलों का प्रभाव, पंजाब का स्वाभिमान, देश की बिखरी हुई शक्तियाँ, युद्ध का क्रम, जय और पराजय के दृश्य, शत्रु के साथ युद्ध।

पंजाब का सर्वनाश

ग़ज़नी के सुलतान ने लगातार आक्रमण करके जिस प्रकार भारत का विनाश आरम्भ किया था, उससे मुक्ति पाने के लिए पंजाब के राजा जयपाल के पुत्र अनंगपाल ने महमूद के साथ ख़ैबर के पास अपने जीवन का अन्तिम युद्ध किया और अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसे पराजित करने की चेष्टा की। परन्तु उसे स्वयं पराजित होना पड़ा। इसके बाद पंजाब का सर्वनाश हुआ। तुर्क सवारों और सैनिकों के द्वारा उसका एक-एक नगर मिटाया गया और पंजाब के साथ-साथ सदा के लिए भारत की बरबादी का मार्ग खुल गया।

ख़ैबर के युद्ध में अनंगपाल को पराजित करके सुलतान महमूद ने भारत के प्रसिद्ध मन्दिर और तीर्थ स्थानों का विध्वंस किया और सम्पत्ति से भरे हुए नगरों को लूटकर मिट्टी में मिला दिया। महमूद के तुर्क सैनिकों ने इस देश में जिस प्रकार मार-काट की, उससे रक्त की नदियाँ बहीं, सम्पत्ति का सर्वनाश हुआ और लोगों को ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया गया।

जिस दिन से सुलतान महमूद का इस देश में आक्रमण आरम्भ हुआ था, तब से लेकर, जब तक वह जीवित रहा, ऐसा कोई वर्ष न गया, जिसमें उसने भारत में आक्रमण न किया हो और इस देश के हरे-भरे नगरों को लूटकर अपरिमित सम्पत्ति वह अपने देश न ले गया हो। उसके अत्याचारों से भारत के श्रेष्ठ मन्दिरों का नाश हुआ, उनकी मूर्तियाँ तोड़-तोड़ कर फेंकी गयीं और सभी तरीकों से इस देश का सर्वनाश हुआ।

विदेशी आक्रमणकारियों के लिए भारत में पंजाब प्रमुख द्वार था। विदेशियों ने आकर इसी द्वार से भारत में प्रवेश किया और उनके आघातों से भारत उस समय तक सुरक्षित रहा, जब तक देश का यह दरवाज़ा—पंजाब विदेशी हमलों से क्षत-विक्षत नहीं हो गया। पंजाब के राजा जयपाल की पराजय हुई थी और उसके बेटे अनंगपाल को उसी सुलतान महमूद के सामने हार खानी पड़ी। विदेशी हमलों को रोकने की शक्ति लगातर क्षीण होती गयी और उन आततायी आक्रमणकारियों के लिए भारत में प्रवेश करने और लूटने का रास्ता साफ होता गया।

सुलतान महमूद की बढ़ती हुई सेना

सुलतान महमूद ने पहले पहल जब भारत में आक्रमण किया था, उस समय उसके साथ एक विशाल तुर्कों की सेना थी और इस्लामी हमले के नाम से उसने मुस्लिम देशों से इतनी बड़ी सेना बुलाकर एकत्रित की थी। इधर लगातार हमलों में महमूद को भारत में सफलता मिल रही थी और इन हमलों के समाचार समस्त पूर्वीय देशों में फैल रहे थे। प्रत्येक मुस्लिम देश, भारत में होने वाली इस लूट से प्रभावित हो रहा था और कई-कई हजार की संख्या में उन देशों के तुर्क सैनिक भारत में आकर महमूद की सेना

में शमिल होते जाते थे। इसका परिणाम यह होता था कि महमूद के पास किसी समय लड़ाकू सैनिकों की कमी न रहती थी। आक्रमणकारी सुलतान महमूद की अवस्था एक ओर यह थी और दूसरी ओर भारतीय राजाओं की यह दशा थी कि वे एक दूसरे के साथी न थे। पंजाब प्रान्त में ही अनेक राजा थे और समूचे पंजाब का शासन अनेक भागों में विभाजित था। लेकिन बाहरी आक्रमण होने पर वे आपस में संगठित न हो सके और एक दूसरे की वे सहयता न कर सके। इस ईर्षा और द्वेष का यह परिणाम हुआ कि विदेशियों ने काफी संख्या में संगठित होकर इस देश में आक्रमण किये और वे जितना भी लूट सके, लूटकर सम्पत्ति अपने देश ले गये।

तुर्की सेना के लगातार आक्रमण

पंजाब को तहस-नहस करने के बाद, सुलतान महमूद अपनी विशाल और शक्तिशाली सेना को लेकर आगे बढ़ा। छोटी-छोटी रियासतों के राजा और सरदार बिना किसी विरोध के सुलतान का स्वागत करते और बिना किसी संकोच के वे तुर्की अधीनता को स्वीकार कर लेते। इस प्रकार विजय की पताका फहराता और मार-काट के साथ लूट मार करता हुआ, सुलतान महमूद ने पूर्व की ओर रवाना होकर कन्नौज पर आक्रमण किया। कन्नौज तोमर राजाओं की राजधानी थी। सन् १०१८ ईसवी में वहाँ पर भयानक युद्ध हुआ। उस युद्ध में जीतकर सुलतान आगे की तरफ बढ़ा। एक-एक करके सुलतान ने भारत की अनेक नदियों को पार किया और सिन्ध, झेलम, चिनाब, सतलज नदियों के साथ-साथ उसने न जाने कितने जंगलों और पहाड़ी रास्तों को पार किया। इस लम्बी यात्रा में उसने अनेक युद्ध किये और रास्ते में कोई नगर

अथवा ग्राम न बचा, जिसे उसकी तुर्की सेना ने लूटकर विध्वंस न किया हो।

मथुरा में तुर्की सेना

सुलतान महमूद ने भारतीय राजाओं की राजधानियों और तीर्थ स्थानों में हमले करके उनको लूटा और मन्दिरों को गिराकर उन्हें मिट्टी में मिला दिया। उसका कहना था कि भारत की जितनी भी सम्पत्ति है, वह या तो इस देश के राजाओं के खजानों में है और उसके बाद इस देश के तीर्थ स्थानों में बने हुए मन्दिरों में है। उसने सुन रखा था कि भारत में हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान मथुरा है और वहाँ के मन्दिरों में अधिक-से-अधिक सम्पत्ति मिल सकती है। इसीलिए कन्नौज पर अधिकार करने के बाद उसने सीधा मथुरा का रास्ता लिया। रास्ते में मिलने वाले स्थानों का उसकी सेना के सैनिकों ने बड़ी निर्दयता के साथ विनाश किया। लोगों के घरों में घुसकर लूट-मार की और लोगों के विरोध न करने पर भी उनका कत्ल किया।

तुर्की सेना लम्बी यात्रा पार करने के बाद, सन् १०१८ ईसवी में दिसम्बर के शुरू में जमुना के निकट जाकर मथुरा के पास पहुँच गयी। नगर में प्रवेश करने के पहले महमूद ने बाहर से ही मथुरा का सन्दर्शन किया। उस समय उसके सामने वे सभी बातें थीं, जिनको उसने मथुरा के सम्बन्ध में पहले से सुन रखा था। उसने सुन रखा था कि मथुरा के मन्दिरों को वहाँ के मनुष्यों ने नहीं, बल्कि हिन्दुओं के देवताओं ने बनवाया है। उसने सुन रखा था कि भारत में जितने भी हिन्दुओं के तीर्थ स्थान हैं, उनमें मथुरा का महत्व अधिक है और उसने यह भी सुन रखा था कि मथुरा के मन्दिरों में जो दीर्घाकार और विशाल मूर्तियाँ हैं, वे सोने की बनी

हुई हैं और उनके ऊपरी हिस्सों में बहुमूल्य हीरा-जवाहिरात जड़े हुए हैं। इसलिए उन सैकड़ों और हजारों मूर्तियों में एक-एक मूर्ति की कीमत कई-कई लाख रुपये हैं।

सुलतान महमूद ने सम्पत्तिशाली मथुरा नगरी को लूटकर मेटियामेट किया और लूट का धन, सोना-चाँदी, हीरा, जवाहिरात—सब का सब उसने ग़जनी रवाना किया।

पंजाब की आग

पंजाब का सत्यानाश करके ग़जनी का सुलतान महमूद भारत के प्रत्येक नगर को उजाड़ने, लूटने और मिटाने के लिए एक विशाल और शक्तिशाली तुर्की सेना को लिए घूम रहा था। लेकिन उसके अत्याचारों और उत्पातों से पंजाब में जो आग पैदा हुई थी, वह अभी तक बुझ न सकी थी।

अनंगपाल जब .खैबर के युद्ध में तुर्कों के साथ लड़ा था और अन्त में पराजित हुआ था, उस समय उसके पुत्र त्रिलोचनपाल की अवस्था जीवन के सुकुमार दिनों को पूरा कर रही थी। उस छोटी आयु में भी देश की दुर्दशा की पीड़ा त्रिलोचनपाल के हृदय में थी। धीरे-धीरे बढ़कर उसने यौवनावस्था में प्रवेश किया। उन्हीं दिनों में वह अपने पिता की सम्पत्ति और सेना का अधिकारी बना।

इन दिनों में पंजाब की अवस्था बड़ी भयानक हो गयी थी। कारबार और व्यापार नष्ट हो गये थे। खेती की अवस्था भी बहुत बिगड़ गयी थी। बड़े-बड़े नगर उजाड़ हो गये थे। इस पर भी मुसलमानों के हमले बन्द न थे। हजारों की संख्या में मुसलमान टोलियाँ बनाकर और अपने हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर नगरों और ग्रामों में घूमते और लूट मार करते। प्रजा अत्यन्त भयभीत हो

चुकी थी। जो लोग भाग सकते थे, वे अपने बाल-बच्चों को लेकर जंगलों और पहाड़ों पर चले गये थे।

पंजाब की इस अवस्था को देखकर त्रिलोचनपाल बहुत दुखी था। पंजाब की इस पीड़ा को दूर करने के उपायों को वह रात-दिन सोचा करता और जब कभी अवसर पाता, वह अपनी छोटी-सी सेना को लेकर आततायी मुसलमानों पर आक्रमण करके अपने नेत्रों के आँसुओं को पोंछ लेता।

युद्ध के लिये त्रिलोचनपाल की तैयारियाँ

पंजाब और भारत के अन्य स्थानों की चिर संचित लक्ष्मी ग़ज़नी पहुँच गयी थी, जिसके कारण समस्त देश की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। इस मार-काट और लूट का सिलसिला अभी तक देश में बराबर जारी था। इसका एक ही उपाय था कि आक्रमणकारी तुर्कों के साथ युद्ध किये जाय और उनकी क्रूरता, निर्दयता तथा अमानुषिकता का पूरा बदला दिया जाय। लेकिन इसके लिए एक विशाल और शक्तिशाली सेना की जरूरत थी और इतनी बड़ी सेना का त्रिलोचनपाल के पास अभाव था। देश में कहीं कोई ऐसा शक्तिशाली नरेश दिखायी न पड़ता था, जिसके पास जाकर वह इस युद्ध की तैयारी करे। उसे सर्वत्र निराशा ही दिखायी पड़ती थी। त्रिलोचनपाल इसी दुश्चिन्ता में बराबर रहने लगा।

त्रिलोचनपाल ने अभी युवावस्था में प्रवेश किया था। उसका हृदय बलवान था। वह प्रत्येक अवस्था में सुलतान महमूद के साथ युद्ध करना चाहता था। लेकिन सुलतान ने अपने लगातार आक्रमणों से देश को इतना निर्बल और कमजोर बना दिया था कि अब उसकी विशाल सेना का मुकाबिला करने के लिए कोई

भारतीय राजा साहस न करता था। देश की इस निर्बल और निराशाजनक अवस्था में भी त्रिलोचनपाल सुलतान के साथ युद्ध करने का ही स्वप्न देखता था। देश के दूसरे प्रान्तों और राज्यों की अपेक्षा त्रिलोचनपाल पंजाब से अधिक आशायें रखता था। लेकिन जो पंजाब अत्याचारियों का बदला दे सकता था, वह पहले ही खतम कर दिया गया था। अनेक वर्षों से तुर्कों के द्वारा पीड़ित रहकर प्रजा का साहस मारा गया था। फिर भी यह निर्णय किया गया कि देश की इस दुरवस्था में जीवित रहने की अपेक्षा बलिदान हो जाना अधिक श्रेष्ठ है। मातृ-भूमि की इस असह्य पीड़ा को मिटाने के लिए जो अपने जीवन का उत्सर्ग कर सकता है, वह श्रेष्ठ और वीरात्मा है। इन दिनों में युद्ध से प्राण बचाकर जो देश में जीवित रहना चाहता है, वह कायर है और मातृभूमि की वेदना का कारण है।

त्रिलोचनपाल के अन्तःकरण में प्रायः प्रफुल्लता का उद्रेक होता। उसके अधिकार में एक छोटी-सी सेना थी, लेकिन अपने सैनिकों की वीरता और बहादुरी में उसे सन्देह न था। उसकी सेना में जयसिंह, श्रीवर्द्धन और विक्रमार्क नाम के तीन सरदार थे, वे तेजस्वी और शूर-वीर थे। त्रिलोचनपाल ने साहस और सावधानी के साथ अपने इन तीनों सरदारों के साथ बैठकर देश की समस्या पर परामर्श किया और अन्त में निर्णय किया कि सुलतान के अत्याचारी सैनिकों के साथ हमें युद्ध की शुरुआत करना चाहिए। उससे फिर एक बार देश के राजाओं में साहस पैदा होगा। उसके बाद एक बड़े युद्ध की रचना की जायगी।

इसी निर्णय के आधार पर त्रिलोचनपाल ने अपने सैनिकों को शिक्षा दी और उन तुर्की सैनिकों की टोलियों पर आक्रमण करने के तरीके सिखाये जो इधर-उधर नगरों और ग्रामों में

फिरा करती थीं और लूट मार के साथ सभी प्रकार लोगों का विनाश करती थीं। इस प्रकार सैनिकों को शिक्षित बनाकर त्रिलोचनपाल ने निश्चय किया कि अपने उपाय से हम तुर्की सैनिकों की टोलियों को निर्भय घूमने न देंगे।

छोटे-छोटे हमले

इन दिनों में पंजाब की अवस्था बहुत खराब हो गयी थी। सुलतान के सिपाही छोटे-छोटे गिरोहों में चारों तरफ घूमा करते। भारतीय शासक उनके द्वारा होने वाले अत्याचारों का कुछ प्रबन्ध न कर सकते थे। वे गिरोह बड़ी निर्दयता के साथ प्रजा को लूटते और उनका विनाश करते। यही कारण था कि पंजाब की प्रजा तुर्कों के अत्याचारों से बहुत भयभीत हो चुकी थी। तुर्की सिपाहियों के इन गिरोहों को तहस-नहस करने के लिए त्रिलोचनपाल ने अपनी एक नयी योजना से काम लिया। उसने अपनी सेना के कई एक छोटे-छोटे टुकड़े किये और उनको अलग-अलग काश्मीर के भयानक दक्षिणी पहाड़ी जंगलों में भेज दिया। वे उन जंगलों में इधर-उधर छिपकर रहते और निकटवर्ती स्थानों में जब तुर्की सिपाहियों के गिरोहों के आने और अत्याचार करने का समाचार सुनते तो वे उन जंगलों से निकल कर तुर्की सिपाहियों पर हमला करते और बड़ी तेजी के साथ उनको मार-काट कर वे फिर जंगलों को भाग जाते।

त्रिलोचनपाल के सैनिकों के इन हमलों से सुलतान के तुर्की गिरोह अनेक बार बुरी तरीके से काटे मारे गये और उन्होंने जो लूटकर अपने साथ सामग्री एकत्रित की थी, त्रिलोचनपाल के सिपाहियों ने उनसे छीन ली। इस प्रकार की घटनायें अनेक स्थानों पर लगातार हुईं। इनको सुनकर सुलतान महमूद, एक

बड़ी चिन्ता में पड़ गया। उसकी समझ में यह न आया कि इस प्रकार के हमले कौन करता है और किसकी यह योजना है।

सुलतान के सामने एक चिन्तनीय परिस्थिति पैदा हो गयी। उसके सिपाहियों के गिरोह इधर-उधर घूमकर और ग्रामों में जाकर रसद इकट्ठा करने का काम किया करते थे। उसमें इन हमलों के कारण बड़ी बाधा पड़ी। जहाँ कहीं तुर्क सैनिक रसद एकत्रित करने के लिए जाते तो वहीं पर उनके साथ अचानक जंगलों से छिपे-छिपे आकर त्रिलोचनपाल के सैनिक मार-काट करते और उनका सब सामान छीन कर ले जाते। नतीजा यह होता कि रसद के लिए गये हुए सुलतान के सिपाही लौटकर उसके पास न पहुँचते। इस दशा मे सुलतान की विशाल सेना के सामने खाने-पीने की एक भयानक समस्या पैदा हो गयी।

पंजाब में तुर्की सैनिकों के फुटकर गिरोहों पर होने वाले हमलों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ने लगी। सुलतान ने सिन्ध नदी के किनारे के गावों में अपने छोटे-छोटे दल नियुक्त कर दिये थे। उन दलों पर भी अचानक हमले होने लगे और हमला करने वाले मार-काट कर भाग जाते। किसी को भी उनके आने का पहले से कोई समाचार न मिलता। इस प्रकार हमले अकस्मात् होते और अधिकांश रात के अन्धकार में ही आकर मार-काट करते।

जिन दिनों में सुलतान की सेना कन्नौज में पड़ी थी और उसके सैनिक रसद के लिए चारों तरफ घूम रहे थे, वे कई बार सब के सब मारे गये और रसद का सामान सुलतान के पास न पहुँच सका। जिससे तुर्की सेना के सामने बड़ी कठिनाई पैदा हो गयी। त्रिलोचनपाल को इन हमलों में बड़ी सफलता मिली। तुर्क सैनिकों के द्वारा होने वाले अत्याचार बहुत कम हो गये

और प्रजा के संकटों में बड़ी कमी आ गयी। इन परिस्थितियों से प्रजा का विश्वास त्रिलोचनपाल पर बढ़ने लगा और उसकी सेना में भर्ती होने वालों की संख्या बढ़ गयी। त्रिलोचनपाल ने धन के अभाव को भी तुर्क सैनिकों को लूटकर पूरा किया। उसके पास पहले की अपेक्षा अब सैनिकों की संख्या अधिक हो गयी थी। इन्हीं दिनों में त्रिलोचनपाल को समाचार मिला कि देश की लूटी हुई सम्पत्ति एक तुर्क सेना के संरक्षण में गजनी जा रही है। उसने अपनी सेना की तैयारियाँ की और बड़ी तेजी के साथ जाकर उसने उस तुर्क सेना पर आक्रमण किया। सुलतान की वह सेना अधिक संख्या में मारी गयी और त्रिलोचनपाल ने उस जाते हुए खजाने को लुटवा लिया।

इन आक्रमणकारियों का मुकाबिला करने के लिए सुलतान ने अपनी एक सेना लाहौर में मुक़र्रर की। त्रिलोचनपाल ने उस पर खुल कर आक्रमण किया और उसके बहुत से सिपाहियों को कटवा डाला। तुर्क सेना को इस बात का पता अब चल गया कि इस प्रकार का आक्रमणकारी और कोई नहीं है, अनंगपाल का लड़का त्रिलोचनपाल है। इस लिए सुलतान ने अपनी सेना को आदेश दिया कि वह किसी प्रकार त्रिलोचनपाल को गिरफ्तार करे। इसके बाद भी त्रिलोचनपाल ने तुर्क सेना के साथ लाहौर में ही कई बार युद्ध किया और तुर्क सेना के सेनापति और सिपाहियों ने उसे कैद करने की कोशिश की। लेकिन त्रिलोचनपाल को वे पकड़ न पाये और वह तेजी के साथ निकल गया।

सुलतान की सेना को चुनौती

त्रिलोचनपाल को मालूम हो गया कि सुलतान महमूद अब मेरे पीछे पड़ेगा। तुर्की विशाल सेना के साथ मैदान में युद्ध करने के

लिए न तो उसके पास इतनी बड़ी सेना थी और न इतना अधिक धन ही था। यद्यपि इन दिनों में सुलतान और उसकी सेना के साथ उत्पात और मार-काट करके उसने पंजाब में अपना एक मजबूत विश्वास कायम कर लिया था और उसी विश्वास के कारण अधिक संख्या में लोग उसकी सेना में भर्ती हो गये थे। फिर भी उसकी सेना सीधे युद्ध के लिए काफी न थी। इसलिए त्रिलोचनपाल ने अपना स्थान छोड़ दिया और अपने महलों का मोह उसने मिटा दिया। अपनी सेना को लेकर वह पहाड़ों के घने जंगलों में चला गया और वहीं से उसने छिपकर सुलतान की सेना पर बार-बार आक्रमण करने का निश्चय किया।

सुलतान महमूद ने पंजाब को अपनी समझ में सभी प्रकार मिटा दिया था और वह समझता था कि अब इस प्रान्त का कोई राजा उसके साथ युद्ध करने का साहस न करेगा। पंजाब को मिटाकर सुलतान यहाँ से अब निश्चिन्त था। लेकिन उसकी निश्चिन्तता उसके सामने गलत साबित हुई। उसे मालूम हो गया कि जब तक पंजाब में त्रिलोचनपाल जीवित रहेगा, पंजाब की आग उस समय तक बुझ नहीं सकती। इसलिए उसने त्रिलोचन-पाल को गिरफ्तार करने के लिए लाहौर में अपनी एक मजबूत सेना का इन्तजाम कर दिया।

त्रिलोचनपाल ने घने जंगलों को ही अपना घर बनाया। उसके पास अब खाने-पीने के सामान का अभाव न रहा। लाहौर में पड़ी हुई तुर्की सेना के रसद के लिए जो तुर्क सैनिक इधर-उधर जाते और रसद का सामान एकत्रित करते; त्रिलोचनपाल के सैनिक अचानक जंगलों से निकलकर उन पर टूट पड़ते और उनको मार-काट कर उनका सामान लूट लेते। यह रसद त्रिलोचनपाल की

सेना के लिए काफी हो जाती और लाहौर में पड़ी हुई तुर्क सेना के सामने खाने-पीने की बड़ी कठिनाई पड़ जाती।

इस प्रकार तुर्की सेना के सामने खाने-पीने की समस्या बहुत कठिन हो गयी। इसके सिवा उसके सामने यह कठिनाई भी थी कि त्रिलोचनपाल का अब कहीं कोई स्थान न था जिससे कि तुर्क सेना वहाँ जाकर उसके साथ युद्ध करती। सुलतान की सेना के सामने इतनी ही कठिनाई न थी। लाहौर की अपनी छावनी में उसकी सेना सदा खतरे में रहती। कई बार त्रिलोचनपाल की सेना ने जंगलों से निकल कर रात के घने अन्धकार में तुर्की छावनी पर आक्रमण किया और सुलतान की सेना को एक भयानक क्षति उठानी पड़ी।

लाहौर में तुर्क सेना की पराजय

सम्मुख युद्ध की अपेक्षा, छिप-छिपकर होने वाले आक्रमण अधिक भयानक होते हैं। त्रिलोचनपाल के इन हमलों से सुलतान की सेना का लगातार विध्वंस हुआ। इसलिए उसकी जो सेना लाहौर में पड़ी थी, उसके तुर्क सेनापति ने त्रिलोचनपाल को युद्ध में गिरफ्तार करने की चेष्टा की। उसने विश्वास कर लिया कि एक छोटी-सी सेना को पराजित करके त्रिलोचनपाल को कैद कर लेना कठिन नहीं है। जिन दिनों में तुर्क सेनापति इसकी तैयारी में था, त्रिलोचनपाल को उसकी खबर मिली। उसने अपनी सम्पूर्ण सेना को एकत्रित करके लाहौर में तुर्क सेना के साथ जमकर युद्ध करने का निश्चय किया और अपनी सेना को लेकर वह जंगलों से निकला। बीच का रास्ता पार करके उसने लाहौर में तुर्क सेना पर जाकर आक्रमण किया। दोनों ओर से जमकर संग्राम हुआ। लेकिन अन्त में तुर्क सेना की पराजय

हुई और त्रिलोचनपाल ने लाहौर के किले पर अपना कब्जा कर लिया।

उन दिनों में सुलतान महमूद की सेना जमना नदी के किनारे पड़ी थी और वह कालीञ्जर के राज्य पर हमला करने की तैयारी में थी। सुलतान ने सुना कि लाहौर में त्रिलोचनपाल ने बड़े जोर का हमला तुर्क सेना पर किया है। उस हमले में तुर्क सेना के बहुत-से सैनिक मारे गये और त्रिलोचनपाल ने लाहौर के किले पर अपना कब्जा कर लिया है।

सुलतान महमूद ने कालीञ्जर पर आक्रमण करने का विचार स्थगित कर दिया और अपनी सम्पूर्ण सेना को लेकर वह लाहौर के लिए रवाना हो गया। सुलतान की सेना ने लाहौर पहुँच कर किले को घेर लिया। उसकी सेना के आ जाने से त्रिलोचनपाल की सेना के मुकाबिले में तुर्क सेना कई गुना अधिक हो गयी। परन्तु त्रिलोचनपाल ने इसकी परवाह न की। उसने किले से ही तुर्क सेना के साथ युद्ध करना आरम्भ कर दिया। दोनों ओर की भयानक मार-काट में दो दिन बीत गये और तीसरे दिन भी युद्ध बराबर जारी रहा।

त्रिलोचनपाल ने लाहौर के किले पर अधिकार तो कर लिया था लेकिन बाद में होने वाले इस युद्ध के लिए कुछ प्रबन्ध करने का उसे अवसर न मिला था। उसे यह पता न था कि सुलतान की सेना इतनी जल्दी में आकर लाहौर के किले पर आक्रमण करेगी। इस दशा में एक विशाल और शक्तिशाली सेना के आक्रमण करने पर छोटी-सी सेना कब तक ठहर सकती थी। यह तो त्रिलोचनपाल का साहस था कि उसने तीन दिनों तक भीषण मार-काट करके तुर्की सेना के छक्के छुटा दिये। अन्त में अपनी सेना के सैनिकों और सरदारों के साथ शत्रुओं पर प्रहार

करता हुआ वह किले से निकल गया और एक लम्बा रास्ता पार कर जंगलों में विलीन हो गया। बरसाती नदियों की भाँति उफनाती हुई सुलतान की विशाल सेना त्रिलोचनपाल को कैद न कर सकी।

काश्मीर में त्रिलोचनपाल

लाहौर के किले से निकल कर त्रिलोचनपाल ने कई दिनों तक जंगल में जाकर विश्राम किया और भविष्य के लिए एक कार्य-क्रम-पर वह विचार करता रहा। जंगलों में रहकर और समय असमय हमला करके शत्रुओं को देश से बाहर नहीं निकाला जा सकता, उसका एक ही उपाय है कि शत्रु-सेना के साथ युद्ध करके उसका सर्वनाश किया जाय। उस अवस्था में जय और पराजय—दोनों बातें सम्भव हो सकती हैं, त्रिलोचन-पाल के सम्मुख यह समस्या थी।

अपने सरदारों के साथ परामर्श करने के बाद त्रिलोचनपाल ने सेना को जंगलों में छोड़कर काश्मीर का रास्ता लिया और वह राजा संग्रामसिंह के यहाँ पहुँच गया। सुलतान महमूद की सेना के साथ युद्ध करके त्रिलोचनपाल को जो सफलता मिली थी, उसका सब से पहला लाभ उसे यह हुआ कि पंजाब में उसके प्रति लोगों की श्रद्धा पैदा हो गयी। काश्मीर में लोहारा वंश के राजा संग्रामसिंह का राज्य था और वह त्रिलोचनपाल के साहस और शौर्य से प्रभावित हो चुका था। इसीलिए जब त्रिलोचनपाल ने सुलतान महमूद के साथ युद्ध करने की अपनी योजना बतायी और उस युद्ध की सहायता के लिए उसने सैनिक सहायता माँगी तो राजा संग्रामसिंह इनकार न कर सका और सहर्ष पन्द्रह हजार शूर-वीर सैनिक देने का उसने वचन दिया।

सुलतान महमूद और त्रिलोचनपाल का युद्ध

महमूद ने लाहौर पहुँचकर त्रिलोचनपाल को युद्ध में पराजित किया और त्रिलोचनपाल किले से भागकर अपनी सेना के साथ फिर जंगलों में चला गया था। लेकिन सुलतान को इससे शान्ति न मिली। उसने इस बात का दृढ़ निश्चय किया कि जब तक वह त्रिलोचनपालको पूर्ण रूपसे मिटा न देगा, कोई दूसरा काम न करेगा।

अपने इस निर्णय के अनुसार, सुलतान महमूद त्रिलोचनपाल की खोज में निकला। उसके साथ चुने हुए सैनिकों और सवारों की एक लाख सेना थी। त्रिलोचनपाल काश्मीर से लौटकर जंगलों में अपने सरदारों के पास पहुँच गया था। उसे अभी दूसरे राजाओं के पास जाकर भी युद्ध के लिए सैनिकों की सहायता लेनी थी। केवल काश्मीर की इस छोटी-सी सेना की सहायता से सुलतान की शक्तिशाली और विशाल सेना का न तो सामना हो सकता था और न उनको पराजित किया जा सकता था। इसलिए पंजाब के दूसरे राजाओं से भी सहायता लेने का वह मार्ग सोच रहा था। सुलतान के साथ उसकी जो शत्रुता पैदा हो चुकी थी, उसके कारण कहीं किसी राज्य में आने-जाने का रास्ता त्रिलोचनपाल के लिए जरा भी सुरक्षित न था।

इसी मौके पर त्रिलोचनपाल को समाचार मिला कि सुलतान महमूद अपनी समस्त सेना के साथ रवाना हुआ है और वह काश्मीर की तरफ बढ़ रहा है। यह सुनकर त्रिलोचनपाल चिन्ता-कुल हो उठा। सुलतान के साथ युद्ध करने के लिए उसने जो योजना बनायी थी, वह अभी तक अधूरी थी। काश्मीर राज्य से मिलने वाली सैनिक सहायता उसके पास पहुँच चुकी थी। राजा संग्रामसिंह ने अपने मन्त्री तुङ्ग के अधिकार में पन्द्रह हजार वीर धनुर्धारी सैनिक देकर त्रिलोचनपाल के पास भेज दिये थे।

त्रिलोचनपाल के सामने अब भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। अगर उसने काश्मीर से सैनिक सहायता न ली होती तो वह सुलतान के साथ अभी युद्ध न करता और इस अन्तिम युद्ध को वह उस समय तक बचाता, जब तक कि वह अपनी सेना की मजबूती न कर लेता। लेकिन आज उसके सामने समस्या ही दूसरी है। सुलतान को कदाचित् यह मालूम हो गया है कि त्रिलोचनपाल को काश्मीर राज्य से सहायता मिलती है। इस दशा में जब सुलतान काश्मीर पर आक्रमण करने जा रहा है तो सुलतान के साथ प्रत्येक अवस्था में युद्ध करना, त्रिलोचनपाल के लिए अनिवार्य हो गया।

अपनी अधूरी तैयारी में त्रिलोचनपाल ने अपने सरदारों को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी और वह स्वयं तैयार होकर अपने सैनिकों और सरदारों के साथ, सुलतान की सेना से युद्ध करने के लिए सन् १०१९ ईसवी में रवाना हुआ। पहाड़ी जंगलों से उतर कर बाहर आते ही त्रिलोचनपाल को सुलतान की सेना का पता मिला। जिस रास्ते से होकर सुलतान की सेना काश्मीर की ओर जा रही थी, उसी ओर त्रिलोचनपाल की सेना ने भी आगे बढ़ कर युद्ध करने का निश्चय किया।

सुलतान की विशाल सेना बादलों की भाँति उमड़ती और गरजती हुई चली आ रही थी। अटक और झेलम के बीच पहाड़ी इलाके में बहने वाली तौसी नदी के किनारे पहुँचकर त्रिलोचनपाल ने अपनी सेना को कगारों पर खड़ा किया। ये कगारे पहाड़ियों के साथ लगे हुए थे और उनका रास्ता टेढ़े-मेढ़े मार्गों से होकर घने जंगलों की तरफ चला गया था।

त्रिलोचनपाल ने उन ऊँचे कगारों पर खड़े होकर सुलतान की सेना का मुकाबिला करने का निश्चय किया। तौसी नदी के दूसरी तरफ सुलतान की सेना आ रही थी। दोनों सेनाओं के बीच

में तौसी नदी पड़ती थी। ऊँचे कगारों पर खड़ी हुई त्रिलोचनपाल की सेना, सामने नदी की दूसरी तरफ आने वाली तुर्की सेना को ओर देख रही थी।

काश्मीरी सेना के साथ मतभेद

त्रिलोचनपाल ने काश्मीरी सेना के अध्यक्ष तुङ्ग से कहा कि हमारी सम्पूर्ण सेना इन्हीं कगारों पर खड़ी होकर शत्रुओं के साथ युद्ध करेगी। लेकिन तुङ्ग की समझ में यह बात न आयी। वह नहीं चाहता था कि उसके अधिकारों में कोई हस्तक्षेप करे। वह अपनी सेना का अध्यक्ष होकर आया था और अपनी समझ के अनुसार वह युद्ध करना चाहता था। त्रिलोचनपाल का कहना उसे आदेश के रूप में मालूम हुआ और वह आज्ञा पालन को अपने लिए अपमान पूर्ण समझता था। वास्तव में तुङ्ग अपने राज्य में मन्त्री था। उसने सेनापति की हैसियत में युद्ध करने का काम नहीं किया था। त्रिलोचनपाल का निर्णय उसने स्वीकार नहीं किया। इस अवस्था में उसका मतभेद त्रिलोचनपाल के सामने एक दूसरी समस्या थी। त्रिलोचनपाल और उसके सरदारों ने बहुत कोशिश की लेकिन कोई नतीजा न निकला।

काश्मीरी सेना की पराजय

त्रिलोचनपाल ने युद्ध के लिए जो रूप-रेखा तैयार की थी, उसके विरुद्ध तुङ्ग ने नदी पार कर सुलतान की सेना के साथ मैदान में युद्ध करने का निर्णय किया। उसने अपनी सेना के साथ नदी को पार किया और वह दूसरी तरफ एक लम्बे मैदान में पहुँच गया। सुलतान की सेना सामने आकर उस मैदान में रुकी और उसके तुर्क सैनिकों ने आगे बढ़कर काश्मीरी सेना पर हमला किया। तुङ्ग के सिपाहियों ने भी तुर्की सेना का जवाब

दिया। दोनों ओर से वाणों की वर्षा आरम्भ हो गयी। कुछ ही समय के युद्ध के बाद, सुलतान की सेना पीछे हट गयी और उसने युद्ध रोक दिया। काश्मीरी सेना भी पीछे की तरफ लौटी और दोनों ओर से युद्ध बन्द हो गया।

रात व्यतीत कर दोनों ओर की सेनायें फिर युद्ध के लिए तैयार हो गयीं और युद्ध-क्षेत्र की ओर बढ़ने लगीं। सुलतान की सेना तेजी के साथ आगे बढ़ी और एक साथ वह काश्मीरी सैनिकों पर टूट पड़ी। कुछ देर के घमासान युद्ध के पश्चात् तुङ्ग के सैनिक पीछे हटने लगे। सुलतान की उस विशाल सेना के सामने वे रुक न सके और इधर-उधर भागने लगे। तुङ्ग एक घोड़े पर बैठा हुआ युद्ध कर रहा था। अपनी सेना के भागते ही वह भी युद्ध के मैदान से भागा और नदी को पार कर काश्मीर की तरफ चला गया। काश्मीरी सेना के पराजित होते ही सुलतान ने त्रिलोचन-पाल की सेना पर हमला करने का आदेश अपने सैनिकों को दिया।

नदी के ऊँचे कगारों पर खड़ी हुई त्रिलोचनपाल की सेना युद्ध की प्रतीक्षा कर रही थी। सुलतान की आज्ञा पाकर तुर्क सेना ने नदी को पार किया और अपनी शक्ति लगाकर उसने त्रिलो-चनपाल के सैनिकों पर हमला किया। त्रिलोचनपाल की सेना युद्ध के लिए तैयार खड़ी थी। तुर्क सेना के आगे बढ़ते ही उसने ऊँचे कगारों से जो भीषण मार शुरू की तो सुलतान की सेना का सामने रुकना मुश्किल हो गया।

तुर्क सेना को आगे बढ़ने में कई प्रकार की कठिनाई थी। उसके सामने का मार्ग ऊँचा-नीचा और पहाड़ी था। सामने ऊँचे कगारों से त्रिलोचनपाल के सैनिक वाणों की भयानक मार कर रहे थे। इस दशा में सुलतान की सेना घबराकर कई बार पीछे की ओर हट गई और सुलतान के बहुत-से आदमी घायल हो कर जमीन पर गिर गये। युद्ध की यह परिस्थिति तुर्क

सेना के लिए बड़ी भयानक साबित हुई। त्रिलोचनपाल की सेना यदि इस समय ऊँचे कगारों पर न होती तो उस विशाल तुर्क सेना के सामने बहुत आसानी के साथ पराजित हो जाती। युद्ध की इस परिस्थिति को बदलने के लिए सुलतान के सामने कोई उपाय न था। त्रिलोचनपाल के वीर सैनिक लगातार अपनी जोरदार मारों से सुलतान की सेना को ढेर कर रहे थे।

सुलतान के सामने बड़ी कठिन समस्या थी। वह समझता था कि त्रिलोचनपाल के साथ एक छोटी-से सेना है, इसलिए उसके जीत लेने में कितनी देर लगेगी। सुलतान का यह अनुमान निराधार न था। लेकिन त्रिलोचनपाल ने अपनी सैनिक कमजोरी का उपाय पहले से ही सोच लिया था और यही कारण था कि नदी को पार कर वह मैदान में युद्ध के लिए न गया था। काश्मीरी सेना ने यदि त्रिलोचनपाल का कहना माना होता और दोनों सेनाओं ने अगर इन ऊँचे कगारों से बाणों की वर्षा की होती तो सुलतान की इस विशाल सेना को भागने का रास्ता न मिलता। जिस काश्मीर को सुरक्षित रखने के लिए त्रिलोचनपाल को असमय युद्ध करना पड़ा, उसी काश्मीर की सेना ने उसका साथ न दिया। अपने अभिमान और अज्ञान के कारण तुङ्ग स्वयं पराजित हुआ और त्रिलोचनपाल की पराजय का एक प्रमुख कारण बन गया। त्रिलोचनपाल की अवस्था अधिक अच्छी न थी, लेकिन युद्ध करने की क्षमता उसमें स्वाभाविक थी। वह अपनी छोटी-सी सेना के बल पर सुलतान की इस विशाल सेना का मुकाबिला करने के लिए मैदान में कभी भी न आता। लेकिन उसके सामने उस काश्मीर का प्रश्न था, जिसने शत्रुओं का मुकाबिला करने के लिए पन्द्रह हजार सैनिकों की सहायता दी थी। लेकिन उनके द्वारा कोई लाभ न हुआ और सुलतान की उस विशाल सेना के सामने त्रिलोचनपाल की छोटी-सी सेना रह गयी।

युद्ध-क्षेत्र में त्रिलोचनपाल की वीरता

ऊँचे स्थानों पर खड़े हुए त्रिलोचनपाल अपनी सेना को बार-बार ललकार रहा था और उसके शब्दों को सुनकर उसके वीर सरदार और सैनिक सुलतान की सेना पर भीषण मार कर रहे थे। तुर्क सेना के छक्के छूट गये। सुलतान के बार-बार ललकारने पर भी तुर्क सेना आगे की ओर बढ़ न पाती। इस परिस्थिति का कारण सुलतान स्वयं समझता था। जिस हालत में नीचे की ओर सुलतान की सेना युद्ध कर रही थी, उसमें उसके सैनिक बहुत बड़ी संख्या में मारे जा रहे थे। सुलतान इस बात को खूब समझ रहा था कि अगर युद्ध की हालत यही बनी रही तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आखीर में तुर्क सेना को हार कर और भयानक क्षति उठाकर युद्ध के मैदान से भागना पड़ेगा। सुलतान ने बड़ी दूरंदेशी से काम लिया। उसने एक साथ त्रिलोचनपाल की सेना पर टूट पड़ने की आज्ञा दी। वह समझता था कि इस तरीके से जो सैनिक मारे जायँगे, उनके सिवा बाकी लोग लड़ने के लिए बराबरी पर पहुँच जायँगे और इसके सिवा युद्ध की कामयाबी का और कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

सुलतान की ललकार सुनते ही सम्पूर्ण तुर्क सेना एक साथ आगे की ओर बढ़ी और सुलतान स्वयं अपने चुने हुए सैनिकों तथा सेनापतियों के साथ आगे की ओर बढ़ा। यह देखते ही त्रिलोचनपाल के सैनिकों और सरदारों ने प्राणों का मोह छोड़कर भीषण मार शुरू कर दी। लेकिन सुलतान अपने तुर्क सैनिकों के साथ आगे बढ़ता हुआ चला आ रहा था। यह देखकर त्रिलोचन-पाल अपने कुछ सवारों के साथ मार-काट करता हुआ आगे बढ़ा और सुलतान महमूद के पास पहुँच गया। उसने बड़े साहस से काम लिया और सुलतान को खतम कर देने की उसने पूरी

कोशिश की। सुलतान स्वयं त्रिलोचनपाल के निकट पहुँच कर भयभीत हो उठा। त्रिलोचनपाल सुलतान के साथ मार कर रहा था। सुलतान के इस संकट को देखकर एक बड़ी संख्या में तुर्क सैनिक आगे बढ़े और सुलतान के आगे बढ़कर त्रिलोचनपाल के साथ युद्ध करने लगे। इसी समय त्रिलोचनपाल को मालूम हुआ कि उसकी सेना के बहुत-से सैनिक मारे गये और सुलतान की सेना ऊपर आकर भयानक मार कर रही है। उसने पीछे घूमकर देखा कि अपनी सेना के जो सैनिक युद्ध कर रहे हैं, बहुत थोड़े से सैनिक उनमें बाकी रह गये हैं और बाकी सब के सब मारे गये हैं। त्रिलोचनपाल के सामने यह अवस्था बड़ी निराशाजनक थी। वह अब युद्ध में अकेला हो रहा था और सुलतान की सेना से बचने की आशा न देख पड़ती थी। फिर भी उसने एक बार साहस किया और बिजली की भाँति मार काट करता हुआ अपने घोड़े पर एक तरफ निकल गया। उसके बचे हुए सैनिक भी उसके साथ निकल कर भागे। सुलतान की सेना के बहुत-से सवारों ने उसका पीछा किया, लेकिन कोई उसके पीछे पहुँच न सका। सुलतान मह-मूद के साथ युद्ध करके त्रिलोचनपाल पराजित हुआ, लेकिन जिस बेबसी के साथ वह अपना जीवन व्यतीत कर रहा था, उसमें उसे शत्रु के साथ लड़ने में बहुत संतोष मिला। एक छोटी-सी सेना को लेकर उसने सुलतान के सामने जो भयानक परिस्थिति पैदा कर दी थी, उसे सुलतान महमूद ने स्वयं अनुभव किया था।

आठवाँ परिच्छेद

तरावड़ी का पहला युद्ध

[११९१ ईसवी]

अत्याचारों का फल, लूट का धन, जैसे को तैसा, मोहम्मद गोरी और भारत, मोहम्मद गोरी और पृथ्वीराज, मोहम्मद गोरी की पराजय।

सुलतान महमूद के बाद ग़ज़नी

ग़ज़नी के राज-सिंहासन पर बैठने के बाद सुलतान महमूद ने भारत पर हमले शुरू किये थे और वह जब तक जीवित रहा, लगातार इस देश को लूटता और विध्वंस करता रहा। ऐसा मालूम होता है कि भारत का सर्वनाश करने के लिए ही वह ग़ज़नी के तख़्त पर बैठा था। उसने सन् १००० ईसवी से भारत में अपने आक्रमण आरम्भ किये थे और १०२६ ईसवी तक उसने साँस नहीं ली। उसने मन्दिरों और तीर्थ स्थानों को लूटकर मिट्टी में मिला दिया। राजाओं के खजानों का धन छीनकर, उन पर अपना आधिपत्य कायम किया और हरे-भरे नगरों तथा ग्रामों को विध्वंस करके उन्हें उजाड़ दिया। यहाँ की सम्पत्ति—सोने, चाँदी और रत्नों से उसने ग़ज़नी का खजाना भर दिया और इस्लाम के अनुयायिओं को इस देश की लूट के धन से मालामाल कर दिया। अपनी क्रूरता और निर्दयता के कारण वह अन्धा हो गया था। मस्तक पर मँडराती हुई मृत्यु, अत्याचारों से अन्धे उसके नेत्रों को दिखायी न पड़ती थी। वह मृत्यु को भूल गया

था। सन् १०२६ ईसवी में अपने अन्तिम आक्रमण के बाद वह भारत से लौटकर जब ग़ज़नी पहुँचा तो वह फिर इस योग्य न रहा कि इस देश में आकर हमला कर सकता। ३० अप्रैल सन् १०३० ईसवी को इस संसार से बिदा होकर उसे चला जाना पड़ा। लूटी हुई सम्पत्ति—सोना, चाँदी, हीरा और जवाहिरात—सब का सब ग़ज़नी में ही रह गया। उसकी क्रूरता, निर्दयता और नृशंसता ही उसके सिर पर लदकर, उसके साथ जा सकी। इस प्रकार की लूट से जिस ग़ज़नी के खजानों को उसने भरा था और भारत की अपरिमित सम्पत्ति से जिसके निवासियों को निहाल किया था, उस ग़ज़नी को और उसके निवासियों को किन नारकीय दृश्यों का सामना करना पड़ा, उसके सम्बन्ध में यहाँ पर कुछ प्रकाश डालना जरूरी है।

सुलतान महमूद ने अपने शासन-काल में अनेक देशों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था और भारत तक अपना शासन कायम कर लिया था। लेकिन उसके मरते ही उसके विशाल राज्य का किला निर्बल पड़ने लगा। जिन स्तम्भों पर उसने अपना राज्य खड़ा किया था, वे स्तम्भ हिलने लगे और उनमें कितनी ही दरारें पैदा हो गयीं। सुलतान महमूद के मरने में कुछ देर लगी। लेकिन उसके विशाल और मजबूत राज्य के कम्पायमान होने में देर न लगी। ग़ज़नी का पतन बुरी तरह से आरम्भ हो गया।

अपने वंशजों और ग़ज़नी के निवासियों के लिए सुलतान महमूद ने जो लूट की अपार सम्पत्ति एकत्रित की थी, उसका सुख उसके वंशज भोग न सके और न ग़ज़नी के निवासी ही उसका सुख उठा सके। लूट के द्वारा एकत्रित की हुई सम्पत्ति, उन सब के लिए—जिनको सुलतान महमूद ने अधिकारी बनाया था, विष के समान साबित हुई। उस सम्पत्ति को उनमें से कोई

पचा न सका। सुलतान के वंशज कायर और अयोग्य हो गये और ग़ज़नी के निवासी—केवल उस लूट की सम्पत्ति के कारण भीषण विपदाओं में पड़ गये। भारत की लूट में वहाँ के जो तुर्क और मुसलमान, सुलतान के शत्रु बने थे, सुलतान के मरने के बाद, वे स्वयं एक दूसरे से लड़े और मर मिटे।

ग़ज़नी पर आक्रमण

ग़ज़नी के निकट फ़ीरोज़कोह में कुछ पहाड़ी सरदार रहते थे। वे ग़ोर के सरदारों के नाम से मशहूर थे। वे सब के सब लड़ाकू थे और लूट-मार ही उनका व्यवसाय था। उनका अपना एक इलाका था। सुलतान महमूद ने अपने शासन-काल में उस इलाके पर अधिकार कर लिया था और वे पहाड़ी सरदार सुलतान की सेना में रहकर लूट-मार का काम करते थे।

महमूद के मरने के बाद, उसके वंशज ग़ज़नी के तख्त पर बैठे। लेकिन वे कायर और अयोग्य थे। इसलिए सुलतान के कायम किये हुए राज्य की रक्षा न कर सके। ग़ोर के पहाड़ी सरदारों ने ग़ज़नी के विरुद्ध विद्रोह किया और वहाँ के शासन से मुक्त होकर उन्होंने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित किया। ग़ोर सरदार जो सुलतान के सहायक थे, स्वतन्त्र होते ही ग़ज़नी के शत्रु हो गये।

सुलतान महमूद के जीवन-काल में ही तुर्कों की कुछ जातियाँ आमू नदी को पार कर इस तरफ आ गयी थीं। उनका एक वंश सेल्जुक के नाम से मशहूर था। महमूद के समय में ईरान और पश्चिमी एशिया के राज्य ग़ज़नी में शामिल कर लिए गये थे। लेकिन महमूद के मरने के बाद सेल्जुक तुर्कों ने ईरान और पश्चिमी एशिया पर अपना शासन कायम कर लिया। इस प्रकार ग़ज़नी का राज्य लगातार क्षीण होता गया और महमूद के वंशजों का

शासन ग़ज़नी के सिवा अफ़ग़ानिस्तान, पंजाब और सिन्ध में बाकी रह गया।

महमूद के बाद, उसके वंशज बहरामशाह का ग़ज़नी में जब शासन चल रहा था, ग़ोर प्रदेश के पठान सरदार अलाउद्दीन ग़ोरी ने ग़ज़नी पर आक्रमण किया और बहरामशाह को पराजित करके ग़ज़नी से भगा दिया। सन् ११५१ ईसवी में बहरामशाह के भाग जाने पर, उसका बेटा खुसरो ग़ज़नी के तख्त पर बैठा और उसकी हुकूमत के सात वर्ष भी न बीतने पाये थे कि, ग़ज़नी में अलाउद्दीन ग़ोरी ने फिर हमला किया और उसे सात दिनों तक बराबर लूटकर उसने ग़ज़नी में आग लगा दी। वह आग इतने जोर के साथ कितने ही दिनों तक जली, जिससे ग़ज़नी का सर्वस्व मटियामेट हो गया। अलाउद्दीन ग़ोरी जब ग़ज़नी पर हमला करने की तैयारी कर रहा था, उस समय उन लोगों की एक बड़ी सेना जमा हो गयी, जो सुलतान महमूद के समय में ग़ज़नी के झण्डे के नीचे रहकर लूट-मार का काम करते थे और जो भारत में होने वाले हमलों में आ कर लूट का बहुत-सा धन अपने साथ ले गये थे और मालामाल हो गये थे। अलाउद्दीन ग़ोरी ने कई बार ग़ज़नी पर हमले किये और लूट-मार करने के बाद उसने ग़ज़नी पर अपना कब्जा कर लिया। बहरामशाह ग़ज़नी से भाग कर लाहौर चला गया।

ग़ज़नी का सर्वनाश

जिस ग़ज़नी की आठ लाख की आबादी ने भारत का विनाश किया था और जिसने इस देश की सम्पत्ति को लूटकर अपने घरों को सोने और चाँदी से भर दिया था, उस ग़ज़नी की आबादी को लूटने, मिटाने और बरबाद करने का काम कुछ ही वर्षों के बाद अलाउद्दीन ग़ोरी ने किया। जिस ग़ज़नी के लोगों ने भारत

को उजाड़ कर वीरान किया था, उनको उजाड़ने और वीरान करने का काम उन्हीं लोगों ने किया, जिनको लूटना, मारना और विनाश करना ग़ज़नी ने ही सिखाया था। अलाउद्दीन गोरी ने ग़ज़नी को लूटा, आग लगाकर भस्म किया और उसके रहने वाले स्त्री-पुरुषों को खेतों की तरह कटवा डाला। जो लोग इस सर्वनाश से बचे, उनको, उनकी स्त्रियों और उनके बच्चों को बाजारों में ले जाकर बेचा गया। ऊँची और शानदार इमारतें गिराकर जमीन में मिला दी गयीं और सारा ग़ज़नी शहर सात दिनों तक बराबर जलता रहा।

ग़ज़नी का बादशाह, सुलतान महमूद का वंशज, बहरामशाह ग़ज़नी से भागकर लाहौर चला गया था, वहाँ पहुँचने के बाद ही वह मर गया। ग़ज़नी के सैनिकों और सरदारों ने खुसरो मलिक के साथ भागकर और लाहौर में पहुँचकर अपनी जान बचायी। कुछ दिनों के बाद खुसरो मलिक ने लाहौर में रहकर अलाउद्दीन के विरुद्ध युद्ध करने की कोशिश की और ग़ज़नी पर फिर से अधिकार करना चाहा, लेकिन वह ऐसा कर न सका।

ग्यारहवीं शताब्दी का भारत

सुलतान महमूद ने पूरे छब्बीस वर्षों तक भारत में लूट-मार करने, तीर्थों-मन्दिरों को नष्ट करने और राजाओं को मिटाकर अपना आधिपत्य कायम करने का काम किया था। संकट की इन भीषण परिस्थितियों ने भारत को किस दशा में पहुँचा दिया था, उसे संक्षेप में यहाँ जान लेना आवश्यक है।

भारत के मन्दिरों और तीर्थों में उसके ब्राह्मणों का राज्य था, उन राज्यों के मिट जाने के बाद, ब्राह्मणों का पतन आरम्भ हुआ। वे लोग नित नये धार्मिक जाल बिछाकर प्रजा को बहकाने और

झूठे आडम्बरों में फँसाने की कोशिश करने लगे। शासन का अन्त हो जाने पर विदेशी शक और हूण जो भारत में रह गये, वे बौद्ध हो गये और उन्होंने अपने आपको देव पुत्र कहलाना आरम्भ किया। ब्राह्मणों के वैदिक कर्म नष्ट हो गये और वे अब धर्म की नयी-नयी पगडण्डियाँ निकालने लगे। देश की प्रजा के सामने मोक्ष का एक अनोखा जाल फैलने लगा और वह जाल धीरे-धीरे बुद्धि से परे होता गया। भारत में रहने वाली आर्यों की जातियाँ शूद्रों में गिनी जानी जाने लगी और वे धीरे-धीरे अछूत बन गयीं। इस प्रकार की कितनी ही बातों को लेकर सामाजिक जीवन में जो आँधी शुरू हुई, उसने समस्त देश को पतन के रास्ते में ढकेल दिया। जिन्दगी की सही और सच्ची बातों का ज्ञान नष्ट हुआ और ब्राह्मणों का फैलाया हुआ आडम्बर समाज में काम करने लगा। त्याग और तप छोड़ कर ब्राह्मणों ने राजाओं की खुशामद का पेशा अख्तयार कर लिया और उस खुसामद ने राजाओं में उन्माद पैदा कर दिया। धर्म के झूठे आडम्बरों की शिक्षाओं में राजा और नरेश शान्ति का पाठ पढ़ने लगे, शौर्य और प्रताप को मिट्टी में मिलाकर वे अपने दिन महलों में रहकर काटने लगे। ऐय्याशी की वृद्धि हुई। युद्ध प्रिय राजा और सरदार कायर हो गये। उनके जीवन का स्वाभिमान नष्ट हो गया। पश्चिम से आने वाली मुस्लिम जातियों के हमलों के प्रति उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं और आपस की फूट और ईर्षा के सागर में वे डूबने-उतराने लगे।

भारत में जब तक सुलतान महमूद के हमले होते रहे, देश के राजाओं और नरेशों ने अपनी-अपनी साँसे रोक ली और मुर्दा हो गये। उसके बाद उनके आपसी युद्ध शुरू हो गये। इन युद्धों का यह परिणाम हुआ कि देश में जो थोड़े से शक्तिशाली राज्य थे, वे आपस में लड़कर, छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गये। इन छोटे-छोटे

राज्यों में दिल्ली का राज्य बड़ा था और अजमेर का राज्य उसी में शामिल था।

देश के राजा और नरेश जितने ही निर्बल होते जाते थे, उतने ही वे आपस में एक, दूसरे के शत्रु होते जाते थे। उनके स्वभावों में एक आश्चर्य की बात यह थी कि वे विदेशी जातियों के हमलों में उनकी अधीनता स्वीकार करना चाहते थे, लेकिन वे आपस में एक दूसरे का साथ नहीं देना चाहते थे। देश की यह भीषण अवस्था लगातार विकराल होती गयी।

मोहम्मद ग़ोरी के भारत में हमले

ग़जनी का विध्वंस और विनाश करके अलाउद्दीन ग़ोरी संसार से विदा हुआ। उसके मर जाने के बाद उसका भाई गयासुद्दीन बादशाह हुआ। मइज़ुद्दीन उसका छोटा भाई था, जो आगे चलकर मोहम्मद ग़ोरी के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह सेनापति बनाया गया। मोहम्मद ग़ोरी लड़कपन से ही लड़ाकू और उद्दण्ड स्वभाव का था। उसे लड़ना बहुत प्रिय था। स्वभाव का कठोर और साहसी भी था। जिस समय वह सेनापति बनाया गया, उसकी सेना में पचास हजार तुर्क सैनिक थे। ग़जनी की सम्पत्ति लूटकर ग़ोरीवंश सम्पत्तिशाली हो गया था और ग़जनी का राज्य भी अब उसी के अधिकार में था।

सेनापति होने के बाद से ही मोहम्मद ग़ोरी ने भारत पर आक्रमण करने का इरादा किया। इसके लिए उसको एक बड़ी सेना की जरूरत थी और अभी तक उसके पास उतने अधिक सैनिक न थे। इस लिए उसने जिहाद का झण्डा खड़ा किया और समस्त मुस्लिम देशों से लड़ाकू मुसलमानों को बुलाने के लिए उसने इस्लाम के नाम पर आवाज उठायी।

सुलतान महमूद की सेना में जो लोग पहले शामिल रह चुके थे

और उनमें से जो अभी तक जीवित थे, वे और उनके वंशज ग़ज़नी में आकर एकत्रित हुए। उनके सिवा, अन्य मुस्लिम देशों से लड़ाकू मुसलमान आ-आकर ग़ज़नी में इकट्ठा होने लगे। आने वाले लोगो में इस्लामी जोश था और ग़ज़नी में आ जाने पर उनमें और भी मजहबी जोश पैदा किया गया।

गजनी में आकर जो लोग जमा हुए, उनमें से पचीस हजार चुने हुए सवारों की सेना लेकर मोहम्मद ग़ोरी भारत की ओर रवाना हुआ। वह सब से पहले ग़ज़नी से भागे हुए बहरामशाह के वंशजों पर आक्रमण करना चाहता था। इस लिए सिन्ध नदी को पारकर मोहम्मद ग़ोरी ने सन् ११७५ ईसवी में मुलतान पर हमला किया और उस पर अधिकार कर लेने के बाद, उसने वहाँ के किले पर भी अपना कब्जा कर लिया। यहाँ से वह फिर आगे नहीं बढ़ा और वहाँ का इन्तजाम करने के लिए सेनापति अली किर्मानी के अधिकार में एक सेना दे कर वह ग़ज़नी लौटकर चला गया।

गुजरात में आक्रमण

मुलतान से लौट कर मोहम्मद ग़ोरी ने लगभग दो वर्ष तक ग़ज़नी में विश्राम किया और भारत में हमला करने के लिए वह नये-नये तरीकों पर विचार करता रहा। डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तक सुलतान महमूद ने अपने लगातार आक्रमणों से भारत को सभी प्रकार विध्वंश और बरबाद किया था, उसकी निर्दयता और क्रूरता के आघात इस देश को कभी भूले न थे और उनके द्वारा होने वाले गहरे जख्म अभी तक ज्यों के त्यों थे, इसी दशा में मोहम्मद ग़ोरी ने अपने हमलों का सिलसिला शुरू कर दिया। इन हमलों में दोनों की योजना करीब-क़रीब एक-सी रही। आरम्भ से ही दोनों का रास्ता एक रहा। हमलों के पहले अपने साथ बड़ी

से-बड़ी सेना एकत्रित करने के लिए मोहम्मद गोरी ने भी वही रास्ता अख्तयार किया, जो रास्ता और तरीका सुलतान महमूद का रहा था। दोनों की सभी बातें करीब-करीब एक सी थीं। एक अन्तर यह था कि सुलतान महमूद भारत की समस्त सम्पत्ति लूटकर ग़जनी ले गया था। लेकिन मोहम्मद गोरी भारत के छोटे-बड़े राज्यों को जीतकर लूटमार के साथ-साथ अपना आधिपत्य कायम करना चाहता था। दोनों के उद्देश्यों में केवल इतना ही अन्तर था। बाकी सभी बातें दोनों की एक सी थीं।

अपनी सेना को लेकर सन् ११७८ ईसवी में मोहम्मद गोरी भारत पर आक्रमण करने के लिए फिर रवाना हुआ। उसने सिंध नदी को पार किया और अपनी सेना के साथ वह गुजरात की तरफ आगे बढ़ा। वहाँ के लोगों को मोहम्मद गोरी के होने वाले आक्रमण की जानकारी हो गयी। महमूद के हमलों के दृश्य लोग देख चुके थे, उस समय की घबराहट अब तक लोगों के सामने थी। हमले की इस नयी खबर से लोगों की स्मृतियाँ जागृत हो उठीं। सभी लोग यह सोचकर भयभीत हो उठे कि हम लोगों के मन्दिरों और तीर्थ स्थानों को फिर नष्ट किया जायगा, हम लूटे जायँगे और हमको तथा हमारे बाल-बच्चों को कत्ल किया जायगा। आँधी के समान यह भयंकर समाचार गुजरात और उसके आस-पास फैल गया। प्रत्येक अवस्था में मिटना और नाश होना था। इस लिए लोगों ने निर्णय किया कि शत्रु के साथ लड़कर ही क्यों न मर मिटा जाय।

इसी अधार पर मोहम्मद गोरी के आक्रमण का मुकाबिला करने की तैयारी शुरू हुई। गुजरात और मालवा के राजपूत सवार और सैनिक गुजरात की सीमा पर आकर एकत्रित होने लगे। गोरी की सेना के आने के समय तक भारतीय लड़ाकुओं की बड़ी सेना इकट्ठा हो गयी। सभी लोगों में उत्साह और साहस था। जीवन

के वीभत्स दृश्यों को आँखों से देखने की अपेक्षा वे लोग लड़कर प्राण देना अच्छा समझते थे।

गुजरात की सीमा के निकट गोरी की सेना के पहुँचते ही वीर राजपूतों ने एक साथ आक्रमण किया और बड़ी तेजी के साथ उन लोगों ने तुर्क सेना के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। युद्ध के समय उन लोगों ने प्राणों का मोह छोड़ दिया था और गोरी की सेना के साथ भयानक मार शुरू कर दी। मरुभूमि की असुविधाओं के अभ्यासी न होने के कारण युद्ध क्षेत्र में तुर्क सैनिक बड़ी कठिनाई का सामना कर रहे थे। गुजरात की सीमा पर होने वाले इस युद्ध की उन्हें पहले से आशंका न थी। इस आकस्मिक युद्ध में जो भीषण परिस्थिति उत्पन्न हो गयी, मोहम्मद गोरी ने उसका ख्याल तक न किया था। तुर्क सैनिक अधिक संख्या में मारे गये और जो रह गये, उन्होंने हिम्मतें तोड़ दी। उनकी यह कमज़ोरी राजपूत सैनिकों और सवारों से छिपी न रही। इस लिए उनका उत्साह दूना और चौगुना हो गया। अन्त में युद्ध के मैदान से गोरी की सेना भागने लगी। मोहम्मद गोरी स्वयं निराश होकर युद्ध से भागा और पाँच हजार सवारों के साथ किसी प्रकार बच कर वह गजनी पहुँचा।

लाहौर पर आक्रमण

मोहम्मद गोरी में एक बड़ा गुण यह था कि वह युद्ध में हारने के बाद भी अपनी आशाओं को तोड़ता न था। उसने एक वर्ष गजनी में विश्राम किया और युद्ध के कितने ही नये-नये रास्ते उसने सोच डाले। उसने जिन नये पहाड़ी मुस्लिम प्रदेशों को जीता था, उनमें बहुत सी सेना लेकर उसने फिर भारत में चढ़ाई करने की तैयारी की और एक बड़ी सेना लेकर वह फिर भारत की ओर रवाना हुआ। इस बार उसने सीधे लाहौर का रास्ता

पकड़ा। ग़ज़नी से भाग कर बहरामशाह का परिवार इसी लाहौर में आ कर रहा था। बहरामशाह मर चुका था और उसका पुत्र खुसरोमलिक अपने कुछ सवारों के साथ यहीं पर रहा करता था। उसका बचा हुआ परिवार भी उसके साथ ही था।

मोहम्मद ग़ोरी अपनी सेना के साथ लाहौर पहुँचा और वहाँ पर जाकर उसने लाहौर के किले पर घेरा डाल दिया। खुसरोमलिक ने घबरा कर मोहम्मद ग़ोरी के साथ सन्धि कर ली और ग़ोरी ने सन्धि के बाद अपनी सेना के साथ लाहौर में ही कुछ दिनों के लिए मुकाम किया। उसके बाद वह पेशावर लौट आया और कितने ही महीनों तक इधर-इधर रहकर वह फिर भारत की तरफ चला। सन् ११८१ ईसवी में उसने सिन्ध देश पर आक्रमण किया और देवल का प्रसिद्ध किला अपने अधिकार में कर लिया। मोहम्मद ग़ोरी की सेना ने सिन्ध देश पर खूब लूट-मार की। अन्त में आग लगाकर उसने सारा देश बरबाद कर दिया और अपने हज़ारों ऊँटों को लूट के माल से लाद कर वह ग़ज़नी चला गया।

लाहौर पर दूसरा आक्रमण

खुसरोमलिक शाह के साथ सन्धि करने के बाद भी लाहौर के सम्बन्ध में मोहम्मद ग़ोरी को शान्ति न मिली। मलिकशाह उस सन्धि के बाद अपनी जिन्दगी लाहौर में किसी प्रकार काटना चाहता था, लेकिन ग़ोरी को यह मंजूर न था। खुसरोमलिक शाह उस सुलतान महमूद का वंशज था, जिसने संसार में न जाने कितने राजाओं और सरदारों की जिन्दगी खतरे में डाली थी और उनको जिन्दा रहना दूभर कर दिया था। उसका परिणाम उसके एक-एक वंशज के सामने आया और जो हालतें महमूद ने दूसरों के सामने पैदा की थीं, वे सब की सब उसके वंशजों के सामने आयीं। महमूद के पापों और अपराधों का भयानक

प्रायश्चित्त उसके वंशजों को करना पड़ा। लाहौर में खुसरो-मलिक शाह के सामने जीवन की जो भीषणता थी, उसे वह और उसका परिवार ही जानता था।

खुसरोमलिक शाह के साथ होने वाली सन्धि को ठुकरा कर मोहम्मद ग़ोरी ने लाहौर पर सन् ११८४ ईसवी में फिर चढ़ाई की और छः महीने तक उसने मलिकशाह को लगातार बरबाद किया। लाहौर में ग़ोरी का यह आक्रमण उसके जीवन का एक मनोरंजन था। खुसरोमलिक इस योग्य न था जो मोहम्मद ग़ोरी के साथ लड़ सकता। वह एक बार सन्धि कर चुका था और फिर भी ग़ोरी की शर्तों पर सन्धि के लिए चिल्लाता रहा। लेकिन उसकी सुनता कौन था। मोहम्मद ग़ोरी को तो उसके साथ युद्ध का एक खेल-वाड़ करना था।

मोहम्मद ग़ोरी ने खुसरोमलिक शाह और उसके परिवार की छीछालेदर करके छः महीने के बाद स्यालकोट पर अपना अधिकार कर लिया। इस किले पर उसने अपनी एक सेना रखी और वहाँ का अधिकार अपने एक सेनापति हुसेन फारमूसा को सौंप कर वह गजनी लौट गया। इन दिनों में दिल्ली में वीर चौहान पृथ्वीराज का शासन था और हिन्दू राजाओं में वह इन दिनों शक्तिशाली माना जाता था। पृथ्वीराज के आतंक से कुछ भयभीत होकर वह न तो लाहौर से आगे बढ़ा और न लाहौर में ही अधिक ठहरा। वह सीधा गजनी चला गया।

ख़ुसरोमलिक शाह के साथ लाहौर में मोहमन्द ग़ोरी ने जो सन्धि की थी, उसके विरुद्ध उसने दूसरी बार लाहौर पर आक्र-मण किया और किसी समझौते के लिए तैयार न होकर स्याल-कोट के किले पर अधिकार करके अपना शासन आरम्भ कर दिया। ख़ुसरोमलिक के साथ उसका यह एक असह्य अन्याय था। लेकिन अपनी निर्बलता के कारण वह चुप था। फिर भी

स्यालकोट में पड़ी हुई मोहम्मद ग़ोरी की सेना के साथ उसका संघर्ष पैदा हुआ और .खुसरोमलिक शाह कैद कर लिया गया। इस घटना का समाचार पाकर मोहम्मद ग़ोरी अपनी सेना लेकर ग़ज़नी से रवाना हुआ और लाहौर पहुँच कर उसने अपना कब्जा कर लिया। स्यालकोट पहुँच कर उसने .खुसरोमलिक शाह और उसके परिवार को कैदी की दशा में फ़ीरोजकोह भेजवा दिया और लाहौर का शासन अपने सेनापति अली किर्मानी को सौंपकर वह फिर ग़जनी चला गया। फ़ीरजकोह में मलिकशाह अपने परिवार के साथ कैदी की हालत में कई वर्ष रखा गया और पाँचवें वर्ष सपरिवार उसे कत्ल कर डाला गया।

मोहम्मद ग़ोरी के आक्रमण की नयी योजना

भारत की सम्पत्ति से भरा हुआ गजनी का खजाना अपने अधिकार में कर लेने के बाद भी मोहम्मद ग़ोरी का पेट न भरा। गज़नी के आस-पास के राजाओं और सरदारों को लूटकर भी वह सम्पत्ति का प्यासा बना रहा। भारत की तरफ कदम बढ़ाकर और सिन्ध प्रदेश को लूटकर एवम् मिटाकर भी उसका हौसला पूरा न हुआ। उसने भारत की तरफ आगे अपने कदमों को बढ़ाया और लाहौर पर कब्जा कर लिया। लेकिन उसकी राज्य-पिपासा अतृप्त ही रही। इसलिए गज़नी में बैठकर भारत को लूटने और उसके राज्यों पर शासन करने का वह रास्ता खोजने लगा।

मोहम्मद ग़ोरी को लाहौर से आगे बढ़ने में दिल्ली के राजा पृथ्वीराज चौहान से भय था और ग़ोरी उसकी शक्ति से भी अपरिचित न था। इसलिए गज़नी में बैठकर एक बहुत बड़ी सेना जमा करके भारत की ओर आगे बढ़ने का उसने निश्चय किया। मोहम्मद ग़ोरी ने जिहाद का झण्डा खड़ा किया और समस्त मुस्लिम देशों में उसने मुल्ला और मौलवी भेजना शुरू कर दिया।

वे लोग मुस्लिम देशों में जाकर वहाँ के मुसलमानों को जिहाद की खबर देते और जो वीर और लड़ाकू मुसलमान हिन्दुस्तान को लूटकर अपने घरों में खजाना भरना चाहते, उन्हें फौरन गजनी में आकर शक्तिशाली इस्लामी सेना में भरती होने की सलाह देते। उन मौलवियों और मुल्ला लोगों ने मुस्लिम देशों में पहुँचकर लड़ने वालों को तैयार किया। वहाँ जाकर स्थान-स्थान पर हजारों मुसलमानों की भीड़ों में उन्होंने बताया कि हिन्दुस्तान में धन और दौलत के समुद्र भरे हैं। अल्लामियाँ ने तमाम मुसलमानों को यह एक नायाब मौका दिया है कि वे इस्लामी फौज में शामिल होने के लिए फौरन गजनी पहुँचे और दौलत से भरे हुए हिन्दुस्तान के कमजोर और निकम्मे राजाओं पर हमले करके उन्हें लूटें और वहाँ से जितनी दौलत वे ला सकें, अपने साथ लाकर अपने घरों को दौलत से भर दें।

इस तरह की जोशीली बातों को सुनकर मुस्लिम देशों से खूंख्वार मुसलमान आ-आकर गजनी में जिहाद के झण्डे के नीचे एकत्रित होने लगे। थोड़े दिनों में ही लड़ाकू मुसलमानों की एक बड़ी-से-बड़ी सेना गजनी में जमा हो गयी, उनमें से चुने हुए एक लाख सवारों की सेना लेकर सन् ११९१ ईसवी में मोहम्मद गोरी गजनी से भारत की ओर रवाना हुआ। अपनी इस विशाल सेना के साथ वह सब से पहले लाहौर में जाकर रुका और कई दिनों तक वहाँ विश्राम करने के बाद वह भटिण्डे की तरफ चला। वहाँ पहुँचकर उसने वहाँ के किले को घेर लिया। भटिण्डे के किले में चार हजार राजपूत सैनिक रहा करते थे और उनका सरदार चण्डपुण्डीर नामक एक शूर-वीर राजपूत था।

राजपूत सेना ने मोहम्मद गोरी की सेना के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। चण्डपुण्डीर साहसी आदमी था। उसने तीन महीने तक तुर्क सेना के साथ भयानक युद्ध किया और किले पर

अपना कब्जा कायम रखा। लेकिन इतने दिनों के युद्ध में उसके बहुत-से सैनिक मारे गये और उसके साथ सैनिकों की संख्या इतनी कम रह गयी, जिनके बल पर उस अपार मुस्लिम सेना के साथ युद्ध नहीं किया जा सकता था। फिर भी वह कई दिनों तक युद्ध करता रहा और जब उसके साथ केवल पाँच सौ सैनिक राजपूत रह गये तो वह मौका पाकर अपने सैनिकों के साथ निकल गया और दिल्ली की तरफ चला गया।

मोहम्मद गोरी के साथ पृथ्वीराज का युद्ध

भटिण्डे के किले पर मोहम्मद गोरी के आक्रमण का समाचार जब दिल्ली पहुँचा तो पृथ्वीराज ने युद्ध के लिए अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। दिल्ली में राजपूत सेना की तैयारी शुरू हो गयी और तीस हजार शूर-वीर सवारों की सेना को लेकर स्वयं पृथ्वीराज भटिण्डे की तरफ रवाना हुआ। चण्डपुण्डीर को रास्ते में आती हुई दिल्ली की सेना मिली और वह भी उसी में शामिल होकर भटिण्डे की तरफ लौट चला।

भटिण्डे में मोहम्मद गोरी को खबर मिली कि युद्ध के लिए दिल्ली से अपनी सेना के साथ पृथ्वीराज आ रहा है तो भटिण्डे में एक छोटी-सी सेना छोड़कर वह आगे की ओर बढ़ा। दोनों ओर की शक्तिशाली सेनायें थानेश्वर के पास पहुँच गयीं और सरस्वती नदी के किनारे तरावड़ी नामक ग्राम के पास एक बड़े मैदान में दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। मोहम्मद गोरी की आज्ञा पाते ही तुर्क सेना ने राजपूत सेना पर आक्रमण किया और दिल्ली के वीर राजपूतों ने उसका जवाब दिया। दोनों ओर से युद्ध की शुरूआत हो गयी।

मोहम्मद गोरी, पृथ्वीराज की शक्ति से अनभिज्ञ न था। उसने बड़ी सावधानी के साथ भारतीय सेना पर आक्रमण करने

की आज्ञा दी और राजपूतों की शक्तियों के समझने का प्रयास किया। उसके साथ अनेक मुस्लिम देशों के कट्टर लड़ाकू मुसलमान थे, जिनकी ताकतों पर गोरी बहुत गर्व करता था। युद्ध आरम्भ होने के साथ उसने अपने बहादुर सिपाहियों और सेनापतियों से कहा : "ऐ बहादुर मुसलमानों! हिन्दुस्तान का यह पहला मोर्चा है। इसकी फतहयाबी के बाद तुम्हारा रास्ता साफ हो जाता है। लड़ाई के मैदान में आये हुए दुश्मन के सिपाहियों को तुम्हारी बहादुरी का पता नहीं है। आज इस जंग से ही उनको और उनके दोस्तों को मालूम हो जायगा कि दुनिया के मुसलमान लड़ाई में कितने होशियार और बहादुर होते हैं।"

मोहम्मद गोरी की इस खूंख्वार मुस्लिम सेना के साथ युद्ध करने के लिए दिल्ली से जो राजपूत सेना आयी थी, उसमें सैनिकों की संख्या, मुस्लिम सेना के मुकाबिले में कम थी, लेकिन उसका एक-एक राजपूत शूर-वीर और साहसी था। पृथ्वीराज स्वयं अपनी सेना के साथ युद्ध-क्षेत्र में मौजूद था। उसका शक्तिशाली सेनापति चामुण्डराय एक प्रबल हाथी पर बैठा हुआ अपनी सेना के मध्य में दिखायी दे रहा था। गोविन्दराय गोहलौत, कन्ह परिहार, धीर पुण्डीर जैसे कितने ही पराक्रमी राजपूत सरदार तरावड़ी के युद्ध-क्षेत्र में बिजली के समान अपने घोड़ों को दौड़ा रहे थे। राजपूतों के साथ हाथियों की एक बड़ी सेना थी, जिसका युद्ध-सञ्चालन कन्ह चौहान कर रहा था।

तुर्क सेना के आक्रमण करते ही राजपूत सेना आगे बढ़ी और उसने मार शुरू कर दी। तुर्की सेना का नेतृत्व, सेनापति अली किर्मानी कर रहा था। दोनों ओर से भयानक युद्ध होने लगा। गोरी की तुर्क सेना ने जोर लगा कर कई बार आगे बढ़ने और राजपूतों को पीछे हटाने की कोशिश की। लेकिन वह आगे बढ़ न सकी। दोनों ओर से तलवारों की भयानक मार हो रही

थी और जख्मी होकर जो सिपाही जमीन पर गिरते थे, उनकी तरफ आँख उठाकर कोई देखने वाला न था। कुछ ही समय के बाद युद्ध-क्षेत्र की जमीन रक्त से नहा उठी और बरसाती पानी की तरह रक्त बहता हुआ दिखायी देने लगा। लगातार युद्ध भीषण होता जा रहा था।

सेनापति अली किर्मानी ने ललकार कर अपने सवारों को आगे बढ़ने और मैदान को फतह करने का हुक्म दिया। उसकी आवाज को सुनकर तुर्क सवार आगे बढ़े। लेकिन उसी समय राजपूत सेना ढकेल कर उन्हें बहुत दूर पीछे की तरफ ले गयी। इसी मौके पर मुस्लिम सेना के बहुत-से आदमी मारे गये और तुर्क सवारों के हाथ-पैर ढीले पड़ने लगे। यह देखकर अली किर्मानी अपनी सेना को लेकर मैदान से पीछे हट गया।

युद्ध कुछ समय के लिए रुक गया। मोहम्मद ग़ोरी तुर्क सेना की हार से बहुत क्रोधित हुआ। सेनापति अली किर्मानी ने बताया कि आज की इस लड़ाई में तुर्क सैनिक जो मारे गये हैं, उनकी संख्या दस हजार से कम नहीं है। अगर लड़ाई का यही तरीका चलता रहा तो हमें अपनी फ़तहयाबी मुश्किल मालूम होती है।

अली किर्मानी की बातों को मोहम्मद ग़ोरी ने सुना, उसे अली किर्मानी कुछ नाउम्मेद-सा मालूम हो रहा था। उसने क्रोध में आकर कहा—"मैं मुसलमानों के मुकाबिले में राजपूतों को बहादुर नहीं समझता। कल सुबह होते ही जो जंग शुरू होगी, उसमें वीर मुसलमान अपनी तलवारों की मार से एक भी राजपूत को बाकी न रखेंगे और जंग का फैसला कल ही हो जायगा। कल का दिन इस्लाम के झण्डे की फ़तहयाबी का दिन है!"

मोहम्मद ग़ोरी की हार

रात को तुर्क सेना ने विश्राम किया और दूसरे दिन प्रातः

काल तैयार हो कर वह तरावड़ी के मैदान में युद्ध के लिए पहुँच गयी। अपनी सेना को ले कर पृथ्वीराज आगे बढ़ा और मुस्लिम सेना के सामने पहुँच गया। मोहम्मद गोरी की सम्पूर्ण सेना आज युद्ध के मैदान में आ गयी थी और उस विशाल तुर्क सेना ने राजपूत सेना को सामने देखते ही प्रबल आक्रमण किया।

पृथ्वीराज की सेना युद्ध के लिए तैयार खड़ी थी। मुस्लिम सेना के आक्रमण करते ही अपनी सेना को पृथ्वीराज ने आज्ञा दी और मार शुरू हो गयी। तुर्क सवार आज काफी जोश में थे और युद्ध आरम्भ होते ही उन्होंने बहुत जोर की मार की। आज के युद्ध में तुर्क सेना की संख्या बहुत अधिक थी और वे अपनी पूरी ताकत लगाकर मार कर रहे थे। कई घन्टे के युद्ध में तुर्क सवार अनेक बार आगे बढ़े और राजपूत सेना को वे पीछे हटा ले गये।

प्रातःकाल से लेकर दोपहर तक मुस्लिम सेना का प्राबल्य रहा। दो बार ऐसा मालूम हुआ कि तुर्क सेना की फ़तहयाबी में देर नहीं है। लगातार भीषण मार करने के कारण मुस्लिम सेना थक गयी और जिस तेजी में वह मार कर रही थी, उसमें कमी आ गयी। दोपहर तक राजपूत सेना के अधिक आदमी मारे गये।

इसके बाद युद्ध की परिस्थिति बदलने लगी। तुर्क सवार मार करने में जितने ही थकते हुए मालूम होते थे, राजपूत सैनिक उतने ही प्रबल होते जाते थे। मुस्लिम सेना की कमजोरी देखकर राजपूत आगे बढ़ने लगे। यह देखकर मोहम्मद गोरी ने अपनी सेना को सम्हाला और जोशीले शब्दों के साथ उसने आगे बढ़ कर मार करने की आज्ञा दी। लेकिन अब उसकी ललकारों का मुस्लिम सेना पर कोई प्रभाव न पड़ा। राजपूत मार करते हुए बराबर आगे बढ़ रहे थे।

घायल आदमियों की लाशों से युद्ध-क्षेत्र की जमीन पटी पड़ी

थी और लाशों के ढेर होते जाते थे। उनके नीचे से रक्त के नाले बह रहे थे। तुर्क सेना को कमजोर पड़ते हुए देखकर मोहम्मद ग़ोरी अपनी सेना में आगे बढ़ा और अपने सवारों को राजपूतों पर जोरदार हमला करने के लिए ललकारा। उसी समय पृथ्वी-राज ने अपना हाथी आगे बढ़ाया और उसके आगे बढ़ते ही राजपूत सेना आँधी की तरह मुस्लिम सेना पर टूट पड़ी। भयानक तलवारों की मार से तुर्क सेना बहुत दूर पीछे हट गयी। राजपूत सेना ने मोहम्मद ग़ोरी को घेर कर मारने की कोशिश की, लेकिन उसके सेनापति अली किर्मानी ने देखा कि ग़ोरी को राज-पूत सेना ने घेर लिया है, वह तुरन्त अपने तुर्क सवारों को आगे बढ़ाकर मोहम्मद ग़ोरी के पास पहुँच गया।

राजपूत सैनिक और सरदार मोहम्मद ग़ोरी को खतम करने में लगे थे। ग़ोरी के साथ कुछ तुर्क सवार रह गये थे जो ग़ोरी की रक्षा कर रहे थे, फिर भी राजपूतों की तलवारों के बहुत-से आघात मोहम्मद ग़ोरी के शरीर पर हो गये, जिनसे वह कमजोर पड़ गया। अली किर्मानी के साथ तुर्क सवारों ने आकर अगर मोहम्मद ग़ोरी को घेर कर बचाया न होता तो मोहम्मद ग़ोरी के जख्मी होकर गिरने में देर न थी। सेनापति अली किर्मानी ने आते ही बड़ी तेजी के साथ मोहम्मद ग़ोरी की रक्षा की और उसको जमीन पर गिरने से बचा लिया। राजपूत सैनिक अब भी ग़ोरी को खतम करने की पूरी कोशिश कर रहे थे और उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति उसी ओर लगा दी थी।

इस समय का सम्पूर्ण युद्ध मोहम्मद ग़ोरी पर केन्द्रित हो रहा था। राजपूत सैनिक और सरदार मोहम्मद ग़ोरी को काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहते थे और सम्पूर्ण मुस्लिम सेना मोहम्मद ग़ोरी के प्राणों को बचाने के लिए भयानक मार-काट कर रही थी। इस समय युद्ध की परिस्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गयी

थी। दोनों ओर की सेनायें इतने जोर के साथ तलवारों की मार कर रही थी कि उस समय चलती हुई तलवारों की तेजी में किसी को कुछ सूझ न पड़ता था। राजपूत सेनापतियों और सरदारों ने अपनी शक्ति मोहम्मद गोरी को खतम करने मे लगा दी और समस्त मुस्लिम सेना किसी प्रकार गोरी को बचाने में लगी थी।

इसी समय पृथ्वीराज का हाथी तेजी के साथ गोरी की ओर बढ़ता हुआ दिखायी पड़ा। राजपूतों ने और भी जोर की मार शुरू कर दी। इसके बाद एक घण्टे तक जो भीषण मार हुई, उसमें मोहम्मद गोरी की हालत बहुत खराब हो गयी। उसको सम्हालना अब मुस्लिम सेना को मुश्किल मालूम होने लगा। इस भयानक अवस्था में सेनापति अली किर्मानी, किसी प्रकार युद्ध से मोहम्मद गोरी को अपने साथ ले कर भागा। पृथ्वीराज ने राजपूत सेना को पीछा करने की आज्ञा दी। इसी समय बची हुई सम्पूर्ण मुस्लिम सेना ने भी अपने साथ मोहम्मद गोरी को लिए हुए तेजी के साथ भागना शुरू कर दिया और रास्ता छोड़कर भागती हुई वह चालीस मील निकल गयी। तुर्क सेना के दूर निकल जाने के बाद, राजपूत सेना सीधे भटिण्डे की तरफ लौट आयी और किले में जाकर कब्जा कर लिया।

चालीस मील तक लगातार भागकर मुस्लिम सेना ने एक सुनसान जंगली मैदान में विश्राम किया और सवेरा होते ही वह फिर आगे की ओर बढ़ी। भारत की सीमा को पार कर वह आगे निकल गयी और लगातार चलकर मुस्लिम सेना फ़ीरोज-कोह पहुँच गयी। मोहम्मद गोरी भयानक रूप से जख्मी हो चुका था। छः महीने तक लगातार चिकित्सा होने पर गोरी की हालत सम्हल सकी।

नवाँ परिच्छेद

तरावड़ी का दूसरा युद्ध

[११९२ ईसवी]

पृथ्वीराज और जयचन्द, शत्रुता का कारण, अनहलवाड़ा-राज्य पर आक्रमण, संयुक्ता का स्वयम्बर, मोहम्मद गोरी का दूसरा आक्रमण, पृथ्वीराज की पराजय, कन्नौज की लूट, तुर्क सेना पर आक्रमण, मोहम्मद गोरी का कत्ल।

पृथ्वीराज के साथ ईर्षा

मोहम्मद गोरी के साथ तरावड़ी के मैदान में ही पृथ्वीराज का दूसरा युद्ध हुआ था। उसका वर्णन करने के पहले, पूर्व कालीन कुछ घटनाओं का यहाँ पर लिखना आवश्यक है।

पृथ्वीराज के पहले अनंगपाल दिल्ली का राजा था, उसके दो लड़कियाँ थीं। उसने अपनी बड़ी लड़की का ब्याह कन्नौज के राजा विजयपाल राठौर के साथ और अपनी छोटी लड़की का विवाह अजमेर के राजा सोमेश्वर चौहान के साथ किया था। कन्नौज में विजयपाल को जो लड़की ब्याही थी, उससे जयचन्द का जन्म हुआ था और जो लड़की सोमेश्वर को ब्याही गयी थी, उससे पृथ्वीराज का जन्म हुआ। इस प्रकार कन्नौज के जयचन्द और पृथ्वीराज मौसेरे भाई थे।

अनंगपाल के कोई पुत्र न था। इसलिए उसके राज्य के अधि-

कारी जयचन्द और पृथ्वीराज, दोनों होते थे। लेकिन अनंगपाल का स्नेह पृथ्वीराज के प्रति अधिक था। इसलिए अनंगपाल के मरने के बाद, दिल्ली के राज्य का अधिकारी पृथ्वीराज बनाया गया। राजा अनंगपाल ने अपने मरने के पहले ही राज्य का अधिकार पृथ्वीराज को सौंप दिया था और इस बात की व्यवस्था कर दी थी कि मेरे मरने के बाद, दिल्ली के सिंहासन पर पृथ्वीराज ही बैठेगा।

इस घटना से जयचन्द के हृदय में बड़ा असंतोष पैदा हुआ। राजा अनंगपाल की बड़ी पुत्री से जयचन्द का जन्म हुआ था, इसलिए नाना के राज्य का वास्तव में अधिकारी वही था। पृथ्वी-राज अवस्था में भी छोटा था और छोटी लड़की से उत्पन्न हुआ था, इसलिए नियमानुसार अनंगपाल के राज्य का वह अधिकारी न होता था। फिर भी पृथ्वीराज को ही दिल्ली का राज्य मिला। इसका कारण था। जयचन्द का स्वभाव और चरित्र उसकी छोटी अवस्था से ही अच्छा न था, इसएि उसके प्रति अनंगपाल का स्नेह न था।

जयचन्द जब छोटा था, उसी समय से वह जानता था कि आगे चलकर दिल्ली के राज्य का अधिकारी मैं बनूँगा, लेकिन जब ऐसा न हुआ और पृथ्वीराज उसका अधिकारी बना तो उसी दिन से उसके अन्तःकरण में पृथ्वीराज के प्रति एक गम्भीर ईर्षा पैदा हो गई।

जयचन्द की बढ़ती हुई शत्रुता

दिल्ली के राज-सिंहासन पर पृथ्वीराज के बैठते ही जयचन्द ने अपना विरोध आरम्भ किया। पैदा होने वाली ईर्षा को वह अपने हृदय में पचा न सका। पृथ्वीराज को नीचा दिखाने और किसी प्रकार उसका सत्यानाश करने के उपायों की खोज में वह

रहने लगा। मन्दोर के परिहार राज्य और अनहलवाड़ा पट्टन के राजा के साथ चौहानों की पुरानी शत्रुता चली आ रही थी। जयचन्द उन दोनों राज्यों के राजाओं से मिला और उसने उनके साथ पृथ्वीरज के विरुद्ध बहुत-सी बातें कीं। उन बातों में पृथ्वीराज का अपमान करने के लिए एक रस्ता निकाला गया।

मन्दोर के राजा ने पृथ्वीराज के साथ अपनी लड़की का ब्याह करना निश्चय किया। पृथ्वीराज ने स्वीकार कर लिया। लेकिन बाद में मन्दोर के राजा ने पृथ्वीराज के साथ अपनी पुत्री का ब्याह न किया। उसे ब्याह करना भी न था। वह तो पृथ्वीराज का एक अपमान करना चाहता था। इसका नतीजा यह हुआ कि दोनों के बीच में एक संघर्ष पैदा हुआ। पुरानी शत्रुता तो थी ही, वह और भी गहरी हो गयी।

पृथ्वीराज और समरसिंह

चित्तौर के राजा समरसिंह को पृथ्वीराज की बहन पृथा ब्याही थी। इस सम्बन्ध ने दोनों के बीच एक अटूट स्नेह पैदा कर दिया था। दोनों युवावस्था में थे। दोनों की विचारधारा एक थी और दोनों के जीवन में एक अद्भुत वीरता थी। चरित्र, शौर्य और स्वभाव ने दोनों को मिलाकर एक कर दिया था। आरम्भ से ही दोनों एक, दूसरे के सुख-दुख के साथी बने और जीवन के अन्तिम समय तक दोनों, एक दूसरे के साथ संकट के समय प्राण देने के लिए तैयार रहे।

पृथ्वीराज के साथ समरसिंह का सम्बन्ध होने के कारण मन्दोर का परिहार राज्य और अनहलवाड़ा पट्टन के राजा, समरसिंह के साथ शत्रुता रखते थे। यद्यपि समरसिंह के साथ उनकी शत्रुता का अलग से कोई कारण न था। अब जयचन्द भी समरसिंह के साथ शत्रुता का व्यवहार रखने लगा।

इन्हीं दिनों में एक घटना और हुई। नागोरकोट के किसी एक स्थान में जमीन में गड़े हुए सात करोड़ रुपये पृथ्वीराज को मिले। यह समाचार चारों तरफ फैल गया और उसे सुनकर पट्टन के राजा और जयचन्द को एक चोट लगी। वे दोनों समझते थे कि भारतीय अन्य राज्यों के मुकाबिले में दिल्ली का राज्य सभी प्रकार शक्तिशाली है। इस सात करोड़ रुपये की रकम से पृथ्वीराज की शक्ति और अधिक बढ़ जायगी। इस ईर्षा से जल कर दोनों पृथ्वीराज के विरुद्ध किसी षड्यन्त्र की खोज करने लगे।

जयचन्द स्वयं लड़ने की अपेक्षा दूसरे को लड़ा देने में अधिक पटु था। उसने पृथ्वीराज और अनहलवाड़ा पट्टन के राजा के बीच में ऐसे कितने ही कारण पैदा कर दिये; जिनसे उनके बीच शत्रुता की मात्रा बहुत बढ़ गयी। पृथ्वीराज ने पट्टन के राज्य पर आक्रमण करने का निश्चय किया और इसके परामर्श के लिए उसने चित्तौर के राजा समरसिंह को दिल्ली में बुलाया।

अनहलवाड़ा पट्टन पर आक्रमण

पृथ्वीराज ने कई दिनों तक समरसिंह के साथ परामर्श किया और राजा पट्टन से अपमानजनक व्यवहारों का बदला लेने के लिए उस पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

पट्टन के राजा के साथ भी समरसिंह का एक ऐसा सम्बन्ध था, जिसके कारण वह खुलकर उसके विरुद्ध में नहीं जाना चाहता था। पृथ्वीराज ने इस बात को स्वीकार कर लिया। समरसिंह को दिल्ली में छोड़कर पृथ्वीराज ने अपनी सेना के साथ पट्टन राज्य पर हमला किया। दोनों ओर से युद्ध हुआ और अन्त में पट्टन के राजा की पराजय हुई।

युद्ध में विजयी होकर पृथ्वीराज अपनी सेना के साथ दिल्ली लौट आया और शत्रु की पराजय पर खुशी मनायी गयी। समर-

सिंह पहले ही इस विजय के सम्बन्ध में जानता था। इसलिए जान बूझकर वह पृथ्वीराज के साथ इस युद्ध में नहीं गया था। नागोरकोट की जमीन मे जो सात करोड़ रुपये पृथ्वीराज को मिले थे, उनमें से आधे रुपये पृथ्वीराज ने समरसिंह को दे दिये। लेकिन समरसिंह ने उन रुपयों को स्वयं न लेकर अपनी सेना के सैनिकों में उसको बाँट दिया। इसके बाद भी समरसिंह दिल्ली में रहा और बाद में पृथ्वीराज से विदा हो कर वह अपनी सेना के साथ चित्तौर चला गया।

संयुक्ता का स्वयंवर

संयुक्ता कन्नौज के राजा जयचन्द की बेटी थी। उसकी अवस्था विवाह के योग्य हो गयी थी। इसलिए जयचन्द ने अपने मन्त्रियों, मित्रों और सम्बन्धियों से परामर्श लेकर संयुक्ता के विवाह का स्वयम्बर किया और समस्त भारतीय राजाओं को उसमें शामिल होने के लिए उसने निमन्त्रण भेजा। लेकिन पृथ्वीराज और समरसिंह को स्वयंवर में आने के लिए निमन्त्रण नहीं भेजा गया।

जयचन्द ने इतना ही नहीं किया, बल्कि स्वयंवर के दिन निकट आ जाने पर जयचन्द ने पृथ्वीराज और समरसिंह की मूर्तियाँ धातु की बनवाई और स्वयंवर मे जब सब राजा एकत्रित हुए तो धातु की बनी हुई पृथ्वीराज की मूर्ति द्वारपाल के स्थान पर रखी गयी। अपनी इस योजना का निश्चय जयचन्द ने पहले से ही कर लिया था और स्वयंवर से पहले ही इस किये जाने वाले दुर्व्यवहार का समाचार पृथ्वीराज को मिल गया था।

चित्तौर के राजा समरसिंह के साथ पृथ्वीराज का अटूट स्नेह था। उससे बिना पूछे हुए वह कोई काम न करता था। स्वयम्वर के इस होने वाले दृश्य पर भी पृथ्वीराज ने समरसिंह से परामर्श किया और अपनी सेना को लेकर छिपे हुए भेष में पृथ्वीराज

स्वयम्वर में जाकर सम्मिलित हुआ। वहाँ पर बैठे हुए राजा पृथ्वीराज को पहचान न सके। स्वयम्वर के समय संयुक्ता अपने हाथ में माला लेकर आयी और बैठे हुए राजाओं की पंक्ति में दो बार घूमकर उसने अपनी माला धातु की बनी हुई पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में डाल दी।

संयुक्ता के ऐसा करते ही राज-भवन में एक अद्भुत कोलाहल मच गया। उसी अवसर पर पृथ्वीराज अपने स्थान से उठकर तेजी के साथ आगे बढ़ा और संयुक्ता को अपने साथ लेकर इतनी शीघ्रता के साथ वह बाहर हुआ कि बैठे हुए राजा अपने कर्त्तव्यों का कुछ निर्णय न कर सके। राजा जयचन्द के देखते-देखते ही पृथ्वीराज संयुक्ता के साथ अपनी सेना में—जो बाहर, दूर खड़ी थी,—पहुँच गया और वहाँ से दिल्ली के लिए रवाना हो गया। पृथ्वीराज की गति को कोई रोक न सका।

स्वयम्वर के इस नाटक का प्रभाव, उसमें आने वाले राजाओं पर अच्छा नहीं पड़ा। भारतीय राजाओं में आपस की ईर्षा का रोग तो बहुत पुराना था। आपस की फूट के कारण ही समस्त भारतीय राजाओं का और इस देश का अनेक बार सर्वनाश हो चुका था। लेकिन राजाओं की पारस्परिक ईर्षा का अन्त न हुआ था। पृथ्वीराज के साथ भी देश के अनेक राजाओं की शत्रुता पहले से थी और स्वयम्वर के इस नाटक को देखकर और भी कितने ही राजा और नरेश उसके शत्रु बन बैठे।

पृथ्वीराज और राजकुमारी संयुक्ता

मनुष्य पर प्रकृति और परिस्थिति का प्रभाव पड़ता है। संयुक्ता के साथ विवाह करने के बाद के पृथ्वीराज में और पहले के पृथ्वीराज में अन्तर पड़ने लगा। यह अन्तर समय के साथ-साथ धीरे-धीरे विशाल और विस्तृत होने लगा। जो पृथ्वीराज

कल तक एक शूर-वीर और साहसी योद्धा था, वह आज रात दिन महलों में रहकर विलासिता का भोक्ता बन गया। संयुक्ता एक परम सुन्दरी युवती थी। उसके अपूर्व सौन्दर्य ने महाराज पृथ्वीराज को आकर्षित किया। फल-स्वरूप, पृथ्वीराज का प्रत्येक समय संयुक्ता के साथ महलों में रहकर आमोद-प्रमोद में बीतने लगा। विलासिता और वीरता—जीवन की दो चीजें हैं और दोनों ही एक दूसरे की विरोधिनी हैं। विलासिता वीरता का नाश करती है और वीरता, विलासिता से घृणा करती है। एक वीर पुरुप विलासी नहीं हो सकता और विलासिता में डूबा हुआ कोई आत्मा-वीरात्मा नहीं हो सकता।

एक ओर पृथ्वीराज के शत्रुओं की संख्या बढ़ रही थी और दूसरी ओर जीवन का अनुराग और विलास उसे अकर्मण्यता की ओर ले जा रहा था। संयुक्ता के स्वयम्वर में एक असह्य आघात से राजा जयचन्द का हृदय क्षत-विक्षत हो चुका था। वह किसी प्रकार पृथ्वीराज को इसका बदला देना चाहता था। उस बदले का वह निर्माण कर रहा था, लेकिन पृथ्वीराज उसे देख न सकता था। उसके नेत्रों का प्रकाश अन्तःपुर के भीतर ही केन्द्रित होकर रह गया था। पृथ्वीराज को राजा जयचन्द के द्वारा मिलने वाले बदले का कुछ पता न था।

ग़ज़नी में मोहम्मद ग़ोरी की तैयारियाँ

तरावड़ी के युद्ध-क्षेत्र में मोहम्मद गोरी, पृथ्वीराज के साथ युद्ध करके जिस प्रकार जख्मी हुआ था, उसमें उसके बचने की कम आशा रह गयी थी। फ़ीरोजकोह में छः महीने तक चारपाई पर पड़े रह कर और मरहम पट्टी करके, मोहम्मद गोरी किसी प्रकार सेहत हुआ और उसके बाद वह फ़ीरोजकोह से गज़नी चला गया। तरावड़ी के मैदान में अपने एक लाख बहादुर सवारों के

साथ, पृथ्वीराज के मुकाबिले में वह पराजित हो चुका था। उसकी भुजाओं की ताकत और दिलेर हिम्मत कमजोर पड़ चुकी थी, लेकिन उसके दिल के अरमान पहले से भी अधिक जोरदार हो चुके थे। वह किसी प्रकार पृथ्वीराज को तरावड़ी का बदला देना चाहता था और इसीलिए आज ग़ज़नी में खामोशी के साथ बैठकर वह कामयाबी के रास्ते की खोज कर रहा था।

फ़ीरोजकोह से ग़ज़नी आये हुए मोहम्मद ग़ोरी को अभी थोड़े ही दिन बीते थे और वह भारत में हमला करके पृथ्वीराज को पराजित करने का तरीका खोज रहा था। इसी मौके पर कन्नौज के राजा जयचन्द का मजबूत मशविरा पाकर और उसको विश्वास के योग्य समझकर उसने भारत में हमला करने की तैयारी शुरू कर दी। मोहम्मद ग़ोरी ने अपने सेनापतियों, मन्त्रियों और सरदारों को बुलाकर परामर्श किया और भारत में पृथ्वीराज के विरुद्ध एक भयानक हमला करने के लिए उसने जोरदार तैयारी करने का हुक्म दिया।

मोहम्मद ग़ोरी की रवानगी

पहले की अपेक्षा, इस बार फौजी बेड़ा और भी बड़ा और जोरदार तैयार करने के लिए मोहम्मद ग़ोरी ने फिर जिहाद का झण्डा खड़ा किया। इस्लामी सेना में पहले भरती होकर जो लोग गये थे, उनके सिवा और भी बड़ी संख्या में लोगों को बुलाने की कोशिश शुरू हो गयी। मौलवी और मुल्ला चारों तरफ़ मुस्लिम देशों में दौड़कर गये और जिहाद का नारा ऊँचा किया। तुर्कों, मुगलों, अरबों, अफ़गानों और गाजियों के भयंकर दल मुस्लिम देशों से निकलकर ग़ज़नी के लिए रवाना हुए और थोड़े ही दिनों के भीतर ग़ज़नी में मुसलमानों का एक निहायत जोरदार आलम इकट्ठा हो गया। इन आये हुए आदमियों में

लड़ाकू लोगों का चुनाव किया गया और चुने हुए सवारों में एक लाख, बीस हजार आदमियों को लेकर एक बड़ी-से-बड़ी सेना तैयार की गयी। इस विशाल और शक्तिशाली सेना को लेकर सन् ११९२ ईसवी के अन्तिम दिनों में मोहम्मद ग़ोरी ग़ज़नी से रवाना हुआ। उसने बड़ी दृढ़ता के साथ सिन्ध नदी को पार किया और पहाड़ों के नीचे-नीचे चलकर सतलज नदी के किनारे पहुँच गया। अपने सैनिक और सवारों को विश्राम देने के उद्देश्य से मोहम्मद ग़ोरी ने उस लम्बी यात्रा में आवश्यकता के हिसाब से मुकाम किया और फिर रवाना होकर उसने सीधा दिल्ली का रास्ता पकड़ लिया।

दिल्ली में युद्ध की तैयारियाँ

अचानक पृथ्वीराज को समाचार मिला कि मोहम्मद ग़ोरी की एक बहुत बड़ी सेना हमला करने के लिए आ रही है। यह सुनते ही पृथ्वीराज अकस्मात् चौंक पड़ा। उसने तुरन्त अपना प्रतिनिधि भेजकर चित्तौर के महाराज समरसिंह को खबर दी और वह स्वयं दिल्ली में युद्ध की तैयारियाँ करने लगा। उसके हृदय में इस बार के युद्ध के लिए पहले का-सा उत्साह न था। इन दिनों में उसने मोहम्मद ग़ोरी के आक्रमण की आशंका भी न की थी। संयुक्ता के स्वयम्वर के बाद पृथ्वीराज ने जिस प्रकार का अपना जीवन बनाया था, वह समझता था कि उसकी बाकी पूरी जिन्दगी इसी प्रकार आमोद-प्रमोद और अनुराग में बीतेगी।

दिल्ली में युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं। लेकिन पृथ्वीराज के मन में अनेक प्रकार की आशंकायें उत्पन्न हो रही थीं। उसे न जाने क्यों, इस बात का विश्वास होने लगा कि इस बार मोहम्मद ग़ोरी के भारत आने में कन्नौज के राजा जयचन्द का जाल है और यह भी सम्भव है कि इस जाल में दूसरे भारतीय राजा भी

कुछ शामिल हों। इस प्रकार की कितनी ही बातें सोचकर पृथ्वी-राज के हृदय में एक अशान्ति उत्पन्न होने लगी।

अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए तैयार होकर चित्तौर का राजा समरसिंह जब दिल्ली में पहुँचा, उस समय तक युद्ध के लिए पृथ्वीराज की सेना तैयार हो चुकी थी और स्वयं पृथ्वीराज समरसिंह का रास्ता देख रहा था। इसी मौके पर फिर समाचार मिला कि मोहम्मद गोरी की सेना भटिण्डे में आ चुकी है और वहाँ से थानेश्वर की तरफ रवाना हो गयी है। समरसिंह के साथ परामर्श हो चुकने के बाद, दिल्ली की सेना में युद्ध के बाजे बजे और वीर क्षत्रिय युद्ध के लिए सुसज्जित होने लगे।

संयुक्ता के साथ पृथ्वीराज की विदाई

युद्ध के लिए तैयार होकर पृथ्वीराज संयुक्ता के पास महलों में पहुँचा। संयुक्ता ने सम्मान पूर्वक स्वागत करते हुए पृथ्वीराज की ओर देखा। उसकी कमर में लटकती हुई तलवार को स्पर्श करके उसने कहा: "आज आपकी यह प्रसिद्ध तलवार शत्रुओं के प्राणों का नाश करेगी।" पृथ्वीराज संयुक्ता की ओर देख रहा था, उसके सुन्दर मुख-मण्डल पर एक स्वाभाविक और सरल मुस्कान थी। लेकिन संयुक्ता ने पृथ्वीराज के तेजस्वी मुख-मण्डल पर प्रसन्नता की रेखायें नहीं देखीं। उसने साहस के साथ गम्भीर होकर कहा:

"आप शूर-वीर क्षत्रिय हैं। आपके शौर्य का प्रताप दूर देशों तक फैला हुआ है। शूर-वीर क्षत्रिय के सुख और मनोरंजन का स्थान युद्ध-क्षेत्र होता है। संग्राम में विजयी होने पर क्षत्रिय को यश मिलता है और पराजय होने पर मोक्ष प्राप्त होता है।

पृथ्वीराज ने अनुरागपूर्ण नेत्रों से संयुक्ता की ओर देखते हुए उसके अटूट प्रोत्साहन से भरे हुए शब्दों को सुना और उसने उत्तर देते हुए कहा: "मैं युद्ध में जाने के लिए, संयुक्ता! तुमसे

विदा लेने आया था और तुम्हारे मुख से मैं इन्हीं शब्दों को सुनना चाहता था। तुम्हारे इन वाक्यों से मेरे शरीर की प्रत्येक रग रग में अपूर्व शक्ति का सञ्चार हो रहा है।"

संयुक्ता ने साहस और उल्लास के साथ पृथ्वीराज को युद्ध के लिए बिदा किया। अन्तःपुर से लौटकर पृथ्वीराज बाहर आया, चित्तौर की सेना के तैयार हो जाने पर समरसिंह उसके बीच में पहुँच गया था और पृथ्वीराज का रास्ता देख रहा था। दिल्ली की सेना भी तैयार हो चुकी थी। पृथ्वीराज के हाथी पर बैठते ही युद्ध के बाजे बजे और दोनों सेनायें वहाँ से रवाना हुईं। तरावड़ी के समीप पहुँच कर राजपूत सेनाओं ने मुकाम किया और रात को विश्राम किया।

ठीक आधी रात के समय मोहम्मद गोरी जाग उठा और बड़ी तेजी के साथ वह तैयार होने लगा। उसी समय उसकी समस्त सेना बड़ी तत्परता के साथ अपनी तैयारी में लग गयी और मुस्लिम सेनापति ने मोहम्मद गोरी को सेना के तैयार होने की सूचना दी।

तुर्क सेना का आक्रमण

आधी रात को भयानक अन्धकार में तुर्क सेना अपने खेमों से रवाना हुई और तेजी के साथ आगे बढ़कर उस मैदान में पहुँची जहाँ राजपूत सेना गहरी नींद में सो रही थी। मुस्लिम सेना एक साथ सोते हुए राजपूत सैनिकों पर टूट पड़ी और बात की बात में बहुत से राजपूत सैनिक काटकर मार डाले गये। उस भयानक संकट के समय राजपूत जाग कर और अपनी तलवारों को लेकर तुर्क सेना के साथ युद्ध करने लगे। बहुत बड़ी संख्या में राजपूत सैनिक पहले ही मारे जा चुके थे और जिन राजपूतों ने जाग कर मार-काट शुरू कर दी, उनको भी लड़ने के

लिए तैयार होने का मौका न मिला। इसी दशा में मार-काट करते हुए बाकी रात दोनों ओर के सैनिकों ने बिता दी।

सवेरा हो जाने पर भी युद्ध बराबर जारी रहा। मोहम्मद गोरी के साथ इस बार सेना पहले से भी बहुत अधिक थी और उसके मुकाबिले के लिए जो राजपूत सेना आयी थी, वह बहुत थोड़ी थी, फिर भी धोखा देकर गोरी की सेना ने रात में आक्रमण करके राजपूत सैनिकों का सर्वनाश किया। निद्रा से जाग कर बचे हुए राजपूत, बिना किसी तैयारी के यवनों के साथ बराबर युद्ध करते रहे। इसका नतीजा यह हुआ कि जो राजपूत बाकी रह गये थे, वे भी बड़ी तेजी के साथ मारे गये।

इस संकट के समय क्या हो सकता है, इस पर पृथ्वीराज को कुछ सोचने और निर्णय करने का मौका न मिला। युद्ध की मार-काट इतनी तेजी के साथ हो रही थी कि उसमें कुछ सोचने अथवा किसी के साथ परामर्श करने का कोई मौका ही न था। युद्ध करते हुए अपने हाथी पर से पृथ्वीराज ने एक बार समरसिंह को देखा और कुछ दूरी पर कई एक राजपूत सरदार और सेनापति भी दिखायी पड़े।

दूसरे दिन दोपहर बीत गयी। युद्ध बन्द होने की हालत में न था। अब राजपूत सैनिकों की संख्या बहुत कम हो गयी थी और यही देखकर मोहम्मद गोरी ने युद्ध को बराबर जारी रखा था। वह जानता था कि युद्ध बन्द करने से फिर राजपूतों को सम्हलने और तैयार होने का मौका मिल जायगा और उस दशा में उनको जीत सकना बहुत मुश्किल हो जायगा।

पृथ्वीराज के सामने अब बड़ी कठिन समस्या थी। वह किसी भी अवस्था में युद्ध-क्षेत्र से भागना नहीं चाहता था। युद्ध के लिए रवाना होने के समय जब वह संयुक्ता के पास बिदा लेने गया था, उस समय संयुक्ता के मुँह से निकले हुए शब्द,

पृथ्वीराज के कानों में अब भी गूँज रहे थे। उसके सामने दो रास्ते थे। युद्ध में शत्रु को मार कर या तो वह विजयी हो सकता था अथवा अपने प्राणों की आहुति देकर वह स्वर्गलोक का अधिकारी बन सकता था। वह जानता था कि युद्ध से भागने वाले क्षत्रिय को कहीं ठिकाना नहीं मिलता। वह न तो इस लोक में कहीं सम्मान पाता है और न उसे मोक्ष ही प्राप्त होता है।

युद्ध की परिस्थिति लगातार भयानक होती गयी। पृथ्वीराज ने कुछ दूरी पर तुर्क सेना के बीच में युद्ध करते हुए एक तेज घोड़े पर मोहम्मद ग़ोरी को देखा, आवेश में आकर पृथ्वीराज ने अपना हाथी बढ़ाया और तेजी के साथ, उसने अपनी तलवार का वार मोहम्मद ग़ोरी पर किया। ग़ोरी ने अपने घोड़े को पीछे की तरफ दूर तक हटाया और पृथ्वीराज की तलवार से वह साफ-साफ बच गया। इसके बाद मोहम्मद ग़ोरी फिर आगे बढ़ कर पृथ्वीराज के निकट पहुँच गया और दोनों शूरमा एक दूसरे पर अपनी-अपनी तलवारों की मार करने लगे।

राजपूत सेना अब बहुत थोड़ी रह गयी थी और जहाँ पर पृथ्वीराज मोहम्मद ग़ोरी के साथ लड़ रहा था, वहाँ से दूर थी। इस मौके को देखकर तुर्क सेनापति अली किर्मानी अपने साथ कई एक तुर्क सरदारों और बहुत-से चुने हुए सवारों को लेकर पृथ्वीराज के पास पहुँच गया और उसे घेर कर उसने खत्म कर देने की कोशिश की। इसके बाद मोहम्मद ग़ोरी के समस्त तुर्क सवारों ने एक साथ पृथ्वीराज पर आक्रमण किया।

पृथ्वीराज के प्राण भयानक संकट में पड़ गये। राजपूतों ने पृथ्वीराज को तुर्कों के बीच में घिरा हुआ देखकर दौड़ते हुए मुस्लिम सवारों पर आक्रमण किया। दोनों तरफ के शूर-वीर सैनिक पृथ्वीराज के समीप आकर मार-काट करने लगे। मोहम्मद ग़ोरी के साथ-साथ, समस्त उसकी सेना पृथ्वीराज पर

प्रहार करने लगी और राजपूत पृथ्वीराज की रक्षा करने में तुर्क सवारों पर मार करते थे। थोड़े से राजपूत सैनिकों और सरदारों को पृथ्वीराज की रक्षा करना मुश्किल मालूम होने लगा। फिर भी वे अपने प्राणों की आशा छोड़कर भीषण मार करने लगे। वीरवर चामुण्डराव, सामन्त सी, धीर पुण्डीर, आदि अनेक राजपूत सरदारों के साथ, समरसिंह पृथ्वीराज की रक्षा करने के लिए तुर्क सेना के साथ अपनी तलवारों की भयानक मार कर रहे थे। लेकिन जिन अठारह हजार तुर्क सवारों ने पृथ्वीराज के हाथी को घेर लिया था, उनके घेरे से पृथ्वीराज को बचाना अत्यन्त कठिन मालूम हो रहा था। पृथ्वीराज के समस्त शरीर में तलवारों के सैकड़ों गहरे घाव हो चुके थे, जिनसे रक्त बहकर जमीन पर गिर रहा था। पेट, छाती और पीठ से खून के फव्वारे निकल रहे थे, फिर भी पृथ्वीराज के दोनों हाथ शत्रुओं पर अपनी तलवारों के वार कर रहे थे।

राजपूत वीरों ने अपनी भीषण मार में कुछ उठा न रखा, लेकिन पृथ्वीराज की अरक्षित अवस्था तेजी के साथ बढ़ती जा रही थी। पृथ्वीराज को स्वयं मालूम हो गया कि तुर्क सवारों की इन मारों से बच सकना सम्भव नहीं है। इस भीषण संकट काल में दिल्ली की सेना का एक भी राजपूत युद्ध के क्षेत्र से भाग न सका। प्रबल तुर्क सेना के द्वारा वे कट-कटकर जमीन पर गिरते जाते थे। लेकिन जब तक उनके हाथों में तलवारें रहतीं, वे मार-मार की आवाज से लगातार युद्ध-स्थल को भयानक बना रहे थे।

इसी समय कई हजार तुर्क सवारों ने समरसिंह को घेर कर आक्रमण किया और कई एक गहरे जख्मों के कारण समरसिंह घोड़े से नीचे गिर गया। उसके गिरते ही चित्तौर की सेना में जोर की आवाज हुई। उस आवाज को सुनते ही चौहान सेना के जो शूर-वीर राजपूत सैनिक और सरदार पृथ्वीराज के बचाने के

लिए तुर्कों के साथ युद्ध कर रहे थे, उनका ध्यान भंग हुआ। क्षण-भर के लिए समरसिंह की तरफ उनके देखते ही तुर्क सवार एक साथ पृथ्वीराज पर टूट पड़े और तलवारों के वार एक साथ पृथ्वीराज के शरीर पर हो गये। अब धीर-वीर पृथ्वीराज अपने शरीर को हाथी के हौदे पर सम्हाल न सका। वह नीचे गिरा। पृथ्वीराज के जमीन पर गिरते ही तुर्क सवारों ने अपनी तलवार से उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

पृथ्वीराज और समरसिंह—दोनों शूरमा एक साथ युद्ध में मारे गये। दिल्ली के राजपूत सैनिकों में हाहाकार मच गया। मोहम्मद ग़ोरी की सेना ने पीछे हटकर युद्ध रोक दिया। राजपूत सेना भी पीछे हट गयी और पृथ्वीराज तथा समरसिंह की लाशों को उठाकर वह अपने साथ ले गयी।

अजमेर का विध्वंस

तरावड़ी के दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज को पराजित करके मोहम्मद ग़ोरी की सेना ने अपने शिविर में लौटकर विश्राम किया और अपनी इस विजय की खुशी में उसने अनेक प्रकार की खुशियाँ मनायीं। उसके कई दिनों के बाद तुर्क सेना ने अजमेर में जाकर हमला किया। अब उसे किसी भारतीय राजा से आशंका न रह गयी थी। पृथ्वीराज की तरह दूसरा कोई राजा शक्तिशाली और स्वाभिमानी था भी नहीं।

अजमेर को जीतने में मोहम्मद ग़ोरी को अधिक देरी नहीं लगी। उसके पतन के बाद ही तुर्क सेना वहाँ के वैभवशाली और सम्पन्न नगर को लूटना आरम्भ किया और बड़ी निर्दयता के साथ लूट-मार करने के बाद, तुर्क सेना ने अजमेर नगर में आग लगा दी और होली की तरह वह कितने ही दिनों तक जलता रहा।

अजमेर का विध्वंस और विनाश करने के बाद तुर्क सेना

पुष्कर की ओर रवाना हुई और वहाँ पहुँच कर उसने वहाँ के प्रसिद्ध और पवित्र मन्दिरों को लूटा। सोना, चाँदी और बहुमूल्य जवाहिरातों के रूप में वहाँ की सम्पत्ति को लूटकर बाकी बचे हुये मन्दिरों को गिरा कर मिट्टी में मिला दिया गया।

पुष्कर से लौट कर ग़ोरी की सेना ने हाँसी, कोहराम, थानेश्वर और दूसरे किलों पर अपना कब्जा कर लिया। उन किलों पर उसने अपनी सेनायें रखीं और गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को मोहम्मद ग़ोरी ने दिल्ली के शासन का अधिकार सौंपा। कुछ दिनों तक वहाँ पर उसकी सेना ने विश्राम किया और उसके बाद, इस बार की यात्रा में लूटी हुई सम्पूर्ण सम्पत्ति अपने साथ सुरक्षित लेकर वह गजनी लौट गया।

गजनी में जाकर मोहम्मद ग़ोरी ने करीब-करीब दो वर्ष तक अपनी सेना के साथ विश्राम किया और भारत में होने वाली अपनी विजय की खुशियाँ मनाईं। इसके बाद उसने फिर इस देश में चढ़ाई करने का इरादा किया और जिस कन्नौज के राजा जयचन्द ने भारत में आकर पृथ्वीराज पर आक्रमण करने का उसे परामर्श दिया था, उस पर हमला करने, उसके राज्य को लूटने और अपने अधिकार में कर लेने का उसने निर्णय किया। इसी आधार पर उसने फिर अपनी सेना को तैयार किया और ग़जनी से रवाना होकर वह भारत में आया। सन् ११९४ ईसवी में उसने अपनी शक्तिशाली सेना लेकर कन्नौज पर आक्रमण किया। जयचन्द ने अपनी सेना को लेकर उसका मुकाबिला किया। अपनी निर्बलता को वह स्वयं जानता था और उसकी सहायता करने वाला भी कोई न था। जो पृथ्वीराज मोहम्मद ग़ोरी की इस विशाल सेना का मुकाबिला कर सकता था, और जिसने एक बार ग़ोरी को भीषण पराजय देकर मरणासन्न अवस्था में भारत से भागने के लिए विवश किया था, वह पृथ्वीराज जयचन्द के देश-

द्रोह के ही कारण आज संसार में न था ! आज जयचन्द की सहायता कौन करता ! जिन छोटे-छोटे राजाओं और नरेशों से जयचन्द का कन्नौज राज्य घिरा हुआ था, वे स्वयं तुर्क सेना के हमलों से घबरा रहे थे और अपनी सुरक्षा के लिए भगवान से प्रार्थना कर रहे थे। जयचन्द की सहायता कौन करता !

कन्नौज के राजा जयचन्द को पराजित करके मोहम्मद ग़ोरी की तुर्क सेना ने कन्नौज राज्य और नगर को भली प्रकार लूटा। राज्य का खजाना और उसकी बहुमूल्य सम्पत्ति अपने कब्जे में कर के उसने राज्य का विध्वंस किया। इसके बाद उसने वहाँ की लूटी हुई सम्पत्ति को दस हजार ऊँटों पर लाद कर फिर ग़ज़नी चला गया।

मोहम्मद ग़ोरी की सेना पर आक्रमण

पृथ्वीराज को परास्त करने के बाद, भारत के आक्रमण में मोहम्मद ग़ोरी को भयभीत होने का कोई कारण न रह गया था। इस देश के कितने ही किलों में मुस्लिम सेनायें पड़ी थीं और दिल्ली के एक विस्तृत राज्य का शासन ग़ोरी ने कुतुबुद्दीन ऐबक के अधिकार में दे दिया था। अब तो मोहम्मद ग़ोरी का एक सीधा-सा काम यह था कि वह अपनी एक सेना के साथ ग़ज़नी से रवाना होता और भारत में पहुँच कर लूट का धन एकत्रित करता और उसे लाद कर वह अपने साथ ग़ज़नी ले जाता। उसने एक बार नहीं—अनेक बार ऐसा ही किया और प्रत्येक बार वह जितना धन भारत से अपने साथ ग़ज़नी ले जा सकता, ले जाता।

इन्हीं दिनों में मुस्लिम शासन के विरुद्ध भारत के गक्कर लोगों ने विप्लव किया। भारत में फैलने वाले मुस्लिम शासन के अत्याचारों से ऊब कर उन लोगों ने संगठिन होकर तुर्कों के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। उन दिनों में मुलतान और उसके

आस-पास गक्कर लोगों की घनी आबादी थी। तुर्कों के विरुद्ध क्रान्ति और युद्ध करने के लिए स्थान-स्थान पर उन लोगों की सलाहें होने लगीं। साहस और सावधानी के साथ उन लोगों ने स्वतंत्रता की आवाजें उठायीं।

थोड़े दिनों में ही स्वतंत्रता की लहरें मुलतान और उसके आस-पास दूर तक गक्करों में फैल गयी। प्रत्येक गक्कर स्वतंत्रता के इस युद्ध के लिए अपनी तैयारी करने लगा और यह विप्लव उन दिनों में गक्कर विप्लव के नाम से प्रकट हुआ। संगठित होकर गक्करों ने अपने बीच में राजा का निर्वाचन किया और निर्वाचित नरेशों के नेतृत्व में उन्होंने कार्य करना आरम्भ किया।

इन दिनों में मोहम्मद गोरी की शक्तियाँ मध्य एशिया के विरोधी देशों की ओर लग रही थीं। यह अवसर देख कर तेजी के साथ गक्कर लोग संगठित हुए और एक बड़ी संख्या में शस्त्रों से सुसज्जित होकर वे लाहौर की तरफ रवाना हुए। वहाँ के मुसलमानों पर जा कर उन्होंने हमला किया। एक तरफ से वहाँ के मुसलमानों का कत्ल किया गया और लाहौर के किले में तेजी के साथ गक्कर सेना ने पहुँच कर तुर्की सेना को घेर लिया। कुछ समय तक उस किले की तुर्की सेना ने युद्ध किया। अन्त में उसकी पराजय हुई और गक्कर सेना ने तुर्क सेना को काटकर खत्म कर दिया। इसके बाद, गक्कर सेना के सैनिकों ने स्वतंत्र रूप से घूमना शुरू कर दिया और जहाँ कहीं कोई मुसलमान मिलता, उसको वे जान से मार डालते। कुछ ही समय के बाद, सिन्ध और सतलज नदियों के बीच मुसलमानों का नाम मिट गया।

गक्करों के इस विप्लव का समाचार मध्य एशिया के किसी स्थान में मोहम्मद गोरी को मिला और उसने सुना कि मुलतान में गक्कर जाति के लोगों ने संगठित होकर सतलज से ले कर सिन्ध नदी तक मुसलमानों का नाश किया है। मोहम्मद गोरी

अपनी सेना को ले कर वहाँ से लौट पड़ा और भारत की तरफ रवाना हुआ। कुतुबुद्दीन ऐबक ने भी यह समाचार पाते ही अपनी सेना के साथ रवाना होकर गक्करों पर हमला किया और उसी मौके पर ग़ोरी भी अपनी सेना ले कर वहाँ आ गया।

एक ओर गक्करों की संगठित सेना थी और दूसरी ओर मोहम्मद ग़ोरी की विशाल और शक्तिशाली सेना के साथ कुतुबुद्दीन की सेना भी थी। इन अपार मुस्लिम सेनाओं के सामने गक्कर सैनिकों की संख्या कुछ भी न थी। फिर भी बहादुर गक्करों ने स्थान-स्थान पर जमकर युद्ध किया। तुर्क सवारों की तलवारों से हजारों गक्कर जान से मारे गये और उनके खून की स्थान-स्थान पर नालियाँ बहीं। लेकिन गक्करों ने पराजय स्वीकार नहीं की। उन लोगों ने निश्चय कर लिया कि जब तक गक्कर जाति का एक आदमी भी बाकी रहेगा, युद्ध बराबर जारी रहेगा।

स्वाधीनता के लिए बलिदान होने वाले गक्करों का युद्ध उस विशाल तुर्क सेना के साथ आखिरकार कब तक चल सकता था। गक्करों की संख्या लगातार कम होती गयी और युद्ध में गक्कर कमजोर पड़ते गये। बहुत थोड़ी संख्या में रह जाने के बाद गक्कर युद्ध से भागे और मोहम्मद ग़ोरी की विजय हुई। गक्करों को चारों तरफ पराजित कर के और उन्हें भगा कर मोहम्मद ग़ोरी ने अपनी सेना के साथ लौट कर सिन्ध नदी को पार किया और दूसरी तरफ जाकर, नदी के किनारे से कुछ ही फ़ासिले पर सन् १२०६ ईसवी के गर्मी के दिनों में उसने मुकाम किया। बहुत दिनों की लगातार यात्रा और युद्ध के कारण तुर्क सेना बहुत थक गयी थी।

गर्मी की रात थी, महीनों की यात्रा और युद्ध की थकावट थी। रात को ठण्डी हवा के चलते ही ग़ोरी की सेना गहरी नींद में आ गयी। ठीक आधी रात को एक लम्बा गिरोह सिन्ध नदी के पानी में उतरा और उसके गहरे जल को पार कर दूसरी तरफ

निकल गया। बाहर एक ऊँचाई पर खड़े होकर उस गिरोह के लोगों ने तुर्क सेना के मुकाम की ओर देखा। रात की तेज और शीतल वायु में उन्हें तुर्क सेना गहरी नींद में सोती हुई मालूम हुई।

उस गिरोह के आदमियों ने अपने स्थान पर क्षण-भर खड़े रह कर कुछ सोचा। वे नंगे बदन थे और अपने हाथों में तेज भाले और तलवारों को लिए हुए थे। उन आदमियों ने अपने स्थान से धीरे-धीरे चलना शुरू किया। वे बड़ी सावधानी के साथ तुर्क सेना की ओर रवाना हुए। उन सभी आदमियों के सामने कुछ फासिले पर एक मजबूत और ऊँचा आदमी चल रहा था। जो तुर्क सैनिक पहरे पर थे, वे भी शिथिल और निद्रित हो रहे थे। निद्राभिभूत तुर्क सेना पर एक साथ वे सभी लोग बिजली की तरह टूट पड़े और सब से पहले पहरे पर जो तुर्क मिले, उनको काट कर फेंक दिया। सोये हुए तुर्क सैनिकों के बीच में लेटे हुए मोहम्मद गोरी के निकट पाँच गक्कर पहुँच गये, गोरी के ऊपर दो तातारी पंखा कर रहे थे और अर्धनिद्रित अवस्था में झूल रहे थे। पाँचों गक्करों ने एक साथ गोरी पर आक्रमण किया और उसके शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। बात की बात में बहुत-से तुर्क सवार लेटे हुए मारे गये। उसके बाद जागते ही जो तुर्क उठ कर अपनी तलवार को इधर-उधर देखना शुरू करता, उसी समय वह तलवार के घाट उतार दिया जाता। तुर्क सैनिकों के सम्हलते-सम्हलते गक्करों ने उनको एक बड़ी संख्या में काट कर फेंक दिया। इसके बाद आक्रमणकारी वहाँ से तेजी के साथ भागे और रात के अन्धकार में बड़ी सावधानी के साथ नदी के पानी में उतर कर, तेजी से तैरते हुए वे दूसरी तरफ निकल गये।

कुछ तुर्क सवारों ने मोहम्मद गोरी के निकट जा कर देखा। उसके शरीर के बहुत-से टुकड़े हो गये थे और उसके प्राण इस संसार से विदा हो चुके थे।

आक्रमणकारी और कोई न थे, स्वतन्त्रता पर बलिदान होने वाले, गक्करों का एक गिरोह था, जिसने इस प्रकार साहस करके मोहम्मद ग़ोरी को उस लोक में भेज दिया, जहाँ से लौटकर वह फिर कभी न आया।

सन् १२०६ ईसवी में मोहम्मद ग़ोरी अपने अन्यायों और अत्याचारों का अत्यन्त भारी बोझ सिर पर लाद कर संसार से बिदा हो गया। दिल्ली के राज्य का अधिकारी, ग़ोरी का अत्यन्त विश्वास पात्र कुतुबुद्दीन भी अधिक दिनों तक जीवित न रहा। मोहम्मद ग़ोरी के कत्ल के चार वर्ष बाद, सन् १२१० ईसवी में उसकी भी मृत्यु हो गयी। बहुत छोटी अवस्था में वह तुर्किस्तान के गुलामों के बाजार से खरीद कर खुरासान लाया गया था। वहीं पर उसका पालन-पोषण हुआ और कुछ शिक्षा भी दी गयी। इसके बाद जब वह बड़ा हुआ तो बेचने के उद्देश्य से वह व्यापारियों के एक काफिले के साथ ग़जनी भेजा गया था। मोहम्मद ग़ोरी ने वहाँ के बाजार में उसे खरीद कर अपने यहाँ रख लिया और अपनी सेना में उसे भरती कर लिया। इसके बाद एक अत्यन्त शूर-वीर सैनिक की हैसियत से उसने ग़ोरी की सेना में काम लिया। थोड़े ही दिनों में अपनी वीरता के कारण वह ग़ोरी की सेना का एक प्रसिद्ध सेनापति हुआ और अन्त में दिल्ली के प्रसिद्ध राज्य का वह शासक बनाया गया।

मोहम्मद ग़ोरी और कुतुबुद्दीन ऐबक—दोनों के जीवन का गहरा सम्पर्क रहा। ग़ोरी के हमलों में उसकी सफलता का श्रेय कुतुबुद्दीन को था और कुतुबुद्दीन को गुलामी से उठाकर सेनापति और शासक बनाने का यश मोहम्मद ग़ोरी को मिला। दोनों के जीवन का एक साथ उत्थान हुआ और एक साथ अन्त हुआ।

दसवाँ परिच्छेद

चित्तौर पर अलाउद्दीन का आक्रमण

[१३०३ ईसवी]

युद्ध में कर्मदेवी की वीरता, कुतुबुद्दीन की हार, राणा भीमसिंह की अयोग्यता, चित्तौर का घेरा, अलाउद्दीन की चालें, विश्वासघात और उसका बदला, अलाउद्दीन की पराजय !

चित्तौर का राज्य

तरावड़ी के दूसरे युद्ध में पृथ्वीराज के साथ, चित्तौर के राजा समरसिंह की भी मृत्यु हुई थी। समरसिंह के तीन पुत्र थे। बड़ा पुत्र कल्याण, अपने पिता के साथ ही युद्ध में बलिदान हुआ था, दूसरा पुत्र पिता के राज्य को छोड़कर दक्षिण पर्वत के निकट जाकर किसी एक स्थान में रहने लगा था। इस दशा में चित्तौर के राज्य का अधिकारी तीसरा पुत्र कर्ण हुआ।

कर्ण की अवस्था छोटी थी और वह राज्य का प्रबन्ध नहीं कर सकता था, इसलिए जब तक वह समर्थ नहीं हुआ, राज्य की देख-भाल उसकी विधवा माँ कर्मदेवी करती रही। कर्मदेवी पत्तन के राजा की लड़की थी। उसका पिता अपनी वीरता के लिए बहुत प्रसिद्ध था। कर्मदेवी की रगों और नसों में शूर-वीर पिता का रक्त था। समरसिंह के मारे जाने पर चित्तौर का शासन-प्रबन्ध उसने बड़े साहस के साथ अपने हाथों में लिया और बड़ी सुन्दरता के साथ उसने उसे निभाया।

मोहम्मद गोरी के बाद, भारतीय राजाओं की अवस्था लगातार गिरती गयी। वे जितने ही निर्बल होते जाते थे, उतनी ही उनमें आपस की ईर्षा बढ़ती जाती थी और देश की शासन-सत्ता छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित होती जाती थी। इसका परिणाम यह हुआ था कि इस देश में मुस्लिम आक्रमण का जो सिलसिला महमूद ग़जनवी के साथ आरम्भ हुआ था, वह बराबर चलता रहा और एक न एक मुस्लिम आक्रमणकारी इस देश में आकर भारतीय राज्यों के विनाश का कारण बनता रहा।

कुतुबुद्दीन का हमला

भारतीय राज्य जिन राज्यों में बँटा हुआ था, उनमें एक चित्तौर का राज्य भी था। मोहम्मद गोरी के समय तक चित्तौर बराबर सुरक्षित रहा और किसी आक्रमणकारी से उस समय तक उसे आघात नहीं पहुँचा था। मोहम्मद गोरी के मारे जाने पर उसके एक प्रसिद्ध सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक ने जो अब दिल्ली के सिंहासन पर बैठकर शासन कर रहा था, चित्तौर पर हमला करने और उसे लूटने का साहस किया। उसे मालूम था कि चित्तौर का राजा समरसिंह युद्ध में मारा जा चुका है और उसके स्थान पर उसका छोटा लड़का कर्णसिंह राज्य का अधिकारी हुआ है। उसे यह भी मालूम हुआ कि कर्णसिंह की अवस्था अभी छोटी है और राज्य का प्रबन्ध उसकी विधवा माँ कर्मदेवी करती है। इस दशा में चित्तौर पर हमला करना और उसका विध्वंस करना उसे सहज मालूम होने लगा।

कुतुबुद्दीन एक सेना लेकर सन् १२०७ ईसवी में चित्तौर की तरफ रवाना हुआ। इसका समाचार रानी कर्मदेवी को मिला। उसने मन-ही-मन सोचा कि कुतुबुद्दीन चित्तौर को इस समय निर्बल समझ रहा है। वह जानता है कि इस समय चित्तौर में

कोई प्रबल और पराक्रमी राजा नहीं है और कर्णसिंह अभी बालक है, इसीलिए उसने चित्तौर पर हमला करने का इरादा किया है।

रानी कर्मदेवी ने आवेश के साथ निर्णय किया, चित्तौर आज भी निर्बल और अनाथ नहीं है। इस राज्य को पराजित और विध्वंस करना उस समय तक सम्भव नहीं है, जब तक चित्तौर का एक-एक शूर-वीर क्षत्रिय जीवित है!

वीराङ्गना कर्मदेवी ने कुतुबुद्दीन के होने वाले आक्रमण का समाचार सुनते ही अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयार होने की आज्ञा दी। चित्तौर की राजपूत सेना अपनी तैयारी में लग गयी। युद्ध के बाजे बजने लगे और राजपूत सरदार एवम् सेनापति युद्ध के लिए अपूर्व उत्साह के साथ तैयारी में लग गये।

चित्तौर की राजपूत सेना के तैयार होते ही वीर नारी कर्मदेवी युद्ध के वस्त्रों से सुसज्जित होकर अपने दाहिने हाथ में तल-वार और बायें हाथ में ढाल लेकर महल से बाहर निकली और घोड़े पर सवार होकर अपनी सेना के सामने खड़ी हुई। उस समय राजपूत सैनिकों, सवारों और सरदारों का उत्साह और साहस कई गुना अधिक हो गया। जिस समय चित्तौर की राजपूत सेना युद्ध के लिए जोशीले बाजों के साथ रवाना हुई, उस समय उसके साथ क्षत्रिय सैनिकों, सवारों और सरदारों की एक बड़ी सेना थी और यवन सेना को पराजित करने के लिए उसमें कई एक हिन्दू राजा, बहादुर सामन्त और चतुर सेनापति शामिल थे।

चित्तौर नगर से निकलकर राजपूत सेना उस तरफ रवाना हुई, जिस तरफ से कुतुबुद्दीन अपनी विशाल यवन सेना के साथ, तेजी से चित्तौर की ओर आ रहा था। मार्ग में दोनों सेनाओं ने एक, दूसरे को देखा और एक विस्तृत मैदान में युद्ध के लिए उत्तेजित अवस्था में कुछ देर के लिए दोनों सेनायें रुकीं। रानी कर्मदेवी ने कुछ देर तक यवन सेना की ओर देखा और

फिर अपनी सेना को आगे बढ़ाकर मुस्लिम सेना पर जोर के साथ आक्रमण करने की आज्ञा दी।

आदेश के मिलते ही संग्राम के लिए प्रस्तुत राजपूत आगे की ओर बढ़े और उन्होंने तेजी के साथ आक्रमण किया। इसी समय दोनों ओर से सेनाओं की मार-मार की आवाज हुई और युद्ध आरम्भ हो गया। उस दिन सांयकाल तक भीषण मार-काट होती रही। लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला। रात होते ही दोनों ओर की सेनायें पीछे की ओर हट गयीं और युद्ध बन्द हो गया।

इसके बाद दोनों सेनाओं ने अपने-अपने शिविर में जाकर विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातःकाल राजपूत सेना युद्ध के लिए तैयार हो गयी और उसी समय कर्मदेवी युद्ध के लिए तैयार हो कर घोड़े पर सामने आयी और अपने सैनिकों, सरदारों और वीर सेनापतियों को सम्बोधन करते हुए उसने कहा:

"चित्तौर की रक्षा का भार आप सब के ऊपर है। भारत के बहुत-से राज्यों का विध्वंस मुसलमान बादशाहों ने किया है, लेकिन चित्तौर पर हमला करने का उनका यह पहला साहस है। आज राजपूतों को शत्रुओं के सामने न केवल विजयी होना है, बल्कि उनके साहस को सदा के लिए मिटा देना है। आज शत्रुओं का इस प्रकार संहार करना है, जिससे वे फिर कभी चित्तौर में आक्रमण करने का दुस्साहस न कर सकें।"

कर्मदेवी के इन उत्तेजना पूर्ण वाक्यों को सुनकर राजपूत सैनिकों के नेत्रों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। इसके बाद ही युद्ध के बाजे बजे और राजपूत सेना संग्राम-भूमि की तरफ रवाना हो गयी। पहले दिन जिस स्थान पर युद्ध हो चुका था, वहाँ पहुँचकर राजपूत सेना ने देखा कि यवन सेना अभी तक मैदान में नहीं आयी। इसी समय कर्मदेवी ने राजपूत सेना को मुस्लिम सेना के शिविर में आक्रमण करने का आदेश दिया।

मुस्लिम सेना अभी तक युद्ध के लिए तैयार न हो सकी थी। राजपूत सेना ने दौड़ते हुए उस पर आक्रमण किया। दोपहर तक भयानक नर-संहार हुआ। अन्त में कुतुबुद्दीन युद्ध में घायल हुआ और वह अपने प्राण लेकर वहां से भागा। उसके भागते ही, मुस्लिम सेना भी पीछे की ओर भागने लगी और थोड़ी ही देर में युद्ध का मैदान शत्रुओं से बिल्कुल खाली हो गया। बहुत दूर तक राजपूत सेना ने शत्रुओं का पीछा किया, उसके बाद वह सिंहनाद करती हुई चित्तौर में लौट आयी।

अलाउद्दीन का इरादा

समरसिंह की मृत्यु के बाद सन् ११९३ ईसवी में राजकुमार कर्ण चित्तौर के सिंहासन पर बैठा और कई वर्ष तक उसकी मां कर्मदेवी ने उसकी तरफ से राज्य का प्रबन्ध किया। विवाह हो जाने के बाद कर्ण के दो पुत्र पैदा हुए, माहुप और राहुप। माहुप निकम्मा और अयोग्य निकला। वह अपने ननिहाल में पड़ा रहता था और जीवन के दिन किसी प्रकार व्यतीत किया करता था।

कर्ण का शासन भी बहुत कमजोरी के साथ चला और उसकी मृत्यु के बाद, उसका दूसरा लड़का राहुप सिंहासन पर बैठा। इसके कुछ दिनों के बाद, यवन सेनापति शमसुद्दीन के साथ नगर कोट के मैदान में उसे संग्राम करना पड़ा। उस युद्ध में महाराज राहुप की विजय हुई और पराजित होने के बाद अपनी सेना को लेकर शमसुद्दीन को युद्ध-क्षेत्र से भागना पड़ा।

महाराज कर्ण ने चित्तौर में लगभग अड़तीस वर्ष तक बड़ी बुद्धिमानी के साथ शासन किया। इस बीच में कोई बाहरी शक्ति के द्वारा राज्य में अशान्ति नहीं पैदा हुई। उसके बाद कई राजा वहाँ की गद्दी पर बैठे। उनके बाद सन् १२९५ में राणा लक्ष्मणसिंह के नाम से एक राजा चित्तौर के राज-सिंहासन पर बैठा। परन्तु उस

समय लक्ष्मणसिंह की अवस्था बहुत कम थी, इसलिए उसकी तरफ से उसका चाचा भीमसिंह राज्य का प्रबन्ध करता रहा।

भीमसिंह बहुत सरल और सीधा आदमी था। उसका विवाह पद्मिनी नामक एक राजकुमारी के साथ हुआ था, जो शारीरिक सौन्दर्य में अद्वितीय और अनुपम मानी जाती थी। पद्मिनी में सौन्दर्य की और भीमसिंह में स्वाभाविक सरलता की सीमा थी। पद्मिनी चौहान राजपूत वंश में उत्पन्न हुई थी और उसका पिता सिंहल प्रदेश में रहा करता था।

महाराज भीमसिंह में राजनीतिक चतुरता और दूरदर्शिता न थी और न वह शासक होने के योग्य ही था। राज्य-प्रबन्ध उतने ही दिनों के लिए उसके हाथों में था जब तक लक्ष्मण की अवस्था बड़ी नहीं हो जाती। शासन की निर्बलता में राज्य की अवस्था, एक अनाथ स्त्री की तरह हो जाती है। आज फिर चित्तौर का राज्य उसी निर्बल परिस्थितियों में होकर गुजर रहा था, जिनमें उसके प्रति कोई भी आततायी और निर्दय आक्रमणकारी तृष्णा के साथ देख सकता है।

दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के नेत्रों में चित्तौर का वैभव खटक रहा था। लक्ष्मणसिंह की आयु सम्बन्धी निर्बल अवस्था और भीमसिंह की राजनीतिक अयोग्यता ने अलाउद्दीन को चित्तौर की ओर आकर्षित किया। उसने आसानी के साथ चित्तौर पर हमला करने का इरादा कर लिया और धीरे-धीरे उसने अपनी तैयारी शुरू कर दी।

भारत के दूसरे अधिकांश सम्पन्न राज्य, तुर्क और पठान सैनिकों के अत्याचारों से लूटे जा चुके थे और मिट चुके थे। लेकिन चित्तौर का राज्य अभी तक सुरक्षित था। इन दिनों में कोई शक्तिशाली राजा न होने के कारण, चित्तौर की तरफ अत्याचारी और लुटेरे आक्रमणकारियों का बढ़ना स्वाभाविक

ही था। दुर्बलता, सम्पन्न अवस्था की रक्षा नहीं कर सकती और इसीलिए वह प्रत्येक समय अपने आप विपद् की कारण होती है।

चित्तौर में अलाउद्दीन का घेरा

अलाउद्दीन खिलजी सन् १३०२ ईसवी में अपनी सेना को लेकर चित्तौर में पहुँच गया और नगर के आस-पास उसने अपनी सेना का घेरा डाल दिया। अलाउद्दीन के इस आक्रमण से चित्तौर की राजपूत सेना में बड़ी अशान्ति उत्पन्न हुई। वहाँ के समस्त राजपूत एक साथ युद्ध के लिए अधीर हो उठे। लेकिन उनके सामने एक बड़ी विवशता थी। राजा की अयोग्यता, प्रजा की अयोग्यता का कारण होती है। राजपूत सैनिक अपने कर्त्तव्यों का पालन कर सकते थे, लेकिन वे अपने निर्बल और अयोग्य राजा की शक्ति न बन सकते थे। तीव्र बाणों का प्रयोग धनुष के साथ किया जा सकता है। धनुष की अनुपयोगिता और असमर्थता, बाणों को अक्षम और असमर्थ बना देती है।

चित्तौर में घेरा डालकर अलाउद्दीन चुप हो रहा। उसके बाद उसने क्या सोचा और क्या निर्णय किया, इसका जल्दी समझ सकना कठिन हो गया। न तो चित्तौर की तरफ से उस घेरे को तोड़ने और युद्ध करने की स्थिति पैदा हो गयी और न अलाउद्दीन की तरफ से ही आगे कोई आक्रमण आरम्भ हुआ।

अलाउद्दीन की घोषणा

चित्तौर में घेरा डाले हुए अलाउद्दीन को अनेक दिन बीत गये। उस समय दोनों ओर की अवस्थायें अस्पष्ट और संदिग्ध चल रही थीं। घेरा डालने के बाद भी अलाउद्दीन बहुत दिनों तक चुपचाप बना रहा। दोनों तरफ की कोई बात समझ में न आ रही थी। राणा लक्ष्मणसिंह की अभी तक बाल्यावस्था थी और

भीमसिंह इस होने वाले अनर्थ की ओर अन्यमनस्क होकर देख रहा था। इसी अवसर पर अलाउद्दीन ने यह घोषणा की कि मैं पद्मिनी को पाकर अपनी सेना को लेकर वापस लौट जाऊँगा।

इस घोषणा की आवाज चित्तौर में पहुँची। वहाँ के राजपूतों ने अलाउद्दीन की इस माँग को सुना। अकस्मात् जैसे उनके शरीरों में आग का स्पर्श हुआ हो। उनके नेत्रों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। स्वाभिमानी चित्तौर राज्य का एक भी राजपूत इन शब्दों को सुनने के लिए तैयार न था। फिर भी उनको निकट भविष्य में होने वाली घटनाओं की प्रतीक्षा करनी पड़ी।

पद्मिनी सुन्दरता की सजीव मूर्ति थी। उसका अलौकिक स्वास्थ्य, अद्भुत शरीर गठन, अपूर्व रंग-रूप और सौन्दर्य, न केवल पद्मिनी की भयानक विपद का—बल्कि समस्त चित्तौर की आपदाओं का कारण बन गया! अलाउद्दीन की घोषणा सभी के कानों में पहुँची। सभी ने अपने-अपने अन्तःकरण में गम्भीर प्रस्तर रखकर उस माँग के शब्दों को सुना। भीमसिंह ने भी सुना और पद्मिनी के कोमल कानों में भी उस घोषणा के शब्दों का आघात हुआ। उसने भी सुना। लेकिन किसी की तरफ से कोई निर्णय सुनायी नहीं पड़ा।

चित्तौर के राजपूतों के सामने बड़े संकट का समय था। वे समझ नहीं सके कि इन परिस्थितियों के बाद भी कोई जीवित रहना पसन्द करेगा! उनका स्वाभिमानी सम्मान उत्तप्त बालू में जल की मछली की भाँति क्षत्-विक्षत हो रहा था। एक-एक करके अलाउद्दीन की घोषणा के बहुत-से दिन बीत गये।

अलाउद्दीन शूर-वीर और लड़ाकू होने की अपेक्षा, चतुर, दुराचारी, लम्पट, कठोर और अभिमानी अधिक था। उसने अपने आक्रमण का सम्पूर्ण उद्देश्य, परम सुन्दरी पद्मिनी को हस्तगत करने में केन्द्रित कर दिया। रानी के रूप-लावण्य की

अलौकिक छवि ने अलाउद्दीन की अटूट उत्कण्ठा को उन्माद में परिणत कर दिया। महाराणा भीमसिंह की अस्वाभाविक दुर्बलता से वह अनभिज्ञ नहीं रहा। उसने अपने उद्देश्य की सफलता को सरल बनाने के लिए घोषणा को बदलने की कोशिश की और जाहिर किया कि रानी पद्मिनी के प्रतिबिम्ब को दर्पण में देखकर मैं चित्तौर से लौट जाऊँगा।

राजपूत अपने अनेक स्वाभाविक गुणों के लिए प्रसिद्ध थे। उनकी वीरता और विश्वास परायणता को सभी जानते थे। एक बार अपनी मंजूरी दे देने के बाद, राजपूत अपने शब्दों को बदल नहीं सकते, यह बात भी अलाउद्दीन जानता था। उसने अपने कपट का जाल फैलाना आरम्भ किया। सरल स्वभाव भीमसिंह की दुर्बलता ने अलाउद्दीन के सीधे-सादे शब्दों पर विश्वास किया। उसकी समझ में आ गया कि यदि दर्पण में प्रतिबिम्ब देखकर ही अलाउद्दीन वापस जा सकता है और रक्त-पात की समस्त भीषणता इस प्रकार अपने आप मिट जाती है तो ऐसा करने में कोई हानि नहीं है। भीमसिंह ने साफ-साफ उसे स्वीकार कर लिया।

अलाउद्दीन की प्रतारणा

चित्तौर के सरदारों और बुद्धिमान राजपूतों की समझ में भीमसिंह की स्वीकृति एक भयानक दुर्बलता थी। महलों से लेकर बाहर तक सभी ने महाराणा भीमसिंह की स्वीकृति को अशान्ति और आश्चर्य के साथ सुना। लेकिन भीमसिंह उन दिनों में चित्तौर राज्य का अधिकारी था और दूसरे अर्थों में भी अलाउद्दीन के प्रस्ताव को स्वीकार करने का उसे अधिकार था।

भीमसिंह की स्वीकृति का सन्देश, अलाउद्दीन को मिला। वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसने भीमसिंह के साथ मित्रता का

सम्बन्ध जोड़ा और उसने अनेक प्रकार की झूठी प्रशंसायें कीं। अलाउद्दीन और भीमसिंह के बीच, शत्रुता के स्थान पर मित्रता कायम हुई। अलाउद्दीन को रानी पद्मिनी का प्रतिबिम्ब दिखाने के लिए चित्तौर के राज-भवन में तैयारियाँ हुईं और अपने उद्देश्य को लेकर अलाउद्दीन ने निर्भयता के साथ चित्तौर के भीतर प्रवेश किया। वह जानता था कि राजपूत दगाबाज नहीं होते। इसीलिए उसके साथ थोड़े-से शरीर रक्षक विश्वस्त मुस्लिम सैनिक और सवार थे।

मित्रता और उदारता के साथ अलाउद्दीन ने पद्मिनी के प्रतिबिम्ब को दर्पण में देखा, प्रसन्नता के साथ उसने रानी के अपूर्व सौन्दर्य की प्रशंसा की और वहाँ से वह अपनी छावनी के लिए लौट पड़ा। भीमसिंह ने अपने कुछ राज दरबारियों के साथ अलाउद्दीन का स्वागत-सत्कार किया और कुछ दूर तक अलाउद्दीन को भेजने के आशय से वह साथ-साथ चला। अलाउद्दीन और भीमसिंह—दोनों साथ-साथ चल रहे थे और भीमसिंह, अलाउद्दीन के मुख से प्रशंसात्मक बातें सुन रहा था।

बातें करते हुए दोनों ही चित्तौर नगर के बाहर निकल गये, लेकिन उन बातों का सिलसिला खतम न हुआ। कुछ दूर आगे बढ़कर जाने पर, मुस्लिम सेना की छावनी दिखायी पड़ी, वहीं पर अलाउद्दीन खड़ा हो गया और अपने अपराधों की उसने भीमसिंह से क्षमा माँगी। उसके मीठे शब्दों को सुनकर भीमसिंह ने उत्तर देना आरम्भ किया ही था कि इतने में बहुत-से अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित यवन सैनिक अचानक बड़ी तेजी के साथ उस स्थान पर पहुँचे और दरबार के लोगों के साथ-साथ, उन्होंने महाराणा भीमसिंह को कैद कर लिया।

दरबारियों के साथ, महाराणा भीमसिंह के बन्दी होने का समाचार समस्त चित्तौर नगर में फैल गया। महलों से लेकर

बाहर तक सन्नाटा छा गया। मन्त्रियों और सरदारों ने बड़ी वेदना के साथ इस दुःखान्त समाचार को सुना। सभी की समझ में परिस्थिति और भी गम्भीर हो उठी। कैद से महाराणा और दूसरे राजपूत दरबारियों को कैसे छुटाया जाय, यह एक भीषण प्रश्न सब के सामने पैदा हो गया।

बन्दी अवस्था से छुटने की समस्या

महाराणा भीमसिंह को गिरफ्तार करने के बाद अलाउद्दीन को बड़ी प्रसन्नता हुई। अपनी समझ में वह सफलता की ओर जा रहा था। रानी पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए उसने जो जाल बिछाया था, उसमें उसे अब तक बराबर सफलता मिली। जिस भीमसिंह को कैद करने के लिए न जाने उसे कितना युद्ध करना पड़ता और इसके लिए न जाने कितने आदमियों का दोनों ओर से रक्तपात होता। इन समस्त दुर्घटनाओं से सुरक्षित रहकर उसने अपने उद्देश्य में सफलता पायी, इसीलिए उसके प्रसन्न होने का पूर्णरूप में कारण था।

भीमसिंह के बन्दी होते ही सम्पूर्ण चित्तौर के लोग शोकाकुल हो उठे। राज दरबार के मन्त्रियों, राज्य के समस्त सरदारों और राजपूतों के सामने बड़ी कठिन समस्या पैदा हो गयी। जिस युद्ध को बचाने के लिए आरम्भ से महाराणा भीमसिंह ने खामोशी अख्तयार की थी और अलाउद्दीन की मीठी-मीठी बातों को सुनकर उन पर विश्वास किया था, वह युद्ध अपने आप आ कर सामने उपस्थित हुआ। अब समस्त सरदारों, सेनापतियों और राजपूत सैनिकों के सामने युद्ध को छोड़कर भीमसिंह की मुक्ति का दूसरा कोई रास्ता ही न रह गया। आरम्भ से ले कर अब तक चित्तौर राज्य की सेना के राजपूत, युद्ध के लिए दाँत पीस रहे थे। लेकिन महाराणा भीमसिंह की अयोग्यता और अस-

मर्थता के परिणाम स्वरूप सभी लोग कर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। संघर्ष से बचने की कोशिश कभी-कभी भयानक विपद् की कारण बन जाती है। जिन दुष्परिणामों से बचने और सुरक्षित रहने के लिए भीमसिंह ने कायरता स्वीकार की थी, उसने स्वयं उन दुष्परिणामों को लाकर सामने उपस्थित कर दिया। एक वीर आत्मा जीवन के संघर्षों का सामना करता है और उन पर विजयी हो कर लोक और परलोक में कीर्ति का अधिकारी होता है। लेकिन कायर और भीरू पुरुष संकटों का मुकाबिला करने में घबरा कर अपने पतन का स्वयम् कारण बन जाता है। महाराणा भीमसिंह की यही अवस्था थी।

किसी भी गुण और अवगुण की सही परिभाषा उसकी सफलता और असफलता पर निर्भर होती है। विश्वासघात करना अपराध है। लेकिन जो विश्वासघात कर सकता है, उसके प्रति विश्वासघात करना अपराध नहीं है। विश्वासी राजपूतों के अधिकार में आकर भी जो अलाउद्दीन इसलिए निर्भीक और निडर था कि राजपूत विश्वासघात नहीं कर सकते, उसी अलाउद्दीन ने प्रतिबिम्ब देख कर लौटने के बाद राजपूतों के साथ विश्वासघात किया और उनको कैदी बनाकर अपनी सेना के बीच में रखा। यह दण्ड उन राजपूतों के लिए था, जो विश्वासघातक के साथ, विश्वासघात न कर सकते थे। यदि उन्होंने प्रतिबिम्ब देखने के समय एक दुराचारी और अत्याचारी को संसार से बिदा कर दिया होता तो यह दण्ड उनको भोगना न पड़ता। किसी भी गुण और अवगुण की परिभाषा करने में प्रायः लोग भूल करते हैं।

शोकाकुल चित्तौर में भीमसिंह के छुटकारे की समस्या का हल करना जिस समय कठिन हो रहा था और विभिन्न परिणामों की लोग चिन्तनायें कर रहे थे, उसी संकटकाल में

अलाउद्दीन ने फिर घोषणा की, "मैं रानी पद्मिनी को पाकर तुरन्त महाराणा भीमसिंह और दूसरे कैदियों को छोड़ दूँगा और अपनी सेना के साथ चित्तौर से लौट जाऊँगा।"

चित्तौर में खलबली

चित्तौर के मन्त्रियों और सरदारों को बादशाह अलाउद्दीन की यह घोषणा असह्य हो उठी। सभी ने मिलकर युद्ध करने और महाराणा को कैद से छुड़ाने का निर्णय किया। लेकिन इस निर्णय के साथ उन सब को रानी पद्मिमी की आज्ञा ले लेना आवश्यक था। आरम्भ से लेकर अब तक सभी बातों को रानी पद्मिमी जानती थी। लेकिन किसी समय उसने अपने विचारों को प्रगट नहीं किया और,न किसी ने उसके निर्णय को जानने की ही कोशिश की।

चित्तौर के दरबार में रानी का एक भाई रहता था, उसका नाम बादल था और गोरा नाम का जो दूसरा आदमी था, वह रानी का चाचा था। दोनों ही युद्ध में वीर और राजनीति में कुशल थे। रानी पद्मिमी से परामर्श करने के लिए इन्हीं दोनों आदमियों को महल में भेजा गया। रानी ने उत्तर देते हुए कहा, मुसलमान बादशाह के साथ आरम्भ से लेकर जिस निर्बलता से काम लिया गया है, उसी का यह फल है कि आज चित्तौर के सामने महान संकट है। वह पहली भूल थी और मेरी समझ में यह दूसरी भूल होगी कि इस समय युद्ध की घोषणा की जाय। इसलिए अच्छा यह होगा कि अलाउद्दीन ने जिस धूर्तता और प्रतारणा से काम लिया है, उसी का आश्रय अब इधर से भी लिया जाय।

गोरा और बादल ने सावधानी के साथ रानी के शब्दों को सुना और उसके बाद भी दोनों आदमी कुछ देर तक चुप रहे। अन्त में पद्मिनी के परामर्श को जानकर गोरा और बादल महल

से लौट और दरबार में आकर मन्त्रियों तथा सरदारों के साथ परामर्श किया। इसके पश्चात् बादशाह अलाउद्दीन के पास एक दूत भेजा गया। उसने वहाँ जाकर कहा :

"बादशाह सलामत, आपने आखीर में जो राय जाहिर की है, उसे सुनकर रानी साहिबा ने अपनी मंजूरी आपके पास भेजी है और उसी के लिए मैं आपकी खिदमत में हाजिर हुआ हूं। अपनी मंजूरी के साथ रानी साहिबा ने अपनी दो-चार बातें आप से अर्ज करने के लिए मुझे इजाजत दी है। उन बातों को कहने के लिए आप मुझे इजाजत देंगे, यही समझकर मैं उन बातों को आपके सामने पेश करने की हिम्मत करता हूँ।

बादशाह अलाउद्दीन बड़ी तसल्ली के साथ उन बातों को सुन रहा था। दूत ने फिर कहना आरम्भ किया :

"बादशाह सलामत खुद एक बड़े बादशाह हैं और राज-महलों के तर्ज तरीकों से वाकिफ हैं। रानी साहिबा के साथ उनकी सभी नौकरानियाँ, लौड़ियाँ और बाँदियाँ आवेंगी और सभी पहरेदार पालकियों में होंगी। उन सब की जो इज्जत और आबरू हमारे राज महलों में मानी जाती है, आपके यहाँ भी उनको वही इज्जत मिलनी चाहिए। रानी साहिबा के साथ सैकड़ों की तादाद में जो खादिमायें हैं, वे सब राजघराने की लड़कियाँ हैं और शादी के बाद, रानी साहिबा के साथ इस राज्य में आयी हैं। राज्य की तरफ से उनको भी वही इज्जत मिली हैं जो रानी को मिलती है। रानी के साथ समस्त पाल-कियाँ राज्य के सवारों के संरक्षण में आपके यहाँ आवेंगी और भेजकर वे सवार वापस चले आयँगे। उन सब के यहाँ आने पर यहाँ कोई भी आदमी ऐसा सुलूक न करे जो नामुनासिब मालूम हो। इन बातों को मंजूर करने के बाद आप किसी अच्छे दिन की तजवीज करें, उसी दिन रानी साहिबा आपके यहाँ

आ जावेंगी। चित्तौर के मुतल्लिक आप जो मुनासिब समझें फैसला करें, उससे रानी साहिबा कोई दखल नहीं देना चाहती। वे जिस वक्त यहाँ के महलों से निकल कर आपकी तरफ चलेंगी, उसी वक्त से चित्तौर के साथ उनका कोई ताल्लुक न रहेगा।"

दूत की बातों को सुनकर अलाउद्दीन बहुत प्रसन्न हुआ। जिस समय वह दूत के मुँह से इन बातों को सुन रहा था, उसी समय उसने समझ लिया था कि रानी पद्मिनी खुशी से मेरे साथ चलना चाहती है और उसकी खुशी का सबब यह है कि मेरी बादशाहत के एक टुकड़े के मुकाबिले में भी चित्तौर का राज्य नहीं है। ऐसा कौन बेवकूफ होगा जो इस छोटे-से राज्य के पीछे इतनी बड़ी बादशाहत का ख्याल छोड़ दे।

अलाउद्दीन ने दूत की सभी बातों को मन्जूर कर लिया। वह रानी की इस बात से बहुत प्रसन्न हुआ कि उसने भीमसिंह और चित्तौर के सम्बन्ध में कोई माँग नहीं की। उसने समझ लिया कि रानी पद्मिनी की ईमानदारी का सब से बड़ा सुबूत यही है। बादशाह और दूत के बीच अच्छे दिन का निश्चय हो गया और दूत वहाँ से लौटकर चला आया।

मुस्लिम छावनी में भयानक मार-काट

चित्तौर में यह अफवाह फैल गयी कि रानी पद्मिनी ने बादशाह के साथ जाना मन्जूर कर लिया है। इस अफवाह को सुनकर सभी को विस्मय हुआ। लेकिन किसी का उसमें बस क्या था। दूत के लौट आने पर चित्तौर के राज दरबार में तरह-तरह की तैयारियाँ होने लगीं। बादशाह अलाउद्दीन ने भी अपने आदमियों को इधर-उधर रवाना किया और उन आदमियों ने लौटकर बताया कि चारों तरफ रानी के इस फैसले पर लोग तरह-तरह की बातें करते हैं और उसकी बड़ी बदनामी फैल रही है।

अलाउद्दीन के हृदय में अब किसी प्रकार का सन्देह न रहा। वह पहले भी समझता था कि राजपूत न झूठे होते हैं और न धोखेबाज होते हैं। बिना किसी सन्देह के उसने अपने यहाँ रानी के स्वागत की तैयारियाँ शुरू कर दी। चित्तौर में घेरा डाले हुए जो सेना पड़ी थी, उसको उसने वापस बुला लिया और चित्तौर का घेरा तोड़ दिया गया।

मुस्लिम सेना की छावनी में कई दिनों तक स्वागत की जोरदार तैयारियाँ होती रहीं। निश्चित दिन चित्तौर के द्वार से ७०० से अधिक पालकियाँ एक साथ निकलीं और ५०० राजपूत सवारों के साथ वे मुस्लिम शिविर की तरफ रवाना हुईं। सवारों के हाथों में कोई अस्त्र-शस्त्र न था। शिविर के निकट पहुँचकर सवारों ने बादशाह अलाउद्दीन को सलाम किया और पीछे हट कर वे एक तरफ खड़े हो गये।

अलाउद्दीन ने रानी पद्मिनी और उसके साथ में आने वाली स्त्रियों के लिए अलग तम्बू लगवा दिया था और उस तम्बू के आस-पास मजबूत कनातें लगी हुई थीं। एक-एक करके सभी पालकियाँ उसके भीतर भेज दी गयीं। छावनी में मुस्लिम सैनिकों का पहरा लगा हुआ था और बहुत-से सैनिक इस खुशी में तरह-तरह के इन्तजाम कर रहे थे। पालकियों के तम्बू में जाने के साथ-साथ बादशाह अलाउद्दीन को यह बता दिया गया था कि इन पालकियों में कुछ स्त्रियाँ महलों से ऐसी आयी हैं जो रानी को यहाँ तक पहुँचाकर और कुछ समय ठहर कर वापस चली जायँगी। बादशाह ने इसके लिए भी इन्तजाम कर दिया कि जिस वक्त लौटने वाली पालकियाँ जाने लगें तो पहरे के सिपाहियों की तरफ से कोई दखल न दिया जाय।

महाराणा भीमसिंह इस दृश्य का कोई अर्थ समझ न सका। जिनके पहरे में वह बन्दी था, उन सिपाहियों ने उल्लास में

विभोर होकर महाराणा से कहा : "तुम्हारी रानी पद्मिनी ने तुमको छोड़कर बादशाह के यहाँ जाना मन्जूर किया है और इसके लिए वह अपनी बहुत-सी खादिमाओं के साथ हमारी इस छावनी में आ गयी है।" इसके बाद कुछ ही देर में अलाउद्दीन ने महाराणा को बुलाकर कहा : "रानी पद्मिनी अब मेरे साथ जायगी। आप उसके साथ आखिरी मुलाकात कर सकते हैं। इसके लिए आपको आध घण्टे का समय मिलेगा।"

पहरे के सिपाहियों ने मुलाकात के लिए भीमसिंह को जाने की इजाजत दी और उसने विस्मय के साथ उस तम्बू के भीतर प्रवेश किया, जहाँ पर चित्तौर से आयी हुई बन्द पालकियाँ मौजूद थीं। महाराणा की आवाज सुनते ही एक पालकी के भीतर से किसी ने सम्हाल कर परदा खोला और बड़ी सावधानी के साथ बुलाकर उसने भीमसिंह को उसी में बिठा लिया।

तम्बू के बाहर मुस्लिम पहरा था और कुछ फासिले पर बाहर खड़े हुए सिपाही महाराणा के लौटने का रास्ता देख रहे थे। इसी समय तम्बू के भीतर से कुछ पालकियाँ बाहर की तरफ निकलीं, बादशाह को यह खबर दी गयी कि लौटने वाली पालकियाँ वापस जा रही हैं। बादशाह ने खुशी के साथ उनको लौटने की इजाजत दी। वे पालकियाँ वापस चली गयीं।

रानी पद्मिनी से मुलाकात करने के लिए महाराणा को भेजकर बादशाह अलाउद्दीन तरह-तरह की कल्पनायें कर रहा था। वह सोच रहा था कि आज भीमसिंह के दिल पर यह जानकर क्या गुजरेगी कि रानी पद्मिनी खुशी के साथ चित्तौर को छोड़कर दिल्ली जा रही है। रानी पद्मिनी से मुलाकात करने का मौका देकर अलाउद्दीन, भीमसिंह के जख्मों में नमक छिड़कना चाहता था। इस मौके पर महाराणा को कितनी पीड़ा हो सकती इसका वह अन्दाज लगा रहा था।

तम्बू से भीमसिंह के लौटने का समय समाप्त हो चुका था। फिर भी कुछ देर तक उसका रास्ता देखा गया। आध घण्टे का समय दिया गया था, लेकिन तम्बू में महाराणा को गये हुए लगभग दो घण्टे हो रहे थे, परन्तु इतना अधिक समय हो जाने का पता बादशाह को स्वयं न था। जिन सिपाहियों के द्वारा महाराणा बन्दी था, वे बादशाह के हुक्म का रास्ता देख रहे थे और बादशाह के सामने आज एक दूसरी ही रंगीन दुनिया थी।

अलाउद्दीन ने जब सुना कि तम्बू में गये हुए महाराणा को दो घण्टे हो चुके हैं और वह अभी तक वहाँ से नहीं लौटा तो वह जोर के साथ तड़प उठा। उसके तड़पने की आवाज मुस्लिम छावनी के भीतर से बाहर तक गूँज उठी। सिपाहियों ने तम्बू के निकट जाकर महाराणा को पुकारा और फौरन लौटकर आने का हुक्म दिया।

कुछ समय और बीत गया। बादशाह को खबर दी गयी कि तम्बू से अभी तक महाराणा नहीं लौटा। यह सुनकर बादशाह क्रोध में बिगड़ता हुआ, तम्बू की ओर चला। उसके साथ में शरीर-रक्षक मुस्लिम सैनिक थे। तम्बू के भीतर बादशाह के पहुँचते और गरजते ही, चित्तौर से आयी हुई ७०० पालकियों के परदे एक साथ खुले और उनके भीतर बैठे हुए प्रत्येक पालकी से छः छः चुने हुए शूर-वीर सैनिक युद्ध के लिए सुसज्जित बड़ी तेजी के साथ निकल पड़े और उन्होंने अलाउद्दीन पर आक्रमण किया। मुस्लिम शरीर-रक्षक सैनिकों ने बादशाह के आगे होकर राजपूतों के आक्रमण का जवाब दिया, बादशाह भीतर से भागकर बाहर आया और मुस्लिम सेना को ललकारते हुए युद्ध करने की आज्ञा दी।

मुस्लिम छावनी में हाहाकार मच गया और भीषण रूप से मार-काट आरम्भ हो गयी। बाहर खड़े हुए पाँच सौ राजपूत

सवारों ने आगे बढ़कर युद्ध में भाग लिया। चित्तौर के पाँच हजार सैनिकों और सवारों ने भयानक मार-काट की और ढाई घण्टे के भीतर कई हजार मुस्लिम सैनिकों को काटकर ढेर कर दिया। अलाउद्दीन की पूरी सेना तैयार होकर युद्ध में शामिल हो गयी। मुसलमानों का बढ़ता हुआ जोर देखकर राजपूत मार-काट करते हुए चित्तौर की तरफ चलने लगे। बादशाह की सेना आगे बढ़ती हुई किले के करीब पहुँच गयी। वहां से वह सिंहद्वार की तरफ बढ़ना चाहती थी और महाराणा भीमसिंह को फिर कैद करना चाहती थी। परन्तु राजपूतों ने किले के करीब फिर जमकर युद्ध किया और मुस्लिम सेना को एक कदम भी आगे बढ़ने नहीं दिया।

जिस समय किले के निकट बादशाह की सेना के साथ राजपूत युद्ध कर रहे थे, चित्तौर की एक दूसरी राजपूत सेना तैयार होकर सिंह द्वार से बाहर निकली और किले से बाहर आकर मुस्लिम सेना पर उसने इतने जोर का आक्रमण किया कि बादशाह की विशाल सेना कुछ दूर तक पीछे हट गयी। इस समय किले और मुस्लिम छावनी के बीच के मैदान में भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। अलाउद्दीन के आक्रमण के आरम्भ से जो राजपूत सैनिक और सरदार युद्ध के लिए दाँत पीस रहे थे, वे आज चित्तौर की मर्यादा को सुरक्षित रखने के लिए मर-मिटना चाहते थे। कई घन्टे तक उन शूर-वीर राजपूतों ने भयानक मार-काट की और शत्रुओं का संहार करने में उन्होंने कुछ उठा न रखा।

शत्रुओं के मुकाबिले में राजपूत सैनिकों की संख्या बहुत थोड़ी थी, फिर भी युद्ध की परिस्थिति दोनों ओर से बहुत गम्भीर चलती रही। कभी राजपूत पीछे हट जाते थे और कभी मुस्लिम सेना कुछ दूर तक पीछे हटकर फिर युद्ध करती हुई आगे की ओर बढ़ आती थी। संग्राम की यह अवस्था दो दिनों तक बरा-

बर चलती रही। तीसरे दिन सांयकाल के पहले ही बादशाह की सेना युद्ध के मैदान से पीछे हट गयी और अपनी छावनी की तरफ चली गयी। राजपूत सैनिक अपने स्थान पर ज्यों के त्यों बने रहे। उन्होंने आगे बढ़ने की चेष्टा न की और मुस्लिम सेना के छावनी में लौट जाने के बाद, राजपूत सेना भी चित्तौर की तरफ लौट गयी।

छावनी में लौट कर अलाउद्दीन ने रात को विश्राम किया और सवेरा होते ही वह अपनी सेना के साथ चित्तौर से दिल्ली की ओर रवाना हो गया।

मुस्लिम सेना के साथ राजपूतों का जो युद्ध हुआ, उसमें रानी पद्मिनी के चाचा गोरा ने बड़ी बहादुरी के साथ युद्ध किया और अन्त में वह मारा गया। रानी के भाई बादल की अवस्था अभी चौदह वर्ष से अधिक न थी, लेकिन युद्ध में उसका रण-कौशल देखकर शत्रु के सैनिक भी विस्मित हो रहे थे। उसकी तलवार और भाले की मार से बहुत अधिक मुस्लिम सैनिक मारे गये थे।

युद्ध से हटकर जब मुस्लिम सेना अपनी छावनी में चली गयी तो बालक बादल अपनी राजपूत सेना के साथ लौटकर खून से नहाये हुए, महल में पहुँचा। उसके शरीर में बहुत से घाव थे और उनसे अब भी रक्त बह रहा था। उसके समस्त कपड़े खून में डुबे हुए थे। उसने बहुत देर तक बिना वस्त्र बदले हुए, बहन पद्मिनी और गोरा की पत्नी—अपनी चाची को बताया कि बादशाह अलाउद्दीन की विशाल सेना के साथ किस प्रकार भयंकर युद्ध हुआ और किस तरीके से अन्त में मुस्लिम सेना निराश हो कर—पराजित अवस्था में युद्ध के मैदान से चली गयी।

चित्तौर पर अलाउद्दीन की फिर चढ़ाई

बादशाह अलाउद्दीन चित्तौर से लौट कर दिल्ली चला गया, लेकिन चित्तौर में होने वाली घटनायें उसे एक दिन भी भूली नहीं। अपनी जिन आशाओं को लेकर उसने चित्तौर पर आक्रमण किया था, वे सब की सब एक साथ असफल हुईं। चित्तौर के निर्बल और असमर्थ समझने के बाद भी, उसने पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए जीवन का एक नाटक खेल था, उसमें वह बुरी तरह असफल हुआ। उस नाटक का अन्त इतना अपमानजनक होगा, इसकी:कल्पना भी उसने न की थी। इस अपमान और पराजय से चिढ़ कर अलाउद्दीन चित्तौर के सम्बन्ध में नयी-नयी कल्पनाओं पर विचार करने लगा। वह सोचने लगा, जिस चित्तौर ने विश्वासघात का यह कठोर पाठ पढ़ाया है, उसे मैं विध्वंश कर के ही छोड़ूँगा।

एक-एक करके कितने ही वर्ष बीत गये। अलाउद्दीन की आँखे चित्तौर की तरफ लगी हुई थीं। उसे चित्तौर को :पराजित करने का उतना ख्याल न था, जितना उसे अपने अपमान का बदला लेने का था। वह भयानक रूप से चिढ़ा हुआ था। जिस चित्तौर को युद्ध में उसने खिलौना समझा था, उसके मुकाबिले उसे असफल हो कर लौटना पड़ा, अलाउद्दीन बादशाह के सामने यह साधारण लज्जा की बात न थी। इसीलिए चित्तौर पर फिर आक्रमण करने का उसने निश्चय किया और पहले की अपेक्षा उसने इस बार अधिक बड़ी सेना की तैयारी की और दिल्ली से चलकर सन् १३०३ ईसवी में उसने चितौर को फिर घेर लिया।

चित्तौर के सामने संकट

चित्तौर की शक्तियाँ आज पहले से भी निर्बल हो चुकी थीं।

अलाउद्दीन की विशाल सेना के साथ जिन राजपूत वीरों और सरदारों ने युद्ध कर के उसे दिल्ली लौट जाने के लिए विवश किया था, आज वे चित्तौर के दुर्भाग्य से संसार में न थे। उनमें से अधिकाँश पहले के युद्ध में ही चित्तौर की स्वाधीनता की रक्षा में अपने प्राणों का बलिदान दे चुके थे। इन दिनों में राणा लक्ष्मणसिंह चित्तौर के सिंहासन पर था, परन्तु युद्ध में अधिक वीर और बहादुर न था। चित्तौर की मर्यादा और स्वाधीनता को सुरक्षित रखने के लिए जिस प्रकार के शक्तिशाली राजा की आवश्यकता थी, उसका आज भी चित्तौर में अभाव था।

इतना सब होने पर भी जब मालूम हुआ कि दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिजली ने एक बहुत बड़ी सेना लेकर फिर चित्तौर पर आक्रमण किया है तो चित्तौर के राजपूतों का खून खौलने लगा। चित्तौर एक छोटा-सा राज्य था और उसी हिसाब से उसकी एक छोटी-सी सेना थी। परन्तु उस सेना के राजपूत सैनिकों और सरदारों में उत्साह का अभाव न था। मुस्लिम सेना के आगमन और आक्रमण की बात सुनते ही राजपूत वीरों ने एक बार अपनी लटकती हुई तलवारों की ओर देखा और युद्ध के भयानक दृश्यों का वे स्मरण करने लगे। पिछले युद्ध की समस्त घटानायें आज फिर उनके सामने ताजी हो उठीं। उनके मुख से एक बार निकल गया, हम युद्ध में बलिदान हो सकते हैं। दिल्ली का बादशाह अब हमें धोखा नहीं दे सकता।

राणा लक्ष्मणसिंह के हृदय में साहस और उत्साह—दोनों की कमी थी। मुस्लिम सेना के द्वारा चित्तौर के घेरे जाने पर उसका हृदय घबरा उठा। अनेक प्रकार की चिन्तनायें करने के बाद भी वह स्वयं कुछ निर्णय न कर सका। अपनी निर्बलता और अयोग्यता के कारण उसे चित्तौर का भविष्य भयानक संकटमय दिखायी देने लगा।

चित्तौर में युद्ध की घोषणा

किसी भी अवस्था में युद्ध करना पड़ेगा, राणा लक्ष्मणसिंह की समझ में यह आ गया। उसने अपने मन्त्रियों, सरदारों और सेना के शूर-वीरों के साथ बैठ कर परामर्श किया और अन्त में सभी ने उत्साह के साथ युद्ध करने का निर्णय किया।

युद्ध का निर्णय करते ही चित्तौर में सेना की तैयारी आरम्भ हो गयी और युद्ध के बाजों के साथ चित्तौर की राजपूत सेना मुस्लिम सेना के साथ संग्राम करने के लिए रवाना हुई। चित्तौर की सीमा पर दोनों ओर की फौज का आमना-सामना हुआ और युद्ध आरम्भ हो गया। कई दिनों के बाद राजपूत रण-स्थल पर कमजोर पड़ने लगे। उनकी संख्या लगातार कम होती जाती थी, लेकिन उसके बाद राजपूत सैनिकों ने अपनी बिखरी हुई शक्तियों को एकत्रित किया और तुर्क सेना के साथ फिर जम कर उन्होंने युद्ध किया।

राणा लक्ष्मणसिंह के बारह पुत्र थे। इस लगातार युद्ध में उसके ग्यारह लड़के जान से मारे गये। बारहवें लड़के को युद्ध में भेजने के समय राणा लक्ष्मणसिंह स्वयं तैयार हुआ। उसने समझ लिया कि युद्ध का अब अन्तिम समय है। उसने यह भी समझ लिया कि बादशाह के मुकाबिले में इस बार चित्तौर की पराजय होना निश्चित है। इसलिए अन्त में आने वाली परिस्थितियों के लिए हमें और समस्त चित्तौर के निवासियों को तैयार हो जाना चाहिए।

चित्तौर की चिता

राणा लक्ष्मणसिंह ने अपने मन्त्रियों और सरदारों को बुला कर परामर्श किया और निश्चय किया कि शत्रु के प्रचण्ड

आक्रमण से चित्तौर की रक्षा का अब कोई उपाय दिखायी नहीं देता। हमारी छोटी-सी राजपूत सेना, बादशाह की इस विशाल सेना को अब अधिक समय तक युद्ध में रोक न सकेगी। अतएव हमें पहले से ही ऐसी व्यवस्था कर लेना चाहिए, जिससे मुसलमान बादशाह चित्तौर की मर्यादा भंग न कर सके।

राणा लक्ष्मणसिंह ने अन्तःपुर में जाकर रानियों और राज-परिवार की स्त्रियों तथा लड़कियों को बताया कि चित्तौर के सामने आज वह भयंकर समय आ पहुँचा है, जिसमें उसकी स्वाधीनता सुरक्षित न रह सकेगी और अन्त में विजयी बादशाह के सैनिक जिस नृशंसता का यहाँ पर प्रदर्शन करेंगे, उसे पहले से समझ लेना चाहिए। बाहर से लेकर भीतर तक, यह युद्ध हम लोगों की बलि चाहता है।

अपनी बात को समाप्त करके लक्ष्मणसिंह अन्तःपुर से विदा हुआ। रनवास के बीचो-बीच, पृथ्वी के नीचे एक बड़ी सुरंग थी। उसे खोला गया। दिन के समय भी उसमें घना अन्धकार रहता था। साल की लकड़ियों के द्वारा उस सुरंग के भीतर एक विस्तृत चिता बनायी गयी और जीवनोत्सर्ग के ओजस्वी गाने गाती हुई अन्तःपुर की समस्त रानियों, राज-परिवार की स्त्रियों और लड़कियों ने उस सुरंग में प्रवेश किया। राजमहल से एक-एक स्त्री और लड़की के सुरंग में चले जाने के बाद, लोहे के वजनी कपाट से सुरंग का द्वारा बन्द कर दिया और चिता में आग दे दी गयी। एक साथ आग की भयानक लपटें निकलीं और उन लपटों में चित्तौर की कई हजार ललनाओं ने अपने प्राणों की आहुतियाँ दीं। चित्तौर के बाहर तुर्क सेना के साथ, वीर राजपूत भयंकर युद्ध करके अपनी स्वाधीनता के लिए बलिदान हो रहे थे और चित्तौर के भीतर अन्तःपुर के नीचे पृथ्वी में चित्तौर की अगणित ललनाओं की चिता प्रज्वलित हो रही थी। इसके बाद

राणा लक्ष्मणसिंह ने अपनी सेना के साथ युद्ध में जाने की तैयारी की। चित्तौर की स्वर्गीय विभूतियाँ भस्मीभूत हो चुकी थीं। चित्तौर के किसी राजपूत के सामने अब अपने प्राणों का कोई मोह न रह गया था। राणा लक्ष्मणसिंह ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया।

युद्ध का अन्त और परिणाम

किले का फाटक खोलकर चितौर की आखिरी सेना बाहर निकली और अपने प्रचण्ड विक्रम के साथ वह शत्रु की विशाल सेना पर टूट पड़ी। दोनों ओर से भीषण मार आरम्भ हुई और रणोन्मत्त राजपूतों की भयंकर तलवारों से बहुत-से तुर्क सैनिक मारे गये। युद्ध का यह अन्तिम समय था और राजपूतों को अब जीवित रहने की कोई अभिलाषा बाकी न रह गयी थी। युद्ध में शत्रु के साथ अपनी शक्तियों का अन्तिम प्रदर्शन करके और जी-भर कर विशाल शत्रु-सेना का संहार करके वे अब संसार से बिदा होना चाहते थे। इस समय उनकी भुजाओं में अपूर्व बल था और उनके अद्भुत साहस ने कुछ समय के लिए शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये।

राजपूतों की छोटी-सी सेना की भीषण मार के सामने बादशाह अलाउद्दीन की तुर्क सेना कई बार पीछे हट कर दूर तक चली गयी और एक बार तो अलाउद्दीन को अपनी पराजय के स्पष्ट लक्षण दिखायी देने लगे। लेकिन उसके बाद तुर्क सेना ने फिर सम्हल कर युद्ध किया और राजपूत सैनिक जितना आगे बढ़ गये थे, फिर हट कर पीछे की तरफ आ गये। बहुत समय तक युद्ध की यही अवस्था चलती रही।

इस भयानक संग्राम में दोनों ओर से बहुत-से सैनिक मारे गये। युद्ध-क्षेत्र में रक्त प्रवाहित हो रहा था और वीर सैनिकों के कटे हुए शरीरों से जमीन पट गयी थी। सर्वत्र लाशों के ढेर

दिखायी देते थे। राजपूत सेना अब कमजोर पड़ने लगी। उसमें अब सैनिकों की संख्या बहुत कम रह गयी थी। इसी समय तुर्क सेना ने जोर किया, राजपूत पीछे हटने लगे। तुर्क सेना ने राजपूतों को घेरना आरम्भ कर दिया। शूर-वीर क्षत्रियों ने युद्ध के मैदान से भागने का इरादा नहीं किया। उन्होंने अपने जीवन का अन्तिम समय समझ लिया और आस-पास से घेरे हुए तुर्क सैनिकों पर उन्होंने अपनी तलवारों तथा भालों की एक बार फिर भयानक मार की। बहुत-से मुस्लिम सैनिक जख्मी हो कर जमीन पर गिर गये। इसके बाद ही बादशाह की सेना ने जोर का आक्रमण किया। राजपूत सैनिक मारे गये। राणा लक्ष्मणसिंह का शरीर भी धराशायी हुआ। बादशाह अलाउद्दीन की तुर्की सेना राजपूतों का नाश करके विजय का पताका फहराती हुई आगे बढ़ी। समस्त चितौर स्मशान हो रहा था। अलाउद्दीन ने अपनी सेना के साथ चितौर में प्रवेश किया और वह जब राज भवन को पार कर राजमहलों की तरफ आगे बढ़ा तो भयानक स्मशान के सिवा वहाँ पर उसे कुछ दिखायी न पड़ा। उसने राजकुमारियों और रानियों के ऊँचे प्रासाद की ओर बढ़ कर देखा। स्मशान की भीषणता में सुरंग के भीतर से चिता के निकलते हुए धुआँ के सिवा, वहाँ पर उसे और कुछ न मिला। निर्जन और नीरव चित्तौर की स्मशान भूमि पर बड़ी देर तक घूमकर बादशाह अपनी सेना के साथ लौटा और अपनी छावनी में जाकर उसने मुकाम किया। रात को विश्राम करके दूसरे ही दिन अलाउद्दीन अपनी सेना लेकर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। लौटने के समय उसके सामने प्रसन्नता न थी। ऐसा मालूम होता था, जैसे विजयी होने के बाद भी, वह पराजय की एक असह्य व्यथा को लेकर दिल्ली वापस जा रहा है।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

मेवाड़ का संग्राम

[१४४० ईसवी]

भारत में होने वाले परिवर्तन, दिल्ली राज्य की निर्बलता, तैमूरलंग की लूट, सुलतान मोहम्मद के साथ राणा मुकुल का युद्ध, मादेरिया का विद्रोह, मुस्लिम बादशाहों के साथ, युद्ध में चित्तौर की विजय।

राणा मुकुल के समय का चित्तौर

अपनी छोटी अवस्था में राणा मुकुल चित्तौर के सिंहासन पर बैठा था। उस समय उसके और चित्तौर के सामने जो भीषण परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी और जिसका निवारण, मुकुल के सौतेले भाई राजकुमार चन्द्र ने किया था।

राजकुमार चन्द्र की सहायता और उदारता से राणा मुकुल ने सुख और संतोष के साथ अपनी छोटी अवस्था बिताकर, यौवनावस्था में प्रवेश किया। वह अत्यन्त होनहार और बहादुर था। आरम्भ से ही उसके जीवन में लोक प्रियता के गुण थे। उसके आचरणों में सरलता थी और वह अपनी प्रजा का शुभ-चिन्तक था। यौवनावस्था में प्रवेश करने के बाद ही उसने शासन की बागडोर अपने हाथों में ली और बुद्धमानी के साथ राज्य के सभी कार्यों का संचालन आरम्भ किया।

उन दिनों में भारत की राजनीतिक परिस्थितियों में भयानक परिवर्तन हो रहे थे। यहाँ पर उनके विषय में कुछ प्रकाश डालना

आवश्यक है। मोहम्मद तुग़लक के मरने के बाद, उसका चचेरा भाई फ़ीरोजशाह तुग़लक दिल्ली का सुलतान बनाया गया। उसके पिता का नाम राजब था और उसकी माँ एक राजपूत वंश की लड़की थी।

जिस समय गुजरात में मोहम्मद तुग़लक की मृत्यु हुई। उस समय फ़ीरोज़शाह् उसके साथ था। उसके सुलतान बनाये जाने में बड़ा संघर्ष पैदा हुआ। लेकिन अन्त में उसी के पक्षवालों को सफलता मिली और वह सुलतान बनाया गया। आरम्भ के दो वर्ष उसने दिल्ली के राज्य की व्यवस्था में व्यतीत किये। उसने बुद्धिमानी के साथ राज्य का संचालन किया और जो लोग उसके विरोधी थे, उन पर उसने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। मोहम्मद तुग़लक के समय में ही बंगाल दिल्ली की पराधीनता को तोड़कर स्वतंत्र हो गया था। लेकिन जब फ़ीरोजशाह् दिल्ली का शासक बना तो उसने बंगाल को फिर अपने राज्य में मिलाने का प्रयत्न किया और सन् १३५३ ईसवी में उसने अपने साथ सत्तर हजार सैनिकों की एक सेना लेकर, बंगाल पर आक्रमण किया। वहाँ का अधिकारी शमसुद्दीन था। उसके साथ युद्ध हुआ। उसमें फ़ीरोजशाह की जीत हुई, लेकिन उसने वहाँ का शासन शमसुद्दीन को ही सौंप दिया। पाँच वर्षों के बाद शमसुद्दीन के लड़के सिकन्दर ने विद्रोह किया और स्वतंत्र हो जाने की कोशिश की, उसका दमन करने के लिए फ़ीरोजशाह् सेना लेकर फिर बंगाल गया और सिकन्दर को पराजित किया। हार जाने के बाद उसने फ़ीरोजशाह् के साथ सन्धि कर ली।

फ़ीरोज़शाह के हमले

फ़ीरोजशाह् स्वभाव का कट्टर था और हिन्दुओं के धर्म का विरोधी था। बंगाल से लौटने के समय रास्ते में उसने उड़ीसा

प्रदेश में जाज नगर राज्य पर आक्रमण कर दिया। उसका राजा एक हिन्दू था और उस राज्य में मन्दिरों की संख्या बहुत थी। उनमें अधिकांश मन्दिर अत्यन्त सम्पत्तिशाली थे।

फ़ीरोज़ शाह के आक्रमण का उद्देश्य उस राज्य को लूटना था। मुस्लिम सेना ने वहाँ पर आक्रमण करके मनमानी मन्दिरों की लूट की। हिन्दुओं के प्रसिद्ध मन्दिर जगन्नाथ जी को लूट कर और उसकी मूर्तियों को समुद्र में फेंक कर सत्यनाश कर डाला। अन्त में घबराकर वहाँ के राजा ने फ़ीरोज़शाह के साथ सन्धि कर ली। कई सौ हाथी उसने सुलतान को भेंट में दिये और प्रति वर्ष एक निश्चित संख्या में हाथियों के देने का वादा किया।

दिल्ली पहुँचने के बाद थोड़े ही दिनों में फ़ीरोज़ शाह ने नगर कोट पर आक्रमण किया और उसे जीतकर कई महीने तक उसकी सेना वहाँ पर लूट-मार करती रही। मुस्लिम सिपाहियों ने उस राज्य में भयानक अत्याचार किये। मन्दिरों और देवस्थानों को लूटकर गिरवा दिया और राज्य के रमणीक स्थानों को बरबाद कर डाला।

जाजनगर और नगर कोट की विजय के लगभग दस वर्ष बाद, फ़ीरोज़ शाह ने सिन्ध को जीतने का इरादा किया और एक लम्बी सेना लेकर सन् १३७१ ईसवी में वह सिन्ध प्रदेश को तरफ रवाना हुआ। उसकी सेना में सब मिलाकर नब्बे हजार सवार थे, तीन सौ अस्सी हाथी थे और पैदल सैनिकों की संख्या एक लाख से ऊपर पहुँच गयी थी।

पंजाब और सिन्ध नदी पार कर अपनी विशाल सेना के साथ फ़ीरोज़ ठट्ठा-राज्य के क़रीब पहुँच गया। वहाँ का शासन दो सरदारों के हाथों में था। राज्य के बाहर उसने अपनी सेना का मुकाम किया और धीरे-धीरे उसने छः महीने से भी अधिक समय वहाँ व्यतीत कर दिया। वहाँ के दोनों सरदारों ने अन्त में

सन्धि कर ली और उसके बाद, फ़ीरोज़ शाह वहाँ से लौटकर दिल्ली आ गया।

तैमूर लंग का आक्रमण

फ़ीरोज़शाह के बाद, तुग़लक वंश के कई एक सुलतान हुए। परन्तु वे सभी निर्बल और अयोग्य थे, इसलिए दिल्ली का शासन उनके अन्तिम दिनों में कमजोर पड़ गया था। उनकी अयोग्यता के कारण ही मन्त्री स्वच्छन्द हो गये थे। कितने ही राज्य निर्भय और निडर होकर स्वतन्त्र हो गये थे और जो अभी तक दिल्ली के राज्य में शामिल थे, वे बड़ी उपेक्षा का व्यवहार करते थे। दिल्ली की तरफ से कोई भय न रह गया था। शासन की निर्बलता में अनेक प्रकार की अव्यवस्था चल रही थी। इस अयोग्यता और निर्बलता ने दिल्ली में आक्रमण करने के लिए तैमूर लंग के सामने रास्ता खोल दिया।

तैमूर लंग का पिता तुर्कों का सरदार था। तीस वर्ष की आयु में वह स्वयं एक सरदार बन गया और तुर्कों की एक सेना को लेकर उसने दूसरे देशों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया। फ़ारस, मैसोपोटामिया और अफ़ग़ानिस्तान जीतकर उसने चीन और भारत को अपने अधिकार में लाने का इरादा किया।

तैमूर लंग का पोता पीर मोहम्मद काबुल का सरदार था। सन् १३९७ ईसवी में तैमूर ने उसे भारत पर आक्रमण करने को भेजा। उसने भारत में आकर मुलतान को घेर लिया और कुछ महीनों के बाद उसने वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया।

तैमूर लंग अपनी सेना लेकर सन् १३९८ में भारत की ओर रवाना हुआ और अटक के समीप आकर उसने सिन्ध नदी को पार किया। उसके बाद वह रास्ते में मिलने वाले गाँवों को लूटता

और मार-काट करता हुआ आगे बढ़ा। पानीपत के युद्ध-क्षेत्र को पार करता हुआ धीरे-धीरे वह दिल्ली के नजदीक पहुँच गया।

उन दिनों में सुलतान मोहम्मद तुग़लक का दिल्ली में शासन था। तैमूर लंग के भय से वह दिल्ली छोड़कर भाग गया। तैमूर लंग अपनी सेना के साथ दिल्ली की तरफ बढ़ा और बिना किसी भय के उसने नगर में प्रवेश किया। शक्तिशाली तैमूर लंग से भयभीत होकर वहाँ के समस्त अमीर, सरदार, शेख, क़ाज़ी उलमा और मौलवियों ने उसका स्वागत किया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। राज्य के अमीरों, सरदारों और मन्त्रियों ने पैदा होने वाले संघर्ष और उत्पात को बचाने की कोशिश की। वे नहीं चाहते थे कि बिना किसी कारण के नगर बरबाद किया जाय। लेकिन यह भयावह परिस्थिति अन्त में बच न सकी। तैमूर लंग के सैनिक खाने की सामग्री एकत्रित करने के लिए शहर में निकले। कहीं-कहीं पर लोगों ने देने से इनकार कर दिया। उसका परिणाम भयानक हो गया। तैमूर लंग के पन्द्रह हजार सैनिकों ने शहर में लूट-मार शुरू कर दी। एक तरफ से लोग लूटे गये और उनका कत्ल किया गया। उस सर्वनाश में दिल्ली का कोई रक्षक न था।

तैमूर लंग के तातारी सैनिकों ने आजादी के साथ दिल्ली में जो अत्याचार किये, वहाँ के निवासियों को इस प्रकार के दृश्य देखने का यह पहला मौका था। विदेशी आक्रमणकारियों के द्वारा इस प्रकार के भीषण दृश्य, भारत के दूसरे बहुत-से स्थानों और नगरों में बार-बार हो चुके थे। लेकिन दिल्ली के शक्तिशाली राजाओं के कारण, उस राज्य को सुरक्षित रहने का मौका मिला था। तैमूर लंग ने उसे नष्ट कर दिया। एक साधारण विरोध के अपराध में अत्याचारों के नाम पर नृशंसता, अमानुषिक निर्दयता और पाशविकता में कुछ बाकी नहीं रखा गया। चिरकाल से

दिल्ली की एकत्रित चिर-सम्पत्ति खूब लूटी गयी। तलवारों से काट-काटकर सभी प्रकार के लोगों का संहार किया गया। इन भीषण दृश्यों के उपस्थित होने का कारण यह हुआ कि दिल्ली राज्य का शासक वर्तमान सुलतान अयोग्य और कायर था। उसकी अयोग्यता का दण्ड वहाँ की प्रजा को भोगना पड़ा।

रामपुर का संग्राम

दिल्ली में तैमूर लंग के पहुँचते ही वहाँ का सुलतान मोहम्मद तुगलक भयभीत हो उठा था। पहले उसने तैमूर लंग का मुकाबिला करने का विचार किया था और उसने अपनी सेना की तैयारी की थी। लेकिन बाद में उसका साहस टूट गया और अपनी सेना को लेकर वह दिल्ली से चला गया। इन दिनों में चित्तौर का राणा मुकुल समर्थ हो चुका था। और वह स्वयं राज्य का संचालन कर रहा था। दिल्ली में होने वाले परिवर्तन उसके नेत्रों से छिपे न थे। वह जानता था कि इस प्रकार की आँधी किसी भी समय मेवाड़ में पहुँच सकती है। इसके लिए उसके हृदय में किसी प्रकार का भय न था। वह एक शूर-वीर राजपूत था और किसी भी संघर्ष का सामना करने के लिए वह तैयार था।

इसी अवसर पर उसे मालूम हुआ कि दिल्ली के सुलतान मोहम्मद तुगलक ने तैमूर लंग के साथ युद्ध नहीं किया और वह अपनी सेना के साथ दिल्ली से चला गया है। इसके कुछ दिनों के बाद ही उसे खबर मिली कि सुलतान मोहम्मद दिल्ली की एक बड़ी सेना के साथ मेवाड़ की तरफ आ रहा है, वह मेवाड़ में हमला करना चाहता है।

यह सुनते ही राणा मुकुल ने अपनी सेना की तैयारी की और सुलतान की सेना के साथ युद्ध करने के लिए वह रवाना हो गया। रास्ते में उसे सुलतान की सेना के आने का समाचार

मिला। निर्भीकता के साथ शत्रु का सामना करने के लिए वह बराबर आगे बढ़ा। सुलतान की सेना उधर से चली आरही थी। राणा मुकुल की सेना ने अरावली के एक प्रान्त में पहुँचकर रामपुर नामक स्थान में शत्रु का सामना किया।

दोनों सेनाओं का युद्ध आरम्भ हुआ। सुलतान मोहम्मद, तैमूर लंग का बदला राणा मुकुल से लेना चाहता था। चित्तौर की राजपूत सेना ने मुस्लिम सेना के साथ भीषण युद्ध किया और अन्त में उसे पराजित किया। सुलतान की सेना संग्राम में ठहर न सकी। उसके बहुत से सैनिक मारे गये और आखीर में हार कर उसे युद्ध के क्षेत्र से भागना पड़ा। राणा मुकुल ने बहुत दूर तक सुलतान की सेना का पीछा किया और दिल्ली राज्य के साँभर नामक प्रदेश को उसने अपने अधिकार मे कर लिया। रामपुर के मैदान में सुलतान अपने सैनिकों की एक गहरी हानि उठाकर, अपनी बची हुई सेना के साथ वह भाग कर निकल गया।

चित्तौर का उत्थान

सुलतान अपनी अयोग्यता और कायरता के लिए प्रसिद्ध हो रहा था। उसको कायर समझ कर ही तैमूर लंग ने भारत में आकर दिल्ली पर आक्रमण किया और बिना युद्ध के ही उसने वहाँ पर अपना अधिकार कर लिया। डरपोक सुलतान अपनी सेना के साथ भागकर गुजरात की तरफ चला और रास्ते में मेवाड़ पर हमला करने के उद्देश्य से उसने राणा मुकुल के साथ युद्ध किया और बुरी तरीके से पराजित हुआ। यदि उसने राणा के साथ रामपुर का युद्ध न किया होता तो, उसका साँभर का राज्य राणा मुकुल के हाथ में न आता।

अनेक कमजोरियों के साथ बहुत दिनों से दिल्ली का शासन

चल रहा था। तैमूर लंग ने आकर उसे और भी निर्बल बना दिया। भारत के जो छोटे-छोटे राज्य उसमें शामिल थे, वे धीरे-धीरे स्वतन्त्र होने लगे। चारों तरफ अशान्ति और अव्यवस्था बढ़ने लगी। दिल्ली के शासकों का जो आतंक बहुत दिनों से चला आरहा था, वह बहुत कुछ नष्ट हो गया और जो बाकी रह गया था, वह भी धीरे-धीरे मिटता जा रहा था। फ़ीरोज शाह तुग़लक के समय जो राज्य दिल्ली में शामिल थे, उनमें बहुत-से स्वतन्त्र हो गये थे।

इन दिनों में राणा मुकुल ने अपने राज्य की बड़ी उन्नति की थी। मेवाड़ के जिन स्थानों पर दूसरे राजाओं का आधिपत्य था, राणा मुकुल ने उनको जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। राज्य के विस्तार के साथ-साथ उसने अपनी सेना में भी बहुत वृद्धि कर ली थी। चित्तौर से लेकर मेवाड़ तक राणा मुकुल ने अनेक मन्दिरों और देव स्थानों का निर्माण कराया था। इन दिनों में इस राज्य ने अपनी आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में भी बड़ी उन्नति की थी।

राणा मुकुल का क़त्ल

राणा मुकुल के तीन पुत्र और एक लड़की थी। लड़की का नाम लालबाई और बड़े लड़के का नाम कुम्भ था। लालबाई का विवाह गागरौन के एक सरदार के साथ हुआ था। उस सरदार के राज्य पर मालवा वालों ने जब हमला किया तो राणा मुकुल ने अपनी एक राजपूत सेना उस सरदार की सहायता के लिए भेजी थी।

इन्हीं दिनों की बात है। मादेरिया का पहाड़ी इलाका चित्तौर के राज्य में शामिल था। वहाँ के पहाड़ी लोगों ने चित्तौर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। जब राणा मुकुल को इसकी खबर

मिली तो वह अपनी सेना लेकर विद्रोह को दबाने के लिए मादे-रिया की तरफ चला गया।

राणा मुकुल के पूर्वजों में चेत्रसिंह का सम्बन्ध किसी नीच कुल की स्त्री के साथ था। उस स्त्री के दो पुत्र पैदा हुए थे। वे मुकुल के चाचा होते थे। उनकी माता नीच कुल में उत्पन्न हुई थी। इसीलिए वे राज वंश में किसी सम्मान के अधिकारी न थे। शिशोदिया वंश के सभी लोग उनसे घृणा करते थे। मुकुल के स्वभाव में उदारता थी। वह चाहता था कि राज्य में इन्हें कोई काम दे दिया जाय, जिससे उनका निर्वाह हो सके। लेकिन उन दोनों की रुचि सेना में काम करने की थी। इसलिए बहुत दिनों से राणा मुकुल किसी अवसर की खोज में था। जब वह पहाड़ी इलाके में विद्रोह को शान्त करने के लिए जाने लगा तो उसने अपनी सेना में उन दोनों को भी साथ में ले लिया। उनमें छोटे भाई को मुकुल छोटे चाचा और बड़े भाई को बड़े चाचा कहा करता था।

जिन दिनों में मादेरिया में विद्रोह चल रहा था और उसको दबाने के लिए अपनी सेना के साथ मुकुल वहाँ पर गया था, साथ में उसके दोनों चाचा भी थे। एक दिन सायंकाल अपने सरदारों के साथ मुकुल बातें कर रहा था। उन बातों में मुकुल के दोनों चाचा अप्रसन्न हो गये और अपने अपमान का बदला लेने के लिए दोनों ने प्रतिज्ञा कर ली। इसी के फल-स्वरूप, एक दिन रात को उन दोनों ने राणा मुकुल को सोते हुए काट डाला। इस दुर्घटना के पहले ही उन दोनों भाइयों ने अपनी एक योजना बना ली थी। वे जानते थे कि राणा मुकुल का बड़ा लड़का कुम्भ अभी बालक है। इसलिए वे दोनों चित्तौर के राज्य पर अधिकार कर लेना चाहते थे।

राणा मुकुल की हत्या करके वे दोनों भाई घोड़ों पर बैठकर

चित्तौर की तरफ रवाना हुए। इस दुर्घटना का समाचार राजकुमार कुम्भ को मिल चुका था। उसने मन्त्रियों से मिलकर सिंह द्वार पर मजबूत इन्तजाम कर दिया था। इसलिए दोनों भाई चित्तौर में पहुँचकर असमर्थ हो गये और वे भीतर प्रवेश न कर सके। इसके बाद वे विद्रोही होकर कुछ समय तक चित्तौर में अधिकार करने की कोशिश करते रहे।

राजकुमार कुम्भ अपने संकट का कोई उपाय न देखकर घबरा उठा और उसने मारवाड़ के राठौर राजपूतों से सहायता माँगी। बालक कुम्भ के संकटों को सुनकर राठौर राजपूतों ने अपनी-अपनी सहायता का पूरा वादा किया और प्रतिज्ञा की कि जब तक हम लोग चित्तौर के सिंहासन पर बालक कुम्भ को नहीं बिठा लेंगे और कुम्भ युवावस्था में पहुँच कर योग्य और समर्थ नहीं हो जायगा, तब तक बालक कुम्भ और चित्तौर-राज्य के हम लोग रक्षक रहेंगे।

राणा मुकुल के दोनों चाचा चित्तौर के शत्रु बन गये थे। कुछ विरोधियों और विद्रोहियों को लेकर उन्होंने एक छोटी-सी सेना बना ली थी और उसके बल पर वे चित्तौर पर अधिकार करना चाहते थे। वे समझते थे कि कुम्भ अभी बालक है और उसका कोई सहायक नहीं हो सकता। मन्त्री और सरदार हमारे घरेलू झगड़ों में चुप रहेंगे। इन परिस्थितियों में उन दोनों ने चित्तौर पर अधिकार करने का पूरा इरादा कर लिया था और एक छोटी-सी सेना बनाकर उन लोगों ने चित्तौर को तरह-तरह से हानि पहुँचाना आरम्भ कर दिया था।

मारवाड़ के राठौर राजा ने कुम्भ की सहायता करने का वचन दिया था और उसके बाद ही उसने अपनी एक बड़ी सेना अपने एक सरदार के नेतृत्व में चित्तौर की सहायता के लिए रवाना कर दी। यह राठौर सेना चित्तौर में आकर ठहरी और

वहाँ की सेना के साथ मिल कर विद्रोहियों का पता लगाना आरम्भ किया। अन्त में मालूम हुआ कि विद्रोही लोग डर के मारे अरावली पर्वत पर चले गये हैं और पाई नामक एक सुरक्षित स्थान पर रह कर चित्तौर पर आक्रमण करने की योजना बना रहे हैं। वे अपनी तैयारी कर के वहीं से निकला करते हैं और चित्तौर राज्य में इधर-उधर हमला करके फिर वहीं पर लौट कर चले जाते हैं।

राठौर सरदार ने मारवाड़ और चित्तौर के राजपूतों की एक सेना तैयार की और उसमें चुने हुए सात हजार सैनिकों को ले कर वह अरावली पर्वत की तरफ चला। साथ में बालक कुम्भ भी था। पहाड़ के अनेक स्थानों में उन विद्रोहियों का पता लगाया और अन्त में पाई नामक स्थान में अचानक पहुँच कर राजपूतों ने विद्रोहियों पर आक्रमण किया। मुकुल के दोनों चाचा जान से मारे गये और विद्रोहियों का एक तरफ से संहार किया गया।

इसके बाद चित्तौर में होने वाले उत्पात एक साथ बन्द हो गये। मारवाड़ की राठौर सेना ने बहुत दिनों तक चित्तौर में रह कर बालक कुम्भ की सहायता की। इन दिनों में मेवाड़ और चित्तौर में कोई नयी घटना नहीं पैदा हुई।

मेवाड़ का गौरव

राणा मुकुल के मारे जाने के बाद मेवाड़ को संकटों के बादलों ने एक साथ घेर लिया था। कुम्भ राज्य का अधिकारी था, लेकिन वह बालक था और राज्य के उत्तरदायित्व के योग्य न था। इस दशा में चित्तौर के सामने एक बड़ी कठिनाई थी। राणा मुकुल ने अपने शासन काल में मेवाड़ की जो उन्नति की थी, वह सहज ही मिट्टी में मिलती हुई दिखाई दे रही थी। कितने ही राजा चितौर पर आक्रमण करने का मौका देख रहे

थे। वे मेवाड़ और चितौर को जीत कर अपने राज्य में मिला लेना चाहते थे।

संकट के इन दिनों में कुम्भ को मारवाड़ के राठौर राजा की सहायता मिली। विद्रोहियों का नाश हुआ और किसी आक्रमणकारी राजा ने हमला करने का साहस नहीं किया। संकट के उन दिनों का भी अन्त हुआ। आयी हुई कठिनाइयाँ एक-एक करके सब खतम हो गयीं और कुम्भ ने अपनी छोटी आयु को पार कर युवावस्था में प्रवेश किया। राज्याभिषेक की तैयारियाँ की गयीं और सन् १४१९ ईसवी में राणा कुम्भ चितौर के सिंहासन पर बैठा।

राणा कुम्भ के हाथों में चितौर के शासन के आते ही राज्य की अवस्था बदलने लगी। उसने पिछले कितने ही वर्ष दुर्भाग्य के घने अन्धकार में बिताये थे और मुस्लिम आक्रमणकारियों के अत्याचारों के कारण बहुत बुरे दिनों का सामना किया था। आज उन दिनों का अन्त हो गया था। राणा कुम्भ एक बुद्धिमान और दूरदर्शी शासक था। उसने अपने राज्य को सम्हालने और शक्तिशाली बनाने की कोशिश की। वह समझता था कि आज की भयानक परिस्थितियों में निर्बल राज्य किसी प्रकार जीवित नहीं रह सकते। युद्ध करने की शक्ति ही किसी भी देश और राज्य को स्वतन्त्र रहने का अवसर देती है।

राणा कुम्भ को अपनी कोशिशों में सफलता मिली। राज्य की शक्तियाँ दिन पर दिन बढ़ने लगीं। क्षीणता और निर्बलता का अन्त हुआ। बढ़ती हुई प्रतिष्ठा के कारण, चितौर का सौभाग्य लगातार उन्नत होने लगा। राणा कुम्भ ने अपने पूर्वजों के शासन काल का भी अध्ययन किया, जिसकी प्रबल शक्तियों के कारण शत्रुओं ने कभी चितौर की ओर आँख उठा कर देखने का भी साहस न किया था और उसने अपने उन पूर्वजों को भी

भली भाँति समझने की कोशिश की, जिनकी कमजोरी के कारण प्रसिद्ध चितौर की सत्ता आग में जल कर राख हो गयी थी।

राणा कुम्भ की दूरदर्शिता

कुम्भ के शासन काल में चित्तौर ने फिर एक बार अपनी उन्नति कर ली थी और राणा कुम्भ ने बहुत सजग और सावधान रह कर राज्य का शासन आरम्भ किया था। फिर भी उसे बहुत दूर पश्चिम की तरफ उठने वाली आँधियों का आभास होता था। उसे मालूम होता था कि पश्चिम में किसी भी समय कोई प्रलयकारी तूफान उठ सकता है और वह भारत में पहुँच कर यहाँ के राजाओं को लूट-मार कर मिट्टी में मिला सकता है। भारत में इन तूफानों के पहुँचने का कारण यहाँ के राजाओं की निर्बलता है। इनकी शक्तियाँ इतनी छोटी और निर्बल हैं, जो अपनी रक्षा नहीं कर सकतीं।

राणा कुम्भ बराबर यह सोचा करता था कि आक्रमणकारियों के अत्याचारों से बचने का एक ही उपाय है और वह यह कि अपने राज्य की शक्तियों को विशाल और विस्तृत बनाया जाय। अपने इसी उद्देश्य को लेकर राणा कुम्भ ने अपने राज्य का विस्तार किया था और चित्तौर के राणा समरसिंह की संग्राम-भूमि कग्गर नदी के किनारे तक उसने चितौर का झण्डा फहरा दिया था।

पश्चिम से आने वाले आक्रमणकारियों का ही भय राणा कुम्भ को न था। वह भारतीय राजाओं और बादशाहों से भी सशंकित रहा करता था। इस देश में कितने ही राज्य मुसलमानों के चल रहे थे और वे हिन्दू राजाओं के शत्रु थे। अवसर पाने पर वे राजपूतों के राज्य पर आक्रमण करते थे और उनको विध्वंस करके अपने राज्य में मिला लेते थे। राणा कुम्भ बड़ी

गढ़ नष्ट करवा डाला और नागौर में आग लगवा कर उसे जला कर खाक कर दिया। इसका बदला लेने के लिए कुतुबशाह ने मेवाड़ पर एक बार चढ़ाई की लेकिन बुरी तरह हार खाकर उसको वहाँ से भगाना पड़ा।

महमूद खिलजी और कुतुबशाह को जब कोई उपाय राणा के दबाने और पराजित करने का न मिला तो उन दोनों ने आपस में परामर्श किया और मिलकर राणा से युद्ध करने का निश्चय किया। अपने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए दोनों ने सन्धि कर ली और इसके बाद वे राणा कुम्भ के विरुद्ध आक्रमण करने की तैयारी करने लगे। महमूद खिलजी दो बार युद्ध में पराजित हो चुका था और गुजरात का कुतुबशाह भी अपनी शक्तियों की परीक्षा ले चुका था। दोनों ने पराजित अवस्था में संगठित होकर राणा कुम्भ से लड़ने और अपनी शत्रुता का बदला लेने की चेष्टा की।

आक्रमण और युद्ध

मालवा और गुजरात के दोनों बादशाहों ने अपनी सैनिक तैयारी शुरू कर दी और निकट भविष्य में चित्तौर पर आक्रमण करने का उन्होंने निश्चय किया। उनको मालूम था कि राणा कुम्भ किसी प्रकार कमजोर नहीं है। वे चित्तौर की शक्तिशाली सेना से अपरिचित न थे। इसीलिए कुछ दिनों तक वे अपनी-अपनी सेनाओं में सैनिकों की वृद्धि करते रहे और सन् १४४० ईसवी में मालवा तथा गुजरात के बादशाह अपनी अपनी फौजें लेकर मेवाड़ की तरफ रवाना हो गये।

राणा कुम्भ को खबर मिली कि मालवा और गुजरात की सेनायें युद्ध के लिए आ रही हैं। वह प्रसन्नता के साथ अपनी तैयारी में लग गया और सेना को तैयार होने का उसने आदेश

दिया। राणा कुम्भ को युद्ध के समाचार से कोई हर्ष-विस्मय नहीं पैदा हुआ। ऐसा मालूम हुआ, मानों वह युद्ध का रास्ता ही देख रहा था।

राणा कुम्भ ने मुस्लिम सेनाओं को पराजित करने के लिए अपनी पूरी तैयारी की। चौदह सौ हाथियों के साथ उसने सवारों और पैदल सैनिकों को एक लाख की संख्या में तैयार किया और अपनी इस शक्तिशाली सेना को लेकर वह युद्ध के लिए रवाना हुआ।

मालवा और गुजरात की दोनों मुस्लिम सेनायें मेवाड़ नगर के निकट पहुँच चुकी थीं। मुस्लिम सेनाओं के करीब पहुँच कर राणा कुम्भ ने मुकाम किया और अपनी राजपूत सेना को विश्राम करने की आज्ञा दी। दोनों ओर की सेनाओं के बीच लगभग तीन मील का फासिला था।

सवेरा होते-होते दोनों तरफ युद्ध की तैयारियाँ हुई और मेवाड़ के निकट एक लम्बे-चौड़े मैदान में सेनायें पहुँच गयीं। अपने भयानक हाथी पर बैठे हुए राणा कुम्भ ने कुछ समय तक युद्ध-क्षेत्र का निरीक्षण किया। दोनों ओर की सेनायें तैयार खड़ी थीं। मुस्लिम सेनाओं की ओर एक बार देख कर राणा कुम्भ ने अपनी सेना को युद्ध के लिए आदेश दिया। एक साथ दोनों ओर की सेनायें, एक-दूसरे की तरफ बढ़ी। उसके बाद संग्राम आरम्भ हो गया।

मेवाड़ के युद्ध-क्षेत्र में राजपूतों की सेना इतनी बड़ी सेना थी कि मालवा और गुजरात की दोनों फौजें मिलाकर भी उसके बराबर न होती थीं। युद्ध के मैदान में राणा कुम्भ के भयानक लड़ाकू हाथियों ने बहुत दूर तक स्थान घेर लिया था। युद्ध आरम्भ होने के कुछ ही समय बाद, चित्तौर के चौदह हजार हाथियों ने मोटी जंजीरों की जो भयानक मार शुरू कर दी तो

मुस्लिम सेनायें बहुत दूर तक पीछे की ओर हट गयीं। राजपूत सेना उनको दबाकर आगे बढ़ गयी और फिर तीन बजे दोपहर तक दोनों ओर से भीषण मार होती रही।

मुस्लिम बादशाहों की पराजय

दोपहर को तीन बजे के बाद राजपूत सेना ने पीछे हटना शुरू किया। वह जितना ही पीछे की ओर हटती जाती थी, मुस्लिम सेनायें उतना ही आगे की ओर बढ़ती हुई चली आ रही थी। राजपूत सेना एक मील पीछे हट गयी और मुस्लिम सेना के निकट आ जाने पर समस्त राजपूतों ने एक साथ तलवारों की मार शुरू कर दी। मुस्लिम सेना ने भी बाणों और तीरों की मार बन्द करके, तलवारों की मार शुरू की। जब तक मुस्लिम सैनिक बाणों की वर्षा करते रहे, राजपूत सैनिक उस समय तक बराबर पीछे हटते गये और उसके बाद एक साथ अपनी तलवारें निकाल कर राजपूतों ने वह भीषण मार शुरू की, जिससे थोड़े समय में ही मालवा और गुजरात के बहुत-से सैनिक मारे गये। पीछे हटते हुए मुस्लिम सैनिकों ने भागना शुरू कर दिया। यह दृश्य देख कर राणा कुम्भ ने विजय का झण्डा फहराते हुए राजपूतों को ललकार कर मुस्लिम सेनाओं का पीछा करने की आज्ञा दी। राजपूत सेना के पीछा करते ही मालवा और गुजरात की दोनों फौजों ने तेजी के साथ भागना शुरू किया और अपनी छावनी की सम्पूर्ण रसद और सामग्री छोड़ कर भागते हुए मेवाड़ की सीमा से वे बहुत दूर निकल गयीं। राजपूतों ने दूर तक उनका पीछा किया। लगभग सात हजार मुस्लिम सैनिक भागते हुए मारे गये और बहुत-से सैनिकों को राजपूत कैद करके अपने साथ में ले आये। उनमें मालवा का बादशाह महमूद खिलजी भी था।

मुस्लिम सेनाओं का बहुत दूर तक पीछा करके लौटने पर

राजपूत सेना ने मुस्लिम शिविर में जाकर लूट की और जितना सामान मिला, सब पर उसने अपना अधिकार कर लिया। इसके बाद विजयी राजपूत सेना अपना झण्डा फहराती हुई चित्तौर में लौट कर आगयी और पकड़े गये मुस्लिम सैनिकों के साथ-साथ महमूद खिजली को चित्तौर में मजबूत कैदखाने में बन्द करवा दिया। कुछ दिनों के बाद मुस्लिम सैनिकों को छोड़ दिया गया परन्तु महमूद खिजली को छः महीने तक कैद में रखा गया और उसके बाद बिना किसी शर्त अथवा जुर्माना के उसको भी छोड़ दिया गया।

कैद से छूटने के बाद महमूद खिजली ने राणा कुम्भ के साथ मित्रता कर ली। इसके कुछ दिनों के बाद, दिल्ली के बादशाह के साथ राणा कुम्भ का युद्ध हुआ, उसमें मालवा का बादशाह महमूद खिलजी, राणा की तरफ के युद्ध में गया था और उसने दिल्ली की मुस्लिम सेना के साथ युद्ध किया था। उस युद्ध में राणा कुम्भ की विजय हुई थी और उसके परिणाम-स्वरूप, महमूद और राणा कुम्भ की मित्रता अधिक मजबूत तथा स्थायी हो गई थी।

राणा कुम्भ के समय में चित्तौर की सैनिक शक्ति बड़ी प्रबल हो गयी थी और चित्तौर राज्य ने अपनी बड़ी उन्नति की थी। चित्तौर और मारवाड़ में बहुत-से किले थे जो शत्रुओं को पराजित करने के लिए बनवाये गये थे। उन सब किलों की संख्या चौरासी थी। और इन चौरासी किलों में बत्तीस किले राणा कुम्भ ने बनवाये थे जो बहुत ही मजबूत थे।

पचास वर्ष तक राणा कुम्भ ने बड़ी योग्यता और वीरता के साथ चित्तौर में शासन किया। इसके बाद ऊदा अथवा उदयसिंह नामक राणा के पुत्र ने बुढ़ापे में अपने पिता की हत्या की। सन् १४७३ ईसवी में चित्तौर के राज्य को हरा-भरा छोड़ कर राणा कुम्भ ने स्वर्गलोक की यात्रा की।

बारहवाँ परिच्छेद

पानीपत का पहला युद्ध

[१५२६ ईसवी]

बाबर के पहले दिल्ली का शासन, तैमूरलंग का वंशज : बाबर, काबुल में बाबर का अधिकार, भारत में बाबर के हमले, लाहौर की लूट, दिल्ली में आक्रमण, बाबर की विजय।

दिल्ली के राज्य की बढ़ती हुई कमजोरी

पानीपत का युद्ध, भारत के युद्धों में बहुत प्रसिद्ध माना जाता है। उन दिनों में इब्राहीम लोदी दिल्ली का शासक था। उसे पराजित करके बाबर ने पानीपत के युद्ध में जो गौरव प्राप्त किया, उसने भारत में मुग़ल-शासन की नींव डाली थी, जो कई शताब्दियों तक किसी के उखाड़े उखड़ न सकी। पानीपत का पहला युद्ध इसलिए और भी प्रसिद्ध हुआ कि उसके बाद से भारतीय राजनीति में एक महान परिवर्तन हुआ। इसके पहले जिन विदेशी जातियों के आक्रमण हुए थे, वे केवल इस देश को लूटने के उद्देश्य से यहाँ तक पहुँचे। उनके आक्रमण हुए, लूट-मार के भयानक दृश्य उपस्थित हुए, नर-संहार हुआ, मन्दिर और तीर्थ स्थान नष्ट किये गये और उसके बाद वे आक्रमणकारी लूट-मार कर और यहाँ की सम्पत्ति को अपने साथ लेकर वापस चले गये। इसी उद्देश्य को लेकर भारत में बाहरी आक्रमण ईसा से कई सौ वर्ष पहले आरम्भ हुए थे और पानीपत के पहले युद्ध तक उनका सिलसिला बराबर जारी रहा। इसके पश्चात् उनका अन्त हुआ

और एक महान परिवर्तन के साथ भारत का शासन आरम्भ हुआ। इसीलिए पानीपत के इस युद्ध को एक बड़ी श्रेष्ठता दी गई है।

पानीपत के युद्ध को जीत कर बाबर ने दिल्ली में अपना अधिकार किया था। इसलिए यहाँ पर साफ-साफ यह जान लेने की अवश्यकता है कि बाबर के आक्रमण के पहले दिल्ली के राज्य की क्या अवस्था थी और उसकी पराजय के कारण क्या हुए।

तैमूर लंग ने सन् १३९८ ईसवी में दिल्ली पर आक्रमण किया था। सुलतान सिकन्दर ने काश्मीर में सन् १३९४ से लेकर १४१६ ईसवी तक राज्य किया। उसने तैमूर लंग को भारत में बुलाने के लिए अपना एक दूत समरकंद भेजा था। तैमूर के हमले का उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। उसके आने के पहले ही दिल्ली का राज्य कमजोर पड़ गया था। तुगलक बंश के अन्तिम सुलतान शासन में निकम्मे और अयोग्य हो चुके थे। उनकी बिलासिता ने उनको इस योग्य नहीं रखा था कि वे आक्रमणकारी के साथ युद्ध करके अपने राज्य की रक्षा कर सकते। तैमूरलंग के दिल्ली में पहुँचते ही उसका शासक सुलतान महमूद द्वितीय अपनी सेना को लेकर दिल्ली से भाग गया था और दिल्ली में प्रवेश करने के लिए उसने तैमूर के सामने द्वार खोल दिया था।

तैमूर लंग भारत में राज्य करने नहीं आया था। दिल्ली में लूट-मार करके वह वापस चला गया और जब महमूद को उसके चले जाने की खबर मिली तो वह लौट कर फिर दिल्ली आ गया और सिंहासन पर बैठ कर फिर राज्य करने लगा।

महमूद के शासन-काल में दिल्ली का राज्य बहुत निर्बल हो गया था। राज्य के बहुत से हिस्से अलग होकर स्वतंत्र हो गये थे। महमूद उनको अपनी अधीनता में रख न सका। उसका जितना राज्य बाकी रह गया था, उसमें भी उसका प्रभाव नष्ट हो गया था। शासन की निर्बलता में प्रजा की अशिष्टता स्वाभाविक

होनी है। दिल्ली की लूट का धन तैमूर लंग के साथ समरकंद पहुँच गया था। उसके अत्याचारों से प्रजा बरबाद हो गयी थी। खेतों की फसल खराब हो जाने के कारण राज्य में दुर्भिक्ष फैल रहा था।

तैमूर के आक्रमण का प्रभाव

तैमूर लंग दिल्ली और उसके आस-पास लूट-मार करके समरकंद वापस चला गया था, फिर भी उसके आक्रमण के कई एक प्रभाव दिल्ली के राज्य पर पड़े। लौटने के पहले तैमूरलंग ने पंजाब में सैयद खिज्र खाँ नामक एक सूबेदार को मुलतान का राज्य दे कर पंजाब में छोड़ दिया था। उसने दिल्ली राज्य की अव्यवस्था देखकर आक्रमण किया और वहाँ पर अधिकार कर लिया। उसके बाद वहाँ पर सैयद वंश वालों का शासन आरम्भ हुआ। तैमूर लंग के आक्रमण का सब से बड़ा प्रभाव यही था।

सैयद वंशजों ने सन् १४१४ ईसवी से लेकर १४५१ ईसवी तक दिल्ली में शासन किया। खिज्र खाँ को मिलाकर उस वंश में पाँच सुलतान हुए। खिज्र खाँ का स्वभाव सीधा, नम्र और दयालु था। अपने इन्हीं गुणों के कारण, राज्य के कई स्थानों में विद्रोहों को दमन करने में उसे सफलता मिली थी। सन् १४२१ ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी थी।

सैयद वंश का अन्तिम सुलतान आलमशाह अत्यन्त अयोग्य और कायर साबित हुआ। शान्ति और विलासिता उसे बहुत प्रिय थी और जीवन की इन्हीं दोनों बातों ने शासन में उसे अयोग्य बना दिया था। उसका परिणाम यह हुआ कि पंजाब के सूबेदार बहलोल लोदी ने उससे दिल्ली का राज्य छीन लिया और वह स्वयं वहाँ का शासक बन गया। यहीं से लोदी वंश के शासन का आरम्भ हुआ।

बहलोल लोदी ने सन् १४५१ से लेकर १४८८ ईसवी तक बड़ी बुद्धिमानी के साथ दिल्ली में शासन किया। आरम्भ में ही जौनपुर के शर्क़ी सुलतान महमूद ने दिल्ली पर हमला किया, लेकिन युद्ध में उसकी भयानक पराजय हुई और उसका फल यह हुआ कि दूसरे राज्य जो दिल्ली पर आक्रमण की बात सोच रहे थे, वे भयभीत होकर चुप हो रहे। बाद में बहलोल लोदी ने एक बड़ी फौज लेकर जौनपुर के राज्य पर हमला किया। उसके सुलतान ने घबराकर अधीनता स्वीकार कर ली। लेकिन बहलोल लोदी ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया और जौनपुर के राज्य पर अपना कब्जा कर लिया। उसने अपने शासन-काल में बड़ी उन्नति की।

लोदी वंश का अन्तिम सुलतान इब्राहीम लोदी सन् १५१८ ईसवी में दिल्ली की गद्दी पर बैठा। यह स्वभाव का अभिमानी और क्रूर था। उसके उद्दण्ड स्वभाव से राज्य के मन्त्री और सरदार बहुत असंतुष्ट रहने लगे। थोड़े ही दिनों में चारों तरफ़ असंतोष फैलने लगा। उसके व्यवहार की कठोरता से कोई प्रसन्न न रहा। एक तरफ़ से लेकर राज्य में सर्वत्र लोग उसकी बुराई करने लगे और सब के सब उसके अशुभचिंतक बन गये।

इब्राहीम लोदी के असह्य व्यवहारों से ऊब कर राज्य के बड़े-बड़े अधिकारी चाहने लगे कि जैसे भी हो, इसका राज्य समाप्त हो और कोई भी दूसरा आकर यहाँ पर शासन करे। इब्राहीम के कठोर शासन के कारण यह दुरवस्था यहाँ तक बढ़ी कि उसके चाचा अलाउद्दीन और पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ ने काबुल के बादशाह बाबर को बुलाने के लिए उसके पास अपने दूत भेजे।

मुग़ल-राज्य का संस्थापक : बाबर

तैमूर लंग ने काशगर से लेकर ईजियन सागर तक अपने

राज्य का विस्तार कर लिया था। जितने देशों को जीत कर उसने अपना राज्य कायम किया था, वे सब उसकी जिन्दगी तक ही ठहर सके। सन् १४०५ ईसवी में तैमूर की मृत्यु हुई। उसी समय से उसके राज्य का क्षीण होना आरम्भ हो गया और कुछ ही दिनों में उसके वंशजों में केवल खुरासान अर्थात उत्तरी ईरान, आमूसीर के प्रदेश, काबुल और गजनी के राज्य रह गये। हरात खुरासान की राजधानी थी। आमूसीर प्रदेश में तीन छोटे-छोटे राज्य शामिल थे। इन तीनों राज्यों में एक था समरकंद, दूसरा था हरात बदख्शाँ और तीसरा फ़रगना का राज्य था। फ़रगना की राजधानी अन्दिजान में थी।

फ़रगना-राज्य में उमर शेख का शासन था। सन् १४८३ ईसवी मे उसके एक लड़का पैदा हुआ, उसका नाम बाबर रखा गया, जो संसार के इतिहास में प्रसिद्ध हुआ। फ़रगना उसी मध्य एशिया का एक छोटा-सा राज्य था, जिसकी अनेक जातियों ने आकर भारत में आक्रमण किये थे और बहुत समय तक भारतीय राज्यों का विध्वंस किया था।

बाबर का प्रारम्भिक जीवन

अपनी छोटी अवस्था में बाबर ने शिक्षा पायी थी और उसने तुर्की और परशियन-दोनों भाषाओं में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। उसके जीवन की तैयारी का बहुत-कुछ काम उसके वंश की एक सुयोग्य स्त्री ने किया था। बाबर ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि मेरी शिक्षा और योग्यता का बहुत-कुछ श्रेय मेरे परिवार की एक स्त्री को है और वह मेरी दादी थी। उसकी दादी अत्यन्त समझदार थी। जीवन के अनेक सुन्दर गुणों ने उसे श्रेष्ठता प्रदान की थी,-वह स्त्री परिश्रम करना और कठिनाइयों का सामना करना जानती थी। उसके स्वभाव में अद्भुत धैर्य था।

वह सदा बड़ी दूरदर्शिता से काम लेती थी। बाबर ने अपनी दादी के इन गुणों को स्वीकार किया है और अपनी अनेक अच्छाइयों का जिक्र करके उसने मन्जूर किया है कि अगर दादी से मुझे जीवन के ये गुण न मिले होते तो पता नहीं, मैं क्या होता।

बाबर ने अपने प्रारम्भिक जीवन में भीषण कठिनाइयों का सामना किया था। उसकी कठिनाइयों में ही उसके जीवन की रचना हुई थी। उसके जीवन-चरित्र मे उपन्यासों की भाँति भयानक घटनायें भरी हुई है। उसके सम्बन्ध में यह कहना अनुचित नहीं है कि उसका समस्त जीवन कठिनाइयों में रहा। विपदाओं ने उसके जीवन में अपूर्व साहस उत्पन्न किया था। वह कभी घबराना न जानता था।

बाबर में अनेक अद्भुत गुण थे। वह अच्छी पुस्तकों के पढ़ने का शौकीन था। भयानक कठिनाइयों के समय भी साहस से काम लेने मे वह सदा प्रसन्न होता था। किसी भी समस्या के निर्णय करने में उसको देर न लगती थी। आदमी को पहचानना वह खूब जानता था। इन सम्पूर्ण बातों के साथ-साथ उसमें एक गुण और था। अपने विचारों को शुद्ध और स्पष्ट भाषा में प्रकट करने का उसे बहुत अच्छा अभ्यास था।

लड़कपन से ही बाबर शासन करना जानता था। उसके विचार ऊँचे थे और विजय की अभिलाषाओं ने उसे अद्भुत शक्तियाँ प्रदान की थीं। वह एक अच्छा विजेता था, शासक था, लेकिन दयावान था। उसे न्याय बहुत प्रिय था। प्राकृतिक दृश्यों के देखने का वह बड़ा शौकीन था। लड़कपन से ही वह तलवार चलाने में निपुण था। घोड़े का वह अच्छा सवार था।

जीवन के संघर्षों का सामना

जिस समय बाबर की अवस्था ग्यारह वर्ष की थी, उसके पिता

उमरशेख की मृत्यु हो गयी। पिता के मरने के बाद, उस अबोध बालक पर उत्तरदायित्व का जो बोझ आया, उसके योग्य वह न था। फिर भी उसे अपने राज्य की देख-रेख का कार्य आरम्भ कर देना पड़ा। इस छोटी सी आयु में उसका कोई संरक्षक न था। उसे अपने बल भरोसे पर खड़ा होना पड़ा। उसके चाचा और परिवार के दूसरे लोगों ने बाबर की इस विवशता का लाभ उठाना चाहा। वे लोग समझते थे कि बाबर अभी कुछ समझने के योग्य नहीं है। इसलिए वे उसके राज्य का लाभ उठाना चाहते थे। लेकिन बाबर ने उनको ऐसा करने का मौका नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि परिवार के लोगों के साथ उसकी शत्रुता पैदा हो गयी।

बाबर ने इन संकटों की कुछ भी परवाह न की। इससे शत्रुता में वृद्धि होने लगी और भयानक संघर्षों का जन्म हुआ। वंश के लोगों ने लड़कर उसकी रियासत छीन लेने की कोशिश की। परन्तु बाबर को इससे कुछ भी घबराहट न हुई। अपनी रियासत की रक्षा करने के लिए उसे कई बार लड़ने के लिए मैदानों में जाना पड़ा। उन मौकों पर उसकी दादी अहसानदौलत बेगम ने उसका साथ दिया, जिससे बाबर की जीत हुई।

अपने साहस के बल पर बाबर ने समरकंद और फ़रगना के राज्यों पर अधिकार करने की कोशिश की। अपनी छोटी-सी सेना को लेकर उसने ज़रफ़शाँ नदी के किनारे उज़्बक सरदार मोहम्मद शैबानी के साथ युद्ध किया। इस लड़ाई में बाबर की बुरी तरह पराजय हुई। युद्ध के मैदान से अपने आदमियों के साथ बाबर हार कर भागा। मोहम्मद शैबानी के अत्याचारों से बाबर अत्यन्त भयभीत हो गया था। अपने राज्य को छोड़ कर वह काबुल की तरफ़ रवाना हुआ। एक बड़ा रास्ता पार कर जिस समय बाबर बदख़्शाँ पहुँचा था, उसी समय उसे ख़बर

मिली कि मोहम्मद शैबानी अपनी फौज के साथ इसी तरफ आ रहा है। इस समाचार से बदख्शाँ में बड़ी घबराहट पैदा हो गयी। शैबानी के डर से बदख्शाँ के बहुत-से आदमी अपना घर-द्वार छोड़कर बाबर के साथ वहाँ से भागे। उसकी सेना में पहाड़ों के रहने वाले जंगली सैनिक थे। बाबर ने बदख्शाँ से निकल कर सीधा काबुल का रास्ता पकड़ लिया।

मध्य एशिया में बाबर की पराजय

काबुल में बाबर के चाचा का राज्य था। सन् १५०१ ईसवी में उसके चाचा की काबुल में मृत्यु हो गयी थी। कन्दहार में उन दिनों चंगेजखाँ के वंशजों का शासन चल रहा था। बाबर के चाचा के मर जाने पर मंगोल जाति के लोगों ने काबुल पर कब्जा कर लिया था और उसके बाद अब तक वहाँ पर उन्हीं का राज्य चल रहा था।

अपनी सेना के साथ बाबर बदख्शाँ से रवाना हो चुका था और उसके साथ अब वहाँ के बहुत-से आदमी शामिल हो चुके थे। उन सब की सेना बनाकर बाबर हिन्दू कुश पार करने के बाद काबुल में पहुँचा और वहाँ के अधिकारी मंगोलों पर उसने हमला कर दिया। बिना किसी तरह की तैयारी के मंगोल कुछ समय तक बाबर के साथ लड़ते रहे और अन्त में उनकी पराजय हुई। सन् १५०४ ईसवी में बाबर ने काबुल पर अपना अधिकार कर लिया।

काबुल के सिंहासन पर बैठकर भी बाबर को शान्ति न मिली। उसका ध्यान फ़रगना की तरफ लगा था। पूर्वजों के राज्य पर उजबग लोगों का शासन बाबर को अधीर बना रहा था। उसने मोहम्मद शैबानी के साथ युद्ध करके फ़रगना जीत लेने की बात कई बार सोची, लेकिन उसका साहस काम न कर

सका। इधर उज्बग सरदार मोहम्मद शैबानी का प्रभुत्व बराबर बढ़ रहा था। उसने आमू के नीचे काँठे—ख्वारीज्म को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया था। उसके बाद अराल और बदख़्शाँ के मध्य में सीर और आमू के समस्त राज्यों को जीतने के बाद उसने सन् १५०७ ईसवी तक खुरासान पर भी अपना कब्जा कर लिया था।

उज्बग लोगों के इस राज्य-विस्तार से तैमूर के वंशजों का मध्य एशिया से अस्तित्व समाप्त हो रहा था। केवल एक काबुल में बाबर राज्य करता हुआ दिखायी दे रहा था। खुरासान पर अधिकार कर लेने के बाद मोहम्मद शैबानी कन्दहार की तरफ रवाना हुआ। उसके आने की खबर काबुल में बाबर को मिली। वह भयभीत हो उठा और काबुल से भागकर बाबर जलालाबाद पहुँच गया। लेकिन जब बाबर को मालूम हुआ कि मोहम्मद शैबानी काबुल नहीं गया तो जलालाबाद से लौटकर वह फिर काबुल पहुँच गया और बदख़्शाँ में उसने सन् १५०९ ईसवी में अपना राज्य कायम कर लिया।

इन्हीं दिनों में ईरान के शाह इस्माइल के साथ उज्बग-सरदार मोहम्मद शैबानी का युद्ध आरम्भ हुआ। उसमें मोहम्मद शैबानी की पराजय हुई और हार कर भागते हुए सन् १५१० ईसवी में मोहम्मद शैबानी की मृत्यु हो गयी। इसी अवसर पर बाबर ईरान के शाह इस्माइल से मिला और उसकी ओर से उसने समरकन्द में अधिकार कर लिया। समरकन्द का राज्याधिकार बाबर को मिले हुए अभी दो वर्ष भी नहीं बीते थे कि उज्बग लोगों ने संगठित होकर आक्रमण किया। उसमें बाबर की फिर हार हुई और आक्रमणकारियों ने बदख़्शाँ की पश्चिमी सीमा तक सम्पूर्ण राज्य अपने अधिकार में कर लिया। इसके बाद समरकन्द में पराजित होकर सन् १५१३ ईसवी में बाबर काबुल

चला आया और उसके बाद उसने मध्य एशिया की तरफ से अपना मुँह मोड़ लिया।

पंजाब में बाबर के आक्रमण

मध्य एशिया से बाबर निराश हो चुका था। अब तक उसे कहीं पर भी सफलता न मिली थी। इसलिए काबुल में लौटकर उसने अपनी शक्तियों को विस्तार देना आरम्भ किया। सब से पहले उसने अपना काबुल का राज्य मजबूत किया। फौज में सैनिकों की संख्या की वृद्धि की। रण-कौशल के नये-नये तरीकों का अभ्यास किया। युद्ध के नवीन अस्त्र-शस्त्र निर्माण कराये और अपनी सेना के सैनिकों को युद्ध-कला की नयी-नयी बातों के अभ्यास कराये। इसमें बाबर ने पूरे पाँच वर्ष व्यतीत किये।

काबुल के राज्य को शक्तिशाली बनाकर और एक अच्छी सेना को अपने अधिकार में लेकर बाबर सन् १५१९ ईसवी में भारत की ओर रवाना हुआ। रास्ते में बाजौर पर उसने हमला किया। यहाँ के निवासी सीधे-सादे आदमी थे और उनके लड़ने के हथियार पुराने तरीके के थे।

बाजौर में बाबर को अधिक युद्ध नहीं करना पड़ा। नये हथियारों के अभाव में बाजौर वालों की पराजय हुई और बाबर ने वहाँ पर अधिकार कर लिया। उसी रास्ते पर आगे बढ़कर बाबर ने स्वात पार करने के बाद बुनेर पर हमला किया और सहज ही वहाँ पर भी उसने अपना कब्जा कर लिया। वहाँ से चलकर वह सिन्ध नदी को पार करते हुए नमक की पहाड़ियों की तरफ बढ़ा और झेलम नदी के दाहिने किनारे पर जाकर भीरा नामक स्थान पर भी कब्जा कर लिया।

अपनी विजय के साथ, बाबर आगे बढ़ता गया। रास्ते में गक्कर सरदारों के साथ उसे कई स्थानों पर लड़ाइयाँ करनी

पड़ीं। गक्कर लोग युद्ध में बड़े बहादुर थे और भयानक रूप से तीरों की वर्षा करते थे। लेकिन बाबर की सेना के सामने उनको पराजित होना पड़ा।

गक्कर सरदारों को जीतकर जैसे ही बाबर आगे बढ़ा, गक्करों ने मुस्लिम-राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। वे किसी प्रकार मुसलमानों का राज्य अपने यहाँ स्वीकार करने के लिए तैयार न थे। उनके विद्रोह को दबाने के लिए बाबर को फिर पीछे की तरफ अपनी सेना के साथ लौटना पड़ा और दूसरी बार आकर पंजाब में स्यालकोट तक पहुँच गया। बाबर तैमूर लंग का वंशज था। वह पंजाब के कई एक स्थानों पर कब्जा कर चुका था और तैमूर का वंशज होने के कारण वह उसके जीते हुए स्थानों पर भी अधिकार करना चाहता था। स्यालकोट से लौटकर बाबर काबुल चला गया। उसके जाते ही भारतीयों ने उसके जीते हुए स्थानों पर फिर से अपना अधिकार कर लिया और भारत में बाबर की विजय का कुछ भी अस्तित्व बाकी नहीं रखा।

भारत में बाबर के आगे बढ़ने के कारण

काबुल से चलकर बाबर ने पंजाब के कई स्थानों पर आक्रमण किया और उनको जीतकर वह जैसे ही काबुल वापस गया, हिन्दुस्तानियों ने उन स्थानों पर फिर कब्जा कर लिया और बाबर के अधिकारों को मिटा दिया। अब इसके बाद देखना है कि इस दशा में, भारत में बाबर के आगे बढ़ने के कारण क्या हुए? अभी तक उसने पंजाब के जिन स्थानों पर अधिकार किया था, उनको वह सुरक्षित न रख सका था। इसलिए उसकी यह जीत कोई बड़ा महत्व नहीं रखती थी। मध्य एशिया से वह निराश हो चुका था। कई बार कोशिश करने के बाद भी

अपने पूर्वजों के मुख्य राज्यों पर वह अधिकार न कर सका था। अपने जन्म-स्थान फ़रगना के साथ-साथ वह तैमूर की राजधानी समरकन्द को भी खो चुका था। काबुल को छोड़कर कहीं पर रह सकने का उसे अवसर नहीं मिला था।

बाबर के जीवन का सुरक्षितकाल सन् १५१८ ईसवी के साथ आरम्भ हुआ। इसी वर्ष दिल्ली के सिंहासन पर इब्राहीम लोदी बैठा था। उसकी कठोरता और अप्रियता के कुछ विवरण इसी परिच्छेद में पहले लिखे जा चुके हैं। उनकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है। लेकिन इतना जरूर देख लेना है कि बाबर को भारत में और विशेषकर दिल्ली तक बुलाने में दिल्ली के शासन की अयोग्यता का कहाँ तक अपराध था।

इब्राहीम लोदी, सिकन्दर लोदी का लड़का था। सिकन्दर के समय तक दिल्ली का शासन किसी प्रकार चलता रहा। यद्यपि उसमें कमजोरियाँ पैदा हो चुकी थीं। सन् १५१८ ईसवी में इब्राहीम लोदी दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। वहाँ के शासन में अयोग्यता और निर्बलता तो चल ही रही थी, कटुता और अप्रियता की वृद्धि ने उस राज्य को मरणासन्न बना दिया।

इब्राहीम लोदी के शासन के कुछ ही वर्ष बीते थे। उसके राज्य के विरोधी पैदा हो गये। उनकी यह आवश्यकता यहाँ तक बढ़ी कि जैसे भी हो, दिल्ली में इब्राहीम लोदी का शासन खतम होना चाहिए। आवश्यकता स्वयं अपनी पूर्ति के साधन पैदा करती है। इब्राहीम लोदी के विरोधियों को काबुल में बैठा हुआ बाबर दिखाई पड़ने लगा। उनकी समझ में वह एक शक्तिशाली मुस्लिम बादशाह था, जिसने पंजाब में प्रवेश करके आसानी के साथ कई स्थानों पर अधिकार कर लिया था। उन सब की समझ में बाबर उस मध्य एशिया का निवासी और लड़ाकू था, जिसके

रहने वालों के हमलों से भारत देश का बहुत पहले सर्वनाश हो चुका था।

बाबर को शक्तिशाली समझ कर भारत में बुलाने की कोशिशें होने लगीं। पंजाब से लौटने के बाद, बाबर काबुल में चुपचाप बैठा न था। मध्य एशिया में परास्त और निराश होने के बाद भी वह बार-बार फ़रगना और समरकंद की ओर देखता था। संसार के दूसरे राज्यों की अपेक्षा पूर्वजों के राज्य उसे अधिक आकर्षित कर रहे थे।

इन्हीं दिनों में सुलतान इब्राहीम लोदी के चाचा आलम खाँ अलाउद्दीन ने काबुल में पहुँच कर बाबर के साथ दिल्ली-राज्य की सभी प्रकार की बातें बतायीं। बाबर के साहसी होने में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। वह आदमी को पहचानना जानता था। दिल्ली की तरफ आगे बढ़ने में उसे समय अनुकूल मालूम हुआ। सुलतान इब्राहीम लोदी की निरंकुशता के कारण लगभग सभी सुविधायें बाबर को प्रत्यक्ष दिखाई देने लगीं। इब्राहीम को पराजित करके दिल्ली का राज्य प्राप्त करना उसे सुगम मालूम होने लगा। उसने अलाउद्दीन की बातों को स्वीकार कर लिया।

लाहौर का विनाश और विध्वंस

बाबर अपनी सेना लेकर भारत की सीमा की तरफ रवाना हुआ और भीरा को पार कर वह लाहौर के निकट पहुँच गया। दौलत खाँ दिल्ली-राज्य की ओर से लाहौर का सूबेदार था। लेकिन वह कुछ पहले सूबेदारी से निकाल दिया गया था। उसके बाद वह सुलतान इब्राहीम लोदी का शत्रु बन गया था और बाबर से उसने मेल कर लिया था। दिल्ली-राज्य की तरफ दौलत खाँ के साथ जो व्यवहार किया गया था, उसका बदला

देने के लिए वह बाबर की फौज में एक अफसर हो गया और जब काबुल की फौज ने लाहौर में प्रवेश किया तो दौलत खाँ ने भीषण नर-संहार शुरू कर दिया।

काबुल की फौज ने लाहौर में एक तरफ से लूट-मार आरम्भ कर दी और वहाँ के सम्पूर्ण बाजारों को लूट कर उनमें आग लगा दी। बाबर ने कई दिनों तक लाहौर में मुकाम किया और उसकी फौज ने उस नगर को लूट कर उजाड़ दिया। भयानक रूप से वहाँ के निवासियों का सर्वनाश किया गया और सम्पूर्ण शहर आग लगा कर जला दिया गया।

लाहौर का विनाश और विध्वंस करने के बाद, बाबर की फौज के सिपाहियों ने लाहौर शहर के आस-पास ग्रामों को लूटा और लोगों का कत्ल किया। इसके बाद, काबुल की फौज आगे बढ़ कर और तेजी के साथ चल कर दीपालपुर पहुँच गयी। वहाँ पर भी बाबर की सेना ने उन्हीं अत्याचारों से काम लिया, जो लाहौर में किये जा चुके थे। काबुल की फौज के सिपाहियों ने भयानक निर्दयता का व्यवहार किया। दीपालपुर पहुँच कर वह नगर में आँधी की तरह टूट पड़ी और बहुत समय तक उसने नगर का विध्वंस किया। वहाँ के निवासियों के बिना किसी अपराध और विरोध के उनको एक तरफ से काट-काट कर फेंक दिया गया। उसके बाद उस नगर की लूट शुरू हुई। उस लूट में काबुल की सेना को कई दिन लग गये। वहाँ का किला बहुत मजबूत था और उसकी रक्षा के लिए दिल्ली की एक सेना वहाँ पर रहा करती थी। किले के आदमियों का संहार करके बाबर की फौज ने उस किले पर कब्जा कर लिया।

बाबर ने दीपालपुर के किले में अपनी एक सेना रखी और उस प्रान्त की रक्षा के लिए उसने विश्वासी अफसरों को वहाँ पर नियुक्त किया। इसके पश्चात् उसने अलाउद्दीन को वहाँ का सुल-

तान बनाया और वहाँ का शासन उसे सुपुर्द किया। फिर वह दीपालपुर से लौट कर काबुल चला गया।

बाबर के आक्रमण की नयी तैयारी

काबुल में लौट कर बादशाह बाबर ने भारत में आक्रमण करने की तैयारी शुरू कर दी। लाहौर में हमला करके और उसे लूट-मार करके बाबर का उत्साह बढ़ गया था। उसके जीवन का यह पहला हमला था, जिसमें उसको पूर्ण रूप से सफलता मिली थी। उसे मालूम था कि भारत में बहुत-से राज्य हैं और उनमें दिल्ली का राज्य सब से बड़ा और शक्तिशाली है। लेकिन लाहौर में दिल्ली की शक्ति का उसे बहुत-कुछ अनुमान हो गया था। उसे न मालूम था कि लाहौर को इतनी आसानी के साथ जीता जा सकता है। इस आक्रमण ने उसके साहस और उत्साह को कई गुना बढ़ा कर अधिक कर दिया।

दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी की कमजोरियाँ अब बाबर से छिपी न रह सकीं। भीतर से लेकर बाहर तक, उसके फैले हुए शत्रुओं ने उसे निर्बल और अयोग्य बना दिया है, इस रहस्य को बाबर भली भाँति समझ सका। दिल्ली की शक्तियों को समझने के लिए ही उसने पिछली बार के आक्रमण को लाहौर तक सीमित कर रखा था।

किसी भी अवस्था में दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए बाबर को एक बड़ी शक्तिशाली सेना की जरूरत थी। दिल्ली का आक्रमण भारत का आखिरी आक्रमण है, बाबर इस बात को जानता था। इसीलिए उसने बड़ी सावधानी के साथ दिल्ली के आक्रमण की तैयारी शुरू की और उसका श्री गणेश उसने नवम्बर सन् १५२५ ईसवी में किया।

हुमायूँ बाबर का बड़ा लड़का था। लड़ाकू सैनिकों और

सेनापतियों के लिए उसने मुस्लिम देशों की यात्रा की और उन देशों से लाकर काबुल में उसने सैनिक और सेनापति एकत्रित किये। लाहौर और दीपालपुर की लूट के बाद, बाबर के पास सम्पत्ति की कमी न रह गयी थी। लाहौर के हमले में लूटकर वह इतना धन अपने साथ ले गया था कि उसके द्वारा वह जितनी बड़ी फौज चाहता, काबुल में एकत्रित कर सकता था। उसने यही किया भी और शूर-वीर सैनिकों तथा सेनापतियों को वह काबुल में जमा करने लगा। कुछ दिनों में उसके पास लड़ने वालों की एक बहुत बड़ी सेना जमा हो गयी।

सेना के साथ-साथ बाबर ने युद्ध के नवीन और उत्तम से उत्तम हथियारों को भी एकत्रित किया। इस समय बाबर के पास सात सौ मजबूत योरोपियन तोपें थीं और उनको अलग-अलग गाड़ियों पर रखा गया था। युद्ध की सामग्री और नये तरीके के बहुत अस्त्रों को अधिकार में लेकर बाबर अपनी विशाल सेना के साथ फिर भारत की ओर रवाना हुआ।

पानीपत में भयानक रक्तपात

बाबर की सेना दिल्ली की तरफ चली आ रही थी। दिल्ली के उत्तर लगभग पचास मील की दूरी पर पानीपत के मैदान में २१ अप्रैल सन् १५२६ ईसवी को बाबर की सेना के साथ, दिल्ली की सेना का सामना हुआ। इब्राहीम लोदी अपने साथ एक लाख सैनिकों की सेना और एक सौ हाथी लेकर युद्ध-स्थल पर पहुँचा था। दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया।

बाबर ने युद्ध के मैदान में अपनी सेना के आगे भयानक मार-करने वाली सात सौ तोपों की गाड़ियों को एक लम्बी पंक्ति में लगवा दिया था और उन गाड़ियों के बीच में कहीं-कहीं पर इतना फासिला रखा गया था, जिनके रास्ते से निकल कर काबुल

के सैनिक दिल्ली की सेना पर आक्रमण कर सकें। तोपों के निरीक्षण और संचालन का कार्य उस्ताद अली और मुस्तफ़ा के हाथों में था। दोनों ही इस कार्य में अत्यन्त होशियार थे। तोपों के पीछे चुने हुए तेरह हज़ार शूर-वीर सैनिकों और सवारों की सेना लगी हुई थी।

युद्ध-क्षेत्र में बाबर ने अपनी सेना को इस तरीके से खड़ा किया था, जिससे लड़ाई में उसके सैनिक कम-से कम मारे जाँय। वह पहले से ही जानता था कि इब्राहीम लोदी के साथ बहुत बड़ी सेना युद्ध के लिए आवेगी, जिनके संहार के लिए उसने अपनी सेना के आगे तोपें लगवा दी थीं।

युद्ध आरम्भ हुआ और दोनों ओर से भयानक मार शुरू हो गयी। बाबर की तोपें आरम्भ से ही गोले फेंकने लगीं, जिनके कारण दिल्ली की सेना का बढ़ना रुक गया। कुछ घन्टों के भीतर दिल्ली के बहुत से सैनिक मारे गये। उन तोपों की मार का जवाब देने के लिए इब्राहीम लोदी के पास कोई साधन न था। जिन एक सौ हाथियों को लेकर वह युद्ध के मैदान में गया था, वे तोपों के गोलों से जख्मी हो कर गिरने लगे।

दोनों ओर की भीषण मार में सारा दिन बीत गया। युद्ध की हालत ज्यों की त्यों चल रही थी। बाबर दिल्ली की सेना पर अचानक अपने कुछ सैनिकों का हमला करना चाहता था और उसके लिए वह अवसर की ताक में था। दिल्ली के सैनिक शत्रुओं के साथ मार करने में लगे हुए थे। अवसर पाकर बाबर ने अपनी सेना के कुछ सैनिकों को लेकर दो दल तैयार किये और उन दोनों दलों को किसी प्रकार दाहिने और बायें से निकाल कर उसने दिल्ली की सेना के पीछे भेज दिया। उन दोनों दलों ने पीछे पहुँच कर दिल्ली के सैनिकों पर भयानक मार शुरू कर दी। सामने से उस्ताद अली और मुस्तफा की तोपें आग के गोलों की

वर्षा कर रही थीं और पीछे से बाबर के सैनिकों ने आक्रमण किया था। दिल्ली की सेना में घबराहट पैदा हो गयी। थोड़े-ही समय में उसके बहुत-से सैनिक मारे गये। युद्ध की भीषणता को देखकर बड़े साहस के साथ इब्राहीम लोदी ने अपनी सेना को सम्हालने की कोशिश की। लेकिन कोई फल न निकला। उसकी सेना इधर-उधर भागने लगी। सुलतान इब्राहीम लोदी अपने पन्द्रह हजार सैनिकों के साथ पानीपत के मैदान में मारा गया। दिल्ली की बची हुई सेना युद्ध-क्षेत्र से भाग गयी। उसी समय बाबर की सेना में विजय का झण्डा फहराया गया।

युद्ध के बाद काबुल की विजयी सेना अपने झण्डे के साथ दिल्ली की तरफ रवाना हुई और उसने नगर में जाकर कब्जा कर लिया। दूसरे दिन २७ अप्रेल सन् १५२६ ईसवी को शुक्रवार के दिन दिल्ली की मसजिद में नये बादशाह के नाम पर सार्वजनिक प्रार्थना की गयी।

बाबर की इस विजय की खुशियाँ दिल्ली से लेकर काबुल तक मनायी गयीं। दिल्ली के विजयोत्सव में सबसे अधिक महत्व राज्य के खजाने के बँटवारे को दिया गया। वहाँ के खजाने में जो धन मौजूद था, उसे लूट का धन माना गया और उस खजाने की रकम को सबसे पहले विजयी सेना में बाँटा गया। बाबर के बड़े लड़के हुमायूँ ने इस युद्ध में अद्भुत वीरता का प्रदर्शन किया था, इसलिए सब से पहले उस खजाने में से सत्रह लाख पचास हजार रुपये उसे इनाम में दिये गये। फौज के सरदारों और सेनापतियों में प्रत्येक को एक लाख पचास हजार से लेकर दो लाख पचास हजार रुपये तक दिये गये। इसके बाद सेना के सिपाहियों में उनके पद के अनुसार रुपये बाँटे गये और उन सभी लोगों को इस खजाने में से इनाम दिये गये, जिन्होंने मुगल सेना की किसी प्रकार भी सहायता की थी, अथवा उसका कोई काम

किया था; यहाँ तक कि जिन लोगों ने कैम्पों की देख भाल का काम किया था, उन सब को भी, उनके कामों के अनुसार, इस बँटवारे का हिस्सा दिया गया। काबुल के प्रत्येक स्त्री-पुरुष, स्वतन्त्र, परतन्त्र, बूढ़े, युवक और बालक को चाँदी के सिक्के विजय की प्रसन्नता के इनाम में बाँटे गये। इस बँटवारे के पहले खजाने के धन को गिना नहीं गया और न उसके गिने जाने की जरूरत ही समझी गयी।

पानीपत के युद्ध को जीतकर बाबर दिल्ली का बादशाह हुआ और उसने भारत में उस मुग़ल साम्राज्य की नींव डाली, जिसे उसके प्रपौत्र अकबर ने पूरा किया।

तेरहवाँ परिच्छेद

बियाना का प्रबल संग्राम

[१५२७ ईसवी]

चित्तौर का आपसी विद्रोह, राज्याधिकार के लिए फूट, राणा का निर्णय, फूट का षड़यन्त्र, पृथ्वीराज की हत्या, चित्तौर की उन्नति, बाबर और साँगा, संघर्ष और युद्ध, साँगा की हार !

अपराधी ऊदा

ऊदा राणा कुम्भ का लड़का था। आरम्भ से ही उसका चरित्र अच्छा नहीं था। चित्तौर के सिंहासन पर बैठने और राज्य करने की उसकी इच्छा बहुत अधिक थी। अपनी इसी अभिलाषा के उन्माद में उसने अपने पिता राणा कुम्भ को सन् १४७३ ईसवी में जान से मार डाला था। लेकिन ऐसा करने से उसकी अभिलाषा पूरी न हुई। राणा कुम्भ के बाद राज्य का वही अधिकारी था और इसी अधिकार को प्राप्त करने के लिए उसने अपने पिता की हत्या की थी। लेकिन राज्य के मन्त्री और सरदार उसके इस अक्षम्य अपराध से उसके शत्रु बन गये और उन सब ने मिलकर उसके राज्याधिकार का विरोध किया।

ऊदा का सही नाम उदयसिंह था, लेकिन ऊदा के नाम से ही वह सम्बोधित होता था। मन्त्रियों और सरदारों के विरोध करने पर भी ऊदा अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए बराबर झगड़ा करता रहा। चित्तौर के सरदारों ने उसके उत्पातों और

संघर्षों की कुछ भी परवा न की और राज्य के अधिकारियों ने मिलकर राणा कुम्भ के भाई राणा रायमल को सन् १४७३ ईसवी में ही चित्तौर के सिंहासन पर बिठाया। राज्य के सभी लोग इस बात से बहुत प्रसन्न हुए कि ऊदा को उसके अपराध का उचित दण्ड दिया गया।

चित्तौर के सिंहासन पर रायमल के बैठते ही ऊदा ने विद्रोह किया। वह अकेला कुछ न कर सकता था, इसलिए उन लोगों के साथ मेल करने की वह कोशिश करने लगा, जो चित्तौर के शत्रु थे। राणा मुकुल और राजकुमार चन्द्र के साथ मन्दोर नगर के जोधराव का संग्राम हो चुका था और इन दिनों में वह जोधपुर का राजा था। वह हृदय से अब भी चित्तौर का अशुभचिंतक था। ऊदा ने उससे मिलकर, उसके साथ मित्रता पैदा की। देवड़ा नामक एक सामन्त के साथ भी चित्तौर की शत्रुता चल रही थी। ऊदा ने उससे भी मिलकर आबू पहाड़ पर स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। इन शत्रुओं के साथ मेल कर ऊदा ने चित्तौर के राज्य में उत्पात करना आरम्भ किया।

राणा कुम्भ ने अपने शासन-काल में जिस मेवाड़-राज्य की उन्नति को शिखर पर पहुँचाया था, उसके विनाश और विध्वंस में ऊदा ने कोई कसर न रखी। लेकिन शक्तिशाली चित्तौर के सामने इन विरोधियों की पराजय हुई और ऊदा अपने उद्देश्य में सफल न हो सका।

घासा का संग्राम

इन दिनों में सिकन्दर लोदी दिल्ली में शासक था। ऊदा को जब और कोई उपाय न मिला तो वह दिल्ली में पहुँचा और वहाँ के सुलतान सिकन्दर लोदी को चित्तौर पर आक्रमण करने के लिए तैयार किया। दिल्ली के मुस्लिम बादशाहों के साथ चित्तौर की

शत्रुता सदा से चली आ रही थी। ऊदा की बातों पर सुलतान तैयार हो गया। ऊदा के समझाने के अनुसार, उसकी समझ में आ गया कि चित्तौर की बहुत-सी प्रजा ऊदा को राज्याधिकार न देने के कारण राज्य से खिलाफ है। सुलतान ने यह भी समझ लिया कि चित्तौर पर आक्रमण करने के लिए इससे अच्छा अवसर फिर नहीं मिल सकता।

इसके कुछ ही दिनों के बाद ऊदा की मृत्यु हो गयी। सिंहेशमल और सूरजमल नामक ऊदा के दो लड़के थे। वे सयाने हो चुके थे। दिल्ली के सुलतान ने ऊदा के इन दोनों लड़कों को अपने साथ में लेकर चित्तौर पर चढ़ाई की और अपनी फौज लेकर उसने मेवाड़ में नाथद्वारा के पास पहुँच कर मुकाम किया।

मेवाड़ में दिल्ली के बादशाह की फौज आते ही चित्तौर में युद्ध की तैयारियाँ हुई। मेवाड़ के सरदार और सामन्त अपनी सेनाओं के साथ चित्तौर में पहुँच गये। आबू और गिरनार के राजा भी अपनी सेनाओं के साथ, रायमल की सहायता के लिए चित्तौर में आ गये। ग्यारह हजार पैदल और अट्ठावन हजार सवारों की सेना को लेकर रायमल चित्तौर से रवाना हुआ और दिल्ली की सेना के साथ युद्ध करने के लिए वह मेवाड़ में पहुँच गया।

घासा नामक स्थान में दोनों ओर की सेनाओं का युद्ध शुरू हुआ। कई घन्टे तक मुस्लिम सेना ने राजपूत सैनिकों के साथ भयानक मार की। लेकिन उसके बाद मुस्लिम सेना कमजोर पड़ने लगी। जिस विशाल सेना को लेकर रायमल ने इस युद्ध को आरम्भ किया था, उतनी सेना के आने की आशा मुस्लिम बादशाह ने न की थी। मेवाड़ और चित्तौर के सम्बन्ध में ऊदा ने जो बातें सुलतान सिकन्दर को बतायी थीं, वे सभी झूठी निकलीं।

इस युद्ध में जो सरदार, सामन्त और राजा रायमल की सहायता में आये थे, सभी ऊदा से घृणा करते थे। उसकी सहायता

कर के चित्तौर का विनाश चाहने वाले दिल्ली के सुलतान का आक्रमण किसी प्रकार राजपूतों को सहन न हो सकता था। इसीलिए घासा के मैदान में उन राजपूतों ने दिल्ली की सेना का भीषण संहार किया। मुस्लिम सेना हार कर भागी और युद्ध से बहुत दूर जाकर उसने साँस ली।

युद्ध के बाद, चित्तौर की सेना लौट गयी। ऊदा के दोनों लड़कों ने चित्तौर में जाकर रायमल से अपने अपराधों की क्षमा माँगी। राणा ने उन्हें क्षमा करके राज्य में रहने के लिए स्थान दे दिया। आगे चलकर वे दोनों लड़के राणा के वंश में मिल गये। उनके द्वेष का नाश हो गया।

आपस की फूट

राणा रायमल के दो लड़कियाँ और तीन लड़के थे। ये तीनों लड़के साँगा, पृथ्वीराज और जयमल अत्यन्त पराक्रमी और वीर थे। उनके तेजस्वी बल वैभव को देखकर शिशोदिया वंश में बड़ी-बड़ी आशायें होने लगी थीं। राज्य के मन्त्रियों का विश्वास था कि इन तीनों पुत्रों के प्रबल प्रताप से चित्तौर का मस्तक ऊँचा होगा और इस देश का कोई भी शत्रु चित्तौर का सामना करने के लिए साहस न करेगा। राणा रायमल को स्वयं अपने इन तीनों लड़कों के बल और पराक्रम पर बड़ा स्वाभिमान था। लेकिन चित्तौर के भाग्य में तो भगवान ने कुछ और ही लिख रखा था। जिस समय ये तीनों लड़के यौवनावस्था में प्रवेश कर रहे थे, वंश के दुर्भाग्य से उन भाइयों में फूट पैदा हो गयी। वह साधारण फूट धीरे-धीरे बढ़कर भयानक विष के रूप में परिणत हो गयी। तीनों ही एक, दूसरे के रक्त के प्यासे हो गये।

अपने होनहार पुत्रों की इस शत्रुता को देखकर राणा रायमल को बहुत दुख रहने लगा। कई बार निराश होने के बाद भी

राणा ने अपने पुत्रों को समझाने की कोशिश की, परन्तु सफलता न मिली। इस दशा में राणा को असह्य कष्ट हुआ। उसने अन्त में निश्चय कर लिया कि यदि लड़के आपस की इस शत्रुता को मिटा न देंगे तो मैं उनको राज्य से निकल जाने का आदेश दूँगा।

राणा के इस क्रोध से-राज्य-दरबार के समस्त मन्त्री और सरदार घबरा उठे। परन्तु उनका कोई उपाय काम न कर रहा था। इसलिए सभी लोग विवश थे। राणा की कठोर आज्ञा का उसके लड़कों पर कोई प्रभाव न पड़ा और उनके द्वेष उसी प्रकार बराबर चलते रहे, जैसे वे चल रहे थे।

साँगा और पृथ्वीराज सगे भाई थे। उनकी माता ने झाला वंश में जन्म लिया था। जयमल उन दोनों का सौतेला भाई था। तीनों भाइयों में साँगा सब से बड़ा था और नियमानुसार साँगा ही राज-सिंहासन का अधिकारी था। लेकिन पृथ्वीराज इस विधान को मानने के लिए तैयार न था। अधिकारी न होने पर भी वह सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त करना चाहता था और साँगा अपने आपको अधिकारी समझता था, इसलिए अपने अधिकार को छोड़कर वह सिंहासन पर पृथ्वीराज को बिठाने के लिए राजी न था। फूट का इतना ही कारण था और इस फूट ने बढ़कर दोनों भाइयों के बीच एक भीषण शत्रुता का रूप धारण कर लिया था।

राज्याधिकार का निर्णय

साँगा और पृथ्वीराज देखने-सुनने में दोनों ही सुन्दर और प्रभावशाली थे। बल और पराक्रम में निर्बल कौन है, इसका निर्णय करना कठिन था। लेकिन स्वभाव में दोनों एक, दूसरे से भिन्न थे। शारीरिक बल में शक्तिशाली होने पर भी साँगा न्याय-प्रिय था और सोच-समझ कर काम करना जानता था। लेकिन

पृथ्वीराज में यह बात न थी। वह कहा करता था कि जो शक्तिशाली होता है, वही अधिकारी होता है।

एक दिन की बात है। साँगा और पृथ्वीराज अपने चाचा सूरजमल के साथ बैठे हुए राज्य के उत्तराधिकार पर बातें कर रहे थे। बड़ी देर के पश्चात् साँगा ने कहा कि हम लोग इसका निर्णय चाचा पर ही क्यों न छोड़ दें। पृथ्वीराज के मुँह से निकल गया कि हाँ चाचा ही बता दें कि हम दोनों में उत्तराधिकारी कौन है।

पृथ्वीराज आवेश में आकर यह बात कह तो गया। उसे इस बात का गर्व था कि मेरे विरुद्ध कोई निर्णय कैसे दे सकता है। उसके ऐसा समझने का कारण था। अभी तक राज्य के जितने लोगों ने इस झगड़े को सुलझाने की कोशिश की थी, वे दोनों भाइयों से झगड़ा न करने की बात तो कहते थे, लेकिन झगड़ा करता कौन है और उत्तराधिकारी कौन है, इस बात को साफ-साफ कोई कहना नहीं चाहता था।

साँगा और पृथ्वीराज के सहसा स्वीकार कर लेने पर सूरजमल ने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा कि राज्य का उत्तराधिकारी तो वास्तव में साँगा ही है।

इस बात को सुनते ही पृथ्वीराज अपने आपको सम्हाल न सका और क्रोध में आकर उसने अपनी तलवार का वार साँगा पर करते हुए कहा : "तलवार के बल पर ही इस बात का निर्णय हो सकता है कि राज्य का उत्तराधिकारी कौन है!"

सूरजमल ने दोनों को रोकने की कोशिश की, लेकिन वह असफल रहा और दोनों भाइयों में तलवार की मार आरम्भ हो गयी। दोनों ही अत्यन्त शक्तिशाली थे। तलवार चलाने और युद्ध करने में वे दोनों एक-से-एक बढ़कर थे।

फूट का प्रभाव

यौवन के उन्माद में साँगा और पृथ्वीराज एक, दूसरे के प्राणों का नाश करने पर उतारू हो गये। सूरजमल यह सब दृश्य देखता रहा। वह बीच में नहीं आया। तलवार की मार से दोनों भाई रक्त से नहा गये। उनके शरीरों पर बहुत-से घाव हो गये और उन घावों से रक्त के फव्वारे छूट रहे थे।

इस भयानक अवस्था में भी दोनों भाई अपनी तेज तलवारों के प्रहार एक, दूसरे पर कर रहे थे। उनमें कोई कमजोर पड़ता हुआ दिखायी न देता था। राजपूती आवेश के कारण दोनों में से कोई हटना न चाहता था। इसी समय तीसरा सौतेला भाई जयमल आकर लड़ाई में शामिल हुआ और अपनी तेज तलवार का प्रहार उसने साँगा पर किया। उसने पृथ्वीराज का पक्ष लिया। अब एक तरफ दो भाई थे और दूसरी तरफ अकेला साँगा था। साँगा इस बात को जानता न था कि जयमल पृथ्वीराज का साथ देगा।

पृथ्वीराज और जयमल की मारों से साँगा के शरीर में भयानक चोटें आयीं और उन चोटों के कारण उसकी हालत खराब होने लगी। फिर भी तीनों भाइयों के बीच में बराबर तलवारें चलती रहीं।

तीनों भाई लड़ते-लड़ते शिवान्ति नगर के समीप पहुँच गये। वहाँ पर बीदा नामक एक राजपूत मिला, वह अपने हाथ में तलवार लिए हुए एक अच्छे घोड़े पर कहीं जा रहा था। उसने इन तीनों भाइयों के भीषण युद्ध को देखा। वह एक राजपूत था और उसे यह अत्यन्त अन्यायपूर्ण मालूम हुआ कि दो भाई एक तरफ होकर तीसरे भाई पर प्रहार कर रहे हैं। उसने उनके युद्ध को रोकने की कोशिश की। लेकिन पृथ्वीराज के न मानने पर

बीदा राजपूत अपनी तलवार निकाल कर लड़ाई में शामिल हो गया और उसने साँगा का साथ दिया।

उस लड़ाई में अब चार हो गये थे। साँगा भी अब अकेला न रहा। बहुत देर तक चारों में बराबर तलवारों की मार होती रही। उसी अवसर पर जयमल लड़ाई में मारा गया और उसके जमीन पर गिरते ही कुछ समय के लिए लड़ाई रुक गयी। चारों आदमी लहू-लुहान हो चुके थे। उनके कपड़ों से बराबर खून जमीन पर गिर रहा था। बीदा राजपूत के संकेत पर साँगा वहाँ से चला गया। और उसका नतीजा यह हुआ कि लड़ाई बन्द हो गयी।

राज्य से पृथ्वीराज का निर्वासन

उत्तराधिकार के लिए पैदा होने वाली फूट का परिणाम यह निकला कि एक भाई जान से मारा गया और शेष दोनों भाई भी मरणासन्न अवस्था को पहुँच गये थे। राज्य के सभी लोगों ने इस दुर्घटना को देखा और सुना। किसी ने कुछ नहीं कहा। राणा रायमल ने जयमल की मृत्यु का समाचार सुनकर बहुत क्रोध किया। वह सोचने लगा कि मेवाड़ के राज्य पर अब दुर्भाग्य के बादल आने वाले हैं।

राणा रायमल अपने क्रोध को रोक न सका। उसने पृथ्वीराज को बुलाकर तुरन्त उसे राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी। पृथ्वीराज के ऊपर इस कठोर आज्ञा का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। राणा की आज्ञा को स्वीकार करके राज्य से चले जाने के लिए वह तैयार हुआ। अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर वह घोड़े पर बैठा और साथ में पाँच राजपूत सवारों को लेकर वह राज्य से निकल गया। जाने के समय राज्य की तरफ से उससे किसी ने

बात चीत नहीं की। अपने राजपूत सवारों के साथ पृथ्वीराज नादोल नगर की तरफ चला गया।

राज्य से निकलने के समय पृथ्वीराज के सामने न कोई चिंता थी और न कोई भय था। वह एक शक्तिशाली युवक था। युद्ध करना ही उसका जीवन था। युद्ध ही उसका खेल था। युद्ध ही उसका मनोरंजन था। युद्ध से अधिक प्रिय उसे अपने जीवन में और कुछ न था।

अपने राज्य से जाकर पृथ्वीराज ने नादोल नगर में विश्राम किया। अरावली पहाड़ के निकट गोद्वार नामक एक राज्य था और नादोल नगर उस राज्य की राजधानी थी। अरावली पहाड़ पर मीन जाति के असभ्य और जंगली आदमी रहते थे। उनकी संख्या बहुत थी और वे सब के सब लड़ाकू स्वभाव के थे। उन लोगों ने गोद्वार-राज्य में लूट-मार शुरू कर दी थी और बहुत दिनों तक उस राज्य को बरबाद करने के बाद मीन लोगों ने उस पर अधिकार कर लिया लिया था। इधर बहुत दिनों से उस राज्य में मीनों का राजा राज्य करता था।

नादोल नगर में पहुँच कर पृथ्वीराज ने गोद्वार-राज्य की इन घटनाओं को सुना और वहीं पर रहकर वह उस राज्य के उद्धार की कोशिश करने लगा। उसके पास न तो सेना थी और न सम्पत्ति ही थी। फिर भी गोद्वार-राज्य का उसे उद्धार करना था। सैनिकों के रूप में पृथ्वीराज और उसके सवारों ने गोद्वार राजा के यहाँ सेना में नौकरी कर ली और कुछ ही दिनों में पृथ्वीराज वहाँ की सेना का एक अधिकारी बना दिया गया। इसके बाद, उसने वहाँ की समस्त सेना को प्रभावित किया। उसकी तरह उस राज्य की सेना में कोई दूसरी शक्तिशाली न था। सेना के अधिकार में आते ही उसने राजा के खिलाफ सेना में विद्रोह कर दिया और राजा को पकड़ कर उसने जान से मार डाला। साथ

ही उस राज्य को अपने अधिकार में लेकर, उसने ओझा नामक एक सोलंकी राजपूत को दे दिया। ओझा को राजगद्दी देने के बाद पृथ्वीराज स्वतंत्र हो कर इधर-उधर घूमने लगा। लेकिन गोद्वार-राज्य की सेना पर उसने अपना प्रभुत्व बनाये रखा।

सूरजमल का विद्रोह और विश्वासघात

सूरजमल चित्तौर में रहता था और देखने में वह राणा रायमल का भक्त हो गया था। लेकिन उसे यह बात भूली न थी कि जिस राजसिंहासन पर रायमल बैठा है, उसका अधिकारी, उसका पिता ऊदा था। शक्तिहीन होने के कारण वह चुप था और चित्तौर में रहकर जीवन-निर्वाह करता था। लेकिन ईर्षा की आग उसके हृदय में जल रही थी, वह अभी तक बुझी न थी।

राणा रायमल को इसका बदला देने के लिए सूरजमल लगातार कोशिश में रहा। वह चित्तौर में रहता था। राणा ने उसके सुख-सम्मान के लिए राज्य की तरफ से सभी प्रकार का प्रबन्ध कर दिया था और वह इस राज्य में एक शिशोदिया वंशज की हैसियत से रहा करता था। लेकिन वह किसी समय न भूलता था कि राणा रायमल ने उसके पिता—ऊदा को निकाल कर, इस राज्य का सिंहासन प्राप्त किया है। वह लड़कर राणा रायमल अथवा उसके लड़कों का कुछ बिगाड़ न कर सकता था। इसीलिए राणा के साथ उसने अधिक स्नेह प्रगट करने की कोशिश की थी और लड़कों के साथ भी वह बहुत घुल मिलकर रहा करता करता था। उसने बड़ी चलाकी से काम लिया। साँगा को उसने किसी प्रकार विश्वास करा दिया कि न जाने क्यों राणा के हृदय में पृथ्वीराज के लिए स्नेह अधिक है। इसी सिलसिले में उसने साँगा को समझा दिया कि राणा, पृथ्वीराज को राज्य का उत्तराधिकारी बनाना चाहता है।

धीरे-धीरे उत्तराधिकार की बात बढ़ने लगी। सूरजमल छिपे तौर पर साँगा की बात पृथ्वीराज को और पृथ्वीराज की बात साँगा को बताने लगा। उसने दोनों की तरफ से बातों में इतना कड़ुवापन पैदा कर दिया कि दोनों भाई अपने-अपने अधिकारों के लिए एक, दूसरे के प्राण लेने पर तैयार हो गये।

सूरजमल का अनुमान था कि साँगा और पृथ्वीराज—दोनों ही उत्तराधिकार के लिए लड़कर मर जायँगे। इसलिए उसका विश्वास था कि उस दशा में अपने अधिकार के लिए मैं लड़ सकूँगा। लेकिन जब तक साँगा और पृथ्वीराज जीवित हैं, कोई आशा नहीं की जा सकती।

अभी तक सूरजमल बड़ी शान्ति के साथ अपने उद्देश्य की पूर्ति में लगा रहा था। जयमल मारा गया था, पृथ्वीराज की शत्रुता के कारण, साँगा का कोई पता न था और पृथ्वीराज को राणा ने राज्य से निकाल दिया था। इस दशा में तीनों राजकुमारों का एक तरह से अन्त हो चुका था। साँगा और पृथ्वीराज के लौटने की कोई आशा न रह गयी थी। राणा रायमल की अवस्था बुढ़ापे में चल रही थी। सूरजमल ने इस अवसर का लाभ उठाना चाहा, और उसने समझ लिया कि इस दशा में चित्तौर में अधिकार कर लेना जरा भी मुश्किल नहीं है।

सूरजमल ने रायमल की तरफ से अपनी आँखें पलट लीं और चित्तौर से निकल कर वह बाहर हुआ। मालवा राज्य के साथ चित्तौर की पुरानी शत्रुता थी और उसके मुसलमान बादशाहों के साथ अब तक चित्तौर को अनेक युद्ध करने पड़े थे। सूरजमल चित्तौर से निकल कर मालवा राज्य में पहुँचा और वहाँ के बादशाह मुजफ्फर को समझा-बुझा कर चित्तौर पर आक्रमण करने के लिए तैयार किया।

मालवा का बादशाह बहुत दिनों से चित्तौर की ताक में था।

सूरजमल की बातों पर विश्वास करके उसने अपनी सेना को तैयार किया और सूरजमल की सहायता के लिए उसने उसके साथ फौज रवाना कर दी। मालवा की फौज को लेकर सूरजमल ने मेवाड़ के दक्षिणी इलाकों पर हमला किया और एक परगने पर अधिकार कर लिया। यहीं से सूरजमल का उत्साह बढ़ गया और वह चित्तौर पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा।

इस आक्रमण का समाचार चित्तौर में राणा रायमल को मिला। उसने अपने पुत्रों का स्मरण किया और उसके बाद, चित्तौर की सेना लेकर वह युद्ध के लिए रवाना हुआ। नगर के बाहर बहती हुई गभीरी नदी के किनारे पर दोनों ओर की सेनायें डटकर खड़ी हो गयीं। युद्ध के आरम्भ होते ही राणा रायमल अपने हाथ में तलवार लेकर शत्रु-सेना के साथ मार-काट करने लगा।

दोनों ओर की सेनाओं में बहुत देर तक युद्ध हुआ। बुढ़ापे की अवस्था होने के कारण राणा रायमल युद्ध करते-करते थकने लगा, उसके शरीर में बहुत-से जख्म हो गये थे और उन जख्मों से बराबर खून गिर रहा था।

राणा रायमल की शक्ति शिथिल पड़ने लगी। अब उसके हाथ तलवार चलाने में निर्बल हो रहे थे। सूरजमल का जो विश्वास था, वह उसे सही दिखायी पड़ने लगा। वह समझ रहा था कि चित्तौर की सेना अब अधिक समय तक युद्ध न कर सकेगी। राणा थक कर या तो गिरने वाला है अथवा कैद होने वाला है। उसे खूब विश्वास था कि राणा की अवस्था अब युद्ध करने के योग्य नहीं है। इसीलिए वह सोचता था कि राणा के परास्त होते ही मालवा की फौज चित्तौर के भीतर प्रवेश करेगी और उसी समय मैं चित्तौर पर अपना अधिकार कर लूँगा।

सूरजमल के विश्वास के अनुसार, समय नजदीक आता जाता था और राणा के परास्त होने का समय अब दूर नहीं था।

इसी समय अपने साथ तीन हजार पैदल और तीन हजार चुने हुए सवारों की सेना को लिए हुए पृथ्वीराज युद्ध-स्थल पर पहुँचा और बिजली की तरह वह मालवा की फौज पर टूट पड़ा। कुछ ही घण्टों के भीतर उसने मालवा की सेना को काट कर फेंक दिया और सूरजमल घबरा कर इधर-उधर भागने लगा।

मालवा की सेना युद्ध में टिक न सकी और उसके सिपाही लड़ाई के मैदान से भागने लगे। सूरजमल अपने प्राण लेकर वहाँ से भागा और उसके बाद युद्ध बन्द हो गया।

राणा रायमल का शरीर गहरे जख्मों के कारण अत्यन्त शिथिल हो गया था। युद्ध रुकते ही पृथ्वीराज ने राणा के पास जाकर चरणों का स्पर्श किया और घने पेड़ों की छाया में राणा को विश्राम देने का उसने प्रबन्ध किया। जमीन पर लेटने के बाद भी राणा के जख्मों से रुधिर बह रहा था। पृथ्वीराज ने राणा के बहते हुए रुधिर को पोंछ कर जख्मों पर पट्टियाँ बाँधी।

राणा ने एक बार पृथ्वीराज के तेजस्वी मुख-मण्डल पर दृष्टि-पात किया। उसके नेत्र क्या देख रहे थे, इसे कोई जान न सका। अपने पराक्रमी और शक्तिशाली पुत्रों का उसने एक बार स्मरण किया और उसके साथ ही उसने अपनी शिथिल अवस्था का अनुभव किया। राणा के मुख से कोई बात न निकली। लेकिन उसके दोनों नेत्रों से आँसुओं के कुछ बूँद निकल कर बाहर आ गये। मानो वे बूँद कह रहे थे कि जिसके पुत्र इतने प्रतापी और तेजस्वी हों, शत्रुओं के द्वारा उसके पिता की यह असहाय अवस्था।

पृथ्वीराज ने राणा के आँसुओं को अपने हाथों से पोंछा। उसके बाद राणा की सेनायें चित्तौर की ओर रवाना हुईं।

चित्तौर में आयी हुई राणा की विपद को सुनकर पृथ्वीराज युद्ध-स्थल पर पहुँचा। उसने पिता के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन

किया और चित्तौर के गौरव की रक्षा की। राज्य से निकाले जाने के बाद, पृथ्वीराज किसी मौके पर लौटकर आ सकता है, सूरजमल को इसकी आशा न थी।

चित्तौर मे बहुत दिनों तक रह कर न केवल सूरजमल ने राणा रायमल की सेवा की थी, बल्कि अपने पक्ष में उसने कुछ आदमियों को भी कर लिया था। लोगों की समझ में सूरजमल भी शिशोदिया वंश का ही एक अंग था। ऐसे आदमियों की भी कमी न थी, जो यह समझते थे कि ऊदा ने अपने पिता की हत्या की जरूर। लेकिन राज्य का वह अधिकारी तो था ही। अपनी आवश्यकता के अनुसार, सूरजमल में अनेक गुण थे। लोगों को मिलाना, फूट डालना, बहकाना और कुछ का कुछ समझा देना वह खूब जानता था। इस प्रकार की बातों की सफलता के लिए वह न केवल अपनी बुद्धि खर्च करता था, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर सम्पत्ति को वह पानी की तरह बहाता भी था।

वृद्ध राणा रायमल के साथ युद्ध करके ही सूरजमल का विद्रोह शांत नहीं हुआ। दो सगे भाइयों को एक दूसरे का शत्रु बनाने के बाद भी उसका विद्रोह, जो भीतर ही भीतर सुलग रहा था, शान्त नहीं हुआ था और उसका विद्रोह राणा रायमल के तीसरे पुत्र जयमल को जान से मरवा कर भी शांत नहीं हुआ था। युद्ध में पराजित होने के बाद भी उसका विद्रोह सुलगता रहा और उसके विद्रोह के फल-स्वरूप ही चित्तौर में राणा रायमल के दूसरे पुत्र शक्तिशाली और अजेय पृथ्वीराज को विष दिया गया, जिसके कारण स्वाभिमानी युवक पृथ्वीराज अचानक संसार से विदा हो कर चला गया। राणा रायमल अपने बुढ़ापे में इस बज्रपात को सहन न कर सका और पुत्र के शोक में इस चित्तौर को अनाथ और अनाश्रित बना कर :उसने परलो की यात्रा की।

चित्तौर के राज्य का विस्तार

राणा रायमल की मृत्यु के बाद उसका बड़ा लड़का साँगा सन् १५०९ ईसवी में चित्तौर के राज सिंहासन पर बैठा। वह युद्ध में जितना ही प्रवीण था, राजनीति में उतना ही वह सुयोग्य था। उसके शासन-काल में मेवाड़ का राज्य उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था। राज्य का अधिकारी होने के बाद सब से पहले उसने मेवाड़ की उन्नति पर ध्यान दिया। युद्ध करने में वह शक्तिशाली और सभी प्रकार कुशल था। उसकी कोशिशों में उसे सफलता मिली। उसने मारवाड़, बीकानेर, अम्बेर और दूसरे कई एक राज्यों पर अधिकार कर लिया। अपने राज्य के विस्तार में वह लगातार आगे बढ़ा और समूचे राजपूताना में उसने अपना प्रभुत्व कायम कर लिया। इसके बाद उसका ध्यान दिल्ली के विस्तृत राज्य की तरफ गया और उसके कुछ स्थानों में उसने कब्जा कर लिया।

इन दिनों में सिकन्दर लोदी का शासन समाप्त हो चुका था और दिल्ली में उसका बेटा इब्राहीम लोदी राज्य कर रहा था। वह अत्यन्त अहंकारी बादशाह था। दिल्ली-राज्य की ओर राणा साँगा को बढ़ते हुए देखकर उसने युद्ध की तैयारी की। साँगा ने दिल्ली के राज्य का जो भाग अपने अधिकार में कर लिया था, इब्राहीम लोदी न केवल उसे छीनकर वापस लेना चाहता था, बल्कि साँगा को बदला देने के लिए, उसके राज्य के कितने ही भागों पर वह कब्जा कर लेना चाहता था।

इब्राहीम लोदी ने मेवाड़-राज्य पर चढ़ाई की। सन् १५१७ ईसवी में राणा साँगा ने उसके साथ युद्ध किया। उस युद्ध में इब्राहीम लोदी की पराजय हुई और वह अपनी सेना के साथ लौट गया। इसके बाद दूसरे वर्ष, सन् १५१८ ईसवी में सुलतान

इब्राहीम लोदी ने अपनी एक बड़ी सेना के साथ मेवाड़-राज्य पर फिर चढ़ाई की। राणा साँगा ने सुलतान की सेना को इस बार भी भयानक क्षति पहुँचाई और इब्राहीम को पराजित किया। इस हार में सुलतान ने अपने राज्य का एक बड़ा इलाका राणा साँगा को दे दिया, जो मेवाड़-राज्य में मिला लिया गया। दिल्ली के सुलतान सिकन्दर और इब्राहीम ने ग्वालियर को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था। राणा साँगा ने उस ग्वालियर पर भी अधिकार कर लिया। इस तरीके से राणा साँगा ने अपने शासन-काल में थोड़े ही दिनों के भीतर चित्तौर की बड़ी उन्नति कर ली थी।

भयानक संघर्षों में साँगा की जीत

महमूद द्वितीय सन् १५१० ईसवी में मालवा-राज्य के सिंहासन पर बैठा। उन्हीं दिनों में मुस्लिम सरदारों ने एक भयानक विद्रोह पैदा कर दिया। गुजरात और दिल्ली के बादशाहों ने भी उस विद्रोह में सहायता की। विद्रोही सरदारों की सहायता करने के लिए गुजरात का बादशाह मुजफ्फर शाह द्वितीय भी अपनी सेना के साथ आया था। चन्देरी-राज्य के सामन्त मेदिनी राय ने अपनी सेना लेकर उन विद्रोहियों का सामना किया और पराजित किया।

इसके बाद भी विद्रोह शान्त नहीं हुआ। मुस्लिम बादशाह और सरदार मिल कर एक हो गये थे और विद्रोहियों की शक्ति को बढ़ाकर वे न केवल चन्देरी-राज्य को ले लेना चाहते थे, बल्कि अपनी बढ़ी हुई शक्तियों के द्वारा वे राणा साँगा के राज्य को धक्का पहुँचाना चाहते थे। मेदिनी राय ने घबरा कर राणा साँगा से सहायता माँगी।

मुस्लिम विद्रोही सरदारों के उत्साह बहुत बढ़ गये थे। उन्हें

भारत के मुस्लिम राज्यों से सेना और सम्पत्ति की सहायता मिल रही थी। इसी उन्माद में आकर गुजरात के मुजफ्फर शाह ने मेवाड़ की माँडू रियासत पर हमला करके कब्जा कर लिया और वह अपनी सेना लिए हुए मेवाड़ की तरफ आगे बढ़ा।

राणा साँगा ने अपनी सेना लेकर गागरौन के मैदान में गुजरात के मुजफ्फर शाह का मुकाबिला किया और उसे पराजित करके साँगा ने कैद कर लिया। चित्तौर के कैदखाने में कुछ दिनों तक रहकर मुफ़फ्फर शाह ने अपने राज्य का आधा हिस्सा राणा साँगा को दे दिया और किसी प्रकार उसने अपने प्राण बचाये। उसके दिये हुए राज्य को चित्तौर में मिला लेने पर मेवाड़ का राज्य एक बड़े विस्तार में पहुँच गया और उसकी सीमा बुन्देलखण्ड तक बढ़ गयी। बुन्देलखण्ड में गढ़ कटंका एक राज्य था। उसका राजा संग्राम शाह प्रतापी और शक्तिशाली शासक था। उसने अपने शासन-काल में अपने राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा लिया था और उसका राज्य भोपाल से मण्डला तक फैला हुआ था। मालवा और छत्तीसगढ़ के समस्त किलों को जीतकर उसने अपने अधिकार में कर लिया था। साँगा ने मेवाड़-राज्य को बढ़ाकर बघेलखण्ड तक पहुँचा दिया था। गागरौन के युद्ध में विजयी होकर उसने सन् १५२० ईसवी में गुजरात पर आक्रमण किया।

राणा साँगा अपने जीवन के आरम्भ में जैसा शूर-वीर और बुद्धिमान मालूम होता था, उससे भी अधिक अपनी योग्यता और वीरता का प्रमाण उसने अपने शासन-काल में दिया। अपनी सेना को उसने अत्यन्त शक्तिशाली बना लिया था और सैनिकों को युद्ध की शिक्षा देने में उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया था। दिल्ली और मालवा के बादशाहों के साथ, सब मिलाकर राणा साँगा के अठारह युद्ध हुए थे और सभी में साँगा की

विजय हुई थी। घाटौली के मैदान में मुस्लिम सेनाओं के साथ राणा साँगा ने जो भयानक युद्ध किया था, उसमें बहुत थोड़े मुस्लिम सैनिक भागकर अपने प्राण बचा सके थे, बाकी सब के सब जान से मारे गये थे।

बाबर और साँगा

चित्तौर के सिंहासन पर बैठने के बाद राणा साँगा ने मेंवाड़-राज्य की उन्नति को चरम सीमा पर पहुँचा कर भारत के राजाओं और बादशाहों में अपना मस्तक ऊँचा किया था। उन दिनों में दिल्ली का राज्य भारत में सब से बड़ा राज्य माना जाता था। लेकिन राणा साँगा ने अनेक बार युद्धों में वहाँ के सुलतान को पराजित किया था। राजपूत राजाओं में कोई उसकी बराबरी का न था।

जिन दिनों में राणा साँगा ने भारत के बड़े-से-बड़े बादशाहों और राजाओं को पराजित करके अपने राज्य का विस्तार किया था और अपनी विजय का झण्डा फहराया था, उन्हीं दिनों में तैमूर लंग का वंशज—काबुल का बादशाह बाबर सन् १५२६ ईसवी में अपनी शक्तिशाली सेना को लेकर भारत में आया था और दिल्ली पर आक्रमण करके वह सुलतान इब्राहीम लोदी को पानीपत के मैदान में पराजित कर चुका था। सुलतान मारा गया था और बाबर ने दिल्ली के राज्य पर अधिकार कर लिया था।

बादशाह बाबर और राणा साँगा—दोनों समकालीन थे। दोनों की शक्तियों का एक साथ विकास हुआ था और दोनों की बहुत-सी बातें एक, दूसरे से समता रखती थीं। दोनों ने युग के एक ही भाग में जन्म लिया था और दोनों ही प्रसिद्ध राज-वंशज थे। जीवन के प्रारम्भ में बाबर ने भयानक कठिनाइयों का सामना किया था और साँगा भी राज्य को छोड़कर मारा-मारा फिरा था।

आरम्भ से ही दोनों साहसी और शक्तिशाली थे। काबुल से निकल कर दिल्ली तक बाबर ने विजय प्राप्त की थी और साँगा ने भारत के शक्तिशाली राजाओं को पराजित किया था। दिल्ली के सिंहासन पर बैठ कर बाबर ने समझा था कि भारत में मुझसे लड़ने वाला अब कोई राजा और बादशाह नहीं है और चित्तौर राज्य में अपनी ऊँची पताका फहरा कर साँगा बाबर का उपहास कर रहा था। वास्तव में दोनों ही अपने समय के अद्भुत साहसी और शक्तिशाली थे। दोनों ही अद्वितीय थे। एक ही देश में शान्ति और सन्तोष के साथ दोनों का रह सकना सम्भव न था। दोनों का युद्ध अनिवार्य था।

संघर्ष की ओर

सन् १५२६ ईसवी में पानीपत के युद्ध का अन्त हो चुका था और बाबर ने दिल्ली में प्रवेश करके कब्जा कर लिया था। परन्तु पानीपत के युद्ध की आग अभी तक ठण्डी न हुई थी।

इब्राहीम लोदी की हार का समाचार बहार खाँ लोहानी के पास पहुँचा। वह इस पराजय का समाचार सुनने के लिए तैयार न था। उसने अफ़गान सरदारों को बुला कर परामर्श किया। सब की सलाह से बाबर की तुर्की सेना को रोकने की तैयारी होने लगी। बहार खाँ ने अपना नाम बदल कर सुलतान मोहम्मद खाँ रखा। लड़ाई के लिए जो अफ़गान जमा हुए, उनको लेकर सुलतान मोहम्मद खाँ कन्नौज की तरफ रवाना हुआ। दिल्ली-राज्य के पश्चिमी इलाके में जो अफ़गान रहते थे, उन्होंने इकट्ठा हो कर विरोध की तैयारियाँ कीं। उनका नेता हसन खाँ मेवाती बनाया गया। उसने सुलतान इब्राहीम लोदी के भाई महमूद लोदी को दिल्ली का सुलतान बनाना चाहा। किसी भी दशा में विरोधी अफ़गान बाबर के शासन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे।

बाबर को दिल्ली में यह मालूम हो गया कि इस राज्य के अफ़गान अभी लड़ने का हौसला रखते हैं और वे लड़ाई की तैयारियाँ कर रहे हैं। इस समाचार को मिले हुए अधिक दिन नहीं बीते थे, अफ़गानों में मतभेद पैदा हो गया और उसका परिणाम यह हुआ कि बादशाह बाबर के विरोध में जो तैयारी हो रही थी, वह खतम होने लगी। कई एक अफ़गान सरदारों ने बाबर के पास आकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। जो अफ़गान सरदार उसके पास आये, उनको लेकर बाबर का पुत्र हुमायूँ विरोधी इलाकों की तरफ रवाना हुआ और बिना किसी संघर्ष के उसने वहाँ अपना कब्जा कर लिया।

विरोधियों की संख्या लगातार घटती गयी। इसी मौके पर अपनी सेना से साथ अफ़गान सरदारों को लेकर हुमायूँ पूर्व की ओर रवाना हुआ और पाँच महीने के लगातार संघर्ष में उसने अवध, जौनपुर और गाज़ीपुर जीत कर अपने अधिकार में कर लिया।

बाबर और साँगा का पहला युद्ध

बाबर के साथ अफ़गान सरदारों के मिल जाने पर हसन खाँ मेवाती और महमूद खाँ लोदी के सामने बड़ा संकट पैदा हो गया। वे दोनों बादशाह बाबर के साथ मिलने और उसका शासन स्वीकार करने के लिए तैयार न थे। लेकिन जब राज्य के अफ़गानों ने उनका साथ न दिया तो उन दोनों ने आपस में परामर्श किया और अन्त में राणा साँगा के पास जाकर वे मिल गये।

जिस दिन बाबर पानीपत के युद्ध में विजयी हो चुका था, उसी दिन से राणा साँगा की आँखें बाबर की तरफ़ थीं। वह जानता था कि वह दिन करीब है जब बाबर की फौज के साथ चित्तौर की राजपूत सेना को युद्ध करना पड़ेगा। जिन दिनों में

साँगा चित्तौर में बैठकर बाबर के सम्बन्ध में सावधानी के साथ विचार कर रहा था, उसके पास हसन खाँ मेवाती और महमूद खाँ लोदी—दोनों ही गये थे। राणा साँगा ने आदर के साथ उन दोनों को अपने यहाँ स्थान दिया था और उसने उनके साथ गम्भीरता पूर्वक बातें की थीं।

अपनी सेना लेकर पूर्व की ओर के राज्यों पर बहुत दूर तक हुमायूँ ने अधिकार कर लिया था। इसके बाद बाबर स्वयं अपनी शक्तिशाली सेना लेकर दक्षिण की ओर रवाना हुआ। यह समाचार पाते ही राणा साँगा अपनी राजपूत सेना लेकर चित्तौर से उसी तरफ रवाना हो गया।

बाबर दक्षिण की ओर बढ़ता हुआ सीमा पर पहुँच गया। वहाँ का एक प्रदेश राणा साँगा ने जीतकर बहुत पहले अपने राज्य में मिला लिया था। राणा की सेना ने वहाँ जाकर तुर्क सेना को आगे बढ़ने से रोका। लेकिन इस रोक का बाबर पर कोई प्रभाव न पड़ा।

उस सीमान्त प्रदेश में अभी तक किलेदार मुसलमान ही थे। बाबर ने उन किलेदारों को मिला लिया और उनसे बियाना, धौलपुर और ग्वालियर के किले लेकर दोआब में उनको कुछ जागीरें दे दीं। बियाना में उसकी रक्षा के लिए एक तुर्क सेना रख दी गयी। इसका पता मिलते ही राणा की सेना ने बियाना पर आक्रमण किया और बाबर की सेना को मार कर बियाना पर अधिकार कर लिया।

बियाना का समाचार पाकर बाबर राणा साँगा के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हुआ और अपनी शक्तिशाली सेना लेकर वह सीकरी की तरफ रवाना हुआ। युद्ध के लिए बाबर की रवानगी की खबर पाकर साँगा अपनी सेना के साथ आगरा की ओर बढ़ा और भरतपुर राज्य में बियाना नामक स्थान में उसने

बाबर की फौज का मुकाबिला किया। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। काबुल की तुर्क सेना और दिल्ली की मुस्लिम सेना को मिलाकर बाबर अपने साथ बहुत बड़ी सेना लेकर युद्ध के लिए आया था।

बहुत समय तक दोनों ओर की सेनाओं में भयानक युद्ध हुआ। अन्त में साँगा की राजपूत सेना ने बाबर की सेना को इतनी बुरी तरह से परास्त किया कि उसके छक्के छूट गये और युद्ध के मैदान से भागकर उसने अपने प्राणों की रक्षा की। राजपूत सेना ने भागती हुई फौज का पीछा नहीं किया। ऐसा करना, उसकी समझ में, राजपूतों का वीरोचित कार्य न था।

बियाना के युद्ध से लौटकर बाबर ने विस्मय के साथ अपनी सेना के सरदारों और सेनापतियों के साथ बातें कीं। उस समय उसे मालूम हुआ कि तुर्क और मुस्लिम सेना, राजपूतों के मुकाबिले में न केवल पराजित हुई है, बल्कि घबराकर उसने हमेशा के लिए अपना साहस तोड़ दिया है। सेना की यह अवस्था बाबर के लिए बड़ी चिन्ताजनक हो गयी। उसके बार-बार उकसाने और प्रोत्साहन देने पर भी जब कोई फल निकलता हुआ दिखायी न पड़ा तो उसने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। उसने अपनी सेना के सामने जिहाद का नारा लगाया और हाथ में कुरान लेकर अपने सैनिकों में उसने इस्लामी जोश भरने की कोशिश की। उसने कहा :

"ऐ मुसलमान बहादुरों, हिन्दुस्तान की यह लड़ाई इस्लामी लड़ाई है। इस लड़ाई में होने वाली हार तुम्हारी नहीं, इस्लाम की हार है। हमारा मजहब हमें बताता है कि इस दुनिया में जो पैदा होता है, वह मरता जरूर है। हमको और तुमको—सब को मरना है। लेकिन जो अपने मजहब के लिए मरता है, खुदा उसे बहिश्त में भेजकर इज्जत देता है। लेकिन जो मजहब के खिलाफ

मौत पाता है, उसे खुदा दोजख में भेजता है। अब हमको इस बात का फैसला कर लेना है और समझ लेना है कि हम लोगों में जो बहिश्त जाना चाहते हैं, उन्हें हर सूरत में इस इस्लामी लड़ाई में शरीक होना है। कुरान को अपने हाथों में लेकर तुम इस बात का आज अहद करो कि तुम इस्लाम के नाम पर होने वाली इस लड़ाई में काफिरों को शिकस्त दोगे और ऐसा न कर सकने पर इस्लाम के नाम पर तुम अपनी कुर्बानियाँ देने में किसी हालत में इनकार न करोगे।"

अपनी जोशीली बातों को खतम करने के बाद बाबर ने इस्लाम के खिलाफ कभी शराब न पीने का वादा किया और इस वादे के अनुसार उसने शराब पीने के अपने कीमती बरतनों को तुड़वा कर, रखी हुई शराब के साथ फिंकवा दिया। अपनी फौज के सामने बाबर ने जो जोशीली बातें कहीं, उनसे साफ-साफ यह जाहिर होता है कि उसकी फौज के सिपाहियों ने राजपूतों के साथ युद्ध करने से इनकार कर दिया था। बाबर की बातों को सुनकर उसकी फौज लड़ाई के लिए तैयार हो गयी।

साँगा के साथ बाबर का दूसरा युद्ध

साँगा की युद्ध-शक्ति से बाबर अपरिचित नहीं रहा। मुस्लिम सेना ने युद्ध करने से मुँह मोड़ लिया था, लेकिन बाबर ने अपने बुद्धि-बल से फिर अपनी फौज को युद्ध करने के लिए तैयार किया। उसके पास लड़ने की जितनी शक्ति थी, सब एकत्रित करके राणा साँगा के साथ युद्ध करने का उसने संकल्प किया और दिल्ली की समस्त सेना को तैयार होने की उसने आज्ञा दी।

बाबर की सेना में युद्ध की तैयारी हो रही थी और चित्तौर की तरफ से आने वाली सेनायें युद्ध का रास्ता देख रही थीं। बाबर ने इसी बीच में राजनीति की दूसरी चालों से काम लिया।

उसने अपने दूत को भेजकर साँगा के साथ सन्धि का प्रस्ताव किया। दूत के पहुँचने पर साँगा सोच-विचार में पड़ गया। शत्रु के हथियार गिरा देने पर अथवा उसके सन्धि के प्रस्ताव पर राजपूत कभी विश्वासघात नहीं करते थे। साँगा के साथ बाबर की सन्धि—वार्ता आरम्भ हो गयी। शिलादित्य नामक अपने एक सेनापति पर साँगा बहुत विश्वास करता था। सन्धि के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए साँगा ने शिलादित्य को नियुक्त किया।

सन्धि की बातचीत में एक महीना बीत गया। युद्ध के लिए उत्तेजित राजपूत सेनाओं में ढीलापन पैदा हो गया। बाबर को परास्त करने के लिए साँगा ने एक विशाल सेना चित्तौर में तैयार की थी और शूर-वीर सैनिकों तथा सरदारों को उसने अपने साथ एकत्रित किया था। इतनी बड़ी और शक्तिशाली सेना का आयोजन चित्तौर के इतिहास में ही नहीं, भारत के इतिहास में पहली बार हुआ था। इन दिनों में चित्तौर का राज्य, राजपूताना में सब से अधिक शक्तिशाली माना जाता था। इसीलिए साँगा की सहायता के लिए समस्त राजस्थान के शक्तिशाली राजा, सामन्त और सरदार अपनी अपनी सेनायें लेकर चित्तौर में एकत्रित हुए थे और जिस समय साँगा बाबर के साथ युद्ध करने के लिए रवाना हुआ था, उस समय उसके साथ की सेनाओं में एक लाख बीस हजार सामन्तों, सरदारों, सेनापतियों और बहादुर लड़ाकुओं की संख्या थी। इनके सिवा अस्सी हजार सवार सैनिक थे। तीस हजार पैदल सवारों की संख्या थी। युद्ध में लड़ने वाले पाँच सौ खूँख्वार हाथी थे। इस प्रकार दो लाख तीस हजार सैनिकों, सवारों, सरदारों, सामन्तों और उन शक्तिशाली राजपूतों को लेकर राणा साँगा युद्ध के लिए रवाना हुआ था, जिनका संग्राम में लड़ना ही जीवन था। डूँगरपुर, सालुम्ब्रा, सोनगढ़ा, मेवाड़, मारवाड़, अम्बेर, ग्वालियर, अजमेर,

चन्देरी और दूसरे राज्यों के अनेक बहादुर राजा, इस विशाल सेना का नेतृत्व कर रहे थे। सम्पूर्ण सेना का सञ्चालन राणा साँगा के हाथ में था। सिंह-नाद करती हुई अपनी इस सेना को लेकर साँगा ने बियाना नामक स्थान के करीब मुकाम किया था।

जिस समय युद्ध की प्रतीक्षा में समस्त राजपूत उमड़ते हुए उत्साह के साथ बार-बार बादशाह बाबर की सेना की ओर देख रहे थे, उसी मौके पर सन्धि की बात चीत आरम्भ हुई और उसमें बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया। सन्धि का यह प्रस्ताव असामयिक था। राजपूतों का उत्साह धीरे-धीरे क्षीण होने लगा लेकिन सन्धि के प्रस्ताव का निर्णय नहीं हुआ।

सन्धि के द्वारा मिलने वाले समय का बाबर ने लाभ उठाया। दोनों ओर की सेना के बीच में बियाना का मैदान था। बाबर ने अपनी छावनी के आगे, बियाना के मैदान के करीब अपनी सात सौ तोपें लगवा दीं और उनके पीछे बड़ी दूर की लम्बाई में गहरी खाइयाँ खुदवाई। उन खाइयों के पीछे, ऊँची जमीन पर उसने अपनी सेना को खड़ा किया। समस्त तैयारी कर लेने के बाद, उसने अपनी सन्धि के प्रस्ताव को अस्वीकृत करके युद्ध की घोषणा की।

सन्धि के सम्बन्ध में एक महीने की बात चीत ने राजपूतों के उबलते हुए जोश को ठन्ढा कर दिया। उनकी युद्ध-सम्बन्धी मनोवृत्तियाँ बदल गयी थीं और वे तरह-तरह के खेलों तमाशों में अपना समय व्यतीत करने लगे थे, अचानक बाबर की ओर से युद्ध की घोषणा सुनते ही साँगा और उसके साथ के दूसरे राजाओं को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनकी सेनाओं के उत्साह भंग हो चुके थे।

राजपूतों में बड़ी तेजी के साथ युद्ध की तैयारियाँ हुईं और उसके बाद, गरजती हुई उनकी सेनायें आगे की तरफ रवाना हुईं। बियाना के मैदान में आगे बढ़कर दोनों ओर की सेनाओं का संग्राम शुरू हुआ। बाबर की सात सौ तोपों ने एक साथ गोले

फेंकने आरम्भ किये। उन तोपों की मार के सामने राजपूत सेनाओं के पहाड़ी भील सैनिकों ने अपने बाणों की वर्षा की।

बहुत देर तक दोनों ओर से मार होती रही। तोपों की मार के कारण राजपूतों का आगे बढ़ना रुका हुआ था। सन्धि का बहाना करके एक महीने के अवसर में बाबर ने जो अपनी तरफ व्यवस्था की थी और लड़ाई की चालों से काम लिया था, विश्वासी और स्वाभिमानी राजपूतों को उनका कुछ पता न था।

वे अपनी अटूट और प्रबल शक्तियों के द्वारा बाबर की सेना को परास्त करने का विश्वास रखते थे। राजनीति के षड्यंत्रों का उन्हें कुछ पता न था। युद्ध-क्षेत्र में, भीषण मार करना, शत्रु को परास्त करना अथवा बलिदान होना ही उन्होंने अपने जीवन में जाना था। धोका देने, छल से शत्रुओं को पराजित करके युद्ध में विजयी होने को वे घृणा की दृष्टि से देखते थे। शत्रुओं के साथ युद्ध के समय भी उदारता का व्यहार करना राजपूत अपना धर्म और कर्त्तव्य समझते थे।

राणा साँगा ने अपने हाथी पर बैठे हुए युद्ध की परिस्थिति का निरीक्षण किया। उसने देखा, बाबर के गोलों से राजपूत बड़ी तेजी के साथ मारे जा रहे हैं और शत्रु की सेना तोपों के पीछे है। उसने एक साथ अपनी बिशाल सेना को शत्रुओं पर टूट पड़ने की आज्ञा दी। राणा की ललकार सुनते ही समस्त राजपूत सेना अपने प्राणों का मोह छोड़कर, एक साथ आँधी की तरह शत्रु के गोलन्दाजों पर टूट पड़ी। उस भयानक विपद के समय उस्ताद अली और मुस्तफ़ा ने राजपूतों पर गोलों की भीषण वर्षा की। उस मार में बहुत-से राजपूत एक साथ मारे गये। लेकिन उन्होंने शत्रु की तोपों को छिन्न-भिन्न कर दिया और बाबर की सेना को संहार करने के लिए जैसे ही वे आगे बढ़े, सब-के-सब एक साथ खाई के भीतर पहुँच गये। उसी समय बाबर की सेना ने खाई को ऊपर से घेर

कर जो मार शुरू की, उसमें राजपूतों का भयानक रूप से कत्ल हुआ। खाई से निकल कर बाहर आने के लिए राजपूतों ने बार बार कोशिश की, लेकिन उनमें, उनका भीषण संहार किया गया। राजपूत सेना के सामने एक प्रलय का दृश्य था। मरने और बलिदान होने के सिवा उनके सामने दूसरा कोई रास्ता न था।

बियाना के इस प्रलयकारी युद्ध मे राजपूत सेना के लगभग सभी सैनिक, सवार, सरदार सामन्त और राजा मारे गये। सुलतान इब्राहीम लोदी का भाई महमूद खाँ लोदी और उसका साथी हसन खाँ मेंवाती—दोनों ही राणा साँगा के साथ शामिल होकर, बाबर से लड़ने के लिए युद्ध में गये थे, वे भी मारे गये। तलवारों और बाणों के लगने से साँगा का समस्त शरीर चलनी हो गया था और उसके अनेक गहरे घावों से बुरी तरह रक्तपात हो रहा था। राजपूत-सेना के पराजित होते ही युद्ध बन्द हो गया और उसके बाद राणा साँगा का प्राणान्त हो गया।

राणा साँगा की मृत्यु के बाद अपने-अपने पुत्र को सिंहासन पर बिठाने के लिए उसकी रानियों में कलह उत्पन्न हुई और वह कलह यहाँ तक बढ़ी कि शूर-वीर और स्वाभिमानी राणा साँगा की रानियाँ अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए बाबर से मेल करने की कोशिश करने लगीं। इसी मौके पर एक रानी ने बाबर की सहायता प्राप्त करने के लिए रणथम्भोर का अपना प्रसिद्ध किला उसे भेंट में दे दिया। बियाना के संग्राम में यदि राजस्थान के वीरों के साथ, साँगा के पुत्रों का भी संहार हो गया होता तो उसके मरने के बाद, उसकी रानियों को शत्रु से मेल करके अपने जीवन का अक्षम्य अपराध न करना पड़ता और उनके उस कलुषित कार्य से चित्तौर का मस्तक नीचा न होता।

चौदहवाँ परिच्छेद

लैचा का युद्ध

[१५३३ ईसवी]

शासक की अयोग्यता का परिणाम, अराजकता की वृद्धि, शत्रु का आक्रमण, सरदारों का असंतोष, स्वाधीनता की रक्षा का प्रश्न, वीराङ्गनाओं के प्राणों की होली, चित्तौर की पराजय !

मेवाड़-राज्य का पतन

राणा साँगा का उल्लेख इतिहास के अनेक स्थलों पर संग्राम-सिंह के नाम से भी किया गया है, इसलिए इन दोनों नामों पर किसी प्रकार का भ्रम न उत्पन्न होना चाहिए।

राणा साँगा के सात पुत्र थे। सब से बड़े और उससे छोटे—दोनों पुत्रों की मृत्यु हो चुकी थी। इसलिए साँगा की मृत्यु के बाद, उसका तीसरा लड़का रतनसिंह सन् १५३० ईसवी में चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। इसके पहले उसके किसी दुर्गुण को कोई न जानता था। देखने-सुनने में वह अपने पिता की तरह धीर, गम्भीर और वीर मालूम होता था। राज्याधिकार प्राप्त करने के बाद, उसने स्वाभिमान के साथ स्वीकार किया था : "जब तक मैं शत्रुओं से बदला न ले लूँगा। युद्ध क्षेत्र को ही मैं अपना राज्य-सिंहासन समझूँगा।" सिंहासन पर बैठने के बाद राणा रतनसिंह ने कई बार कहा था : "मेवाड़ की राजधानी

चित्तौर के दो द्वार हैं, एक दरवाजा दिल्ली की ओर है और दूसरा दरवाजा मालवा राज्य की राजधानी माण्डू की तरफ है।"

अधिकारी होने के पूर्व और पश्चात्

अधिकार प्राप्त करने के पहले मनुष्य कुछ और होता है और अधिकारी होने के बाद वह कुछ और हो जाता है। इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता। राणा रतनसिंह के जीवन को भी इसी सत्य ने प्रभावित किया था। कुछ ही दिनों में मालूम होने लगा था कि वह अपने पिता साँगा से बहुत भिन्न है। राणा साँगा का जैसा संग्रामसिंह नाम था, वैसा ही वह संग्राम में वीर और बहादुर भी था। लेकिन रतनसिंह में उस धीरता और वीरता का अभाव थोड़े ही दिनों में स्पष्ट दिखायी देने लगा था।

रतनसिंह जब सिंहासन पर बैठा था तो उसने बियाना के युद्ध का बदला लेने की प्रतिज्ञा की थी। राणा होने के बाद थोड़े ही दिनों में उसे अपनी वह प्रतिज्ञा भूल गयी। उसका जीवन रंग-रेलियों में व्यतीत होने लगा। राज्य की परिस्थितियों पर उसने ध्यान न दिया। प्रजा के सुख और दुख की उसे परवा नहीं रही। चित्तौर की सेना और उसके सरदारों का सम्मान भी वह भूलने लगा। राणा रतनसिंह के इन व्यवहारों के साथ मेवाड़ का पतन आरम्भ हुआ।

राणा साँगा ने बुद्धि-बल और युद्ध-बल के द्वारा मेवाड़—राज्य की जो उन्नति की थी और भारतीय राजाओं तथा बादशाहों के सामने जिस प्रकार चित्तौर का उसने मस्तक ऊँचा किया था, इन दिनों में वह सब रसातल जा रहा था। राणा रतनसिंह को उसकी कुछ परवा न थी। चित्तौर का यह पतन किसी से छिपा न था। राजा और सरदार—सभी भली प्रकार अपने नेत्रों से राज्य के इस दृश्य को देख रहे थे, लेकिन सब चुप थे। सभी के हृदयों

में पीड़ा थी, लेकिन इन परिस्थितियों को बदलने के लिए किसी में सामर्थ्य न थी।

रतनसिंह अविवाहित न था। उसका एक विवाह बूँदी के राजा सूरजमल की बहन के साथ भी हो चुका था। उसके बाद उसने अम्बर के राजा पृथ्वीराज की लड़की के साथ छिपे तौर पर विवाह तय किया। पृथ्वीराज को इसकी कोई खबर न थी। लड़की के सयानी होने के कारण उसने उसका विवाह बूँदी के राजा सूरजमल के साथ तय किया और वह हो भी गया। इससे रतनसिंह बहुत अप्रसन्न हुआ और राजा सूरजमल से इसका बदला लेने के लिए उसने निश्चय किया। उसकी बहन रतनसिंह को व्याही थी, इसका भी उसने ख्याल न किया और वह सूरजमल से बदला लेने का अवसर खोजने लगा।

रतनसिंह का आक्रमण

धीरे-धीरे बहुत दिन बीत गये। लेकिन रतनसिंह अपने असंतोष को पचा न सका। एक दिन अपने कुछ सैनिकों और सरदारों के साथ वह शिकार के लिए रवाना हुआ। उस समय बूँदी का राजा सूरजमल भी उसके साथ शिकार के लिए गया। एक जंगल में जाकर रतनसिंह ने अपने सैनिकों और सरदारों को छोड़ दिया और सूरजमल के साथ बन के भीतर चला गया। वहाँ पर मौका पाकर रतनसिंह ने सूरजमल पर अपनी तलवार का वार किया। वह घोड़े से नीचे गिर गया। उसी समय रतनसिंह ने उसको जान से मार डाला और लौटकर अपने सैनिकों में आ गया। रतनसिंह का यह विश्वासघात था और सूरजमल धोखे में मारा गया।

इस विश्वासघात का परिणाम रतनसिंह के लिए भी भयानक हो गया। वह अधिक दिनों तक जीवित न रह सका। सिंहासन

पर बैठे हुए अभी उसका तीसरा वर्ष था। उसकी अकाल मृत्यु हुई और वह संसार से बिदा हो गया। उसके बाद, उसका भाई विक्रमाजीत सन् १५३३ ईसवी में चित्तौर के सिंहासन पर बैठा।

राणा सांगा ने मेवाड़-राज्य की जो मान-मर्यादा कायम की थी, विक्रमाजीत के सिंहासन पर बैठते ही वह एक साथ तिरोहित होने लगी। रतनसिंह ने शिशोदिया वंश की प्रतिष्ठा थोड़ी बहुत सुरक्षित रखी थी और उसके शासन-काल में किसी मुसलमान बादशाह ने मेवाड़ में आक्रमण करने का साहस न किया था। लेकिन विक्रमाजीत के राणा होते ही यह अवस्था एक साथ बदलने लगी। राज्य की प्रजा में असंतोष बढ़ने लगा। सरदारों के साथ भी उसका व्यवहार अच्छा न था। इसलिये वे भी भीतर-ही-भीतर रुष्ट हो रहे थे। मेवाड़ के राजपूतों का सम्मान और स्वाभिमान जिस प्रकार छिन्न-भिन्न हो रहा था, उसे चित्तौर के दूरदर्शी चिन्ताकुल होकर देख रहे थे। जिन शूर-वीर सरदारों के बल और पराक्रम पर राज्य की प्रतिष्ठा निर्भर थी, उनके साथ राणा विक्रमाजीत का बहुत साधारण सम्बन्ध रह गया था। वह अपने सरदारों और सेनापतियों का आदर करना न जानता था। वह कभी उनके साथ बैठकर राज्य की अवस्था पर परामर्श न करता था। छोटी-छोटी बातों में भी वह सरदारों के अधिकारों की उपेक्षा करता था। विक्रमाजीत का सरदारों के साथ वास्तव में यह दुर्व्यवहार था, जिसे सभी सरदार अपमान के साथ सहन कर रहे थे।

राज्य का बढ़ती हुई अराजकता

विक्रमाजीत मेवाड़-राज्य का शासक था, लेकिन एक शासक का कर्त्तव्य क्या होता है, इस बात का उसे ज्ञान न था। वह अपरिणामदर्शी था। शासक के गुणों का उसमें सर्वथा अभाव

था। जब राज्य में सुयोग्य और शक्तिशाली मनुष्यों का आदर नहीं होता और अयोग्य आदमी आवश्यकता से अधिक महत्व पाते हैं तो उस दशा में अराजकता का पैदा होना और बढ़ना अत्यन्त स्वाभाविक होता है और यह अराजकता ही राज्य की बरबादी की सूचना देती है।

राणा विक्रमाजीत के शासन-काल में मेवाड़-राज्य की यही अवस्था थी। प्रजा के सुयोग्य व्यक्तियों का सम्मान नष्ट हो गया था। साधारण और अयोग्य व्यक्ति स्वतन्त्र हो रहे थे। यही अवस्था राज्य की सेना की भी थी। सरदारों और अधिकारियों का कोई सम्मान न था और उसके परिणाम-स्वरूप साधारण सैनिक आतंकहीन हो गये थे। राज्य-व्यवस्था की यह दुरवस्था भयानक रूप से चल रही थी। लेकिन विक्रमाजीत को इन बातों का ज्ञान न था और न उससे कोई कहने वाला ही था। उसकी समझ में जो कुछ आता था, वही वह करता था। इसमें किसी का बस ही क्या था।

इस अव्यवस्था के कारण राज्य में अनेक अवांछनीय परिणाम पैदा हुए। शासन और आतंक मिटने लगा और अराजकता बढ़ने लगी। राज्य में दुराचारी निर्भीक होकर विचरण करने लगे। उनके दुराचारों से प्रजा के कष्ट आँधी की तरह बढ़े। इन कष्टों का कोई देखने और सुनने वाला न था। अंकुशहीन दुराचारियों और व्यभिचारियों के कारण राज्य की अवस्था अत्यन्त भयानक हो गयी। राणा विक्रमाजीत को इन बातों का कुछ पता न था।

इस बढ़ती हुई अराजकता ने मेवाड़ की राज-शक्ति को क्षीण और दुर्बल बना दिया। पहाड़ों पर रहने वाले असभ्य लोग, जो पहले मेवाड़ के सहायक थे, इन दिनों में विरोधी और विनाशक हो रहे थे। उनके दल के दल पहाड़ों से निकलते और राज्य

की पहाड़ी सीमा पर जाकर लूट-मार करते। परन्तु उनको कोई रोकने वाला न था। राज्य के अधिकारी और सरदार चुप थे। इन दुरवस्थाओं के कारण राणा विक्रमाजीत के हृदय में कोई पीड़ा न थी।

बहादुर शाह का आक्रमण

मेवाड़-राज्य की इस अव्यवस्था के दिनों में उसके मित्रों की संख्या कम हो गयी थी और शत्रु अपने लिए वहाँ की अराजकता और दुर्बलता को एक अच्छा अवसर समझ रहे थे। गुजरात के मुसलमान बादशाहों के साथ चित्तौर की पुरानी शत्रुता थी। वहाँ के बादशाह मुज़फ्फर को राजकुमार पृथ्वीराज ने बुरी तरह पराजित किया था। अपनी इस पराजय की पीड़ा को वहाँ के मुस्लिम शासक अभी तक अपने हृदय में छिपाये थे। राणा विक्रमाजीत के पहले तक वहाँ के मुस्लिम शासकों में इतनी शक्ति न थी कि वे चित्तौर पर आक्रमण करके अपनी शत्रुता का बदला ले सकते।

परन्तु आज चित्तौर के वे दिन न थे। शक्तिशाली राजा ही, राज्य का बल होता है। इन दिनों में चित्तौर का शासक विक्रमाजीत शक्तिहीन और अपरिणामदर्शी था। उसकी अयोग्यता के कारण उसके सामंत और सरदार स्वयं विक्षुब्ध और असंतुष्ट थे। ऐसे अवसर पर शत्रु कैसे चुप रह सकते थे। गुजरात का सुलतान बादशाह इधर कुछ दिनों से चित्तौर की परिस्थितियों का अध्ययन कर रहा था। भीतरी और बाहरी—उसने सभी प्रकार की कमजोरियाँ चित्तौर में देखीं और राणा विक्रमाजीत को अयोग्य समझ कर उसने चित्तौर पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

मुज़फ्फर शाह की पराजय का बार-बार स्मरण करने पर

बहादुर शाह का खून खौल उठा। उसके हृदय की दबी हुई पीड़ा ताजी हो उठी। चित्तौर का विध्वंस और विनाश करने के लिए उसने गुजरात और मालवा की समस्त सेनाओं को तैयार किया और अपनी विशाल सेना को लेकर बहादुर शाह गुजरात से रवाना हुआ।

उन दिनों में विक्रमाजीत बूँदी में था। एक बहुत बड़ी सेना के साथ बहादुर शाह के होने वाले आक्रमण का समाचार उसे मिला। उसी समय उसने युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। बूँदी में उसके साथ जो सेना थी, वह बहादुर शाह की विशाल सेना का सामना करने के योग्य न थी। इसलिए बड़ी तत्परता के साथ उसने चित्तौर से सेना बुलाने का प्रयत्न किया। उसकी इस कोशिश में उसे सफलता आरम्भ में दिखायी न पड़ी। उसके व्यवहार से चित्तौर के बड़े-बड़े सरदार प्रसन्न न थे। सेना के कितने ही शूर-वीर असंतोष की साँसे ले रहे थे। जिनके बल पर चित्तौर के वैभव की रक्षा सदा हुआ करती थी, वे लगभग सब के सब अन्यमनस्क हो रहे थे। अधीन राज्यों की परिस्थितियाँ भी अच्छी न थीं। जिन सामन्तों और राजाओं ने सदा अपना और अपने सैनिकों का रक्त बहाकर राजपूती मर्यादा की रक्षा की थी, आज वे चित्तौर के राणा विक्रमाजीत के व्यवहारों से अपना स्वाभिमान खो चुके थे।। स्वाभिमान ही मनुष्य का एक बल होता है। इसके अभाव में मनुष्य की दूसरी शक्तियाँ अक्षम रहा करती हैं।

चित्तौर की अव्यवस्था

बहादुर शाह के आक्रमण के समाचार ने मेवाड़-राज्य के सामने एक भयानक स्थिति पैदा कर दी। राणा साँगा के शासन-

काल में जिस चित्तौर की शक्तियों के सामने भारत का कोई राजा और बादशाह सामना करने का साहस न करता था और जिसके शूर-वीर राजपूतों ने दिल्ली और मालवा के मुसलमान बादशाहों को अनेक बार पराजित किया था, इन दिनों में उसी चित्तौर की अवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी और राज्य के संरक्षण का प्रश्न भीषण दिखायी देता था। इसका कारण प्रमुख रूप में राणा विक्रमाजीत की अयोग्यता थी। आश्चर्य की बात यह थी कि इस कारण को राणा ने अब तक समझा न था। अपनी निर्बलता को समझ कर यदि उसने बुद्धिमानी से काम लिया होता तो भी परिस्थिति के बदलने में बहुत-कुछ आशा की जा सकती थी।

मेवाड़-राज्य पर आयी हुई इस विपद ने स्वयं चित्तौर के राजपूतों के बदलने का कार्य किया। असन्तुष्ट और विक्षुब्ध होने के बाद भी उनके सामने चित्तौर की स्वाधीनता का प्रश्न था। किसी भी अवस्था में वे शत्रु के अत्याचारों को सहने के लिए तैयार न थे। इसीलिए विक्रमाजीत के अनुचित व्यवहारों को भूलकर राज्य के समस्त राजपूतों ने युद्ध की तैयारी की। सरदारों और सामन्तों ने शत्रु का सामना करने की प्रतिज्ञायें कीं। शिशोदिया का वंशज जो सूरजमल चित्तौर का शत्रु हो गया था और जिसने पृथ्वीराज से पराजित होकर चित्तौर से दूर देवल-नगर नामक एक राज्य की स्थापना की थी, उसका वंशज बाघजी अपनी सेना लेकर बहादुर शाह के साथ युद्ध करने के लिए देवल-नगर से चित्तौर की ओर रवाना हुआ और अपने पूर्वजों के राज्य की रक्षा करने के लिए उसने प्रतिज्ञा की। समय कुछ बदलता हुआ दिखायी पड़ा। चित्तौर की रक्षा करने के लिए एक बड़ी सेना का संगठन हुआ। अनेक सरदारों और सामन्तों के सिवा बूँदी, शोनगढ़ा, देवर और दूसरे राज्यों के राजा अपनी-अपनी सेनायें लेकर चित्तौर में एकत्रित हुए।

दोनों ओर की सेनाओं का सामना

भारत के मुसलमान बादशाहों के साथ अब तक चित्तौर की जो भयानक लड़ाइयाँ हुई थीं, उनमें से यह एक थी। बूँदी राज्य के लैचा नामक स्थान में दोनों ओर की सेनाओं का सन् १५३३ ईसवी में मुकाबिला हुआ। इस युद्ध के लिए गुजरात और मालवा से बहादुर शाह के साथ जो सेना आयी थी, चित्तौर की सेना के मुकाबिले में, वह बहुत अधिक थी। लेकिन उसको देख-कर राजपूतों में किसी प्रकार का भय नहीं उत्पन्न हुआ। युद्ध के मैदान में बहादुर शाह ने अपनी सेना को सजाकर खड़ा किया था और सैनिकों के आगे उसकी तोपें लगी हुई थीं, जिनका सञ्चालन लाबी खाँ नामक एक प्रसिद्ध गोलन्दाज कर रहा था।

युद्ध के आरम्भ होते ही बहादुर शाह की संहारकारी तोपों से असंख्य वज्रों के समान गरजने की आवाज हुई और गोलों की वर्षा होने लगी। राजपूतों ने शत्रुओं पर बाणों की मार आरम्भ की। बहुत देर तक तोपों के गोलों और बाणों की वर्षा होती रही। इस मार में राजपूत बड़ी संख्या में मारे गये। राज-पूत सरदारों ने इस भीषण परिस्थिति को देखकर अपनी सेना को पीछे हटने की आज्ञा दी और संयोग पाकर दाहिने और बायें ओर से मुस्लिम सेना पर बाणों के प्रहार करने का आदेश दिया। कुछ देर तक राजपूतों को इसमें सफलता मिली। लेकिन उसी समय तोपों की फिर भयानक आवाज हुई। उनकी भीषण कड़क से बहुत दूर तक पशु और पक्षी भयभीत हो उठे। इस बार तोपों ने भयानक रूप से धुआँ छोड़ना शुरू किया। उसके कारण संग्राम-भूमि में बहुत दूर तक अन्धकार छा गया। लेकिन युद्ध बराबर जारी रहा।

अन्धकार की उस भीषणता में एकाएक गोलों की वर्षा बन्द

हो गयी और विशाल मुस्लिम सेना ने आगे बढ़कर राजपूत सैनिकों पर आक्रमण किया। इस आक्रमण के साथ मुस्लिम सैनिकों ने तलवारों की मार शुरू की। अन्धकार की भीषणता में राजपूत सेना को आरम्भ में इस आक्रमण का कुछ पता न चला और थोड़े समय में ही मुस्लिम सेना ने राजपूतों का भयानक संहार किया। राणा विक्रमाजीत के कई एक सरदार मारे गये और भयभीत होकर राजपूत सेना पीछे हटने लगी। मुस्लिम सेना तेजी के साथ आगे बढ़ रही थी। विक्रमाजीत के कई बार प्रयत्न करने पर भी शत्रु-सेना का दबाव रुक न सका। एक बार राजपूतों ने साहस से काम लिया और रुक कर उन्होंने शत्रुओं को पीछे की ओर हटाना चाहा, लेकिन शत्रुओं की संख्या बहुत थी और वे लगातार आगे की ओर बढ़ते हुए आ रहे थे। इस लिए राजपूतों का साहस टूट गया और वे तेजी के साथ युद्ध के मैदान से भागने लगे।

चित्तौर के बाहर युद्ध

विक्रमाजीत को परास्त करके विजयी बहादुर शाह अपनी सेना लेकर आगे बढ़ा और चित्तौर को जाकर घेर लिया। लैचा के मैदान से भाग कर राजपूत सेना चित्तौर में आ गयी थी और वहाँ पर पहुँच कर उसने एक बार फिर डटकर शत्रुओं के साथ युद्ध किया। उसके सामने चित्तौर की स्वाधीनता का प्रश्न था। जीवित रह कर शत्रुओं के द्वारा होने वाले विनाश और विध्वंस को राजपूत देखना नहीं चाहते थे। इसीलिए प्राणों का मोह छोड़कर राजपूतों ने मुस्लिम सेना के साथ भयानक मार-काट की। इस समय बहादुर शाह की तोपों का उनको भय न था।

चित्तौर के बाहर दोनों ओर की सेनाओं का प्रलयकारी युद्ध

हो रहा था। तलवारों की भीषण प्रहार में दोनों ओर के बहुत-से आदमी मारे गये। युद्ध का सम्पूर्ण स्थान रक्तपूर्ण हो चुका था। मरे और घायल सैनिकों से भयानक दृश्य उत्पन्न हो गये। मुस्लिम सेना चित्तौर के भीतर प्रवेश करने की कोशिश में थी और राजपूत उसको चित्तौर के बाहर की तरफ ढकेल रहे थे। राजपूतों की संख्या कम होने पर भी मुस्लिम सैनिक आगे न बढ़ सकते थे। यह परिस्थिति बहुत समय तक चलती रही। बहादुर शाह का गोलन्दाज दूरदर्शी और बुद्धिमान था। चित्तौर के बाहर राजपूतों की बहादुरी देखकर उसे अनेक प्रकार की आशंकायें होने लगीं। इसलिए उसने युद्ध-स्थल के निकट बीका पहाड़ी के नीचे एक लम्बी सुरंग खोदने के लिए अपने सैनिकों को आदेश दिया और उसके तैयार होते ही उसने उसमें बारूद भर कर आग लगा दी। उस स्थान के पास ही राजपूतों का कठिन मोर्चा था और वहाँ पर युद्ध करते हुए मुस्लिम सेना बार-बार पीछे हट जाती थी। सुरंग में आग लगाते ही एक भयानक आवाज के साथ पचास हाथ लम्बी जमीन एक साथ उड़ गयी और उस स्थान के समस्त राजपूत क्षण-भर में जलकर भस्म हो गये। लाब्री खाँ की इस बुद्धिमानी से चित्तौर की सेना के कई हजार शूर-वीर सैनिक मारे गये और अनेक सरदार तथा सेनापति जलकर राख के ढेर में मिल गये।

चित्तौर के किले पर भयानक युद्ध

लाब्री खाँ ने सुरंग में आग लगाकर राजपूतों की एक बड़ी संख्या को भस्म कर दिया और चित्तौर की सेना को निर्बल बना दिया। विक्रमाजीत की सेना को अस्त-व्यस्त करके मुस्लिम सेना आगे बढ़ी और जैसे ही वह चित्तौर के किले के सामने पहुँची, एकाएक राजपूतों की एक नयी सेना दुर्गाराव और कई एक

दूसरे सरदारों के नेतृत्व में सामने आकर मुस्लिम सेना के साथ युद्ध करने लगी। इस नयी राजपूत सेना में सैनिकों की संख्या बहुत कम थी। परन्तु उनकी भयानक मार के कारण एक बार मुस्लिम सेना का साहस टूट गया। लेकिन थोड़े-से सैनिक उस विशाल सेना का सामना कितनी देर तक कर सकते थे। किले के निकट उन राजपूतों का संहार करके मुस्लिम सेना आगे की ओर बढ़ी। उसी समय चित्तौर की वीराङ्गना जवाहर बाई के नेतृत्व में एक दूसरी राजपूत सेना मुस्लिम सेना के सामने पहुँच गयी और उसने अपनी तलवारों तथा भालों के साथ शत्रुओं पर आक्रमण किया। एक सैनिक की पोशाक में अपने घोड़े पर बैठी हुई जवाहर बाई ने शत्रुओं को काटना आरम्भ कर दिया। उसके बायें हाथ में ढाल और दाहिने हाथ में तलवार थी। दोनों ओर के सैनिकों में कुछ समय तक जमकर युद्ध हुआ। इसी अवसर पर जवाहर बाई के सैनिक लड़ते हुए मारे गये और चित्तौर की स्वाधीनता के लिए स्वाभिमानिनी जवाहर बाई ने युद्ध करते हुए रण-क्षेत्र में अपने प्राणों का बलिदान किया।

वीर बालाओं का बलिदान

चित्तौर का विनाश समीप आ चुका था। राजपूत लड़ते-लड़ते इतने अधिक मारे गये थे कि उनकी संख्या अब नहीं के बराबर थी। फिर भी युद्ध जारी था। लेकिन चित्तौर की रक्षा का अब उपाय बाकी न था। वहाँ के निवासी मुसलमानों के प्रलयकारी प्रवेश का बार-बार अनुमान लगाकर भयभीत हो रहे थे।

सभी प्रकार निराश होने के पश्चात् राजमहलों में बलिदान होने के लिए वीर-बालाओं की तैयारियाँ आरम्भ हो गयीं। रनवास के विशाल प्राङ्गण में दीर्घाकार एक बड़ी सुरंग थी और वह इसी प्रकार के अवसरों पर काम में लायी जाती थी। शत्रु के

आक्रमण करने पर जब रक्षा का कोई उपाय वे न देखती थीं तो वे उसी सुरंग में चिता बनवा कर उसमें प्रवेश करती थीं और राजपूत स्वयं उस चिता में आग लगाकर सुरंग का द्वार बन्द कर देते थे।

आज चित्तौर के सामने फिर वही आपत्ति थी। राजपूत सेना की अन्तिम पराजय के पहले राजपूत लड़कियों और स्त्रियों को प्राणोत्सर्ग कर देना चाहिए। जिस समय राजमहलों में उस चिता की तैयारी हो रही थी, युद्ध के अन्तिम समय में देवल-नगर के राजा बाघ जी के नेतृत्व में राजपूतों की एक छोटी-सी सेना वहाँ पर आयी और मुस्लिम सेना के साथ युद्ध करके कुछ समय तक उसने युद्ध को और जीवित रखा। इस बीच में राजमहल की सुरंग में आग दी जा चुकी थी और चित्तौर की तेरह हजार राजपूत बालायें बलिदानों के उन्मादपूर्ण गानों के साथ उसमें जल कर भस्म हो चुकी थीं।

बहादुर शाह ने चित्तौर की समस्त सेना को परास्त कर और लैचा से लेकर चित्तौर तक बत्तीस हजार राजपूतों का संहार करके अपनी सेना के साथ चित्तौर में प्रवेश किया। सन् १३०३ ईसवी में अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौर पर आक्रमण करके जो वीभत्स दृश्य उत्पन्न किये थे, बहादुर शाह ने उसी चित्तौर में २३० वर्षों के बाद उन दृश्यों की पुनरावृत्ति की। अपने सैनिकों, सरदारों और सेनापतियों के साथ, उसने नगर में प्रवेश किया। चित्तौर के बाहर उसने भीषण रक्तपात के दृश्य देखे थे, नगर के भीतर पहुँचने पर उसे श्मशान के सिवा और कुछ देखने को न मिला।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

कन्नौज का भयानक संहार

[१५४० ईसवी]

साँगा की मृत्यु, अफ़ग़ानों का विद्रोह, बाबर की मृत्यु, हुमायूँ के घरेलू झगड़े, बहादुर शाह और शेर शाह के साथ युद्ध, विनाश का कारण सन्धि, पराजित हुमायूँ का पलायन !

बाबर और भारत के दूसरे राज्य

सन् १५२७ ईसवी में राणा साँगा को पराजित करने के बाद, बाबर के सामने भारत के दूसरे राज्यों का प्रश्न पैदा हुआ। उन दिनों में दिल्ली और चित्तौर ही भारत के शक्तिशाली राज्यों में थे। और दोनों ही राज्य बाबर के साथ युद्ध करके पराजित हो चुके थे। उस समय भी इस देश में छोटे-बड़े बहुत से राजा और बादशाह थे। लेकिन उनमें कोई अधिक शक्तिशाली न था। एक-एक करके उन सबको जीतकर बाबर भारत में अपना साम्राज्य कायम करना चाहता था।

इसी उद्देश्य से बाबर का ध्यान दूसरे राज्यों की ओर आकर्षित हुआ। जनवरी सन् १५२८ ईसवी में मालवा और राजपूताना को विजय करने के लिए वह अपनी सेना लेकर रवाना हुआ। उसने सब से पहले मेदिनी राय के चन्देरी किले को जीतने का इरादा किया। बियाना के युद्ध में पराजित होने के बाद राणा साँगा अपने कुछ सरदारों के साथ इसी तरफ चला आया था और

बाबर के साथ एक बार फिर युद्ध करने के लिए वह तैयारी कर रहा था। परन्तु उसके सरदार और सामन्त साँगा से सहमत न थे। बाबर के साथ युद्ध करने के लिए उनका साहस और विश्वास काम न करता था। उन्होंने अनेक बार साँगा का विरोध किया। लेकिन उसने उनकी बातों को स्वीकार न किया। उसके हृदय में पराजय के अपमान की एक चिता जल रही थी। उसकी यह चिता विजय अथवा मृत्यु के साथ ही बुझ सकती थी। इसीलिए सरदारों और सामन्तों की सम्मत्ति न मिलने पर भी वह युद्ध की तैयारी में लगा था।

साँगा की मृत्यु का रहस्य

साँगा के सम्बन्ध में बाबर को कुछ भी पता न था। फिर भी एक विशाल सेना के साथ बाबर की रवानगी का समाचार जान-कर साँगा के सरदारों का विश्वास हो गया कि बाबर राणा साँगा के साथ युद्ध करने के लिए आ रहा है। उन्होंने इस संघर्ष को बचाने के लिए अनेक उपाय सोच डाले। लेकिन उनको सफ-लता मिलती हुई दिखाई न पड़ी। उनको यह विश्वास था कि साँगा को युद्ध से रोका नहीं जा सकता। बियाना के युद्ध-क्षेत्र से राणा को किसी प्रकार यहाँ लाने का कार्य उसके चतुर सरदारों ने किया था। उस समय साँगा के शरीर में सैकड़ों भयानक घाव थे और अन्त में वह अचेत अवस्था में यहाँ लाया गया था।

विरोध करने पर भी साँगा के न मानने पर सरदारों ने युद्ध को रोकने की कोशिश की और उनका जब कोई उपाय न चला तो उन्होंने साँगा को विष देकर समाप्त कर दिया। बियाना की पराजय के बाद भी मेवाड़ राज्य की जो आशा बाकी थी, वह भी जाती रही और साँगा की मृत्यु के साथ ही चित्तौर के स्वाभिमान और वैभव का अन्त हो गया।

बाबर दिल्ली से रवाना हो चुका था। चन्देरी के किले पर उसने आक्रमण किया। वहाँ के राजपूतों ने बाबर की सेना के साथ युद्ध किया और उसने जीवन का मोह छोड़ कर अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए उन्होंने अपने प्राणों की आहुतियाँ दीं। उनकी शक्तियाँ बाबर की सेना का सामना करने के योग्य न थीं। फल-स्वरूप चन्देरी के राजपूतों की हार हुई।

अफ़ग़ानों का विद्रोह

चन्देरी को जीतकर बाबर मालवा की ओर बढ़ा। वहाँ पर अभी कितने ही सामन्त और सरदार थे, जिनके राज्यों और किलों को जीतने के बाद, बाबर मेवाड़-राज्य में प्रवेश करना चाहता था। चन्देरी से आगे बढ़ने के बाद ही बाबर को समाचार मिला कि अवध और पूर्व के अफ़ग़ानों ने विद्रोह कर दिया है और विद्रोहियों ने कन्नौज से मुगल सेना को मारकर भगा दिया।

इस समाचार के पाते ही बाबर राजस्थान के सरदारों, सामन्तों और राजाओं को विजय करने की बात भूल गया। किसी भी अवस्था में उसका कन्नौज पहुँचना आवश्यक हो गया। राजपूताना के राजाओं और सरदारों को जीतने के लिए जब बाबर अपनी सेना लेकर रवाना हुआ था, उन्हीं दिनों में नसरत शाह बंगाली ने आजमगढ़ और बहराइच तक जाकर अधिकार कर लिया था। बाबर चन्देरी के आगे जाकर लौट पड़ा और कालपी के रास्ते से होकर वह सीधा कन्नौज की ओर बढ़ा। वहाँ पर अफ़ग़ान विद्रोहियों ने बड़ा उपद्रव मचा रखा था और वे मुगलों की सत्ता को वहाँ पर जमने नहीं देना चाहते थे। बाबर ने कन्नौज पहुँच कर विद्रोही अफ़ग़ानों के साथ मार-काट आरम्भ कर दी। कुछ समय तक अफ़ग़ानों ने बाबर के सैनिकों का सामना किया। लेकिन अन्त में उनकी पराजय हुई। उनकी शक्तियाँ मुगल

सैनिकों के सामने डट न सकीं और उनको कन्नौज छोड़कर भाग जाना पड़ा।

बाबर ने फिर से कन्नौज में अधिकार कर लिया और वहाँ की रक्षा के लिए उसने अपनी एक छोटी-सी सेना छोड़ दी। गर्मी के भयानक दिन समाप्त हो रहे थे और बरसात के दिन निकट आ गये थे। बाबर अपनी सेना के साथ वहाँ पर आस-पास घूमता रहा और उसने जौनपुर तथा बक्सर तक आक्रमण करके वहाँ के समस्त प्रदेशों को अपने राज्य में मिला लिया।

बियाना के युद्ध में लिखा जा चुका है कि महमूद लोदी, दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी का वंशज था और दिल्ली-पतन के पश्चात् वह राणा साँगा से जाकर मिल गया। बियाना के युद्ध में बादशाह बाबर के विरुद्ध युद्ध करने के लिए साँगा के साथ, महमूद लोदी भी गया था।

राणा साँगा जब तक जीवित रहा, महमूद लोदी उसके साथ रहा। उसके मर जाने के बाद वह पूर्व की ओर चला गया था। अफ़ग़ानों को मिलाकर उसने मुग़लों के साथ विद्रोह की शुरू-आत की थी।

कन्नौज का विद्रोह शान्त करके और वहाँ से विद्रोहियों को भगाकर बाबर लौटकर चला गया। उसके वहाँ से हटते ही विद्रोह की आग फिर सुलग उठी। लोहानियों से बिहार को छीन कर महमूद लोदी ने वहाँ पर अपनी राजधानी बनायी। उसने अपनी शक्तियों का संगठन किया और मुग़लों के साथ मार-काट आरम्भ कर दी। बनारस और ग़ाज़ीपुर में मुग़लों ने अपना प्रभुत्व कायम कर लिया था। महमूद लोदी ने वहाँ पर आक्रमण किया और भीषण संघर्ष के बाद वहाँ पर अधिकार करके वह अपनी विद्रोही सेना के साथ चुनार और गोरखपुर पहुँच गया। विद्रोहियों के इन समाचारों को पाकर, बाबर १५२९ ईसवी के

आरम्भ में फिर पूर्व की ओर लौटा। उसके आते ही विद्रोहियों के साथ मार-काट आरम्भ हुई। कुछ समय संघर्ष चलता रहा। अन्त में विद्रोही अफ़ग़ान इधर-उधर भाग गये। बाबर ने इस बार विद्रोहियों के विरुद्ध भयानक अत्याचार किये। उन अन्यायों से घबराकर लोहानी-नेता जलाल खाँ ने बाबर के साथ सन्धि कर ली और एक करोड़ वार्षिक कर देना स्वीकार करके वह बाबर की स्वीकृति से वहाँ का शासक हो गया।

विद्रोह का अन्त

लोहानियों के साथ सन्धि हो जाने के बाद भी मुग़लों के विरुद्ध जो विद्रोह हो रहे थे, उनका अन्त न हुआ। नसरत शाह बंगाली के उत्पात इसके बाद भी कुछ समय तक जारी रहे। बाबर ने बंगालियों को दबाने का प्रयत्न किया और जब वे आसानी के साथ न दबे तो वह अपनी सेना लेकर उनके विनाश के लिए रवाना हुआ।

नसरत शाह को जब मालूम हुआ किया बाबर अपनी सेना के साथ आ रहा है तो वह तैयार होकर गण्डक के पास पहुँच गया और वहाँ के चौबीसों घाटों को रोक कर वह युद्ध के लिए डट गया। बाबर अपनी सेना के साथ जौनपुर से घाघरा की तरफ रवाना हुआ और गण्डक के पास पहुँच कर १५२९ ईसवी में उसने नसरत शाह बंगाली की सेना पर आक्रमण किया।

दोनों ओर से सेनाओं का सामना हुआ और कुछ समय तक भयानक मार हुई। बाबर के साथ होशियार बन्दूकची थे। उनकी गोलियों की मार के सामने नसरत शाह की सेना के बहुत-से आदमी मारे गये। बन्दूकों की मार के सामने बंगाली ठहर न सके। उनकी हार हो गयी। इस लड़ाई के एक महीने के भीतर ही नसरत शाह ने बाबर के साथ सन्धि कर ली। नसरत शाह

के साथ होने वाला घाघरा का युद्ध, बाबर के जीवन का अन्तिम युद्ध था। इन दिनों में उसका राज्य भारत में बहुत विस्तृत हो गया था और उसका साम्राज्य बदख्शाँ से लेकर बिहार तक फैल गया था। सन् १५२९ ईसवी में उसके संघर्षों, उत्पातों और विद्रोहों का अन्त हुआ और उनके साथ-साथ उसका भी अन्त हो गया। सन् १५३० ईसवी में बाबर की आगरा में मृत्यु हो गयी और उसके मृत-शरीर को काबुल में लेजाकर दफनाया गया।

हुमायूँ का राज्याभिषेक

बाबर के चार लड़के थे। हुमायूँ सब से बड़ा था। उसकी अवस्था, बाबर की मृत्यु के समय तेईस वर्ष की थी। यौवन के बहुत-से दिन उसने अपने पिता के साथ बिताये थे और उन दिनों में बाबर की प्रसिद्धि समस्त संसार में थी। उसके साथ रहकर हुमायूँ को काबुल और भारत में युद्ध करने का अवसर मिला था। उसने न केवल पिता के शासन-काल में युद्धों का अनुभव प्राप्त किया था, बल्कि पिता के शौर्य और प्रताप ने जन्म से उसके जीवन को प्रकाश पहुँचाया था। कदाचित् इसीलिए उसका नाम हुमायूँ रखा गया था। हुमायूँ का अर्थ भाग्यशाली होता है। उसके भाग्यशाली होने में किसे सन्देह हो सकता है। जिसके पिता का साम्राज्य, बदख्शाँ से लेकर भारत तक फैला हुआ था, उसे सौभाग्य शाली होना ही चाहिए। लेकिन जन्म से न तो कोई भाग्यशाली होता है और न कोई भाग्यहीन। किसी के भाग्य और दुर्भाग्य का निर्णय, उसके जीवन के समस्त दिन मिलकर किया करते हैं। जीवन की सफलता से सौभाग्य का और असफलता से दुर्भाग्य का निर्माण और निर्णय होता है, जन्म से नहीं।

बाबर का दूसरा लड़का कामरान था। उसे बाबर ने अपने

जीवन-काल में ही काबुल और कन्दहार का सूबेदार बना दिया था। वह आरम्भ से ही लालची, अभिमानी और छली था। उसके पिता ने उसे राज्य का जो हिस्सा सौंप दिया था, उसमें उसे सन्तोष न था। वह सदा हुमायूँ के साथ ईर्षा किया करता था। बाबर के तीसरे पुत्र का नाम अस्करी और चौथे का हिन्दाल था। उसके ये दोनों लड़के कायर, निर्बल और बुद्धिहीन थे। इन दोनों लड़कों में इतनी भी योग्यता न थी कि वे अपनी बुद्धि पर चल सकें।

सन् १५३० ईसवी में हुमायूँ दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। इस राज्याधिकार के बदले में हुमायूँ के भाई कामरान को बदख़्शाँ, कन्दहार, काबुल और पंजाब मिला। बाबर ने दिल्ली का राज्य प्राप्त करके भारत के कितने ही दूसरे राज्यों पर अधिकार कर लिया था और उन दिनों में कोई भारतीय राजा और बादशाह न था, जो आसानी के साथ बाबर के विरुद्ध भारत में युद्ध की घोषणा करे। इस अवस्था में भी राजपूताना और मालवा के राजाओं पर बाबर का आधिपत्य न हो सका था और भारत के पूर्व में जो अफ़ग़ानों के विद्रोह आरम्भ हो गये थे, बाबर के बार-बार दमन करने पर भी उनकी आग बुझ न सकी थी। अवसर पाकर वह फिर सुलग उठती थी।

देश की परिस्थितियाँ

सन् १५२६ ईसवी के पूर्व, जब दिल्ली का सुलतान इब्राहीम लोदी बाबर के साथ युद्ध में पराजित न हुआ था, उस समय भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ कुछ और थीं। लेकिन जब बाबर ने इब्राहीम को परास्त किया और वह दिल्ली की गद्दी पर बैठा, उस समय देश की परिस्थितियों का परिवर्तन आरम्भ हुआ। उसके एक वर्ष के बाद, राणा साँगा के पराजित होते ही, देश की,

परिस्थितियाँ बिलकुल बदल गयीं। ऐसा मालूम होने लगा कि भारत के दूसरे राजाओं का प्रभुत्व नष्ट हो जायगा और समूचे भारत में मुग़लों का ही आधिपत्य रह जायगा।

मेवाड़ में राणा साँगा के पश्चात् उसका छोटा लड़का रतनसिंह गद्दी पर बैठा था। उसका बड़ा भाई भोजराज—मीराबाई का पति, साँगा से पहले ही मर चुका था। साँगा के शासन-काल में मेवाड़ के वैभव की वृद्धि हुई थी। लेकिन उसके परास्त होने के बाद वह एक साथ लुप्त हो गयी। मालवा के महमूद खिलजी के साथ चितौर का संघर्ष आरम्भ हो गया।

बाबर के मरने के पहले ही भारत के पश्चिम में बहादुर शाह की शक्तियाँ बढ़ रही थीं। सन् १५२९ ईसवी में बाबर से बिहार का शासन वापस लाने के बाद जलाल खां लोहानी ने अपने पैर फैलाने शुरू कर दिये और बाबर की बीमारी के दिनों में उसने चुनार के किले पर अधिकार कर लिया।

राणा रतनसिंह और नसरत शाह बंगाली की मृत्यु के पश्चात् बहादुर शाह का दबदबा शुरू हुआ। उसका गुजरात में शासन था और इन दिनों में उसने पुर्तगालियों के साथ अपना सीधा सम्बन्ध कायम कर लिया था। इससे तोपों के पाने में उसको बड़ा सुभीता हो गया था। उसके पड़ोसी राज्य निर्बल हो गये थे। रतनसिंह का भाई विक्रमाजीत चौदह वर्ष की अवस्था में चितौर के सिंहासन पर बैठा। उसकी अयोग्यता, निर्बलता और अव्यावहारिकता के कारण मेवाड़ और मालवा के अनेक सरदारों और सामन्तों ने असंतुष्ट होकर उसका साथ छोड़ दिया था। विक्रमाजीत की इस अयोग्यता का लाभ दूसरे राजाओं और बादशाहों ने उठाया और मेवाड़-राज्य के कितने ही इलाके बहादुर शाह के अधिकार में चले गये। इसके बाद भी बहादुर शाह ने चितौर पर

आक्रमण किया और अलाउद्दीन खिलजी की तरह उसने चित्तौर का विनाश एवम् विध्वंस किया।

बाबर के मरने के बाद, भारत की राजनीतिक स्थितियों में फिर परिवर्तन हुआ। जिस बाबर ने भारत की समस्त शक्तियों को निर्बल बना दिया था, उसके मरते ही, उसके लड़के हुमायूँ के अनेक शत्रु पैदा हो गये। बहादुर शाह चित्तौर को समाप्त करके दिल्ली की ओर बढ़ना चाहता था। इसके पहले ही—हुमायूँ के शासन-काल में वह दिल्ली राज्य के कई प्रदेशों पर अधिकार कर चुका था और वहाँ से हुमायूँ तथा बहादुर शाह के बीच में एक भीषण शत्रुता पैदा हो गयी थी।

जिन दिनों में बहादुर शाह की शक्तियाँ चित्तौर का सर्वनाश करने में लगी थीं, हुमायूँ दिल्ली से मुगलों की एक विशाल सेना को लेकर रवाना हुआ और कालपी, चन्देरी, रायसेन होता हुआ वह उज्जैन पहुँच गया। इसका समाचार जब बहादुर शाह को मिला तो वह चित्तौर से अपनी फौज के साथ रवाना हुआ और फरवरी सन् १५३५ ईसवी में दोनों का मन्दसौर में सामना हुआ। दो महीने तक वहाँ पर दोनों की ओर से मोर्चाबन्दी होती रही और अनेक बार दोनों सेनाओं के बीच लड़ाइयाँ हुईं। अन्त में बहादुर शाह साहस छोड़ कर अपनी सेना और सरदारों के साथ वहाँ से भागा और हुमायूँ ने गुजरात तथा मालवा पर अधिकार कर लिया।

अस्करी हुमायूँ का छोटा भाई था। कुछ दिनों से दोनों के बीच में असन्तोष जनक व्यवहार चल रहे थे। मन्दसोर में जिन दिनों हुमायूँ और बहादुर शाह का संघर्ष चल रहा था, अस्करी ने हुमायूँ के विरुद्ध अनेक उत्पात पैदा किये और अन्त में उसने विद्रोह कर दिया। मन्दसोर में बहादुर शाह की पराजय हो चुकी थी और गुजरात तथा मालवा पर हुमायूँ ने अधिकार कर लिया

था। लेकिन वहाँ पर वह ठीक-ठीक व्यवस्था न कर सका था। इसी मौके पर अस्करी के विद्रोह का समाचार पाकर हुमायूँ दिल्ली को रवाना हो गया। बहादुर शाह को जब मालूम हुआ कि हुमायूँ दिल्ली में आपसी झगड़ों में फँसा हुआ है, उसने गुजरात और मालवा पर सन् १५३६ ईसवी में फिर से अधिकार कर लिया।

इसके बाद बहादुर शाह बहुत थोड़े दिनों तक जीवित रहा। पुर्तगालियों ने अपनी सहायता के मूल्य में बहादुर शाह से बम्बई, साष्ठी और बसई के टापू लेकर उन पर अपना अधिकार कर लिया था। सन् १५३७ ईसवी में पुर्तगलियों के साथ बहादुर शाह के झगड़े शुरू हुए और मौका पाकर उन्होंने बहादुर शाह को धोखे में मरवा डाला।

चौसा का युद्ध

बहादुर शाह की मृत्यु हो चुकी थी। लेकिन हुमायूँ के अनेक शत्रु थे, जो अनुकूल अवसरों की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हीं में एक शेर खाँ भी था। इसी परिच्छेद में पहले लिखा जा चुका है कि जलाल खाँ लोहानी ने बाबर से सन्धि कर ली और उसकी अधीनता स्वीकार करके वह बिहार का बादशाह बन गया था। उन दिनों में शेर खाँ उसका मन्त्री था।

कई वर्षों के बाद जलाल खाँ लोहानी और उसके मन्त्री शेर खाँ के बीच एक संघर्ष पैदा हुआ। जलाल खाँ अपने राज्य बिहार से भाग कर महमूद शाह बंगाली की शरण में चला गया और उसने शेर खाँ पर आक्रमण करने का निश्चय किया। महमूद शाह बंगाली की सेना लेकर उसने शेर खाँ पर चढ़ाई की और बंगाल-बिहार के बीच में क्यूल नदी के किनारे पर सूरजगढ़ के पास शेर खाँ की सेना के साथ उसने युद्ध किया। उसमें जलाल

खाँ की हार हुई और उसके बाद शेर खाँ बिहार का बादशाह हो गया।

इसके पश्चात् शेर खाँ ने अपने राज्य का विस्तार करना आरम्भ किया। जिन दिनों में बहादुर शाह के साथ हुमायूँ की लड़ाई चल रही थी और दिल्ली में आपसी झगड़े पैदा हो गये थे, शेर खाँ को एक अच्छा अवसर मिला। उसने मुंगेर और भागलपुर में अधिकार कर लिया और गौड़ पर उसने चढ़ाई की। वहाँ पर महमूद शाह ने तेरह लाख अशर्फियाँ देकर उसके साथ सन्धि कर ली और शेर खाँ वहाँ से लौट आया। परन्तु कुछ समय बाद उसने गौड़ के किले पर फिर आक्रमण किया। शेर खाँ के इस आक्रमण का समाचार पाकर हुमायूँ अपनी सेना के साथ गौड़ की तरफ रवाना हुआ। शेर खाँ अपनी एक सेना वहाँ पर छोड़ कर चुनार चला गया था। यह जान कर हुमायूँ सीधा चुनार पहुँचा और वहाँ पर युद्ध करके उसने शेर खाँ को पराजित किया और चुनार पर अधिकार कर लिया। उसके बाद हुमायूँ ने गौड़ के लिए प्रस्थान किया। लेकिन शेर खाँ ने गौड़ छोड़ दिया और वह झारखण्ड चला गया।

अभी तक शेर खाँ ने चुनार को छोड़ कर डट कर कहीं भी हुमायूँ के साथ युद्ध नहीं किया था। हुमायूँ चुप हो कर बैठ गया था। शेर खाँ ने अवसर पाकर सम्पूर्ण बिहार और जौनपुर में अधिकार कर लिया। इन दिनों में हुमायूँ अपनी सेना के साथ गौड़ में मौजूद था। वह अपनी सेना लेकर गौड़ से रवाना हुआ। गंगा नदी के किनारे चौसा नामक स्थान के पास शेर खाँ ने हुमायूँ का रास्ता रोक दिया।

हुमायूँ शेर खाँ का पीछा करते-करते थक गया था। उसने शेर खाँ के साथ सन्धि करने का विचार किया और अपने इस उद्देश्य के लिए उसने अपना एक मुग़ल दूत शेर खाँ के पास

भेजा। हुमायूँ का वह दूत जब शेर खाँ के पास पहुँचा तो उसने देखा कि शेर खाँ अपने साधारण सिपाहियों के साथ फावड़ा लिए खंदक खोद रहा है। दूत के पहुँचने पर शेर खाँ ने फावड़ा चलाना बन्द कर दिया और वहीं पर बैठ कर मुग़ल दूत के साथ वह सन्धि की बातचीत करने लगा। बादशाह हुमायूँ की ओर से सन्धि की एक-एक बात को दूत ने शेर खाँ के सामने रखा। दोनों के बीच बहुत देर तक परामर्श होता रहा और अन्त में सन्धि हो जाने की पूरी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। यद्यपि विचारणीय कोई भी बात बाकी न रह गई थी, फिर भी दोनों के बीच एक बार फिर मिलना निश्चय हुआ।

शेर खाँ के साथ बहुत देर तक बातें करने के बाद दूत विदा होकर अपनी सेना की ओर रवाना हुआ। सन्धि में किसी प्रकार का कोई सन्देह न रह गया था। शेर खाँ बिहार और बंगाल का कुछ हिस्सा अपने लिए सुरक्षित रखना चाहता था। दूत को इस बात का विश्वास था कि हुमायूँ शेर खाँ की इस माँग को स्वीकार कर लेगा।

मुग़ल-सेना में पहुँच कर दूत ने बादशाह हुमायूँ को सन्धि की सारी बातें बतायीं। हुमायूँ कुछ देर तक बातें करता रहा और उसकी समझ में आ गया कि शेर खाँ सन्धि के लिए तैयार है। वह स्वयं सन्धि करना चाहता था। उसकी समझ में बाधा पैदा करने वाली कोई बात रह न गयी थी। शेर खाँ की माँग को दूत के मुँह से सुन कर हुमायूँ को किसी प्रकार का असन्तोष नहीं हुआ। उसने स्पष्ट शब्दों में उसे स्वीकार कर लिया।

हुमायूँ को मालूम हो गया कि दूत एक बार फिर मिल कर सन्धि के विषय में अन्तिम निर्णय कर लेगा और युद्ध की परिस्थिति उसके बाद समाप्त हो जायगी। सन्धि लगभग तय हो चुकी थी इसलिए हुमायूँ ने सन्तोष के साथ अपने शिविर में

विश्राम किया। मुग़ल सेना के मनोभाव भी बदल गये। सन्धि के समाचार ने सैनिकों को एक तरह से युद्ध की परिस्थिति से अलग कर दिया। सब के सब हँसने-खेलने और तरह-तरह के मनोरंजन में अपना समय व्यतीत करने लगे।

शेर खाँ के साथ मुग़ल दूत की दूसरी भेंट भी हो गयी और सन्धि का अन्तिम निर्णय हो गया। शेर खाँ ने सन्धि के सम्बन्ध में दूत से बातें करते हुए प्रसन्नता प्रकट की और हुमायूँ के साथ मित्रता के सम्बन्ध को जोड़ कर वह बातें करता रहा।

दूत ने लौट कर सन्धि का सुखद समाचार अपने बादशाह हुमायूँ को सुनाया। उसने सन्तोष प्रकट किया। मुग़ल सेना के सैनिकों और सरदारों ने सन्धि की अन्तिम स्वीकृति को सुन कर खुशियाँ मनायीं। जिस दिन सन्धि पत्र पर दोनों ओर से हस्ताक्षर लेने थे, उसके एक दिन पहले शेर खाँ ने चुपके से अपनी सेना को लेकर आधी रात को उस समय मुग़ल सेना पर आक्रमण किया, जब वह गम्भीर निद्रा में सो रही थी। मुग़ल सैनिकों को शेर खाँ की ओर से अब किसी प्रकार की आशंका न थी। ठीक यही अवस्था हुमायूँ की भी थी। रात्रि की भीषणता में अफ़ग़ान सैनिकों ने मुग़ल सेना के अधिकांश सैनिकों का संहार किया। जागने के बाद भी हुमायूँ के बहुत-से आदमी जान से मारे गये। शेर खाँ ने मुग़ल शिविर को तीन ओर से घेर लिया था। इसलिए जो आदमी बच गये थे, वे गंगा की तरफ भागे और प्राणों के भय से वे जल में कूद पड़े। उस समय भी अफ़ग़ान सेना ने उन पर आक्रमण किया। गंगा में तैरते हुए कई हजार आदमी मारे गये और बहुत-से गिरफ्तार कर लिये गये।

हुमायूँ भी अपने प्राण बचाने के लिये गंगा की तेज धारा में कूद पड़ा था और जिस समय उसके सैनिक तैरते हुए मारे काटे जा रहे थे, किसी प्रकार धारा के साथ तैर कर वह दूर

निकल गया। एक स्थान पर गंगा के किनारे अपनी मशक में पानी भरता हुआ एक भिश्ती मिला।। उसने हुमायूँ को अपनी मशक की सहायता से गंगा नदी के बाहर निकाला। उस समय हुमायूँ की दशा बड़ी भयानक हो गयी थी। किसी प्रकार उसकी जान बची।

हुमायूं की पराजय

चौसा के मैदान में विजयी होकर और दिल्ली के अनेक प्रदेशों पर अधिकार करके शेर खाँ १५३९ ईसवी में शेर शाह के नाम से गौड़ के सिंहासन पर बैठा। हुमायूँ के अधिकार में अब दिल्ली-राज्य के बहुत थोड़े प्रदेश रह गये थे। चौसा की पराजय से वह बहुत भयभीत हो गया था। उसने अपने भाई कामरान से शेर शाह के विरुद्ध सहायता माँगी। लेकिन उस सहायता से हुमायूँ को निराश होना पड़ा। उस समय भी भाइयों के साथ उसके आपसी झगड़े चल रहे थे।

हुमायूँ की निर्बलता और विवशता शेर शाह से छिपी न थी। उसे यह भी मालूम हो गया था कि उसके भाई कामरान ने युद्ध में सहायता देने से इनकार कर दिया है। उसे यह भी मालूम हो गया था कि इन समस्त बातों का कारण हुमायूँ के भाइयों का आपसी झगड़ा है। शेर शाह ने इन्हीं दिनों में भारत के समस्त मुग़लों को निकाल देने का निर्णय किया।

हुमायूँ को जब मालूम हुआ कि शेर शाह अपनी सेना के साथ आक्रमण करने आ रहा है तो उसने युद्ध करने की तैयारी की। हुमायूँ बाबर के साथ अनेक युद्धों में रह चुका था। बाबर के समय की तोपें अब भी उसके अधिकार में थीं। अपने लश्कर के साथ उसने अपनी समस्त तैयारी कराई और विशाल सेना को साथ में लेकर वह शेर शाह के मुकाबिले के लिए रवाना हुआ।

अपनी सेना के साथ शेर शाह कन्नौज में मौजूद था। अपने साथ एक लाख वीर सैनिकों की सेना लेकर, हुमायूँ ने एक लम्बा रास्ता पार किया और १५४० ईसवी में कन्नौज के निकट पहुँच कर उसने अपनी सेना का मुकाम किया। हुमायूँ ने बड़ी तत्परता के साथ पानीपत और बियाना की तरह अपनी सेना की व्यूह-रचना की। मजबूत जंजीरों से बाँध कर उसने तोप गाड़ियों की पंक्ति सब से आगे खड़ी की। जिस समय हुमायूँ अपने सैनिकों को श्रेणी बद्ध खड़ा कर रहा था। अचानक शेर शाह की दस हजार अफ़ग़ान सेना ने धावा बोल दिया।

मुग़ल-सेना अभी तक अव्यवस्थित अवस्था में थी। तोपों का सञ्चालन मिर्जा-हैदर को सौंपा गया था। इसी समय अफ़ग़ान सेना दाहिने और बायें से आकर टूट पड़ी और उसने मुग़ल सैनिकों को काट-काटकर ढेर कर दिये। दिल्ली से आयी हुई समस्त तोपें बेकार हो गयीं। बिना किसी तैयारी के मुग़ल सेना आधी से अधिक मारी गयी। यह दूसरा मौका था कि मुग़ल-सेना को अफ़ग़ानों के साथ युद्ध करने का अवसर न मिला और उसके समस्त सैनिकों का संहार किया गया। जो सैनिक बचे, उन्होंने भाग कर अपनी जान बचायी। हुमायूँ स्वयं वहाँ से भाग कर आगरा की तरफ चला गया।

हुमायूँ की पराजय का एक कारण यह भी था कि उसके साथ जो विशाल सेना थी, वह पहले से ही शेर शाह की अफ़ग़ान सेना से भयभीत थी। चौसा के युद्ध से मुग़ल सैनिकों का साहस टूट गया था। कन्नौज के मैदान में शेर शाह ने जो कुछ किया, वह चौसा की पुनरावृत्ति थी। इस प्रकार का भय मुग़ल सैनिकों को पहले से ही था, जिसने उनको निर्बल, भीरु और कर्त्तव्याभिमूढ़ बना दिया था।

शेर शाह ने अपनी विजयी सेना के साथ मुग़लों का पीछा

किया। ग्वालियर के मुग़ल सेनापति का वहाँ के किले पर अधिकार था। इस लिए अफ़ग़ान सेना ने ग्वालियर के किले पर घेरा डाल दिया। शेर शाह मुग़लों का पीछा करता हुआ पंजाब तक पहुँच गया था। वहाँ पर कामरान का अधिकार था। शेर शाह के भय से वह पंजाब छोड़कर काबुल चला गया। हुमायूँ आगरा होकर पंजाब पहुँचा ही था कि उसने अफ़ग़ान सेना के आने की खबर सुनी, वह तुरन्त वहाँ से सिन्ध की तरफ़ चला गया। मिर्जा हैदर इधर-उधर भटकता हुआ काश्मीर की ओर निकल गया।

जिस विशाल और विस्तृत राज्य को बाबर ने अपने बड़े बेटे हुमायूँ के अधिकार में देकर इस संसार से विदा ली, उसके योग्य हुमायूँ न था। जीवन की अनेक बातों में उसकी प्रशंसा की जा सकती है, वह दयालु था, दानी था और परम धार्मिक था। जीवन के अनेक अवसरों के लिए उसमें असाधारण शक्ति थी। यह सब-कुछ उसमें था। लेकिन उसमें चरित्र और दृढ़ता का अभाव था। वह स्वयं जिस बात का निर्णय करता था, उसे वह स्वप्न की भाँति भूल जाता था अथवा उस निर्णय का महत्व उसके निकट अपने आप कम हो जाता था। स्थिरता, दृढ़ता और विचार शीलता की उसमें बहुत कमी थी। एक साधारण मनुष्य की तरह वह प्रशंसनीय था। परन्तु शासक के रूप में वह सदा असफल रहा। शासन की योग्यता, दूसरी योग्यताओं से भिन्न होती है। हुमायूँ के जीवन की असफलता का प्रमुख कारण यही था।

सोलहवाँ परिच्छेद

पानीपत का दूसरा युद्ध

[१५५६ ईसवी]

भारतीय राज्यों में उथल-पुथल, शेर शाह और मालदेव, शेर शाह की मृत्यु, हुमायूँ के जीवन के भयानक पन्द्रह वर्ष, अकबर का जन्म, हुमायूँ की सहायता, शेरशाह के राज्य का पतन, अकबर का राज्य-तिलक।

शेर शाह और भारत के दूसरे राज्य

कन्नौज में हुमायूँ की पराजय के बाद, भारत के राजनीतिक क्षेत्रों में फिर परिवर्तन हुए। दिल्ली के मुग़ल बादशाह हुमायूँ को जीतकर शेर शाह ने अपने राज्य को विस्तृत बनाने की चेष्टा की। अपनी प्रबल शक्तियों के साथ-साथ वह एक महान राजनीतिज्ञ था। विरोधी शक्तियों को पराजित करने और सफलता प्राप्त करने में उन दिनों वह भारत में अद्वितीय हो रहा था।

शेर शाह की विजय के दो प्रमुख कारण थे। एक तो उसकी शक्तिशाली अफ़ग़ान सेना और दूसरी उसकी राजनीतिक चतुरता। सफलता प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार की चालों का आश्रय लेना, राजनीति में अपराध नहीं होता। इस गुण में शेर शाह अत्यन्त प्रवीण था। राजनीति में असफलता अपराध है। जीवन के आरम्भ से लेकर शेर शाह की समस्त सफलताओं का कारण उसकी राजनीतिक दूरदर्शिता थी।

दिल्ली के इब्राहीम लोदी और चित्तौर के राणा साँगा को पराजित करने बाद बाबर ने भारत के राजनीतिक वातावरण को बहुत-कुछ शान्त बना दिया था। हुमायूँ की पराजय के बाद, उस वातावरण में फिर अशान्ति उत्पन्न हो गई थी। शेर शाह के विस्तृत राज्य के दक्षिण और राजपूताना, मालवा और बुन्देल खण्ड के राज्य अरक्षित हो रहे थे। बहादुर शाह की मृत्यु के पश्चात् गुजरात और मालवा मे कई एक छोटे-छोटे राजा और सुलतान पैदा हो गये थे। मेवाड़ राज्य की अवस्था अत्यन्त असंतोषजनक चल रही थी। वहाँ के आपसी झगड़ों ने उस राज्य को भीतर से खोखला बना दियाथा और उन्हीं परिस्थितियों में राणा साँगा का छोटा लड़का उदयसिंह राज्य का अधिकारी हुआ था। भारत के पश्चिमीय प्रदेश मालदेव के अधिकार में आ गये थे। राज्याधिकारी होने के बाद पाँच वर्ष के भीतर उसने दक्षिण की ओर आबू तक, उत्तर की ओर बहावलपुर, नागौर, बीकानेर और झंझर तक एवम् पूर्व की ओर अजमेर को लेकर अम्बेर राज्य तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था।

शेर शाह के राज्य का विस्तार

कन्नौज के युद्ध को जीतने के बाद, शेर शाह ने ग्वालियर के किले पर घेरा डाला था। उस किले में पहले से मुग़ल सेना मौजूद थी और उसका कार्य किले की रक्षा करना था। लेकिन जब उसने सुना कि कन्नौज में मुग़ल बादशाह हुमायूँ की भयानक पराजय हुई है और मुग़ल सेना का संहार करके शेर शाह ने सेना मुग़लों का पीछा किया है तो ग्वालियर के किले की मुग़ल सेना का साहस टूट गया और उसने अफ़गानों के साथ युद्ध करने की जो तैयारी की थी, उसे रोककर उसने अफ़ग़ानों के सामने आत्म-समर्पण कर दिया।

ग्वालियर का किला लेकर शेर शाह ने मालवा राज्य के कई प्रदेशों पर भी अधिकार कर लिया और उसके पूर्व में रायसेन पर भी उसने आक्रमण करके कब्जा कर लिया। इन्हीं दिनों में शेर शाह के सेनापति ने मुलतान और सक्खर पर भी अधिकार कर लिया।

राजपूताना और मालवा में अब भी मालदेव की शक्तियाँ अटूट हो रही थीं। शेर शाह ने उस पर आक्रमण किया। राजा मालदेव शक्तिशाली होने के साथ-साथ, चतुर और दूरदर्शी था। राणा साँगा की तरह, उसने शेर शाह की विशाल सेना के सामने अपनी सेना को झोंक देने की कोशिश नहीं की। शेर शाह जितना राजनीतिज्ञ था, उस से कम मालदेव न था।

बहुत दिनों तक शेर शाह वहाँ पर घेरा डाल कर पड़ा रहा। बीच-बीच मे दोनों ओर की सेनाओं का कई बार सामना हुआ। लेकिन शेर शाह की सेना मालदेव की सेना को पराजित न कर सकी। वह किसी प्रकार विजय प्राप्त करना चाहता था। कई बार युद्ध करके वह इस परिणाम पर पहुँचा कि मालदेव को सीधे लड़ कर पराजित नहीं किया जा सकता और पराजित करना अनिवार्य आवश्यक है।

शेर शाह ने बहुत सोच-विचार कर अपनी एक राजनीतिक चाल की परीक्षा की। अपने शिविर से उसने मालदेव के सरदारों के नाम पत्र भेजे। उन पत्रों का मालदेव तक पहुँचना स्वाभाविक था। मालदेव को अपने सरदारों पर सन्देह पैदा हो गया और उस दशा में होने वाली पराजय से उसने सन्धि कर लेना आवश्यक समझा।

मालदेव के सरदारों ने उसके सन्धि के प्रस्ताव का विरोध किया। उस समय मालदेव को सारी परिस्थिति बतानी पड़ी। सरदारों ने मालदेव की शंका का समाधान करना चाहा, लेकिन

उनका प्रयत्न बेकार गया और मालदेव की आशंका ज्यों की त्यों बनी रही। सरदारों के साथ मालदेव के अविश्वास का समाचार जब शेर शाह को मिला तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसे अपनी चाल में सफलता मिली।

इस अवसर को अनुकूल समझ कर शेर शाह ने मालदेव पर आक्रमण की तैयारी की। लेकिन मालदेव ने अपने सरदारों पर अविश्वास पैदा हो जाने के कारण युद्ध करने से इन्कार कर दिया। सरदारों की अनेक चेष्टाओं के बाद भी जब मालदेव का अविश्वास दूर न हुआ तो विवश होकर सरदारों ने युद्ध की तैयारी की और राजपूतों की एक शूरवीर सेना को लेकर उन सरदारों ने शेरशाह का सामना किया। दोनों ओर से भयानक संग्राम हुआ और बहुत-से सैनिक मारे गये। लेकिन राजपूतों ने पीछे की ओर घूम कर नहीं देखा।

शेर शाह समझता था कि अविश्वास के कारण अपमानित होकर सरदार राजा मालदेव का साथ न देंगे और उस दशा में मालदेव की पराजय निश्चित है। लेकिन उसका यह अनुभव असत्य निकला। मालदेव के युद्ध में न सम्मिलित होने पर भी उसके सरदारों ने शेर शाह की अफ़ग़ान सेना के छक्के छुड़ा दिये। इस बार के युद्ध में शेर शाह के सैनिक अधिक संख्या में मारे गये और उसका साहस अब टूटने लगा।

युद्ध बन्द करके दोनों सेनायें वापस चली गयीं। मालदेव ने यह देख कर अपने सरदारों पर फिर से विश्वास किया और अपनी भूल का पश्चात्ताप किया। शेर शाह के हृदय में मालदेव के पराजित करने की अब कोई आशा बाकी न रह गयी थी। इसलिए शेर शाह अपनी सेना लेकर वापस चला गया।

राजपूताना से लौटकर शेर शाह ने कालीञ्जर पर चढ़ाई की और वहाँ के किले को उसने घेर लिया। उसी मौक़े पर उसने

अपने एक सेनापति को सेना के साथ रींवा की तरफ रवाना किया। शेर शाह कालींजर में घेरा डाल कर सात महीने तक वहाँ पर पड़ा रहा। अन्त में किले के सैनिकों ने आत्म-समर्पण कर दिया। लेकिन उसी बीच में एक दिन बारूद में आग लग जाने के कारण शेर शाह भयानक रूप से जल गया और सन् १५४५ ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी।

हुमायूँ के अन्तिम पन्द्रह वर्ष

कन्नौज में पराजित होने के दिन से लेकर आगामी पन्द्रह वर्ष हुमायूँ के भयानक विपदाओं में व्यतीत हुए। शेर शाह ने जैसा निश्चय किया था, उसने वैसा ही किया और मुग़लों का आधिपत्य कुछ दिनों के लिए उसने भारत से मिटा दिया।

हुमायूँ कन्नौज से भाग कर पंजाब की ओर चला गया था, वहाँ पहुँचने पर उसे शेर शाह के पंजाब में आने का समाचार मिला। अपने भाई कामरान से उसे पंजाब में कोई सहायता मिलने की आशा न रही तो वह पंजाब से भाग कर सिन्ध चला गया।

हुमायूँ ने सिन्ध से बहुत कुछ आशा की थी। परन्तु वहाँ भी उसे निराश होना पड़ा। जीवन की इन भयानक परिस्थितियों में उसका परिवार उसके साथ था और बहुत थोड़े मुग़ल सैनिक और सरदार-जिन पर वह विश्वास करता था साथ में रह गये थे।

सिन्ध पहुँचने पर भी हुमायूँ को किसी प्रकार की सफलता न मिली तो वह घबरा उठा। उसे संसार में कोई स्थान ऐसा दिखाई न देता था, जहाँ पर जा कर वह अपना और अपने परिवार का जीवन-निर्वाह कर सके और बाकी जिन्दगी बिता सके। इस भीषण विपत्तियों के समय उसको मालवा-राज्य के मालदेव राजा की याद आयी। कुछ दिन पहले राजा मालदेव ने हुमायूँ को आमंत्रित किया था। उसकी समझ में आया कि राजा मालदेव

ऐसे समय में सहायता कर सकता है। इस आशा को लेकर हुमायूँ अपनी बेगमों, सैनिकों और सरदारों को साथ में लेकर मालवा की तरफ रवाना हुआ और वह सिन्ध से फलोदी पहुँच गया।

उन्हीं दिनों में शेर शाह को मालूम हो गया कि अपनी बेगमों का लश्कर लिए हुमायूँ मालवा पहुँच गया है तो वह तुरन्त मालवा की ओर रवाना हुआ और डीडवाड़ा तक जाकर उसने राजा मालदेव के पास सन्देश भेजा कि हमारे शत्रु हुमायूँ को अपने राज्य से निकाल कर तुरन्त बाहर करो अथवा हमें उसको निकालने दो।

शेर शाह का यह सन्देश पाकर राजा मालदेव बड़े असमंजस में पड़ गया। वह दूसरों के पीछे शेर शाह की शत्रुता मोल लेना नहीं चाहता था। इसलिए विवश होकर उसने अपने राज्य से हुमायूँ और उसके साथ के सभी लोगों को निकल जाने की आज्ञा दे दी।

हुमायूँ के लिए मालदेव की यह आज्ञा बड़ी भयानक हो गयी। राज्य को छोड़कर चले जाने के सिवा उसके पास और उपाय क्या था। अपने परिवार और थोड़े से सैनिकों के साथ, रात के अन्धकार में चुपके-से निकल कर हुमायूँ मालवा-राज्य से अमरकोट की तरफ चला गया।

अमरकोट के आस-पास, चारों ओर बहुत दूर तक भारत की विशाल मरुभूमि फैली हुई थी। कुछ लोगों का कहना है कि प्राचीन काल में शक लोग इसी अमरकोट में रहा करते थे। मालवा से निकल कर हुमायूँ उसी अमरकोट में अपनी बेगमों, नौकरों, सैनिकों और थोड़े-से सरदारों को लिए हुए पहुँच गया।

इन दिनों में हुमायूँ की दुर्दशा सीमा पर पहुँच गयी थी। राज्य भ्रष्ट होकर वह मारा-मारा फिरता था। कहीं पर उसे ठहरने के लिए स्थान न मिलता था। समूचे भारत में बहुत से

छोटे-छोटे राज्य थे। शेर शाह के भय से कोई भी राजा हुमायूँ को अपने राज्य में रहने नहीं देता था। इससे अधिक आपत्ति एक राज परिवार के सामने और क्या हो सकती थी।

हुमायूँ के जन्म के समय ज्योतिषियों ने सौभाग्य के सैकड़ों परिचय दिये थे। जब तक बाबर जीवित रहा, हुमायूँ सौभाग्य-शाली बना रहा। पिता के मरने के बाद उसके जीवन में विपदाओं की आँधी शुरू हो गयी। मध्य एशिया के बदख्शाँ से लेकर भारत तक फैले हुए साम्राज्य का जो स्वामी था, वह कुछ दिनों के बाद इस भयानक विपद में आकर पड़ेगा, इसे कौन जानता था। प्रतापी बादशाह बाबर का वह सब से बड़ा लड़का था और अपने पिता का सब से अधिक प्यारा था। जब तक बाबर संसार में रहा, हुमायूँ के जीवन का वह प्यार सुरक्षित रहा और बाबर के मरने के बाद ही उसके जीवन का समस्त सौभाग्य और प्यार दुर्भाग्य और विपदाओं में बदल गया। उन दिनों में हुमायूँ का कोई अपना घर न था, कोई द्वार न था, कोई अपना न था, कोई उसका सहायक न था। साम्राज्य के साथ-साथ उसका सब-कुछ छूट गया। अपने पिता-बाबर के साम्राज्य का यदि वह अधिकारी न हुआ होता तो कदाचित उसके जीवन में इन भयानक विपदाओं के आक्रमण न होते। जो जितना ही बड़ा होता है, उसकी सुवि-धायें और विपदायें भी उतनी हीं बड़ी और महान होती हैं।

राज-सिंहासन पर बैठने के साथ ही सगे भाइयों के विद्रोह आरम्भ हो गये थे और बाबर के मरने के बाद हुमायूँ को अपने चारों ओर शत्रु ही शत्रु दिखाई देने लगे थे। उनको दबाने के लिए जिस योग्यता और प्रभुता की आवश्कता थी, उनका उसके जीवन में अभाव था। बाबर की भाँति कठिनाइयों में जन्म लेकर उसने जीवन के संघर्षों पर विजय प्राप्त करना नहीं सीखा था।

वह एक सम्राट का पुत्र था और इसीलिए वह उस विशाल

साम्राज्य का अधिकारी बना था। लेकिन वह साम्राज्य उसका पैदा किया हुआ न था, इसीलिए उसके अधिकार में वह अधिक दिनों तक न रह सका।

अमरकोट में पहुँचने के बाद हुमायूँ की दशा और भी अधिक भयानक हो उठी। खाने-पीने की कोई व्यवस्था न थी। जहाँ पर वह पहुँच गया था, विस्तृत मरुभूमि का वह एक ऐसा स्थान था, जहाँ पर मनुष्यों के साथ-साथ, पशुओं और पक्षियों का भी अभाव था। इन विपदाओं में साथ रहना और जीवित रहना सब के लिए सम्भव नहीं होता। हुमायूँ के साथ के बहुत-से सैनिकों और सरदारों ने उसका साथ छोड़ दिया और वहाँ से भाग कर उन लोगों ने अपने प्राणों की रक्षा की। परन्तु हुमायूँ, उसकी बेगमें और साथ के कुछ आदमी उसके बाद भी अमरकोट में ही बने रहे। उन्होंने अपने साहस को नहीं छोड़ा।

भीषण अन्धकार में प्रकाश की किरण

उस भयानक रेगिस्तानी प्रदेश में बिना किसी आश्रय के जीवित रहने की कोई अवधि होती है। हुमायूँ की विपदायें सीमा पार कर गयी थीं। कभी-कभी निराश होकर वह घबराने लगता था और कुछ उपायों की कल्पनायें करता था। एक बार उसने जैसलमेर और जोधपुर के महाराजाओं से आश्रय देने की प्रार्थना की थी। परन्तु उन दोनों में मनुष्यत्व न था। इसीलिए दोनों में से एक भी हुमायूँ और उसके परिवार की सहायता न कर सका। निराश होकर हुमायूँ फिर अपने जीवन के दिन व्यतीत करने लगा। 'तवारीखे फरिश्ताँ' में हुमायूँ के इन भयानक दिनों का जिस प्रकार विस्तार के साथ वर्णन किया गया है, उसे पढ़कर हृदय विदीर्ण होता है।

हुमायूँ सभी प्रकार निराश हो चुका था। उसे किसी के

आश्रय की आशा नहीं रह गयी थी। लेकिन अमरकोट के सोदा-राज से हुमायूँ की वह निराश अवस्था देखी न गयी। उसने हुमायूँ और उसके परिवार को बुलाकर आदर पूर्वक अपने यहाँ स्थान दिया। उन्हीं दिनों में छायाकुञ्ज के भीतर अमर कोट में हमीदा बेगम से १५ अक्टूबर सन् १५४२ ईसवी को हुमायूँ के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर रखा गया।

अकबर के जन्म के समय हुमायूँ उपस्थित न था, इसलिए उसके पास पुत्रोत्पन्न होने का समाचार भेजा गया। इस समाचार को सुनकर हुमायूँ ने ईश्वर को धन्यवाद दिया। जीवन के भीषण अन्धकार में अकबर का जन्म सूक्ष्म प्रकाश के समान था। हुमायूँ के अन्तःकरण में इस सम्वाद को सुनकर प्रसन्नता का उद्रेक हुआ। अकस्मात् उसके हृदय में एक आशा का सञ्चार हुआ। उसने सोचा, कदाचित् अब जीवन की विपदाओं में कुछ परि-वर्तन होगा।

राजा अमर कोट का आश्रय मिलने से हुमायूँ को कुछ सहारा मिला। अकबर के जन्म से हुमायूँ के अन्तःकरण में संतोष का सञ्चार हुआ। अपनी इन विपदाओं के समय भी उसने साहस की रक्षा की थी। भयानक निराशाओं में भी उसने अपनी आशाओं को जीवित रखा था। सचमुच जो निराश होना नहीं जानता, उसी के जीवन में परिवर्तन होते हैं और सुख तथा सुविधाओं का फिर प्रादुर्भाव होता है। हुमायूँ में अनेक अच्छे गुण भी थे। वह निराश और असाहसी कभी नहीं होता था।

सिन्ध और राजपूताना के मरु-प्रदेशों में वर्षों घूमकर और साहस के साथ जीवित रहकर, उसने अनेक बार भारत में राज्य-स्थापना की चेष्टायें कीं। लेकिन उसे सफलता न मिली। फिर भी वह निराश नहीं हुआ। साम्राज्य के अगणित सुखों और सुवि-

धाओं में वह पाला गया था। लेकिन जीवन के संघर्षों में विजय प्राप्त करने की शिक्षा तो भीषण कठिनाइयों और विपदाओं के द्वारा मिला करती है। इस शिक्षा का उसके जीवन में अभाव था। प्रकृति उसकी पूर्ति का प्रयत्न कर रही थी।

राज्य-स्थापना में असफल होने के बाद भी हुमायूँ निराश नहीं हुआ। उसके पास सैनिक शक्ति का अभाव था। उसको सहायता की आवश्यकता थी। अकबर के जन्म के बाद भी उसने कुछ दिनों तक अमर कोट में समय व्यतीत किया। परन्तु जिस शक्ति का उसके पास अभाव था, उसकी खोज में वह बराबर बना रहा। दुर्भाग्य और विपदाओं के दिनों में कोई किसी की सहायता नहीं करता। इस बात को हुमायूँ से अधिक कौन समझेगा जिसके सगे भाइयों ने भी उसकी कोई सहायता न की थी।

अपनी सफलता के लिए हुमायूँ ने बहुत-सी बातें सोच डालीं और न जाने कितनी कल्पनाओं को वह सजीव बनाने की चेष्टा करता रहा। लेकिन सही रास्ता न मिलने पर भारत छोड़कर वह फ़ारस देश की ओर चला गया। वहाँ के बादशाह शाह तहमास्प से हुमायूँ ने भेंट की। वहाँ पर कुछ दिनों तक रहने के बाद, हुमायूँ ने फ़ारस के बादशाह से सैनिक सहायता प्राप्त की और उसको लेकर वह भारत की ओर लौटा। सन् १५४५ ईसवी में उसने अपने भाई अस्करी से कन्दहार जीतकर उसे अपने अधिकार में कर लिया और अपनी सेना को लेकर सन् १५४७ ईसवी में उसने अपने भाई कामरान पर आक्रमण करके काबुल छीन लिया। इस समय हुमायूँ की अवस्था ठीक वैसी ही थी, जैसे कि पच्चीस वर्ष पूर्व भारत में आक्रमण करने के पहले बाबर की थी।

शेर शाह के वंशज

कन्नौज के युद्ध के पश्चात् शेर शाह ने आगरा, दिल्ली और पंजाब पर भी अधिकार कर लिया था। उसकी मृत्यु के समय तक काश्मीर को छोड़कर नर्मदा नदी के उत्तर में सम्पूर्ण भारत में उसका राज्य फैल गया था। उसने बड़ी योग्यता के साथ अपने विस्तृत राज्य का शासन किया था। शेर शाह जितना ही कठोर, न्याय-प्रिय और दानशील था, उतना ही वह राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी भी थी। 'शासन में शेर के समान वह भयानक और शत्रु को धोखा देने में वह लोमड़ी के समान चालाक था।' उसके सम्बन्ध में इतिहासकारों के इस निर्णय का कोई विरोध नहीं कर सकता।

शेर शाह लड़ाकू था, छल और प्रतारणा के द्वारा शत्रु को वह जीतना खूब जानता था। लेकिन प्रजा के लिए वह क्रूर तथा-अत्याचारी न था। जब उसकी सेना यात्रा करती थी, तो उसका ऐसा प्रबन्ध रहता था, जिससे उसके सैनिक मार्ग में मिलने वाले ग्रामों को किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचा सकते थे। यात्रा में जब उसका कोई सैनिक किसी खेत को हानि पहुँचाता था तो शेर शाह उसके कान कटवा लेता था और खेतों के कटे हुए अनाज के पौदों के बोझ को उसके गले में लटका कर अपराधी सैनिक को लश्कर में घुमाता था। इस प्रकार की अपनी न्याय-प्रियता के लिए वह बहुत प्रसिद्ध था।

शेर शाह के मरने के बाद, उसका दूसरा लड़का जलाल खाँ इस्लाम शाह के नाम से सन् १५४५ ईसवी में सिंहासन पर बैठा। इस्लाम शाह में शासन की योग्यता न थी। उसका परिणाम यह हुआ कि प्रजा से लेकर अधिकारियों तक—सभी उससे असंतोष अनुभव कर रहे थे और कुछ इसी प्रकार की परिस्थितियों में उसके अफ़ग़ानी सरदारों में फूट पैदा हो गयी।

इस्लाम शाह में इतनी योग्यता न थी। जिससे वह सरदारों की फूट को दूर कर सकता। उसका दूषित प्रभाव राज्य के ऊपर पड़ा और वह परिस्थिति यहाँ तक भयानक हो गयी कि अचानक मृत्यु हो जाने के कारण इस्लाम शाह का थोड़े दिनों के बाद शासन समाप्त हो गया। उसके लड़के की अवस्था बारह वर्ष की थी और वही उस विशाल राज्य का अधिकारी था। राज्य के प्रलोभन से उस लड़के के चाचा मोहम्मद आदिल ने अपने भतीजे को मरवा डाला और मोहम्मद आदिल शाह के नाम से वह सिंहासन पर बैठ गया। वह स्वभाव का अत्यन्त कठोर और शासन में अयोग्य था। इसीलिए राज्य का सारा प्रबन्ध उसके मंत्री हेमू को करना पड़ता था। हेमू हिन्दू था, इसलिए उस राज्य के पठान उसके आधिपत्य को सहन न कर सके और उन सब ने विद्रोह कर दिया। विद्रोहियों में इब्राहीम सूर ने दिल्ली तथा आगरा पर और सिकन्दर सूर ने, जो शेर शाह का दूसरा भतीजा था, पंजाब में अधिकार कर लिया। मोहम्मद आदिल शाह दिल्ली छोड़कर चुनार चला गया और वहाँ पर अपने हिन्दू मन्त्री हेमू के साथ रहकर दिल्ली के सिंहासन को वापस लेने की कोशिश करने लगा।

सरहिन्द की लड़ाई

दिल्ली राज्य के अधिकारियों में जब आपस के झगड़े पैदा हो गये थे, हुमायूँ कन्दहार और काबुल के राज्य को अपने अधिकार में ले चुका था। यद्यपि नौ वर्षों तक भाइयों के साथ उसके लगातार युद्ध होते रहे। लेकिन अन्त में हुमायूँ की ही जीत रही। उसने कामरान की आँखें निकलवा लीं। हिन्दाल युद्ध में परास्त होकर मारा गया और अस्करी मक्का के रास्ते में खत्म कर दिया गया। इस प्रकार उसके भाइयों का अन्त हो चुका था।

शेर शाह के वंशजों के आपसी झगड़ों को हुमायूँ ने अपने लिए एक अवसर समझा और उस अवसर से उसने लाभ उठाने की चेष्टा की।

हुमायूँ ने अपनी सेना को तैयार किया और पन्द्रह हजार लड़ाकू मुग़ल सैनिकों को लेकर सन् १५५५ ईसवी में उसने पञ्जाब पर आक्रमण किया। सिकन्दर ने सरहिन्द के मैदान में हुमायूँ का सामना किया, लेकिन उसकी फौज मुग़लों के सामने ठहर न सकी और सिकन्दर को पराजित होकर युद्ध से भागना पड़ा। मुग़ल सेना ने सिकन्दर का पीछा किया। लेकिन वह बड़ी तेजी क साथ भाग कर हिमालय की तरफ चला गया।

सरहिन्द की लड़ाई में सिकन्दर को पराजित करके हुमायूँ ने पंजाब पर अधिकार कर लिया। उसका और उसकी सेना का यहीं से उत्साह बढ़ गया। हुमायूँ अपनी सेना के साथ पंजाब से आगे बढ़ा और उसने दिल्ली एवम् आगरा में भी अपना अधिकार कर लिया। शेर शाह के वंशजों में अब केवल मोहम्मद् आदिल शाह बाकी रह गया जो अपने मंत्री हेमू के साथ पूर्व में शासन कर रहा था।

हुमायूँ की मृत्यु

कन्नौज में पराजित होकर हुमायूँ ने दिल्ली के जिस सिंहासन को १५४० ईसवी में छोड़ा था, पन्द्रह वर्षों की भयानक यन्त्र-णाओं का सामना करने के बाद, सन् १५५५ ईसवी में वह फिर उसी सिंहासन पर आसीन हुआ।

हुमायूँ के सामने अब आदिल शाह का प्रश्न था। उसे परास्त करने के बाद वह उस शेर शाह के राज्य को मिटा देना चाहता था, जिसने भारत से मुग़ल-राज्य की जड़ खोद डाली थी

और इस राज्य से जिसने एक-एक मुग़ल को भाग जाने के लिए विवश किया था।

जिन दिनों में हुमायूँ दिल्ली के राज-सिंहासन पर बैठ कर आदिल शाह को परास्त करने की तैयारी कर रहा था, एक दिन सायंकाल शाही पुस्तकालय की छत से उतरते हुए पैर फिसल जाने के कारण गिर जाने पर २४ जनवरी सन् १५५६ ईसवी को उनचास वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गयी।

अकबर का राज्याभिषेक

हुमायूँ की मृत्यु के समय उसका लड़का अकबर उसके पास न था। पंजाब के एक अफ़ग़ान सूबेदार के विद्रोह को शान्त करने के लिए बैराम खाँ के संरक्षण में वह लाहौर गया था। जब वह वहाँ से लौट रहा था तो गुरुदासपुर के जिले में कालानूर नामक एक ग्राम के पास अपने पिता की मृत्यु का उसने समाचार सुना।

पिता की मृत्यु के समाचार से अकबर को एक असह्य आघात पहुँचा। उसकी अवस्था के तेरह वर्ष पूरे हो चुके थे और उसने चौदहवें वर्ष में प्रवेश किया था। इस छोटी आयु में ही पिता की सहायता से वह वञ्चित हो गया। शत्रुओं की आँधियाँ चारों ओर से घेरे हुए थीं।

अकबर ने साहस से काम किया और बैराम खाँ तथा अपनी सेना के साथ वह दिल्ली की तरफ़ बढ़ा। वहाँ पहुँचने के पहले ही उसे समाचार मिला कि आदिल शाह और हेमू ने अवसर पाते ही दिल्ली तथा आगरा पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया है। यह समाचार अकबर के लिए और भी अधिक भयानक था।

हेमू के साथ युद्ध

दिल्ली और आगरा का समाचार सुन कर अकबर ने बैराम खाँ के साथ परामर्श किया। परिस्थिति बहुत भयानक हो गयी थी। हुमायूँ के मरते ही आदिल शाह के मन्त्री हेमू ने दिल्ली को असहाय समझ कर आक्रमण किया था। एक चतुर मन्त्री होने के साथ-साथ वह लड़ाकू और अवसरवादी भी था। उसने अपने जीवन में बाईस लड़ाइयाँ लड़ी थीं। अकबर का संरक्षक और उसकी सेना का सेनापति बैराम खाँ इन सब बातों को जानता था। वह यह भी जानता था कि यद्यपि हेमू ने अपनी चतुरता और योग्यता से आदिल शाह तथा उसके राज्य के अन्य अधिकारियों पर शासन कर रक्खा है, फिर भी उसके हिन्दू होने के कारण अफ़ग़ान सरदार उसके साथ ईर्षा करते हैं। इस द्वेष का बहुत बड़ा कारण यह भी था कि आदिल शाह स्वयं अयोग्य शासक था और दिल्ली तथा आगरा में अधिकार कर लेने के बाद बिक्रमाजीत के नाम से हेमू ने अपने आपको राजा घोषित किया।

बैराम खाँ चतुर सेनापति था। हेमू की इन परिस्थितियों को समझ कर वह निराश नहीं हुआ। मार्ग में युद्ध की सम्पूर्ण तैयारियों को मजबूत बना कर सावधानी के साथ वह दिल्ली की ओर आगे बढ़ा। हेमू को समाचार मिला कि अकबर अपनी सेना के साथ दिल्ली आ रहा है। उसने उसी समय युद्ध की तैयारी की और अफ़ग़ान सेना को लेकर वह रवाना हुआ। दिल्ली के बाहर पानीपत के मैदान में दोनों सेनाओं का सामना हुआ और ५ नवम्बर सन् १५५६ ईसवी में युद्ध आरम्भ हो गया।

हेमू के नेतृत्व में अफ़ग़ानों की एक बड़ी सेना थी। युद्ध-कला में वह निपुण और बहादुर था। युद्ध-क्षेत्र में उसने अपनी सेना को बुद्धिमानी के साथ खड़ा किया था। उसके साथ सब मिला

कर सैनिकों की संख्या सत्तर हजार थी। युद्ध के मैदान में बीस हजार अफ़ग़ानों और राजपूत सवारों को उसने बीच में खड़ा किया था और पन्द्रह सौ लड़ाकू हाथियों को उसने सेना के आगे लगा दिया था। हेमू स्वयं एक मस्त हाथी पर था और उसका नाम हवा था।

युद्ध के आरम्भ होते ही हाथियों की भयंकर मार के कारण मुग़ल सैनिक भागने लगे। हेमू का निर्भीक हाथी युद्ध में तेजी के साथ घूम रहा था। थोड़ी देर के संग्राम में मुग़लों का साहस छूट गया और उनकी सेना में निराशा फैलने लगी। लेकिन बैराम खाँ ने अपनी सेना को सम्हालने का काम किया और उसकी सेना के धनुर्धारी सैनिकों ने कुछ समय तक भयानक बाणों की वर्षा की। इस समय दोनों ओर से युद्ध अत्यन्त गम्भीर हो गया था और हेमू की तरफ कुछ शिथिलता और शीतलता मालूम होने लगी। यह देख कर हेमू ने आश्चर्य किया और अपनी सेना को ललकारते हुए उसने शत्रुओं पर भयानक आक्रमण करने की आज्ञा दी। उस समय राजपूत सवारों और सैनिकों के सिवा बाकी सेना आगे न बढ़ी और उसी मौके पर अफ़ग़ान सैनिक और सवार मुग़ल सेना की ओर दिखाई देने लगे।

युद्ध का यह दृश्य हेमू के लिए अत्यन्त भयानक हो उठा। इसी समय मुग़ल सेना आगे बढ़ी और थोड़े समय के भीतर ही आँख में बाण लग जाने के कारण, हेमू बन्दी हो गया। उसकी सेना पराजित अवस्था में पीछे की ओर हट गयी। मुगल सैनिकों ने बन्दी दशा में हेमू को लाकर अकबर के सामने खड़ा किया। बैराम खाँ चाहता था कि अकबर स्वयं हेमू का बध करे। अकबर ने हेमू की ओर देखा। वह एक युवक था और एक बन्दी के साथ वह कायरों के शौर्य का प्रदर्शन नहीं करना चाहता था।

अकबर ने उत्तर देते हुए कहा : 'जो आदमी स्वयं इस समय एक मृतक के समान है, क्या समझ कर मैं उसका बध करूँ।'

अकबर के इनकार करने पर बैराम खाँ और उसके दूसरे सरदारों ने अपनी तलवारों से हेमू का संहार किया। अफ़ग़ान सेना के परास्त होने के बाद, मुग़ल सेना ने अफ़ग़ानों का प्रभुत्व मिटा कर दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया।

पानीपत के युद्ध-क्षेत्र में अकबर की यह सब से पहली और बड़ी विजय थी। उसके बाद उसने सन्तोष के साथ दिल्ली में विश्राम किया। लेकिन उसके सन्तोष के दिन अभी तक न थे। शेर शाह के वंशजों का अभी तक अस्तित्व बाकी था और अकबर का सौतेला भाई मोहम्मद हकीम शत्रु हो रहा था। हुमायूँ की वसीयत के अनुसार, पञ्जाब और दिल्ली अकबर को मिले थे। और काबुल का राज्य मोहम्मद हकीम को दिया गया था। लेकिन मोहम्मद हकीम ने हुमायूँ के मरते ही विद्रोह कर दिया और वह दिल्ली के राज्य पर अधिकार करने की चेष्टा करने लगा।

दिल्ली में एक महीने तक विश्राम करने के बाद पञ्जाब के अधिकारी सिकन्दर सूर को कैद करने के लिए अकबर और बैराम खाँ अपनी सेना के साथ रवाना हुए। उन्होंने काश्मीर तक उसका पीछा किया। मङ्कोट नामक स्थान पर सिकन्दर ने आत्म-समर्पण कर दिया। उसे क्षमा कर के अकबर ने एक जागीर दे कर उसे पूर्व की ओर रवाना कर दिया। सन् १५५७ ईसवी में आदिल शाह की भी मृत्यु हो गयी और इब्राहीम सूर डर कर जंगलों की तरफ भाग गया। इसके बाद सौतेले भाई मोहम्मद हकीम के विद्रोह को छोड़ कर इस समय अकबर के जीवन में कोई संघर्ष बाकी न था।

सत्रहवाँ परिच्छेद

पिण्डौली का संग्राम

[१५६७ ईसवी]

उदयसिंह का राजतिलक, अकबर और बैराम खाँ, मुगल राज्य का विस्तार, अकबर का चित्तौर पर आक्रमण, अकबर की विजय !

अनधिकारी को अधिकार

सन् १५३३ ईसवी में गुजरात के बादशाह बहादुर शाह ने राणा विक्रमाजीत के परास्त करके चित्तौर का विध्वंस किया था और वहाँ पर पन्द्रह दिनों तक मुकाम करके जब अनेक प्रकार की कल्पनायें कर रहा था, उन्हीं दिनों में उसके राज्य पर आक्रमण करने के लिए मुग़ल सेना लेकर हुमायूँ रवाना हुआ था। बहादुर शाह के साथ उसकी शत्रुता थी, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

बहादुर शाह चित्तौर छोड़कर गुजरात की तरफ चला गया और पराजित विक्रमाजीत फिर चित्तौर की गद्दी पर बैठा। उसकी अयोग्यता, अव्यावहारिकता और कठोरता से चित्तौर के सरदार बहुत ऊब गये थे, उसके इन्हीं दुर्गुणों के कारण बहादुर शाह के द्वारा चित्तौर का विध्वंस हुआ था।

पराजय के कठोर अपमान का विक्रमाजीत पर कोई प्रभाव न पड़ा और उसका दुर्व्यवहार ज्यों का त्यों फिर जारी हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि राज्य के समस्त सरदार उसके शत्रु

हो गये। वह राजगद्दी से उतारा गया और बनवीर को उसके स्थान पर बिठाया गया। शीतलसनी नामक एक दासी के साथ राजकुमार पृथ्वीराज का सम्बन्ध था और उसी के गर्भ से बनवीर का जन्म हुआ था। वास्तव में वह राज्य का अधिकारी न था। लेकिन सरदारों को आवश्यकता से विवश होकर कुछ समय के लिए ऐसा करना पड़ा था। राणा साँगा का पुत्र उदयसिंह अभी केवल पाँच वर्ष का था और उसकी यह अवस्था राजसिंहासन पर बैठने के योग्य न थी। इसलिए जब तक उदयसिंह समर्थ नहीं होता, सरदारों ने बनवीर को सिंहासन पर बिठाकर राज्य का काम चलाया था।

उदयसिंह की अयोग्यता

सन् १५४२ ईसवी में उदयसिंह चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। चित्तौर और मेवाड़ के राजपूतों तथा सरदारों ने जिस उत्साह और आनन्द के साथ उदयसिंह का राज्य-तिलक किया था, वह उत्साह और आनन्द राजपूतों के सामने अधिक समय ठहर न सका। राज्य के सिंहासन पर बिठाकर उदयसिंह से जो आशायें की गयी थीं, वे थोड़े समय में ही सब-की-सब विलीन हो गयीं। विवाह के बाद ही उसका समस्त जीवन विलासिता में व्यतीत होने लगा। उस विलासिता के उन्माद में उसने राज्य की परवाह न की। चारों ओर बढ़ते हुए भयानक शत्रुओं की ओर आँख उठाकर देखना उसने आवश्यक नहीं समझा। प्रजा के सुख और दुख की अवहेलना करके केवल महलों में पड़े रहना और मनोरंजन करना ही उसके जीवन में एक मात्र ध्येय रह गया। इसका परिणाम यह हुआ कि राणा साँगा की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ का जो गौरव क्षत-विक्षत हो गया था, वह राजपूतों के दुर्भाग्य के अन्धकार में विलीन होता हुआ दिखायी देने लगा।

जिस वर्ष उदयसिंह चित्तौर के सिंहासन पर बैठा था, उसी साल हुमायूँ के पुत्र अकबर ने जन्म लिया था। उदयसिंह और अकबर की अवस्थाओं में बहुत थोड़े वर्षों का अन्तर था। लेकिन उदयसिंह और अकबर की योग्यताओं में भूमि-आकाश का अन्तर पाया गया। कोई भी मनुष्य योग्यता और अयोग्यता को लेकर जन्म नहीं लेता। जिस प्रकार की परिस्थितियों में मनुष्य के जीवन का विकास होता है, वही परिस्थितियाँ उसकी योग्यता और अयोग्यता की कारण बन जाती हैं। उदयसिंह ने मेवाड़-राज्य के राज-महलों में जन्म लिया था और अकबर ने अपने पिता के जीवन की उन भयानक परिस्थितियों में जन्म लिया था, जब उसके रहने के लिए टूटा-फूटा अपना घर भी न था। उदयसिंह को जीवन के प्रारम्भ में राज-महलों के समस्त वैभव प्राप्त थे, लेकिन अकबर को विकराल विपदाओं का सामना करना पड़ा था। संक्षेप में यहाँ पर इतना ही जान लेने की आवश्यकता है कि दोनों राजकुमारों के जीवन में आरम्भ से ही इस प्रकार के विशाल अन्तर रहे थे। एक ओर सुविधाओं की सीमा थी और दूसरी ओर विपदाओं की पराकाष्ठा थी। विपदायें जीवन का निर्माण करती हैं और सुविधायें मनुष्य को विनाश की ओर ले जाती हैं।

मुग़ल-राज्य का विस्तार

पानीपत के युद्ध में हेमू को और उसके बाद शेर शाह के वंशजों को परास्त करके अकबर ने अपने यौवन काल के आरम्भ में एक बड़ी सफलता प्राप्त की थी। इस समय उसके शत्रुओं में उसका भाई मोहम्मद हकीम बाकी था। भारत के दूसरे राजाओं और बादशाहों से अब उसे कोई भय न था। लेकिन मोहम्मद हकीम का विद्रोह उसके लिए कभी भी भयानक हो सकता था, अकबर इस बात को खूब समझता था। लेकिन इस

समय वह उसके विद्रोह के प्रति उपेक्षा करना चाहता था और उसके ऐसा करने का कारण भी था।

इन दिनों में अकबर की घरेलू परिस्थितियाँ विद्रोहात्मक हो रही थीं। जीवन के आरम्भ से बैराम खाँ अकबर का शिक्षक और संरक्षक रहा था। हुमायूँ ने स्वयं अकबर को बहुत कुछ बैराम खाँ के अधिकार में छोड़ रखा था। वह उसका विश्वास करता था। बैराम खाँ ने हुमायूँ के साथ भीषण विपदाओं का सामना किया था और अनेक अवसरों पर अपने प्राणों को संकट में डालकर उसने हुमायूँ और उसके परिवार की मूल्यवान सेनायें की थीं। हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् यदि बैराम खाँ का संरक्षण न होता तो अकबर को उसके प्रारम्भिक जीवन में जो सफलतायें मिलीं, वे कदाचित न भी मिल सकती थीं। बैराम खाँ के इन उपकारों का बोझ अकबर अपने सिर पर कम न समझता था। इसीलिए हुमायूँ की मृत्यु के बाद, राज्य के अनेक अधिकार बैराम खाँ के हाथों में आ गये।

सन् १५६१ ईसवी में अकबर ने मालवा-राज्य पर आक्रमण किया था। उन दिनों में उसका अधिकारी बाज बहादुर था। उसकी विलास प्रियता के कारण मालवा राज्य निर्बल हो गया था। अकबर की सेना ने मालवा को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था।

सन् १५६४ ईसवी में आसफ खाँ के नेतृत्व में अकबर की एक सेना गोंडवाना-राज्य की ओर रवाना हुई। उस राज्य के अन्तर्गत अनेक छोटे-छोटे राजा राज्य करते थे। गोंडवाना में महारानी दुर्गावती का शासन था। वीराङ्गना दुर्गावती अपनी राजपूत सेना को लेकर रवाना हुई और जबलपुर के पास एक मैदान में उसने मुग़ल-सेना के साथ भयानक युद्ध किया। उस

लड़ाई में रानी दुर्गावती और उसका लड़का—दोनों मारे गये और गोंडवाना का राज्य मुग़ल-राज्य में मिला लिया गया।

अकबर के शत्रुओं में उसका भाई मोहम्मद हकीम अभी तक बाकी था और अकबर स्वयं उसको परास्त करना आवश्यक समझता था। लेकिन कुछ कारणों से उसने उसको छोड़ रखा था। जिन दिनों में अकबर ने हिन्दू राज्यों पर आक्रमण आरम्भ किये थे, उसे समाचार मिला कि मोहम्मद हकीम ने विद्रोह कर दिया और दिल्ली राज्य के कई प्रदेशों पर उसने अधिकार कर लिया है। यह समाचार मिलते ही सन् १५६६ ईसवी में अपने भाई मोहम्मद हकीम को परास्त करने के लिए अकबर अपनी सेना के साथ पश्चिम-उत्तर की ओर रवाना हुआ और उसके पहुँचने के पहले ही मोहम्मद हकीम घबराकर सिंध नदी की ओर भागा और काबुल चला गया।

अकबर रास्ते से ही लौट आया। उसने राजपूत राजाओं को पराजित करने का इरादा किया। आक्रमण होते ही सब से पहले अम्बर के राजा बिहारीमल कछवाहा और उसके पोते मानसिंह ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली और १५६२ ईसवी में राजा बिहारीमल ने अपनी लड़की योधाबाई का विवाह अकबर के साथ कर दिया।

चित्तौर के साथ अकबर का संघर्ष

अपनी अवस्था के अठारह वर्ष व्यतीत करके अकबर ने उन्नीसवें वर्ष में पदार्पण किया था और जब वह तेरह वर्ष का था, उस समय वह सिंहासन पर बैठा था। इन थोड़े-से वर्षों में अकबर ने अपनी सैनिक शक्ति की बहुत वृद्धि कर ली थी और अपने साम्राज्य का विस्तार बढ़ाकर उसे पर्वत के समान दृढ़ बना लिया था। कालपी, चन्देरी, कालीञ्जर के अतिरिक्त समस्त बुन्देल

खण्ड और मालवा के राज्य उसके अधिकार में आ गये थे। फिर भी राजस्थान के अनेक राजा मुस्लिम बादशाह की अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार न थे। इस प्रकार के राजाओं में चित्तौर का राणा उदयसिंह प्रमुख था। अकबर को यह साफ-साफ प्रकट था कि चित्तौर के परास्त होते ही समस्त विरोधी हिन्दू नरेश अधिकार में आ जायँगे।

अकबर ने चित्तौर पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। उन दिनों में राणा उदयसिंह का वहाँ पर शासन था और वह अपनी विलास प्रियता के लिए बहुत प्रसिद्ध था। एक आलसी और विलासी राजा को विजय करने में शत्रुओं को कितनी देर लगती है। चित्तौर की यह निर्बलता अकबर जैसे दूरदर्शी बादशाह को आक्रमण के लिए निमंत्रण दे रही थी।

चित्तौर पर आक्रमण करने के लिए अकबर को बहाना खोजने की आवश्यकता न थी। सन् १५६१ ईसवी में अकबर की सेना ने मालवा पर आक्रमण किया था, उस समय वहाँ का विलासी और आलसी राजा बाज बहादुर ने अपने राज्य से भाग कर चित्तौर में शरण ली थी। शत्रु को शरण देने के कारण चित्तौर के साथ उसी दिन अकबर की शत्रुता उत्पन्न हो गयी थी।

इन सब बातों के साथ-साथ, चित्तौर पर अकबर के आक्रमण का मूल कारण यह था कि वह समस्त राजपूत राजाओं को अपनी अधीनता में रखना चाहता था और चित्तौर के कारण अनेक राजपूत नरेश इसके लिए किसी प्रकार तैयार न थे। यद्यपि उन दिनों का चित्तौर, राणा साँगा के शासन-काल का चित्तौर न रहा था, फिर भी राजपूताना में उसकी पुरानी धाक चली जा रही थी। चित्तौर को पराजित करने के लिए अकबर अपनी शक्तिशाली और विशाल सेना को लेकर रवाना हुआ।

राणा साँगा के पुत्र उदयसिंह ने पाँच वर्ष की अवस्था से ही

जिस प्रकार का जीवन पाया था और जिन परिस्थितियों में उसे चित्तौर के सिंहासन पर बिठाया गया था, उदयसिंह की वह अवस्था संसार के संघर्ष से दूर हटकर व्यतीत हुई थी। उसे संकटों का, संघर्षों का और जीवन के उत्पातों का कुछ ज्ञान न था। उसने कुछ देखा न था, सुना न था और जाना न था। इस अबोध और अज्ञान की अवस्था में ही उसे राज-सिंहासन पर बिठा दिया गया था। परिणाम-स्वरूप, वह एक आलसी, विलासी और अकर्मण्य के सिवा कुछ न था। उसकी अयोग्यता से मेवाड़-राज्य का एक-एक व्यक्ति परिचित था। जिन सरदारों ने बनवीर को हटा करके चित्तौर के राज-सिंहासन पर उदयसिंह को बिठाया था, वे सभी उसकी अयोग्यता और अकर्मण्यता देख कर दुखी थे। इस दुर्भाग्य के समय पर चित्तौर में सम्राट अकबर का आक्रमण हुआ।

अपनी विशाल सेना के साथ दिल्ली से रवाना होकर अकबर मेवाड़-राज्य की तरफ चला। उसने रास्ते में शिवगढ़, कोटा और मंगलगढ़ के किलों को जीतकर अपने अधिकार में किया और चित्तौर के समीप पहुँच कर पिण्डौली नामक ग्राम के बाहर उसने अपनी सेना का मुकाम किया और वहाँ की विस्तृत भूमि पर छावनी बना कर उसने डेरा डाल दिया।

अकबर के आक्रमण का समाचार सुनते ही राणा उदयसिंह घबरा गया। अपने मन्त्रियों और सरदारों के सामने चाचा जयमल और पत्ता को बुलाकर चित्तौर की रक्षा का भार सौंपा और वह अपने परिवार के लोगों को साथ लेकर चित्तौर के बाहर पहाड़ियों की तरफ चला गया।

चित्तौर के सरदारों और सामन्तों ने जयमल और पत्ता के साथ चित्तौर की रक्षा पर परामर्श किया। युद्ध की परिस्थिति पर बहुत समय तक बातें करने के बाद चित्तौर में युद्ध की घोषणा की

गयी और राजपूत सेना की तैयारी आरम्भ हो गयी। इस समय उदयसिंह ने जिस कायरता से काम लिया, उससे चित्तौर के वीर सरदारों को कोई आश्चर्य न हुआ। इसके सिवा उससे और कोई आशा पहले से भी न की गयी थी। उदयसिंह की अयोग्यता और कायरता से कोई अपरिचित न था।

राणा उदयसिंह कायर और डरपोक था। लेकिन चित्तौर के राजपूत और सरदार डरपोक न थे। यह वही चित्तौर था, जिसके बहादुर राजपूतों ने किसी समय दूसरे राजाओं और बादशाहों के छक्के छुटा दिये थे। चित्तौर वही था, उसके शूर-वीर राजपूत और सरदार वही थे, लेकिन राणा संग्रामसिंह की तरह इन दिनों में वहाँ कोई शक्तिशाली राजा न था। जिस दिल्ली की सेनाओं को चित्तौर के राजपूतों ने अनेक बार पराजित किया था और दिल्ली के अनेक प्रदेशों पर हँसते हुए अधिकार कर लिया था, आज उसी दिल्ली की सेना चित्तौर को निगल जाने के लिए नगर के बाहर कुछ दूरी पर पड़ी हुई थी।

युद्ध के लिए तैयारी करने के समय चित्तौर के राजपूतों और सरदारों का खून खौल रहा था। उनके नेत्रों के सामने हारने और जीतने का कोई प्रश्न न था। जिन शत्रुओं ने आक्रमण करके चित्तौर के विध्वंस और विनाश करने का निश्चय किया है, उनके साथ युद्ध करने के लिए राजपूत उतावले हो रहे थे।

युद्ध की घोषणा होने के बाद, मेवाड़-राज्य के सरदार और सामंत अपनी-अपनी सेनायें लेकर उत्साह और उमंग के साथ चित्तौर की तरफ रवाना हुए। राज-स्थान के अनेक राजा अपनी सेनाओं के साथ चित्तौर की ओर दिखायी देने लगे। जयमल बिजनौर का राजा था और मारवाड़ के सामन्तों में उसका नाम बहुत प्रसिद्ध था। पत्ता कैलवाड़े का शासक था। उसका वास्त-

विक नाम प्रताप था, किन्तु छोटी अवस्था से ही वह पत्ता के नाम से विख्यात था। दोनों ही शूर-वीर राजपूत थे और उन दिनों में वे राज-स्थान में बहादुर माने जाते थे। चित्तौर में एकत्रित सेनायें जयमल के नेतृत्व में युद्ध के लिए रवाना हुई और नगर के बाहर जाकर पिण्डौली में पड़ी हुई मुग़ल सेना की ओर वे बढ़ीं। सन् १५६७ ईसवी में दोनों ओर की सेनाओं का पिण्डौली के संग्राम-भूमि में सामना हुआ और राजपूत सेनाओं ने आगे बढ़कर मुग़ल सेना पर आक्रमण किया। हिन्दुओं और मुसलमानों में घोर युद्ध आरम्भ हो गया।

युद्ध की भयंकरता

समर-भूमि में राजपूत सेना को देखकर अकबर ने बड़ी सावधानी से काम लिया। दिल्ली से रवाना होने के पहले उसने सोचा था कि आक्रमण होते ही कायर उदयसिंह राज्य को छोड़कर भागेगा और बिना किसी युद्ध के मुग़ल-सेना चित्तौर पर अधिकार कर लेगी। अकबर की यह धारणा उदयसिंह के सम्बन्ध में ठीक निकली। किन्तु राजपूत सरदारों और सामन्तों की शक्तियों का अनुमान लगाने में उसने भूल की थी। राज-स्थान के वीर राजपूत किसी अवस्था में अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार न थे और वे पराधीन होने के पहले ही युद्ध-क्षेत्र में लड़कर मर जाना श्रेष्ठ समझते थे।

यवन-सेना भीषण सिंहनाद करती हुई युद्ध में आगे बढ़ने की चेष्टा करने लगी। अपने हाथों में बन्दूकें लेकर मुग़ल सैनिक गोलियों की वर्षा करने लगे। यह देखकर रणोन्मत्त राजपूतों ने धनुष लेकर भीषण बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। मुग़लों की गोलियों और राजपूतों के बाणों से घायल होकर सैनिक युद्ध-क्षेत्र

में गिरने लगे। उनके रक्त से पिण्डौली की भूमि रक्त-वर्ण हो उठी। मुग़ल सैनिकों की ओर से गोलियों की वर्षा लगातार भयंकर होती जाती थी। कुछ घण्टों के युद्ध में ही राजपूत बड़ी संख्या में मारे गये। लेकिन चित्तौर की सेना ने अकबर के सैनिकों को आगे बढ़ने नहीं दिया।

पिण्डौली के इस युद्ध में जयमल और सतीदास ने वाणों की मार करने में अपनी अद्भुत वीरता का प्रदर्शन किया। जयमल का नेतृत्व पाकर राजपूतों की शक्तियाँ दूनी हो गयी थीं और यदि शत्रुओं की ओर से गोलियों की वर्षा न हुई होती तो राजपूत सैनिकों ने अब तक मुग़लों को युद्ध-भूमि से भगा दिया होता। राजपूतों की इस अद्भुत वीरता को देखकर अकबर कुछ भयभीत हुआ और उसने अपनी मुग़ल-सेना को ललकार कर आगे बढ़ने की आज्ञा दी। अकबर की उत्तेजनापूर्ण बातों को सुनकर मुग़ल-सेना ने भीषण मार शुरू कर दी और वह कुछ दूर तक आगे बढ़कर राजपूतों को पीछे की ओर दबा ले गयी।

युद्ध की यह अवस्था देखकर वीरवर सतीदास ने अपने घोड़े को आगे बढ़ाया और उसने राजपूतों को आगे बढ़ने के लिए ललकारा। राजपूत अपने जीवन की आहुतियाँ देते हुए आगे बढ़े और उस समय राजपूत एक बड़ी संख्या में मारे गये। सतीदास के एक साथ ही कई एक गोलियाँ लगीं। वह भूमि पर गिर गया। सतीदास के गिरते ही जयमल और पत्ता ने राजपूत सेना को सम्हालने की पूरी कोशिश की और बहुत समय तक दोनों ओर से धुआँधार मार होती रही। इस समय पत्ता की अवस्था सत्रह वर्ष की थी और उसका पिता पिछले एक युद्ध में मारा गया था। पत्ता अपने वंश में अकेला था। लेकिन जन्म से ही वह युद्ध-प्रिय था। वह अपने प्राणों की अपेक्षा चित्तौर की स्वाधीनता का

मूल्य अधिक समझता था। उसकी माता ने अपने इकलौते बेटे को युद्ध में लड़ने के लिए भेजा था। युद्ध में बेटे के मारे जाने का उसे भय न था। उसे इस बात की प्रसन्नता थी कि उसका बेटा चित्तौर की स्वाधीनता को सुरक्षित रखने के लिए युद्ध में लड़ने के लिए जा रहा है। नव यौवन के उमड़ते हुए उत्साह में प्राणों का मोह छोड़कर पत्ता ने भयानक मार की।

राजपूत गोलियों की वर्षा में बहुत मारे गये थे। परन्तु युद्ध की परिस्थिति उसी प्रकार भयानक बनी हुई थी, जिस प्रकार वह आरम्भ हुई थी। अकबर ने पहले से ही अपनी तोपों के प्रयोग का प्रबन्ध कर लिया था। उसने अन्त में अपने तोपची को आज्ञा दी और कुछ ही देर में तोपों के मुँह से भीषण गोले निकल-निकल कर राजपूतों का संहार करने लगे। उन गोलों की मार से सैकड़ों राजपूत टुकड़े-टुकड़े होकर आकाश की ओर उड़ते हुए दिखायी देने लगे। बन्दूकों और तोपों की भयंकर मार के कारण राजपूत सेनाओं के बहुत सैनिक मारे गये और जो बाकी बच रहे, वे छिन्न-भिन्न होते हुए दिखायी देने लगे। किसी भी अवस्था में उन्होंने आत्म समर्पण करना स्वीकार नहीं किया और जीवन के अन्तिम क्षणों तक उन्होंने युद्ध करने का निश्चय बनाये रखा।

युद्ध की इस भीषण अवस्था में वक्ष-स्थल में गोली लगने से जयमल घोड़े से नीचे गिरा और उसी समय पत्ता भी मारा गया। उसके बाद राजपूत सेना का साहस टूट गया और वह पीछे की ओर हटने लगी। राजपूत चित्तौर की ओर लौटने लगे। मुग़ल-सेना ने उनका पीछा किया। चित्तौर के भीतर पहुँच कर राजपूत सेना ने फिर एक बार मुग़लों का सामना किया। सूर्य-द्वार के बाहर विस्तृत भूमि पर दोनों ओर के सैनिकों का घमासान युद्ध हुआ। राजपूत सैनिकों की संख्या अब बहुत थोड़ी रह गयी थी।

फिर भी शेष राजपूतों ने तलवारों की भयानक मार की और मुगल सैनिकों को पीछे हटने के लिए उन्होंने मजबूर कर दिया। यह अवस्था बहुत थोड़ी देर रही और मुग़ल सैनिकों ने पीछे हट-कर राजपूतों पर गोलियों की मार आरम्भ की। बात की बात में खड्गधारी राजपूत बहुत-से मारे गये और जो बाकी रहे, वे इधर-उधर भाग कर निकल गये। मुग़ल-सेना ने आगे बढ़कर चित्तौर के किले पर अधिकार कर लिया।

चित्तौर की रक्षा करने के लिए पिण्डौली के इस युद्ध में तीस हजार राजपूत मारे गये। युद्ध के बाद विजयी मुगल-सेना ने चित्तौर में प्रवेश किया और बाहर से लेकर भीतर तक उसने सर्वत्र अपना अधिकार कर लिया।

चित्तौर की पराजय के पश्चात् सभी राजपूत राजाओं के साहस टूट गये। अब ऐसा कोई हिन्दू नरेश न रह गया जो अपनी स्वाधीनता के लिए मुग़ल-सम्राट अकबर के साथ युद्ध करता। इसलिए जो राजा अब तक बाकी थे, उनको पराजित कर लेना अकबर के लिए कुछ भी कठिन न रह गया। अनेक राजाओं ने स्वयं अकबर के पास आकर आत्म समर्पण किया और अनेक राजाओं को आसानी के साथ जीतकर मुग़लों के राज्य में मिला लिया गया।

चित्तौर के इस विध्वंस के बाद अनेक शताब्दियाँ बीत चुकी हैं। उस राज्य का गौरव इस युद्ध के बाद क्षत-विक्षत हो गया था। शेष रह गया था, केवल बलिदान होने वालों का पुण्य-प्रताप और कायरों का पाप मिश्रित अपराध! अपनी कायरता के कारण उदयसिंह ने जिस अपराध का प्रदर्शन किया था, उसका कलंकित चित्र भारत के इतिहास से कभी मिटाया नहीं जा सकता। और जयमल तथा पत्ता ने चित्तौर की स्वाधीनता के लिए

जिस प्रकार अपने प्राणों के बलिदान किये थे, उनके द्वारा उन वीरात्माओं को मिलने वाला अमरत्व कभी भुलाया नहीं जा सकता। चित्तौर का यह युद्ध १५६७ ईसवी में हुआ था। इसके बहुत दिनों के बाद फ्राँसीसी यात्री बर्नियर ने भारत का पर्यटन किया था। उसने १६६३ ईसवी में चित्तौर का भ्रमण किया था और लिखा था :—

"चित्तौर में प्रवेश करने के बाद इस समय वहाँ पर देखने के योग्य कुछ नहीं है, सिवा इसके कि सिंह-द्वार के दोनों ओर हाथियों की दो प्रस्तर मूर्तियाँ हैं और उनमें एक पर जयमल की मूर्त्ति है और दूसरे पर पत्ता की। स्वाधीनता और स्वाभिमान की रक्षा के लिए उन दोनों शूर-वीर ने जिस साहस और शौर्य से काम लिया था, उससे प्रभावित होकर बादशाह अकबर ने—जो उन दोनों का शत्रु था—उन दोनों की मूर्तियों की प्रतिष्ठा करायी थी, जिनको देखकर आज भी उनके बलिदानों की स्मृतियाँ ताजी हो जाती हैं।"

जयमल और पत्ता ने घोड़ों पर चढ़कर युद्ध किया था, लेकिन अकबर के द्वारा उनकी मूर्तियों का निर्माण हाथियों पर किया गया था।

अठारहवाँ परिच्छेद

हलदी घाटी का विकराल युद्ध

[१५७६ ईसवी]

प्रताप का जीवन, अकबर के साथ प्रताप का विद्रोह, मानसिंह का अपमान, युद्ध की तैयारियाँ, युद्ध-क्षेत्र में भयानक संग्राम, मन्ना का बलिदान, प्रताप की विजय !

उदयसिंह की मृत्यु

चित्तौर पर अकबर के आक्रमण के समय वहाँ का राणा उदयसिंह राज्य छोड़कर निकटवर्ती पहाड़ियों के घने जंगलों में चला गया था और वहाँ से आगे बढ़कर गोहिलों के पास पहुँच गया था। ये गोहिल लोग राजपिप्पली नामक गम्भीर वन में रहते थे। कुछ समय तक उदयसिंह अपने परिवार के साथ वहाँ पर बना रहा और उसके पश्चात् वहाँ से चलकर अरावली पर्वत में प्रवेश करके गिहलोट नामक स्थान पर पहुँच गया। इस स्थान के साथ उदयसिंह का एक पुराना सम्बन्ध था। चित्तौर को विजय करने के पहले उसके पूर्वज बप्पा रावल ने इसी स्थान के निकट कुछ समय तक अज्ञातवास किया था।

अरावली पर्वत के जिस भाग में जाकर उदयसिंह ने अपने रहने का स्थान निश्चित् किया, उसकी विशाल तलैटी में कई एक नदियाँ प्रवाहित होती थीं और उनके स्वच्छ जल ने उस स्थान को

अत्यन्त रमणीक बना रखा था। वहाँ के एक ऊँचे शिखर पर उदयसिंह ने एक सुन्दर प्रासाद निर्माण कराया था। ऐसा मालूम होता है कि उदयसिंह चित्तौर के होने वाले विध्वंस की घटना को पहले से जानता था और वह यह भी जानता था कि मुझे चित्तौर की राजधानी छोड़कर एक दिन अरावली के इसी स्थान पर आना पड़ेगा। इसीलिए इस स्थान को उसने पहले से ही अनेक सुविधाओं के साथ तैयार करा लिया था।

गिहलोट में अनेक सुविधायें पहले से मौजूद थीं, उसके बाद, उदयसिंह के आ जाने पर उस स्थान का नित नया निर्माण हुआ। छोटे-बड़े कई एक नये महल तैयार किये गये। रहने वालों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती गयी और कुछ वर्षों में वह स्थान एक नगर के रूप में परिणत हो गया। उदयसिंह ने उस नगर का नाम उदयपुर रखा और उसे उसने मेवाड़-राज्य की राजधानी बनायी।

चित्तौर-विध्वंस होने के चार वर्ष पश्चात् गोगुण्डा नामक स्थान में उदयसिंह की मृत्यु हो गयी। उस समय उसके पच्चीस पुत्र थे। उदयसिंह के निर्णय के अनुसार, उसका छोटा पुत्र जगमल मेवाड़ के सिंहासन पर बैठा। लेकिन गद्दी पर बैठने के थोड़े ही दिनों के बाद राज्य के सरदारों में असंतोष उत्पन्न हुआ इसलिए उसके स्थान पर प्रताप सिंहासन पर बिठाया गया और जगमल को गद्दी से उतार दिया गया।

प्रताप का दृष्टिकोण

प्रतापसिंह राणा उदयसिंह का सब से बड़ा लड़का था और उससे छोटा शक्तसिंह था। पुत्र होने पर भी प्रताप स्वभाव और चरित्र में अपने पिता—उदयसिंह से बिल्कुल भिन्न था। वह जन्म से ही स्वाभिमानी और स्वतन्त्रता-प्रिय था। उसकी माता शोन-

गढ़ के राजपूत सरदार की लड़की थी। उदयसिंह में राजपूती गुणों का जितना ही अभाव था, प्रताप की माता में उनका उतना ही आधिक्य था। प्रतापसिंह को जीवन की बहुत-कुछ शिक्षा अपनी स्वाभिमनिनी माता से मिली थी।

प्रताप के जीवन का संघर्ष उसके जन्म के साथ ही आरम्भ हुआ था। उसके साथ, उसके पिता—उदयसिंह का स्नेह न था। जीवन के आरम्भ से ही वह पिता के प्यार से वञ्चित हो गया था। इस अवस्था में उसके जीवन पर उदयसिंह का प्रभाव न पड़ना स्वाभाविक था। इस स्नेह से वञ्चित होने का ही यह प्रभाव था कि पिता के पश्चात् राज्य का अधिकारी होने पर भी उसे राजगद्दी न दी गयी थी और न उदयसिंह का छोटा पुत्र जगमलसिंह—जिसे उदयसिंह अधिक प्यार करता था—सिंहासन पर बिठाया गया था। किन्तु सरदारों के विरोधी होने के कारण वह सिंहासन पर रह न सका था।

प्रतापसिंह के जीवन की बहुत-सी बातें संग्रामसिंह के साथ मिलती थीं। बल, पराक्रम और स्वाभिमान में वह ठीक संग्रामसिंह की तरह का था। संग्रामसिंह के जीवन की शुरुआत में भाइयों का द्वेष उत्पन्न हुआ था और उसके कारण राज्य को छोड़कर कहीं एकान्त में बहुत दिनों तक उसे जीवन व्यतीत करना पड़ा था। प्रताप के जीवन की परिस्थितियाँ भी इसी प्रकार की थीं। बहुत समय तक उसे भाइयों की सहायता के स्थान पर शत्रुता ही मिली थी।

उदयसिंह जब तक चित्तौर में रहा था, प्रतापसिंह का उस समय भी कोई महत्व न था। जगमलसिंह ही राज्य का अधिकारी समझा जाता था। चित्तौर पर अकबर के आक्रमण करने पर उदयसिंह अपने परिवार को लेकर पहाड़ों पर चला गया था।

उस समय से लेकर कई वर्षों तक प्रताप के सामने एक निर्वासित जीवन था। परन्तु इन कठिनाइयों के कारण उसके स्वाभिमान में किसी प्रकार की निर्बलता नहीं आयी थी। उसने अपनी माता से अपने पूर्वजों के गौरव की कथायें सुनी थीं। लड़कपन से ही वह उन मुसलमान बादशाहों का विरोधी था, जिनके अत्याचारों से उसके पूर्वजों के राज्य का विनाश हुआ था।

अकबर और हिन्दू नरेश

उदयपुर के राज-सिंहासन पर बैठने के बाद, प्रतापसिंह ने चित्तौर के उद्धार का निश्चय किया। यद्यपि अकबर बादशाह की शक्तियाँ महान् थीं और उसके साथ युद्ध करने के लिए प्रताप के पास कुछ भी न था। लेकिन अपनी इस निर्बल परिस्थिति के कारण वह निराश न हुआ। उसने उन साधनों के जुटाने का कार्य आरम्भ कर दिया, जो युद्ध में उसके सहायक हो सकते थे। प्रताप ने सब से पहले यह किया कि उसने उदयपुर के स्थान पर कमलमेर में राजधानी की प्रतिष्ठा की। इसके साथ-साथ, उसने पहाड़ी दुर्गों को तैयार करने का काम किया। किस अवसर पर किस दुर्ग से काम लिया जा सकता है, इस अभिप्राय से उसने उनकी मरम्मत करायी।

प्रतापसिंह के अधिकार में बहुत थोड़ी सेना थी और उसके द्वारा सम्राट अकबर का सामना किसी प्रकार सम्भव न था। इसलिए उसने दुर्गम पहाड़ी स्थानों में अपनी सेना के रखने का निश्चय किया और पर्वतों के बीच में भयानक जंगलों में रहकर शत्रुओं पर लगातार आक्रमण करने का उसने निर्णय किया। इसके साथ-साथ प्रताप ने उन राजपूतों की सेना तैयार की जो शक्तिशाली मुग़ल-सेना के साथ युद्ध करने और उनके अत्याचारों

का उनको बदला देने की अभिलाषा रखते थे। इन्हीं दिनों में उसे कुछ ऐसे राजपूत सरदार मिल गये, जो शूर-वीर थे। उन्होंने प्रताप के साथ देश के उद्धार करने की प्रतिज्ञा की और स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए अपने प्राणों का बलिदान देने के लिए वे प्रसन्नता के साथ तैयार हो गये।

अपने सरदारों के साथ परामर्श करके प्रतापसिंह ने अकबर के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। लगातार अपने प्रयत्नों से प्रताप ने एक छोटी-सी सेना बना ली थी। लेकिन युद्ध के लिए उसको सम्पत्ति की आवश्यकता थी। इसके लिए उसने सरदारों से बातें करके एक योजना तैयार की और उसके अनुसार अंत में मुग़ल बादशाह के साथ युद्ध करने के लिए वह तैयारियों में व्यस्त हुआ।

अकबर के विरुद्ध प्रताप के विद्रोह का समाचार चारों ओर फैलने लगा। मुग़ल-साम्राज्य भारत में सर्वत्र फैल चुका था और अकबर की शक्तियाँ अत्यन्त प्रबल और अटूट हो चुकी थीं। शासन करने में वह बहुत प्रवीण और दूरदर्शी था। करीब-करीब सभी हिन्दू राजाओं को उसने अपने अधिकार में कर लिया था। अकबर के भय, प्रलोभन और आतंक के कारण कोई ऐसा हिन्दू राजा उस समय न रह गया था, जो उसके साथ विद्रोह करके प्रताप का साथ देने का साहस करता।

अकबर के नेत्रों से प्रताप का विद्रोह छिपा न था। वह विरोधियों को बस में करना खूब जानता था। अकबर महान् राजनीतिक पुरुष था। मनुष्य को पहचानने की उसमें बड़ी योग्यता थी। वह आसानी के साथ इस बात का सही निर्णय कर लेता था कि कौन आदमी किस प्रकार अधिकार में आ सकता है। अपनी इसी बुद्धि के द्वारा उसने समस्त भारत में मुग़ल-राज्य

का विस्तार किया था और हिन्दू राजाओं तथा मुसलमान बादशाहों की स्वतन्त्रता का नाश कर उसने अपना आधिपत्य कायम किया था।

बादशाह अकबर प्रताप की नीति से अनभिज्ञ न था। परन्तु उसको अभी तक अकबर ने अयोग्य, असमर्थ तथा उपेक्षणीय समझा था। आवश्यकता के लिए वह पहले से ही तैयार था। उसने एक ऐसी नीति का भी आश्रय लिया था, जिससे कितने ही हिन्दू राजाओं ने न केवल अकबर की अधीनता स्वीकार की थी, बल्कि उसे प्रसन्न करने के लिए वे प्रताप का मान-मर्दन करने के लिए भी तैयार थे। ऐसे मौके पर काम आने के लिए वे राजा और बादशाह तो उसके हाथ में थे ही, जो किसी समय चित्तौर और प्रताप के पूर्वजों के शत्रु रह चुके थे, शिशोदिया वंश के अत्यन्त निकटवर्ती अनेक राजपूत नरेश भी अकबर के हाथ में ऐसे थे, जो उसके नेत्रों के संकेत पर प्रताप के साथ युद्ध करने को तैयार थे। अकबर के भयानक राजनीतिक जाल ने न केवल राज-पूत राजाओं की स्वाधीनता का विनाश किया था, वरन् उसने उसकी मानसिक और बौद्धिक शक्तियों का भी विध्वंस किया था, जिसके कारण राजपूताने के वे राजा भी, जिनको प्रताप अपना समझ सकता था, उसके शत्रु हो रहे थे। इस प्रकार के राजाओं में मारवाड़, अम्बेर, बीकानेर और बूँदी राज्य के राजा भी शामिल थे। बात यहीं तक न थी, परिस्थितियाँ तो यहाँ तक भयानक थीं कि प्रताप का सगा भाई-राणा उदयसिंह का पुत्र शक्तसिंह भी अकबर के हाथ में था और वह प्रताप का शत्रु हो चुका था। उसके बदले में अकबर ने उसे, उसके पूर्वजों के राज्य का एक प्रदेश देकर, अपनी सेना का उसे एक अधिकारी बना दिया था। भारत की इन भयानक परिस्थितियों में प्रताप ने—जब उसका कहीं कोई साथी दिखाई न देता था—भारत के शक्तिशाली सम्राट्

अकबर के साथ विद्रोह किया और निर्भीक होकर उसने युद्ध करने का निर्णय किया।

स्वतंत्रता की घोषणा

जीवन के समस्त सुखों में स्वाधीनता का सुख महान और अद्भुत होता है। इसका अनुभव उस समय से आरम्भ होता है, जब कोई पराधीन जाति अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करती है। अपनी निर्बलता से प्रताप अपरिचित न था। वह जानता था कि देश की समस्त शक्तियाँ अपनी और पराई—विरोधिनी हैं। फिर भी वह मुस्लिम आधिपत्य के प्रति विरोध और विद्रोह करना चाहता था। उसने और उसके सरदारों ने युद्ध के दिनों की कठिनाइयों का खूब अनुमान लगा लिया था। अनेक बार आपस में परामर्श करके वे प्रताप के साथ पूरे तौर पर सहमत हो चुके थे। मुस्लिम आधिपत्य को मिटाने के लिए उन सब ने शपथ पूर्वक प्रतिज्ञायें की थीं। जीवन की समस्त कठिनाइयों का सामना करने का उन्होंने निश्चय किया था और पराधीनता के अत्याचारों में रहने की अपेक्षा प्राणोत्सर्ग करना श्रेयस्कर समझा था।

सभी बातों का निश्चय हो चुकने पर वीरात्मा प्रताप ने मेवाड़-राज्य के निवासियों में प्रचार किया कि जो लोग मुस्लिम आधिपत्य को मिटाकर राज्य की स्वतन्त्रता चाहते हों, वे तुरन्त अपने-अपने स्थानों को छोड़कर हमारे साथ पहाड़ों पर आ जायँ। जो ऐसा न करेंगे, वे मुस्लिम बादशाह के पक्षपाती समझे जायँगे और शत्रु समझ कर उनका विनाश किया जायगा।

राणा प्रताप की इस आज्ञा के प्रचारित होते ही मेवाड़-राज्य की प्रजा अपने घर-द्वार छोड़कर और परिवार के लोगों को लेकर पहाड़ों की ओर रवाना हुई। पहाड़ों पर जाकर रहने

वालों की संख्या रोजाना बढ़ती गयी और कुछ ही दिनों के भीतर मेवाड़-राज्य के गाँव, नगर और बाजार सुनसान दिखायी देने लगे।

राणा प्रताप की आज्ञा का लगातार प्रचार होता रहा और उसके लिए बड़ी कठोरता से काम लिया गया। लोगों को एक अच्छा मौका देकर और उनके पहाड़ों पर आ जाने की प्रतीक्षा करके राणा प्रताप ने इस बात को जानना चाहा कि उस आदेश का कहाँ तक प्रभाव पड़ा है। इसलिए अपने साथ कुछ सवारों को लेकर प्रताप अपने घोड़े पर पहाड़ों से नीचे उतरा और दूर-दूर तक जाकर देखना शुरू कर दिया। प्रताप का यह सिलसिला कितने ही दिनों तक बराबर जारी रहा। उसको यह देखकर संतोष हुआ कि राज्य के जो स्थान मनुष्यों के कोलाहल से भरे रहते थे, वे जन शून्य पड़े हैं। जो मार्ग स्त्रियों-पुरुषों के चलने से भरे रहते थे, वे बिलकुल सुनसान हो गये थे। समस्त मेवाड़-राज्य मरुभूमि में परिणत हो गया और मुग़ल बादशाह अकबर को इस विशाल राज्य से कुछ भी लाभ उठा सकने का अवसर शेष न रहा।

धन की व्यवस्था

मुग़ल-शासन के प्रति अकबर ने जिस विद्रोह का निर्णय किया था, उसकी अभी तक तैयारियाँ चल रही थीं। मेवाड़-राज्य के निवासियों को पहाड़ों पर बुला कर प्रताप ने अकबर बादशाह को मेवाड़-राज्य से होने वाली लम्बी आयसे वञ्चित कर दिया। अब उसे स्वयं धन की आवश्यकता थी। वह जिस विद्रोह को आरम्भ करने जा रहा था, उसकी रूप-रेखा एक भयानक लड़ाई के साथ थी। आरम्भ होने वाला वह युद्ध कितना लम्बा होगा, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता था। उसके लिये सैनिक शक्ति के साथ साथ अपरिमित धन की आवश्यकता थी। राणा

प्रताप उसके लिए बिल्कुल चिन्तित नहीं हुआ। उसके हृदय में उसका अटूट साहस लहरें ले रहा था। उसका उमड़ता हुआ उत्साह कभी उसे निराशा के अनुभव करने का अवसर नहीं देता था।

उन दिनों में योरप वालों के साथ मुग़ल साम्राज्य का व्यवसाय चल रहा था। व्यावसायिक सम्पत्ति और सामग्री मेवाड़-राज्य के भीतर से होकर सूरत अथवा किसी दूसरे बन्दरगाह पर जाया करती थी। प्रताप के सरदारों ने आक्रमण करके उसके लूट लेने का कार्य आरम्भ कर दिया। उसके द्वारा प्रताप की आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति होने लगी।

प्रताप और अकबर के बीच संघर्ष

मेवाड़-राज्य को सुनसान बनाकर और मुग़ल-राज्य के व्यवसाइयों को लूटना आरम्भ करके प्रताप ने विद्रोह की शुरूआत कर दी। राजस्थान के समस्त हिन्दू नरेश इस विद्रोह की ओर सावधानी के साथ देख रहे थे। वे सभी अकबर की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। फिर भी प्रताप के विद्रोह से वे भयभीत हो रहे थे। वे अपने प्रति अकबर के हृदय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं पैदा करना चाहते थे। वे सब के सब अपनी भलाई इसी में समझते थे कि विद्रोह के इन भयानक दिनों में अकबर बादशाह का विश्वास हम पर बना रहे।

राणा प्रताप ने मेवाड़-राज्य में जो परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी, उसकी एक-एक बात से अकबर अपरिचित न रहा। उसने प्रताप के विनाश का निश्चय किया और अपनी एक सेना ले कर वह अजमेर की तरफ जाना चाहता था। उन्हीं दिनों में कई एक हिन्दू राजाओं ने अपनी बहुमूल्य भेंटों के साथ बादशाह से मुलाकातें कीं और उसके साम्राज्य के प्रति सदा विश्वस्त बने

रहने की प्रतिज्ञायें कीं। डर बुरा होता है। राजस्थान के उन राजाओं ने जिन्होंने शेर शाह के सामने कभी मस्तक नीचा नहीं किया था, उन्होंने उन दिनों में बार-बार अकबर के सामने नत् मस्तक हो कर साम्राज्य-भक्त बने रहने का विश्वास दिलाया।

अकबर जिन दिनों में अजमेर की ओर जाना चाहता था, प्रताप का विनाश करने के लिए, कई एक हिन्दू राजा अपनी सेनायें लेकर उसका साथ देने के लिए तैयार थे। जिन हिन्दू नरेशों ने इस भीषण काल में प्रताप के विरुद्ध अपनी तलवारें निकालीं, उनके ऐसा करने का कारण था। ये वही हिन्दू राजा थे जिन्होंने मुग़ल-बादशाह से भयभीत होकर, उसकी अधीनता स्वीकार की थी और कुछ ने तो अपने आपको सुरक्षित रखने के उद्देश्य से, अपनी लड़कियों के विवाह तक अकबर के साथ कर दिये थे। ऐसा करके उन्होंने अपनी स्वाधीनता के साथ-साथ, राजपूती मर्यादा और गौरव को भी नष्ट कर दिया था। इसलिए वे लोग चाहते थे कि प्रताप का न केवल विनाश हो, बल्कि वे लोग उसका समाजिक पतन भी चाहते थे, जिससे उनके पतन के कारण कोई हिन्दू नरेश उन पर कीचड़ न उछाल सके। इस प्रकार के कलंकित और पतित राजपूत राजाओं में अम्बेर और मारवाड़ के राजा प्रमुख थे।

राणा प्रताप ने अकबर के विस्तृत साम्राज्य को देखकर कभी नत्-मस्तक होने की बात नहीं सोची। अपनी संकुचित और सीमित शक्तियों के साथ उसने मुग़ल-साम्राज्य के प्रति स्थायी और व्यापक विद्रोह का सूत्रपात किया था और जिन हिन्दू राजाओं ने अपनी स्वाधीनता अकबर बादशाह को अर्पण कर दी थी, उनका प्रताप ने निर्भीकता पूर्वक बहिष्कार किया था।

पिछले परिच्छेद में लिखा जा चुका है कि अम्बेर के राजा बिहारीमल ने अपनी लड़की का विवाह अकबर के साथ कर दिया

था। मानसिंह बिहारीमल का पोता था और भगवानदास उसका लड़का था। इस वैवाहिक सम्बन्ध के कारण अकबर ने मानसिंह को अपनी सेना में सेनापति का स्थान दिया था। मानसिंह स्वयं साहसी, चतुर तथा युद्ध में शूर-वीर था और अनेक हिन्दू राजाओं पर अकबर की विजय का कारण राजा मानसिंह था। अकबर ने मानसिंह को अपनी सेना में सब से ऊँचा पद दिया था और मानसिंह ने भारत के बहुत से राज्यों को जीत कर अकबर के राज्य को साम्राज्य बना दिया था।

मानसिंह का आतिथ्य

शोलापुर के युद्ध में विजयी होकर मानसिंह मुग़ल-राजधानी आ रहा था। रास्ते में ही उसने प्रतापसिंह से मिलने का इरादा किया। प्रतापसिंह उन दिनों में कमलमेर में था। राजा मानसिंह का सन्देश पाकर प्रताप ने, अपने पिता के बनवाये हुए उदय सागर पर उसके ठहरने का प्रबन्ध कराया। उस सरोवर के निकट खाने पीने की अनेक वस्तुएँ तैयार की गयीं। खाने के समय उसे अकेले बैठने का प्रबन्ध किया गया। प्रताप ने उसके साथ मुलाकात नहीं की। भोजन के समय मानसिंह के बुलाने पर भी उसके पास प्रताप नहीं गया। मानसिंह के आग्रह करने पर प्रताप ने वहाँ पहुँच कर कहा कि जिस राजपूत ने अपनी बहन और लड़की मुग़ल बादशाह को ब्याही है, मैं उसके और उसके परिवार के साथ भोजन नहीं कर सकता।

मानसिंह का इससे अधिक अपमान और क्या हो सकता था। वह अपने स्थान से उठ कर अपने घोड़े के पास गया और उस पर बैठ कर उस स्थान से लौटते समय उसने उत्तेजना के साथ प्रताप की ओर देखा और कहा: "प्रतापसिंह! यदि मैं तुम्हारा यह अहंकार मिट्टी में न मिला दूँ तो मेरा नाम मानसिंह नहीं है।"

प्रताप ने तिरस्कार के साथ मानसिंह की ओर देखा और अत्यन्त गम्भीर होकर उसने कहा : "युद्ध-क्षेत्र में आपको देख कर मुझे प्रसन्नता होगी।"

उसी समय किसी ने उपहास के साथ कहा : "हाँ-हाँ, आप जरूर आइएगा और साथ में अपने फूफा अकबर को भी लाइएगा।"

मानसिंह के चले जाने के बाद, उस स्थान को अपवित्र समझ कर धोया गया और जिन लोगों ने मानसिंह को देखा था, उन्होंने स्नान करके अपने आपको पवित्र किया।

मानसिंह के अपमान का बदला

अपमान और क्रोध में विक्षुब्ध होकर मानसिंह कमलमेर से चला गया। उसने अकबर बादशाह से अपने अपमान की सम्पूर्ण कथा कही। प्रताप के विरुद्ध अकबर पहले से ही तैयार बैठा था। जो युद्ध कुछ दिन बाद हो सकता था, मानसिंह के अपमान से उसका समय समीप आ गया। यह अपमान, राणा प्रताप और अकबर बादशाह के बीच शीघ्र युद्ध होने का एक कारण बन गया।

प्रतापसिंह पर आक्रमण करने के लिए अकबर का विचार सजीव हो उठा। मानसिंह के साथ उसने अनेक परामर्श किये और उसके बाद उसने सैनिक तैयारी का आदेश दे दिया। मानसिंह को इससे अत्यन्त सन्तोष मिला। वह किसी भी प्रकार प्रताप के साथ तुरन्त युद्ध करना चाहता था।

युद्ध के लिए तैयारी और रवानगी

उन दिनों में मुग़ल-साम्राज्य भारत में अत्यन्त शक्तिशाली

हो चुका था। देश के सभी छोटे-बड़े राजा और बादशाह, अकबर की अधीनता को स्वीकार करके अपने अस्तित्व की रक्षा कर रहे थे। भारत के लगभग सभी स्वतन्त्र हिन्दू राजाओं ने दिल्ली सम्राट के सामने आत्म-समर्पण कर दिया था। केवल एक राणा प्रताप बाकी था, जिसका कोई बड़ा अस्तित्व न था। मेवाड़ का राज्य उसका पिता उदयसिंह पहले ही खो चुका था और वह विशाल तथा शक्तिशाली राज्य अकबर बादशाह के शासन में था। प्रताप के अधिकार में पहले से कोई अच्छी सेना न थी। किसी राजपूत अथवा हिन्दू राजा की सहायता का विश्वास न था। जिनकी शक्तियाँ इस भयानक समय में सहायता कर सकती थीं, वे सभी प्रकार मुग़ल-सम्राट के हाथों में बिक चुके थे और उसको प्रसन्न करने के लिए वे प्रताप के अस्तित्व को मिटाने के लिए तैयार थे।

अपनी इस भीषण परिस्थिति से परिचित होने के बाद भी, प्रताप ने सम्राट की शक्तियों का सामना करने का साहस किया था। सब से अधिक उसको अपने आत्म-बल का भरोसा था। इस युद्ध के लिये प्रताप ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ सैनिक व्यवस्था की थी। बहुत-से वीर राजपूतों और कितने ही शूर-वीर सरदारों को साथ में लेकर, प्रताप ने पहाड़ के निवासी भयंकर लड़ाकू भीलों की एक अच्छी सेना तैयार कर ली थी। यह पहाड़ी भील राजस्थान के मूल निवासी थे और राजपूतों के बल-वैभव से भली भाँति परिचित थे। उनके ऊपर समय की परिस्थितियों का प्रभाव न था। राजपूताना में मुस्लिम शासन को देख कर वे जले-भुने बैठे थे। प्रताप के विद्रोह का झण्डा उठते ही देख कर वे भील बड़े प्रसन्न हुए थे और सभी प्रकार की सहायता देने के लिए उन्होंने राणा प्रताप को आश्वासन दिया था। बाणों के साथ युद्ध करने में ये भील उन दिनों में अत्यन्त भयंकर समझे जाते थे।

अकबर का राजनीतिक कौशल

मुग़ल-सम्राट अकबर के अनेक गुणों में राजनीतिक कौशल उसका एक प्रधान गुण था। अपने इसी गुण के कारण राज्य के विस्तार में उसको बहुत बड़ी सफलता मिली थी। शासक का शूर-वीर होना ही काफी नहीं होता। शत्रु को किसी भी तरीके से परास्त करना राजनीति का उद्देश्य है। अनेक स्थलों पर राजपूतों के परास्त होने का मुख्य कारण यही था कि उनमें राजनीतिक दूरदर्शिता का अभाव था।

अकबर शक्तिशाली शासक था और किसी प्रकार वह शत्रु को परास्त करना जानता था। अहमदाबाद को जीतने के बाद उसने अपने सेनापति भगवान दास, शाहकुली खाँ और लश्कर खाँ को अलग-अलग उनकी सेनाओं के साथ मेवाड़-राज्य के विभिन्न इलाकों में भेजा था। अकबर चाहता था कि हमारे प्रतिनिधि किसी प्रकार प्रताप को आत्म-समर्पण करने के लिए तैयार कर दें। यदि प्रताप इसके लिए तैयार हो जाता तो अकबर उसके पूर्वजों का राज्य लौटा देने के लिए तैयार था। इन सेनापतियों ने प्रताप को बदलने के लिए चेष्टायें कीं। लेकिन उनमें किसी को सफलता न मिली थी। प्रस्तावों के रूप में जितने भी प्रलोभन प्रताप के पास पहुँचे थे, उन सब को उसने ठुकरा दिया था। जिन हिन्दू राजाओं ने मुग़ल-सम्राट के सामने आत्म-समर्पण किया था, उनमें अम्बर का राजा मानसिंह प्रमुख था। उसने स्वयं आत्म-समर्पण किया था और अनेक स्वतन्त्रता-प्रिय तथा स्वाभिमानी हिन्दू राजाओं ने उसके कारण अकबर के सामने आत्म-समर्पण किया था।

प्रताप को मिलाने और मुग़ल-सम्राट की अधीनता में लाने के लिए जब अनेक हिन्दू और मुसलमान राजा तथा बादशाह

असफल हो चुके थे तो उस महान कार्य के लिए राजा मानसिंह ने अपने ऊपर उत्तरदायित्व लिया था। शोलापुर के युद्ध से लौट कर दिल्ली पहुँचने के पहले उसने कमलमेर में प्रताप से भेंट करने का जो इरादा किया था, उसका उद्देश्य यही था। उसने निश्चय किया था कि मैं प्रताप के यहाँ अतिथि होकर पहुँचूँगा और समय पाकर उसे अपने रास्ते पर ले आऊँगा। परन्तु आतिथ्य के साथ-साथ, उसके वहाँ पहुँचने का समस्त उद्देश्य संकट में पड़ गया और अपमान का इतना बड़ा बोझ उसके सिर पर लाद दिया गया कि उसे लौट कर मुग़ल राजधानी पहुँचना कठिन हो गया।

युद्ध की तैयारियाँ पूरी होने पर, विशाल मुग़ल सेना मेवाड़ की ओर रवाना हुई। सम्पूर्ण सेना का नेतृत्व अकबर बादशाह का बेटा—मुग़ल-साम्राज्य का उत्तराधिकारी सलीम के हाथों में था। उसके साथ, अपनी सेना को लेकर सेनापति मानसिंह और राणा प्रतापसिंह का सगा भाई शक्तसिंह—दोनों अपनी सेनाओं के साथ, प्रताप से युद्ध करने के लिए रवाना हुए।

अनेक हिन्दू और मुसलमान राजाओं और मुसलमान बादशाहों के साथ आयी हुई इस विशाल और शक्तिशाली मुग़ल सेना से युद्ध करने के लिए प्रताप के साथ केवल बाईस हजार सैनिक थे और सलीम की सेना राणा की सेना से बहुत बड़ी थी।

युद्ध-स्थल पर व्यूह-रचना

अपने विशाल सैनिक समूह को अकबर ने मेवाड़ की ओर रवाना किया। उसका अनुमान था कि प्रताप अपनी सेना को लेकर और पहाड़ों से निकल कर मैदान में आकर युद्ध करेगा। लेकिन प्रताप ने ऐसा नहीं किया। उसकी सेना तैयार होकर अरावली पर्वत के बाहरी प्रदेश की ओर बढ़ी। मुग़ल-सेना सलीम

के नेतृत्व में रवाना हुई थी और उसका सञ्चालन अन्य सेना-पतियों के साथ-साथ, सेनापति मानसिंह कर रहा था। मेवाड़-राज्य में प्रवेश करके उसने अपनी सेना को पहाड़ी किनारे से बहुत दूर रखने की चेष्टा की। वह चाहता था कि प्रताप अपनी सेना के साथ पहाड़ से उतर कर मैदान में आ जाय। इसीलिए उसने अपने आगे और पहाड़ों के बीच में एक बहुत बड़ा मैदान खाली रखा था। युद्ध के लिए रवाना होने के पहले ही प्रताप ने एक छोटी-सी सेना कमलमेर की रक्षा के लिए वहाँ पर छोड़ दी और बाकी सम्पूर्ण सेना को लेकर गोगुण्डा नामक स्थान से वह अरावली पर्वत के पश्चिम की ओर रवाना हुआ। हलदी घाटी के रास्ते पर पहुँच कर उसने अपनी सेना रोकी और वहाँ पर ठहर कर वह मानसिंह तथा मुग़ल सेना का रास्ता देखने लगा। हलदी घाटी का प्रसिद्ध युद्ध यहीं पर आरम्भ हुआ था। यह लड़ाई गोगुण्डा-युद्ध के नाम से भी इतिहास में प्रसिद्ध है। हलदी घाटी का यह संग्राम, कामनूर ग्राम के मैदान में हुआ था। यह ग्राम हलदी घाटी के निकट गोगुण्डा जिले में था।

सन् १५७६ ईसवी की २० जून को युद्ध के मैदान में दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। सेनापति मानसिंह ने अपने चाचा जगन्नाथ तथा गयासुद्दीन और आसफ खाँ—दोनों सरदारों को उनकी मजबूत सेनाओं के साथ मुग़ल-सेना के सब से आगे खड़ा किया। सैयद हासिम, सैयद अहमद, और सैयद राजू की सेनायें मुग़ल-सेना के दाहिने और गाजी खाँ तथा लम्बकर्ण अपनी सेनाओं के साथ बाईं ओर मौजूद थे। अपनी शक्तिशाली राजपूत सेना के साथ मानसिंह स्वयं मुग़ल सेना के मध्य भाग में खड़ा हुआ। उसके निकट—मुग़ल सेना के बीचो बीच अपने हाथी पर सलीम था। शक्तसिंह और माधवसिंह अपनी-अपनी सेनायें लेकर सलीम और मानसिंह के दाहिने और बायें खड़े हुए। युद्ध-

क्षेत्र के लड़ाकू हाथियों का सञ्चालन हुसेन खाँ के अधिकार में था, वह अपने हाथियों के साथ मानसिंह के आगे मोर्चे पर डटा था। सब से पीछे बोनस नदी के समीप एक सुरक्षित सेना मेहतार खाँ के नेतृत्व में उपस्थित थी।

हलदी घाटी के जिस तंग स्थान पर प्रतापसिंह ने अपनी सेना लगा रखी थी, उसके दाहिने और बायें ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष खड़े थे। उस स्थान के एक ऊँचे शिखर पर मुग़ल-सेना पर बाणों की वर्षा करने के लिए शूर-वीर धनुर्धारी भीलों की सेना थी। उन भीलों ने पत्थरों के टुकड़ों को एकत्रित करके अपने समीप बहुत बड़े-बड़े ढेर लगा दिये थे, जिनसे आवश्यकता पड़ने पर शत्रुओं पर भयानक मार की जा सके। राणा की बाईं ओर हाकिम खाँ सूर के नेतृत्व में पठानों की सेना खड़ी की गई थी और एक दूसरी राजपूत सेना राणा के दाहिनी ओर थी, जिसका नेतृत्व वीर जयमलसिंह का बेटा रामदास कर रहा था। उसके पीछे ग्वालियर का शासक रामशाह अपने लश्कर के साथ मौजूद था और उसके तीनों लड़के—शालिवाहन, भानुसिंह और प्रताप बहादुर राजपूत सेनाओं के साथ युद्ध करने के लिए वहाँ पर आये थे। राणा की सेना में बाईं ओर की रक्षा का भार झाला के सरदार मन्नासिंह के ऊपर था। कई एक शूर-वीर राजपूत सरदारों के बीच में राणा प्रताप उपस्थित होकर युद्ध के आरम्भ होने की प्रतीक्षा कर रहा था।

युद्ध का प्रारम्भ

व्यूह-रचना के पश्चात् दोनों ओर की सेनायें युद्ध के लिए तैयार हो चुकी थीं। मानसिंह मुग़ल-सेना के बीच में खड़े होकर राणा की सेना की ओर सावधानी के साथ देख रहा था। इसी अवसर पर राजपूतों की ओर से मुग़ल-सेना पर आक्रमण हुआ

और हाकिम खाँ के आदेश देते ही उसकी पठान सेना ने सैयद हसीम की सेना पर आक्रमण किया। इसके बाद तुरन्त दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया। दाहिनी ओर से रामशाह ने राय लम्बकर्ण के साथ मार-काट आरम्भ कर दी और राणा प्रताप ने गाजी खाँ पर आक्रमण किया।

युद्ध आरम्भ होने के कुछ समय बाद तक सैयद बन्धुओं की सेनाओं ने भयानक मार की। लेकिन हसीम खाँ की पठान-सेना ने उनको आगे नहीं बढ़ने दिया। रामशाह की सेना ने उस समय इतनी भीषण मार की कि लम्बकर्ण और उसकी सेना बहुत दूर तक पीछे हट गई और उसने राजपूत सैनिकों को आगे बढ़ने के लिए रास्ता दे दिया। लम्बकर्ण स्वयं पीछे हटा और अपनी सेना की दाहिनी ओर उसने जाकर शरण ली। उसके सामने राजपूतों को आगे बढ़ते देख कर कुछ समय के लिए मुग़ल-सेना में एक साथ भय और भ्रम उत्पन्न हुआ। परन्तु उस समय गाजी खाँ ने युद्ध की परिस्थिति को सम्हालने में बहुत बड़ा काम किया। मुग़ल-सेना ने प्रोत्साहन पाकर भयानक मार शुरू कर दी।

बहुत समय तक दोनों ओर से भीषण मारकाट होती रही। मुग़ल-सेना की संख्या अधिक थी, लेकिन अपने साहस और शौर्य के कारण राणा की राजपूत सेना निर्भीक होकर युद्ध कर रही थी। गाजी खाँ का सामना राणा प्रताप स्वयं कर रहा था और गाजी खाँ अपनी पूरी ताकत को लगा कर राणा को पीछे हटाने की कोशिश में था। उसने बार-बार अपनी सेना को ललकारा और कई बार उसने जोरदार आक्रमण राणा की सेना पर किये। राणा ने उसके हमलों को रोका और समय पाते ही उसने अपने घोड़े को बढ़ा कर गाजी खाँ पर आक्रमण किया। गाजी खाँ ने भागने की चेष्टा की, लेकिन उसकी पीठ पर प्रताप का भाला लगा और वह घायल होकर युद्ध के मैदान से प्राण बचा कर भाग गया।

युद्ध की गम्भीरता

गाजी खाँ के युद्ध से भागते ही मुग़ल-सेना की परिस्थिति फिर बिगड़ने लगी। मुग़ल सैनिक एक बड़ी संख्या में पीछे हटने लगे। उसी समय राजपूतों ने आगे बढ़ कर मुग़लों पर भयानक आक्रमण किया, जिससे बहुत-से मुग़ल सैनिक युद्ध के मैदान से भागे और बोनस नदी में कूद कर उन्होंने बड़ी तेजी के साथ उसको पार किया। भागते हुए उन्होंने एक बार भी पीछे की ओर नहीं देखा और बोनस की दूसरी तरफ दूर जा कर उन्होंने साँस ली। रामशाह की राजपूत सेना की मार के कारण, मुग़ल-सेना के साथ की राजपूत सेनाओं के साहस टूटने लगे और कुछ ही समय में उन्होंने भी मैदान से भागना शुरू कर दिया।

मुग़ल-सेना की यह अवस्था देखकर आसफ़ खाँ अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा और युद्ध की परिस्थिति को बदलने के लिए राजपूतों पर उसने जोरदार आक्रमण किया। थोड़ी ही देर में युद्ध की परिस्थिति फिर बदल गयी। सैयद बंधु—सैयद अहमद, सैयद राजू और सैयद हासिम ने अपनी-अपनी सेनाओं को सम्हाल कर बड़ी दृढ़ता से काम लिया और युद्ध के उस भयानक अवसर पर उन तीनों ने बुद्धिमानी से काम लेकर मुग़ल-सेना के टूटते हुए धैर्य को मजबूत बनाने का काम किया। फिर भी राजपूतों की भयानक मार से मुगल-सेना भयभीत हो रही थी। समुद्र की भीषण लहरों के समान राजपूत सैनिकों के दल, मुगल-सेना की बाईं ओर मार करते हुए आगे बढ़ जाते थे और शत्रुओं की सेना को तितर-बितर कर देते थे। राजपूतों की यह वीरता आश्चर्यजनक थी। उस समय मुगल-सेना की परिस्थितियाँ अनिश्चित हो रही थीं। पर्वत के ऊँचे स्थानों से भीलों की बाण-वर्षा शत्रु-सेना को बार-बार पीछे हट जाने के लिए विवश कर देती

थी। जीवन का मोह छोड़ कर राणा की सेना के राजपूतों ने जो भयानक युद्ध किया, उसका कारण था। उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण हुआ था, उनकी मातृभूमि को दासता के बन्धन में जकड़ दिया गया था और उनकी सम्पत्ति को छीन कर शत्रुओं ने अपने अधिकार में कर लिया था। शत्रुओं के अत्याचारों ने राजपूतों को जीवनोत्सर्ग के लिए प्रेरणा दी थी और इसीलिए वे इस युद्ध में शत्रुओं का संहार करना चाहते थे। अथवा मर कर वे बलिदान हो जाना चाहते थे।

बिहारीमल का शूर-वीर पुत्र जगन्नाथ अपनी सेना के साथ सैयद बन्धुओं की सहायता कर रहा था। राणा की सेना के भयानक आक्रमण के समय भी वह अपने स्थान पर पहाड़ की तरह स्थिर बना रहा। उस भीषण मार-काट में रामदास मारा गया। चित्तौर पर होने वाले आक्रमण में उसके पिता ने अपने प्राणों की आहुति दी थी और हलदी घाटी के युद्ध में अपने पिता का अनुकरण करके रामदास ने अपनी मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए लड़कर अपने जीवन की भेंट दे दी।

मानसिंह की राजपूत सेना के साथ युद्ध करते हुए रामशाह ने जिस शौर्य का प्रदर्शन किया, उसका वर्णन शब्दों में सम्भव नहीं है। मानसिंह को परास्त करने के लिए वह कई बार आगे बढ़ा और अन्त में मारा गया। रामशाह के मारे जाने पर राणा प्रताप की शक्ति अधिक निर्बल हो गयी।

प्रताप ने अपने शक्तिशाली और विश्वासी चेतक घोड़े को आगे की ओर बढ़ाया और विजय अथवा मृत्यु का आलिङ्गन करने के लिए उसने निर्भीकता के साथ निश्चय किया। राणा प्रताप को आगे बढ़ते हुए देख कर उसके राजपूत सैनिक उत्तेजित हो उठे। अपने घोड़े को आगे बढ़ा कर प्रताप मानसिंह के सम्मुख पहुँच गया। राणा ने मानसिंह पर आक्रमण करने का निश्चय

किया था। लेकिन निकट जा कर उसने देखा कि मानसिंह के आस-पास मुगल-सेना ने घेरा डाल रखा है और उसके संरक्षण में खड़े हुए मानसिंह पर आक्रमण करने के लिए कोई रास्ता न था। जगन्नाथ के मुकाबिले में राणा की सेना का एक लड़ाकू सरदार रामदास मारा गया था, इसलिए राणा के राजपूत, जगन्नाथ को खतम करने में लगे थे। लेकिन वह बार-बार बच जाता था। दोनों ओर के इस भयानक संघर्ष में दोनों सेनायें आगे-पीछे हो जाती थीं। इन्हीं परिस्थितियों में राणा प्रताप ने अपना घोड़ा बढ़ा कर सलीम का सामना किया। मुगल सेनाओं के बीच में वह अपने हाथी पर था। प्रताप ने सलीम पर अपने भाले का आक्रमण किया। उससे सलीम के अंग-रक्षकों के टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसी समय प्रताप ने अपने घोड़े को फिर बढ़ाया। उसके घोड़े चेतक ने एड़ का संकेत पाते ही अपने आगे के दोनों पैरों को उठा कर उछाल मारी। उसके अगले दोनों पैर सलीम के हाथी के मस्तक पर पहुँच गये। प्रताप ने सलीम पर अपनी तलवार का भयानक वार किया। सलीम उससे बच गया। लेकिन वह तलवार उसके हौदे में लगी हुई लोहे की पत्तर से टकरा कर महावत के लगी और वह कट कर नीचे गिरते ही मर गया। महावत के गिरते ही सलीम का हाथी युद्ध-क्षेत्र से बाहर की ओर भागा। प्रताप ने सलीम का संहार करने के लिए उसका पीछा किया। राणा की राजपूत सेना पीछे रह गयी और वह सलीम को मारने के उद्देश्य से मुगल-सेना के बीच में पहुँच गया। यह देखते ही राजपूत आगे बढ़े। लेकिन मुगल-सेना ने प्रताप को चारों ओर से घेर लिया था। राजपूतों ने घेरे को तोड़ कर मुगल-सेना के साथ भीषण युद्ध आरम्भ किया। दोनों ओर की सेनायें उस स्थान पर केन्द्रित हो गईं। मुगल सेना के सरदार और सेनापति एक साथ प्रताप पर टूट पड़े। राणा की बची

हुई राजपूत सेना, प्रताप की रक्षा करने के लिए शत्रुओं के साथ संग्राम करने लगी।

नर-संहार का भयानक दृश्य

मुग़ल-सेना ने प्रताप का संहार करने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति को एकत्रित कर लिया और पूरी शक्ति लगाकर उसने राणा के सर्वनाश की चेष्टा की। प्रताप ने अद्भुत साहस और सामर्थ्य से काम लिया। दोनों ओर के सैनिकों में भीषण तलवारों की मार हो रही थी और राजपूत वीरों ने अपने प्राणों का मोह छोड़कर प्रताप को बचाने के लिए शत्रुओं पर आक्रमण किया था। इस भयंकर मार-काट में दोनों ओर के बहुत-से आदमी मारे गये। राजपूतों ने मुग़ल-सेना के घेरे को तोड़ दिया था और वे युद्ध करते हुए भीतर पहुँच गये थे। उस समय तलवारों की मार दोनों ओर से इतनी भयानक हो रही थी कि मुग़ल सैनिकों और सरदारों को राणा प्रताप का पहचान सकना कठिन हो रहा था। राणा के मस्तक पर मेवाड़ का राजछत्र लगा हुआ था। उस को देखकर शत्रु राणा को पहचान रहे थे और एक साथ आक्रमण करके वे उसे समाप्त करना चाहते थे। प्रताप के सामने अब भी किसी प्रकार का भय न था। वह अपने घोड़े पर बैठा हुआ शत्रुओं के साथ भयानक मार कर रहा था। विशाल शत्रु-सेना के सामने प्रताप का शक्तिशाली घोड़ा—चेतक अपने अद्भुत दृश्य का प्रदर्शन कर रहा था। उस विशाल शत्रु-सेना के बीच में प्रताप के सुरक्षित बने रहने का एक कारण चेतक का आश्चर्य-जनक दृश्य था। उसको देखकर उस समय मालूम होता था कि चेतक के सम्पूर्ण शरीर में विद्युत्-शक्ति काम कर रही है। उस घोड़े ने प्रताप की महान् शक्तियों को शत्रुओं के सामने अजेय बना दिया था। प्रताप को मारने के लिए सैकड़ों और सहस्रों तलवारें

एक साथ चल रही थीं और प्रताप ने चेतक की लगाम को दाँतों से दाब कर अपने दोनों हाथों से शत्रुओं पर तलवार चलाकर एक अभूत पूर्व दृश्य उपस्थित कर दिया था। राजपूतों ने प्रताप को बचाने में अपनी कोई शक्ति उठा न रखी थी। शत्रु-सेना की शक्ति बिशाल और विस्तृत थी। हलदी घाटी के इस युद्ध में अब तब बहुत-से राजपूत मारे जा चुके थे। जो शेष रह गये थे, उनकी संख्या, मुग़ल-सेना के सामने बहुत कम थी।

प्रताप के शरीर में तलवारों के छोटे-बड़े—सैकड़ों जख्म हो चुके थे और उनसे रक्त के फव्वारे छूट रहे थे। युद्ध की परिस्थिति बहुत भयानक हो चुकी थी और प्रत्येक अवस्था में प्रताप के प्राण संकट में पड़ गये थे। ऐसा मालूम हो रहा था कि अब अधिक समय तक प्रताप को शत्रुओं के सामने सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। इस भीषण परिस्थिति से प्रताप अपरिचित न था। युद्ध करते हुए राजपूत सैनिक इस भयानक अवस्था को खूब समझ रहे थे। ऐसा मालूम हो रहा था कि प्रताप के प्राणों की रक्षा का अब कोई उपाय बाकी नहीं है। यह दृश्य बराबर भयानक होता गया। शत्रु प्रताप को लगातार घेरते हुए चले आरहे थे और राणा प्रताप के दोनों हाथ मार करते-करते थक गये थे। राजपूत सैनिकों की संख्या लगातार कम होती जा रही थी। उस भीषण समय में प्रताप को अपने चारों ओर शत्रु-ही-शत्रु दिखायी दे रहे थे। उसके इस समय संकट का कारण बहुत-कुछ उसके मस्तक पर लगा हुआ मेवाड़ का राजछत्र था। उसी को लक्ष्य करके शत्रु-सेना की बाढ़ उसकी ओर आ रही थी। प्रताप के समस्त वस्त्र रक्त से भीग गये थे। युद्ध की यह भीषण परिस्थिति प्रताप के नेत्रों से छिपी न थी। इस भयानक संकट के समय राजपूत सेना के बीच में से उठी हुई एक आवाज सुनायी पड़ी—'राणा प्रताप की जय!' प्रताप ने भी इस आवाज को सुना।

आवाज के साथ ही साथ, झाला-राज्य का शूर-वीर सरदार मन्ना जी ने अपनी सेना के साथ मुग़ल-सेना के बीच में प्रवेश किया। उसने अपने भाले की नोक से प्रताप का राजछत्र उठाकर इतनी तेजी के साथ अपने मस्तक पर रखा कि शत्रुओं में किसी को कुछ समझने का अवसर न मिला। मन्ना जी ने अपने घोड़े को प्रताप के आगे ले जाकर, प्रताप को पीछे हट जाने का संकेत किया और वह स्वयं शत्रुओं से युद्ध करने लगा। प्रताप को मन्ना जी का उद्देश्य समझने में देर न लगी। वह अपने घोड़े पर बैठा हुआ राजपूत सेना के बीच से होकर बाहर निकल गया। शत्रुओं का घेरा बहुत संकीर्ण हो गया था। बाहर निकल कर प्रताप ने कुछ समय तक युद्ध की गति को देखा। शत्रुओं का दबाव बढ़ता गया और कुछ ही समय में झाला-नरेश मन्ना जी अपनी सेना के साथ युद्ध में मारा गया। प्रताप ने बाहर से ही देखा कि वीर श्रेष्ठ मन्ना जी ने कुछ समय तक शत्रुओं के सामने अपने युद्ध-कौशल का अद्भुत दृश्य दिखा कर प्राण दे दिये। मन्ना जी के इस बलिदान का अपूर्व दृश्य अपने नेत्रों से देखकर प्रताप वहाँ से रवाना हुआ। उस समय भी उसके समस्त शरीर से रक्त निकल कर गिर रहा था और भयानक जख्मों के कारण उसके चेतक की अवस्था भी अच्छी न थी।

शक्तसिंह का बन्धु-स्नेह

प्रताप के प्राणों की रक्षा करने के लिए जिस साहस और बहादुरी के साथ झाला-नरेश मन्ना ने अपने जीवन की आहुति दी, उसे राणा ने स्वयं अपने नेत्रों से देखा। उस समय उसके प्राण उबल रहे थे, परन्तु मन्ना की सहायता के लिए उसके पास कोई साधन न था। मन्ना के गिरते ही अपने साथ हृदय में एक अमिट पीड़ा को लेकर राणा प्रताप युद्ध-क्षेत्र से रवाना हुआ। उसी

समय युद्ध रुका और दोनों ओर के बचे हुए सैनिकों और सरदारों ने अपनी-अपनी सेनाओं को युद्ध-क्षेत्र से पीछे हटने की आज्ञायें दीं। युद्ध बन्द हो गया।

हलदी घाटी के इस युद्ध में राणा प्रताप के बाईस हजार सैनिकों और सरदारों में से चौदह हजार जान से मारे गये। इनमें पाँच सौ शूर-वीर योद्धा राणा प्रताप के निकटवर्ती सम्बन्धी थे। रामदास, रामशाह और उसके तीन युवा पुत्रों ने अपनी सेनाओं के साथ विशाल मुग़ल-सेना से युद्ध करते हुए प्राणोत्सर्ग किये। दोनों ओर के पाँच सौ से अधिक सेनाओं के अधिकारी और सरदार मारे गये। मुग़ल-सेना के मारे गये सैनिकों की संख्या और भी अधिक थी, जिसको इतिहासकारों ने निश्चित रूप से नहीं लिखा। उसका बहुत-कुछ कारण यह था कि युद्ध के लिए जो विशाल सेना सलीम के साथ आयी थी, उसके सिवा, मुग़लों की एक सुरक्षित सेना अलग से थी। युद्ध में जो मुग़ल-सैनिक और सरदार मारे जाते थे, उनके स्थानों की पूर्त्ति के लिए मुग़लों की सुरक्षित सेना के लोग पहुँच जाते थे।

युद्ध-क्षेत्र छोड़कर प्रताप अपने घोड़े पर दक्षिण की ओर रवाना हुआ था। जख्मों के कारण उसके शरीर की अवस्था अस्त-व्यस्त हो रही थी और यही दशा उसके घोड़े—चेतक की भी थी। रक्त से डूबे हुए वस्त्रों में प्रताप अपने घोड़े पर जा रहा था, उसने एकाएक घूमकर पीछे की ओर देखा, दो मुग़ल सवार कुछ फासिले से उसका पीछा करते हुए आ रहे थे। प्रताप का समस्त शरीर घायल और अत्यन्त थका हुआ था। उसके अनेक स्थानों से अविरल रक्तपात हो रहा था। वह कहीं निर्जन स्थान में पहुँच कर विश्राम करना चाहता था।

मुग़ल-सैनिकों को दूर से देखकर राणा प्रताप ने साहस और सावधानी से काम लिया। उसने घोड़े को एड़ लगायी। चेतक-

अपने गम्भीर घावों को भूल गया और प्रताप का संकेत पाते ही उसके शरीर में मानो बिजली का प्रवेश हुआ। वह तेजी के साथ रवाना हुआ। मुग़ल सैनिक पीछा करते हुए तेजी के साथ चले आ रहे थे।

ऊपर लिखा जा चुका है कि प्रताप का भाई शक्तसिंह भी हलदी घाटी के युद्ध में अकबर की ओर से प्रताप के साथ संग्राम करने के लिए आया था। राणा के राज-तिलक के बाद, कुछ आपसी कारणों से दोनों भाइयों में द्वेष उत्पन्न हो गया था, उसके परिणाम स्वरूप शक्तसिंह विद्रोही होकर अकबर के साथ जाकर मिल गया था और अकबर ने उसको अपने यहाँ आदर पूर्वक स्थान देकर अपनी सेना का उसे एक सरदार बना दिया था।

हलदी घाटी के युद्ध में अपने भाई प्रताप का शौर्य और पराक्रम देखकर शक्तसिंह की अवस्था विचलित हो उठी थी। वह शत्रु की ओर से अपने भाई को परास्त करने के लिए आया था और अकबर अपनी राजनीति के अनुसार, राणा प्रताप को उसके भाई के द्वारा परास्त कराना चाहता था, इसीलिए सलीम के साथ बहुत-से सरदारों और सेनापतियों के साथ शक्तसिंह को भी आना पड़ा था। परन्तु युद्ध के समय शक्तिशाली शक्तसिंह के हाथ और पैर काम न करते थे। सलीम की विशाल सेना के साथ खड़े होने पर उसका अन्तःकरण अस्थिर होने लगा था। यौवन के उन्माद में जीवन की एक कटुता लेकर अपनी जिस विवशता में वह अकबर से जाकर मिल गया था, उसे वह स्वयं जानता था। लेकिन अपने मजबूत हाथों में भीषण तलवार लेकर उसे स्वाभिमानी राजपूतों, सगे सम्बन्धियों और अपने भाई राणा प्रताप का संहार करना पड़ेगा, इसे उसने पहले से सोचा न था। युद्ध के समय शक्तसिंह के सम्मुख जो दृश्य उपस्थित

हुआ, उसका ज्ञान और अनुभव, हलदी घाटी के युद्ध में आने के पहले उसे न था। जिस समय दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ और एक, दूसरे का सर्वनाश करने के लिए जिस समय दोनों सेनाओं के शूर-वीरों ने अपने हाथों में भयंकर तलवारें निकालीं, उस समय मुग़ल सेना के बीच में खड़े हुए शक्तसिंह के स्वाभिमानी प्राण काँप उठे। आज उसकी शक्तिशाली तलवार प्रताप के विध्वंस का काम करेगी, इसे वह पहले से जानता न था। उसकी अवस्था अद्भुत हो उठी। युद्ध प्रारम्भ हुआ और भयंकर मार-काट में दिन का बहुत बड़ा भाग समाप्त हो गया। सैनिकों और सरदारों के शरीरों से निकले हुए रक्त के कितने ही नाले बहे। सम्मान, स्वाभिमान और स्वाधीनता की रक्षा के लिए चौदह हजार राजपूतों ने अपने प्राणों की आहुतियाँ दे दीं। शक्तिशाली शक्तसिंह उस समय भी किंकर्त्तव्य विमूढ़ था। सलीम पर आक्रमण करने के बाद विशाल मुग़ल-सेना ने प्रताप को चारों ओर से घेर लिया और प्रताप के प्राण अन्त में संकट में पड़ गये। उस समय भी शक्तसिंह अन्यमनस्क था। प्रताप के मारे जाने में अधिक समय बाकी न था, उसी समय शूर-वीर सरदार मन्ना ने आकर प्रताप के प्राणों की रक्षा की थी और उसने अपने प्राण दे दिये। यह भयानक दृश्य भी शक्तसिंह ने अपने घोड़े पर बैठे हुए प्रस्तर के समान अस्थिर और अचल होकर देखा। युद्ध-क्षेत्र से प्रताप के रवाना होते ही मुग़ल-सेना के दो खूँख्वार सैनिकों ने प्रताप का पीछा किया। शक्तसिंह के नेत्र इस घटना को सावधानी के साथ देख रहे थे। उसने समझ लिया कि अब घायल प्रतापसिंह का इन सैनिकों से बचना असम्भव है। उसके हृदय का बन्धु-स्नेह विगलित हो चुका था। वह अब भाई के संहार को देखने के लिए तैयार न था। अपने जीवन के समस्त बन्धनों और संकटों की उपेक्षा करके शक्तसिंह

ने उन दोनों मुग़ल सैनिकों के पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया और वहाँ से बहुत दूर जाकर उसने उन दोनों सैनिकों को घेर कर अपनी तलवार से उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

उन दोनों को मार कर शक्तसिंह अपने घोड़े पर आगे बढ़ा। उसने राजस्थानी भाषा में प्रताप को सम्बोधन किया। आवाज पहचान कर प्रताप अपने घोड़े से उतर पड़ा। लगातार रक्त के निकलने से चेतक का जीवन समाप्त हो रहा था। प्रताप के उतरते ही चेतक गिर गया और उसके प्राण निकल गये। दूर से ही प्रताप ने शक्तसिंह को देखा। उसके हृदय में शक्तसिंह के सम्बन्ध में कुछ सन्देह पैदा हुआ। शक्तसिंह ने भाई के इस सन्देह का अनुमान लगा कर अपने हाथ की तलवार एक ओर फेंक दी और अपने घोड़े को एक पेड़ से बाँध कर वह प्रताप की तरफ़ चला। समीप पहुँच कर वह प्रताप के पैरों पर गिर पड़ा और फूट-फूट कर रोने लगा। 'मैं अपराधी हूँ, मुझे क्षमा करो।' इसके सिवा शक्तसिंह के मुँह से कुछ न निकला।

प्रताप ने शक्तसिंह को उठा कर छाती से लगा लिया। दोनों भाई कुछ देर तक अश्रुपात करते रहे। अन्त में दोनों भाइयों ने भूमि पर पड़े हुए चेतक की ओर देखा। अनेक वर्षों से उस घोड़े ने जिस प्रकार प्रताप की युद्धों में रक्षा की थी, वे सभी दृश्य प्रताप को एक-एक करके याद आने लगे। अधिक समय तक वहाँ रुकना उचित न समझ कर शक्तसिंह ने अपना घोड़ा देकर प्रताप को वहाँ से रवाना किया और वहाँ से लौट कर शक्तसिंह ने मारे गये मुग़ल-सैनिकों का एक घोड़ा लेकर वह हलदी घाटी की ओर लौटा। सलीम के पास पहुँचने में उसे बहुत समय लग गया था, इसलिए सलीम को उस पर अनेक सन्देह पैदा हुए। शक्तसिंह ने उसे विश्वास देने की चेष्टा की परन्तु सलीम को सन्तोष न हुआ

और उसने अन्त में शक्तसिंह को मुगल-सेना से चले जाने की आज्ञा दे दी।

सलीम के इस आदेश से शक्तसिंह बहुत प्रसन्न हुआ। वह यही चाहता था। अकबर का सहयोग छोड़ कर बहुत शीघ्र चले आने के लिए उसने प्रताप को विश्वास दिलाया था। शक्तसिंह के साथ कुछ राजपूतों की एक छोटी-सी सेना थी। अपनी उस सेना को लेकर शक्तसिंह वहाँ से रवाना हो गया।

उदयपुर पहुँच कर शक्तसिंह प्रताप से मिला और उसके बाद उसने भिंसरोर के दुर्ग पर आक्रमण किया। उसे जीत कर शक्त-सिंह ने प्रताप को सौंप दिया। भाई के इस सद्व्यवहार का बदला देने के लिए प्रताप ने वह दुर्ग शक्तसिंह को दे कर, उसे उसका अधिकारी बना दिया।

प्रताप का संकल्प

हलदी घाटी का युद्ध समाप्त करके सलीम अपनी सेना के साथ दिल्ली चला गया। वर्षा के दिन आ गये थे, नदियाँ भर गयीं। पहाड़ी रास्ते जंगली हो गये और आने-जाने के मार्ग चारों ओर जलमय हो गये। इन कारणों से मुगल सेना को आक्रमण करने का अवसर न रहा। इन दिनों में राणा प्रताप ने कुछ समय तक विश्राम किया। लेकिन उससे यह बात छिपी न थी कि वर्षा-काल समाप्त होते ही मुगल-सेना का आक्रमण होगा और इसी बची हुई छोटी-सी सेना से उस विशाल और शक्तिशाली सेना का किसी प्रकार सामना नहीं किया जा सकता। फिर भी प्रताप ने शत्रु के सामने मस्तक झुकाना स्वीकार नहीं किया और अपने हृदय में उसने निश्चय किया कि जब तक प्राण रहेंगे, शत्रु के साथ युद्ध करके उसे शान्ति से बैठने न दूँगा। आत्म-समर्पण करने की अपेक्षा विष-पान करके मर जाना अधिक अच्छा है।

मुग़ल-सेना के आक्रमण

प्रताप का जैसा अनुमान था, बरसात समाप्त होते ही एक विशाल मुग़ल सेना ने प्रताप के विरुद्ध आक्रमण किया। राणा प्रताप को उदयपुर छोड़कर कमलमेर चला जाना पड़ा। मुग़ल सेना ने वहाँ पर भी आक्रमण किया। कुछ समय तक युद्ध करके राणा प्रताप को वहाँ से चौंड़ नामक पहाड़ी दुर्ग पर चला जाना पड़ा। परन्तु वहाँ पर राणा का अधिक समय रह सकना सम्भव न हुआ। कमलमेर घेरे जाने पर मानसिंह ने धरमेती और गोगुण्डा नामक पहाड़ी दुर्गों पर अधिकार कर लिया। इन्हीं दिनों में अकबर के सेनापति मुहब्बत खाँ ने उदयपुर में अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी। पहाड़ी भीलों के साथ प्रताप का जो सम्बन्ध चल रहा था और जिनके बल पर उसने इतने बड़े युद्ध की नींव डाली थी, कुछ मुग़लों ने उस सम्बन्ध को छिन्न-भिन्न कर दिया था। फरीद खाँ नामक मुग़ल सेनापति ने चप्पन को घेर लिया था और उसके बाद वह दक्षिण की ओर बहुत दूर तक आगे बढ़ गया था। उन दिनों में चौंड़ नामक स्थान पर प्रताप का मुकाम था। उसके आस-पास तक शत्रु की सेना पहुँच गयी थी।

प्रताप चारों ओर से संकटों में फँस गया था। उसके रहने के लिए अब कोई ऐसा सुरक्षित स्थान बाकी न था, जहाँ पर प्रताप अपने परिवार और साथियों के साथ ठहर सकता। जिन पहाड़ी स्थानों का उसने पहले से भरोसा किया था, वे सब शत्रु के अधिकारों में पहुँच गये थे। पर्वत के जिस स्थान पर वह पहुँचता था, वहीं पर पीछा करते हुए शत्रु की सेना दिखाई पड़ती थी। मुग़ल-सेनाओं ने चारों ओर से उन पहाड़ी स्थानों को घेरने की कोशिश की और अनेक बार वे प्रताप के इतने निकट पहुँच गयी, जिससे राणा के पकड़े जाने में कोई सन्देह न रह गया था।

लेकिन बार-बार वह शत्रुओं के बीच से होकर मार-काट करता हुआ निकल गया और शत्रु उसको पकड़ सकने में समर्थ न हो सके। यद्यपि इन दिनों में प्रताप की कठिनाइयाँ बहुत अधिक हो गयी थीं और उसे अपने परिवार और साथियों के साथ नित्य एक नया पहाड़ी जंगल खोजना पड़ता था। मुग़ल-आक्रमणकारियों ने उसके लिए कोई सुरक्षित स्थान बाकी न रखा था। कभी-कभी तो किसी स्थान पर पहुँचने के बाद ही उसे तुरन्त छोड़ देना पड़ता था और पहाड़ी जंगलों से निकल कर उसे दूर चला जाना पड़ता था। इन भयानक परिस्थितियों में कभी-कभी मुग़ल-सेना के साथ प्रताप का संघर्ष हो जाता था और अपने थोड़े-से आदमियों के साथ वह शत्रु के सैकड़ों हजारों सैनिकों को मार-काट कर निकल जाता था। वह प्रायः अपने सामन्तों और सरदारों के साथ पहाड़ के किसी ऊँचे शिखर पर बैठ कर परामर्श किया करता था। उस समय वह देखा करता था कि शत्रु के सैनिक किसी सेनापति के नेतृत्व में पहाड़ के ऊपर जंगलों में घूम-घूम कर पता लगाने और आक्रमण करने की चेष्टा कर रहे हैं। इस प्रकार के आक्रमणों, संघर्षों और युद्धों में प्रताप के कितने ही वर्ष बीत गये। लेकिन वह शत्रुओं से बराबर सुरक्षित बना रहा। चौंड़ नगर को घेर कर सेनापति फ़रीद खाँ ने प्रताप को पकड़ लेने की पूरी कोशिश की थी और इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रताप और उसके साथ के सैनिक तथा सरदार भीषण संकट में पड़ गये थे। परन्तु वह संकट फ़रीद खाँ के लिए स्वयं काल हो गया। पर्वत के ऊपर जिस छोटे-से जंगली मार्ग में फ़रीद खाँ ने प्रताप को घेर लिया था, उसमें मार्ग की परिस्थितियों से अनभिज्ञ होने के कारण बहुत संख्या में मुग़ल सैनिक मारे गये और प्रताप तथा उसके सरदार शत्रुओं को मार-काट कर निकल गये।

प्रताप का टूटता हुआ साहस

इन संकट पूर्ण परिस्थितियों में एक-एक करके प्रताप के कितने ही वर्ष बीत गये। उसके जितने आश्रय स्थान बाकी रह गये थे, अब वे भी शत्रु के अधिकार में चले गये थे। जीवन के इन भयानक दिनों में अपने परिवार के कारण प्रताप की कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गयी थीं और अन्त में परिवार ही उसकी चिंता का कारण बन गया। कोई ऐसा स्थान उसके सामने न था, जहाँ पर वह अपने परिवार को रख सकता। न उसके खाने-पीने का ठिकाना था और न ठहरने का। प्रताप की अनुपस्थिति में एक बार उसका परिवार शत्रुओं के हाथों में पड़ गया था। लेकिन बहादुर भीलों ने अपने प्राणों का मोह छोड़कर उसके परिवार की रक्षा की थी। कई-कई दिन बीत जाते थे लेकिन परिवार के बच्चों कों रूखा-सूखा भोजन न मिलता था। बार-बार पहाड़ के हिंसक जन्तुओं का संकट पैदा होता था। कई-कई दिनों के भूखे प्यासे बच्चों को देखकर प्रताप प्रायः घबरा उठता और इसी प्रकार की परिस्थितियों में उसने अपना साहस तोड़ कर मुग़ल-सम्राट अकबर के सामने आत्म-समर्पण करने का निश्चय किया। लेकिन बीकानेर के राजा रायसिंह के भाई पृथ्वीराज के पत्र को पढ़कर उसका फिर स्वाभिमान जागृत हुआ। उसने अपने टूटते हुए साहस को सम्हाला और मुग़ल-सम्राट से फिर युद्ध करने का उसने निश्चय किया।

देबीर का युद्ध

भगवान स्वयं वीरात्माओं के संकल्प की रक्षा करता है। प्रताप ने फिर एक बार अकबर के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। उसने अपने सरदारों से परामर्श किया और अपनी सेना

के राजपूतों को एकत्रित करके वह अरावली पहाड़ से उतर कर मरुभूमि के एक प्रदेश में पहुँचा। उस समय मेवाड़ राज्य के विश्वासी मन्त्री भामाशाह ने अपने साथ विपुल सम्पत्ति लाकर प्रताप को भेंट की। वह सम्पत्ति इतनी अधिक थी कि उसके द्वारा, पचीस हजार सेना का व्यय बारह वर्ष तक पूरा हो सकता था। उन्हीं दिनों में प्रताप पर फिर आक्रमण करने के लिए मुग़ल-सेनापति शहबाज खाँ एक बड़ी सेना के साथ दिल्ली से रवाना हुआ था और वह देबीर नामक स्थान में पड़ा था। प्रताप ने साहस के साथ फिर अपनी सेना का संगठन किया और देबीर में पहुँच कर मुग़ल-सेना पर आक्रमण किया। दोनों सेनाओं में भयानक युद्ध हुआ। राजपूतों ने मुग़ल सेना का भीषण संहार किया और सेनापति शहबाज खाँ स्वयं प्रताप के हाथों से मारा गया। बहुत थोड़े मुग़ल-सैनिक वहाँ से भाग कर अपने प्राण बचा सके।

प्रताप की विजय

राणा प्रताप को गिरफ्तार करने के लिए मुग़ल-सेनाओं का चारों ओर जाल फैला हुआ था। देबीर के युद्ध में जो मुग़ल-सैनिक मैदान से भागे थे, वे आमैत नामक स्थान को चले गये थे और वे वहाँ पहुँच कर उस मुग़ल-सेना में शामिल हो गये, जो कुछ समय से प्रताप की खोज में वहाँ पर पड़ी हुई थी। राणा प्रताप को उस मुग़ल-सेना के सम्बन्ध में मालूम हुआ। वह तुरन्त अपने राजपूतों के साथ रवाना हुआ और वहाँ पहुँच कर मुग़ल-सेना पर भयानक आक्रमण किया और सम्पूर्ण सेना का संहार कर डाला। वहाँ से भागकर एक भी मुग़ल-सैनिक कहीं जा न सका।

राणा प्रताप के साथ लगातार मुग़ल-सेनाओं की पराजय के

समाचार मुग़ल-सम्राट को मिले। इसलिए प्रताप को परास्त करने के लिए जोरदार सेना की तैयारी की गयी। उन दिनों में प्रताप को कैद करने के लिए मुग़लों की एक बड़ी सेना अब्दुल्ला के नेतृत्व में कमलमेर में पहुँची। प्रताप उसके साथ युद्ध करने के लिए रवाना हुआ और कमलमेर पहुँच कर उसकी राजपूत सेना ने मुग़ल-सेना के साथ भयानक युद्ध किया। अन्त में अब्दुल्ला मारा गया और मुग़ल-सेना के बहुत-से सैनिकों का संहार हुआ। जो बचे, वे किसी प्रकार भागकर अपने प्राणों की रक्षा कर सके।

भामाशाह के पूर्वज प्राचीन काल से मेवाड़-राज्य के मन्त्री होते आये थे और भामाशाह भी उसी पद पर राज्य के अन्तिम दिनों तक रहा था। राज्य की स्वतन्त्रता के युद्ध में पूर्वजों की चिरसंचित समस्त सम्पत्ति को अर्पण करके राज्य की सहायता करना उसने अपना कर्त्तव्य समझा था। उसकी दी हुई सम्पत्ति इन दिनों में राणा प्रताप की एक अटूट शक्ति बन गयी थी। बहुत वर्षों से प्रताप और उसकी सेना के सैनिक तथा सरदार भयङ्कर आर्थिक सङ्कटों का सामना कर रहे थे। यदि प्रताप को इस प्रकार की सहायतायें पहले मिली होतीं तो उसने सम्राट अकबर के साथ युद्ध में कुछ दूसरे ही दृश्य उपस्थित किये होते।

इस मिली हुई सम्पत्ति से प्रताप ने एक शक्तिशाली राजपूत सेना का संगठन कर लिया था। उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने की उसने पूरी व्यवस्था कर दी थी। उसके बाद प्रताप ने लगातार मुग़ल-सेनाओं को पराजित किया और एक-एक करके मुग़ल सम्राट के ३२ क़िलों पर उसने अधिकार कर लिया। इन्हीं दिनों में प्रताप ने चित्तौर, अजमेर और मण्डलगढ़ को छोड़कर, मेवाड़ का सम्पूर्ण राज्य मुगलों से छीन लिया। जिन मानसिंह ने राणा का विनाश करने में कोई बात उठा न रखी थी, प्रताप ने उसी मानसिंह के अम्बेर राज्य पर आक्रमण किया

और उसके अनेक हरे-भरे स्थानों को मिट्टी में मिला दिया। मानसिंह के विद्वेष का इस प्रकार बदला देकर प्रताप ने अपने हृदय में सन्तोष अनुभव किया और अन्त में उदयपुर पर भी उसने अधिकार कर लिया।

राजपूतों के गौरव का सूर्यास्त

राणा प्रताप का गौरव भारत के राजपूतों का अन्तिम गौरव था। अपनी छिन्न-भिन्न और दुर्बल शक्तियों में उसने जिस प्रकार भीषण कठिनाइयों और असह्य विपदाओं को सहन कर सम्मान, स्वाभिमान और स्वाधीनता का युद्ध जारी रखा, उसे देखकर सम्राट अकबर ने सदा के लिए प्रताप के साथ युद्ध करना बन्द कर दिया। अकबर के अनेक गुणों में एक गुण यह भी था कि वह जातीयता के भेद-भाव को भूल कर स्वाभिमानी शूर-वीरों का सत्कार करना जानता था। उसका यह गुण, उसके शौर्य और ऊँचे गौरव का प्रमाण देता है। जिन राजपूत राजाओं ने उसके सामने आत्म-समर्पण किया था, उनकी अपेक्षा, उसके हृदय में राणा प्रताप के लिए अधिक सम्मान था। वह प्रायः प्रताप की प्रशंसा किया करता था।

सन् १५९७ ईसवी में पचपन वर्ष की अवस्था में राणा प्रताप की मृत्यु हो गयी। मरने के समय उसके अन्तःकरण में एक पीड़ा थी। वह जानता था कि मेरा पुत्र अमरसिंह मेरे बाद, राजपूतों के गौरव की रक्षा न कर सकेगा। वह विलासी है और विलासी मनुष्य आत्म-सम्मान तथा स्वाभिमान का महत्व नहीं जानता।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

सिंहगढ़ का समर

[१६७० ईसवी]

दक्षिणी भारत के राज्य, अलाउद्दीन की चालें, विजयनगर में हिन्दू शासन का अन्त, शिवाजी की किलेबन्दी, संघर्ष और युद्ध, अफ़ज़ल खाँ और शिवाजी, मुग़लों के साथ युद्ध में शिवाजी की विजय।

भारत के दक्षिणी राज्य

भारत के दक्षिण में भी अनेक हिन्दुओं का राज्य था। इस देश में होने वाले बाहरी आक्रमणों से वहाँ के राज्य बहुत समय तक सुरक्षित रहे और तेरहवीं शताब्दी के लगभग अन्तिम दिनों तक वहाँ के राजाओं ने स्वतन्त्रता के साथ अपने-अपने राज्यों का शासन किया। परन्तु द्वेष और ईर्षा के कीटाणु उनके जीवन में भी बहुत पहले से प्रवेश कर चुके थे, जिनके कारण वे स्वयं एक, दूसरे के शत्रु हो गये थे।

सन् १२९० ईसवी में जलालुद्दीन खिलजी बुढ़ापे की अवस्था में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था। वह स्वभाव का अत्यन्त सरल और दयालु था। उसके राज्य में सदा अशान्ति और अव्य-वस्था बनी रही। सरलता, दयालुता और धार्मिकता शासक को निर्बल बना देती है। इस प्रकार के राजा के शासन में अराजकता की वृद्धि हो जाती है। जलालुद्दीन के साम्राज्य की भी यही अवस्था

हो गयी थी। उसके सगे और सम्बन्धी भी उसके मिटाने का प्रयत्न करते रहे। अपनी इन कमजोरियों से घबरा कर उसने अपने भतीजे अलाउद्दीन खिलजी को कड़ा का अधिकारी बना दिया और दो वर्षों के पश्चात् उसने अवध का शासन भी उसी को सौंप दिया।

अलाउद्दीन स्वयं एक महत्वाकाँक्षी, स्वार्थी, उत्साही और आशावादी युवक था। उसने अपने चाचा जलालुद्दीन को निर्बल और वृद्ध समझ कर सम्राट बनने का इरादा किया। लेकिन इसके लिए सब से पहले उसको सम्पत्ति की आवश्यकता थी। इसलिए उसने सन् १२९३ ईसवी में भिलसा और चन्देरी में मन-मानी लूट की और उसके बाद वह दक्षिण की ओर रवाना हुआ।

देवगिरि में आक्रमण

अलाउद्दीन अवसरवादी और राजनीतिज्ञ था। उसे मालूम था कि दक्षिण के राज्य अभी तक सुरक्षित हैं और उनके पास अपरिमित सम्पत्ति है। उसे यह भी मालूम था कि दक्षिणी भारत में जो हिन्दुओं के राज्य हैं, उनमें परस्पर ईर्षा और वैमनस्य है। वे स्वयं निर्बल, आलसी और विलासी हैं। उनकी अपार सम्पत्ति ने इतना ही नहीं किया था, बल्कि जीवन के अनेक अवगुणों के साथ, उनमें जो ईर्षा की आग ज्वल रही थी, उसको उसने अत्यन्त भयानक बना दिया था। इस अवसर का लाभ उठाने के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने सन् १२९४ ईसवी में अपने साथ आठ हजार अश्वारोही सेना लेकर दक्षिण के देवगिरि-राज्य पर आक्रमण किया। वहाँ के शासक रामदेव को परास्त करके उसने लूट-मार के बाद सन्धि कर ली और वहाँ से दिल्ली लौट कर अपने चाचा जलालुद्दीन को मार कर वह दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया।

दक्षिण की लूट

भारत के दक्षिणी राज्य अलाउद्दीन के पहले तक बाहरी हमलों से सुरक्षित थे, वे अब अलाउद्दीन के लगातार आक्रमणों से अक्रान्त हो उठे। देवगिरि को परास्त करने के बाद, दक्षिणी राज्यों पर आक्रमण कर देना अलाउद्दीन के लिए बहुत सरल हो गया। उसने वहाँ पर भयानक लूट-मार की। मन्दिरों, तीर्थ स्थानों और राजाओं की लूट से उसने दिल्ली का खजाना भर दिया। सन् १३४७ ईसवी में गुजरात और देवगिरि में विद्रोह हुए और उनके अन्त में हसनगंगू नामक एक अफ़ग़ान योद्धा देवगिरि का सुलतान हो गया। इसी वर्ष भारत के दक्षिण में बहमनी राज्य की नींव पड़ी।

ताली कोट का संग्राम

सन् १३३५ ईसवी में हरिहर और बुक्काराय नामक दो राजपूत भाइयों ने विजय नगर-राज्य की स्थापना की थी। आरम्भ से ही बहमनी राज्य के साथ उसकी शत्रुता पैदा हो गयी थी और उसका परिणाम यह हुआ था कि विजयनगर की सीमा उत्तर की ओर बढ़ाई न जा सकी। सदाशिवराव के शासन-काल में विजयनगर की अवस्था निर्बल हो गयी थी। राजा स्वयं विलासी और आलसी था। उन दिनों में बहमनी राज्य बरार, बीजापुर, अहमदनगर, बीदर और गोलकुण्डा नामक पाँच मुस्लिम राज्यों में विभक्त हो गया था। सन् १५६५ ईसवी में इन पाँचों मुस्लिम राज्यों के सुलतानों ने मिलकर विजयनगर पर आक्रमण किया। राजा सदाशिव राव ने अपनी सेना ले कर उनका सामना किया। बीजापुर और रायचूर के बीच ताली कोट के मैदान में दोनों ओर की सेनाओं का युद्ध हुआ। अन्त में सदाशिव राव की

पराजय हुई। मुसलमान सैनिकों ने उस राज्य में भयानक लूट-मार की। राज्य के बहुत-से निर्दोष स्त्री-पुरुष और बच्चे जान से मारे गये। अभी तक दक्षिण भारत में जो युद्ध हुए थे, उनमें ताली कोट का संग्राम सब से भयानक था। इस लड़ाई के पश्चात् विजयनगर से हिन्दू शासन का अस्तित्व मिट गया।

भोंसला वंश की प्रतिष्ठा

राजपूताने का सीसोदिया वंश बहुत पुराना वंश था। दिल्ली में जब पठानों का शासन था, शिवराम जी नामक एक राजपूत ने सीसोदिया वंश में जन्म लिया था। मुसलमानों के भयानक आक्रमणों से भयभीत होकर, शिवराम जी का वंशज कर्णखेल राजपूताना को छोड़कर दौलताबाद के निकटवर्ती बेरुला नामक ग्राम के भोंसला दुर्ग में जाकर बसा था। उसके बाद, उसके वंशज भोंसले कहलाये। इसी भोंसला वंश में शम्भा जी ने सन् १५३१ ईसवी में जन्म लिया था। उस समय उसके पूर्वजों के अधिकार में तीन-चार ग्राम थे, जिनसे उनका साधारण जीवन व्यतीत होता था। शाह जी शम्भा जी का वंशज था। उसके पिता का नाम मल्ल जी था।

मुग़ल-सम्राट अकबर ने सन् १५६२ ईसवी में खानदेश का राज्य जीत लिया था। उत्तर भारत के झगड़ों से छुटकारा पाते ही अकबर का ध्यान दक्षिण की ओर गया। उसने अहमदनगर पर आक्रमण किया। अहमदनगर का पतन हुआ। लेकिन संघर्ष का अन्त न हुआ। दीनदयाल को दक्षिण का सूबेदार बनाया गया और अहमदनगर के युद्ध में अकबर स्वयं लड़ने के लिए गया। अहमदनगर का फिर पतन हुआ और वहाँ का नवाब कैद करके बुरहानपुर भेज दिया गया। फिर भी नवाब के वंशजों ने

मुग़ल सम्राट की अधीनता स्वीकार न की और वे जूनार को राजधानी बनाकर वहीं पर रहने लगे।

मल्ल जी ने इस विपद् काल में अहमदनगर की सहायता करने का विचार किया। उस राज्य की अवस्था सभी प्रकार जीर्ण-शीर्ण हो चुकी थी। उसके नवाब को धन और जन—दोनों की आवश्यकता थी। इन दिनों में मल्ल जी के पास अच्छी सम्पत्ति थी। उसने पाँच हज़ार अश्वारोही सैनिक एकत्रित किये और उनको लेकर उसने अहमदनगर के नवाब की सहायता की। इस आर्थिक और सैनिक सहायता के बदले में नवाब ने प्रसन्न होकर मल्ल जी को चाकन और शिवनेर के दुर्ग दे दिये। इसके साथ ही पूना तथा सूपा नामक स्थानों की जागीर देकर नवाब ने मल्ल जी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की। सन् १६०४ ईसवी में लुक जी यादव की पुत्री जीजा बाई के साथ शाह जी का विवाह हो गया।

सन् १६२० ईसवी में मल्ल जी की मृत्यु हो गयी। जागीर का अधिकार शाह जी के हाथों में आया। अकबर की मृत्यु हो चुकी थी और मुग़ल-साम्राज्य में जहाँगीर का शासन चल रहा था। मल्ल जी के जीवन काल में ही—सन् १६१६ ईसवी में जहाँगीर ने शाहजहाँ को अहमद नगर की विजय के लिए भेजा था। निम्बालकर, लुक जी और शाह जी अहमद नगर की सहायता में थे। अहमद नगर का पतन हुआ।

निजामशाही—अहमद नगर-राज्य के पतन के बाद, लुक जी यादव मुग़लों में जाकर मिल गया। लेकिन शाह जी ने अहमद नगर का साथ नहीं छोड़ा। पतन के बाद भी, मुग़लों के साथ अहमद नगर के संघर्ष बराबर जारी रहे और इन्हीं का परिणाम था कि शाह जी और लुक जी का कई बार आमना-सामना हुआ। स्वभावतः दोनों में एक शत्रुता पैदा हो गयी। युद्ध में मुग़लों के साथ,

अहमद नगर की ओर से शाह जी की हार हुई। मुग़ल-सेना का अधिकारी लुक जी यादव था। शाह जी पराजित होकर भागा। लुक जी यादव ने उसका पीछा किया। अपनी सेना के साथ लुक जी यादव शाह जी के निवास स्थान पर पहुँचा। शाह जी वहाँ से भाग गया था। लुक जी ने लड़की के सम्बन्ध को ठुकरा कर अपने सैनिकों को आदेश दिया कि वे जीजा बाई को बन्दी करके शिवनेर के दुर्ग में भेज देवें। वह दुर्ग मुग़लों के अधिकार में पहुँच गया था। यही हुआ। जीजा बाई बन्दी अवस्था में उस दुर्ग में भेज दी गयी। वहाँ पर पहुँचने के दो मास उपरान्त, अप्रैल सन् १६२७ ईसवी में जीजा बाई के जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम शिवा जी रखा गया। कुछ दिनों के बाद लुक जी यादव की मृत्यु हो गयी और उसके बाद जीजा बाई को स्वतन्त्रता मिल गयी। परन्तु इसके बाद भी उसे शान्ति न मिली। सन् १६३३ ईसवी में शाह जी ने अपना दूसरा विवाह कर लिया था। उससे दुःखी होकर जीजा बाई अपने पुत्र शिवाजी को लेकर शाह जी से अलग रहने लगी।

निज़ाम शाही के समाप्त हो जाने पर शाह जी आदिल शाह के यहाँ बीजापुर राज्य में चला गया। वहाँ पर भी उसको बहुत सम्मान मिला। उन दिनों में जीजा बाई उसके साथ न रह सकी. और अपने पुत्र के साथ वह पूना में जाकर रहने लगी।

जीजा बाई का बहुत कुछ जीवन बन्दी और निर्वासित अवस्था में व्यतीत हुआ। पूना जागीर के रूप में शाह जी के पिता को अहमद नगर राज्य से मिला था। जीजा बाई वहीं पर रहा करतीं थी। जागीर का प्रबन्ध नारोपन्थ और दादा कोण्डदेव के हाथ में था। दादा जी पूना में ही रहकर जागीर का काम देखता था और शिवा जी को युद्ध-कला की शिक्षा भी दिया करता था। लड़कपन से ही शिवा जी तलवार चलाने और

बाण मारने में चिर-अभ्यस्त हो गया था। वह घोड़े का अद्भुत सवार था। उसमें इस प्रकार के गुण स्वाभाविक रूप से थे और दादा जी ने उसकी इन सभी बातों में उसकी बहुत बड़ी सहायता की थी।

तोरण दुर्ग पर अधिकार

यौवनावस्था में प्रवेश करते ही शिवा जी की धीरता, गम्भीरता और वीरता एक सैनिक के रूप में परिवर्त्तित होने लगी। उन दिनों में मरहठों में मावली जाति असभ्य और अशिक्षित मानी जाती थी। लेकिन युद्ध में वह लड़ाकू थी। आरम्भ से ही उस जाति के साथ शिवा जी का प्रेम था। उस जाति के लोगों में एकता का अभाव था। शिवा जी ने मावली लोगों के साथ प्रेम करके उनको एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया और इस कार्य में उसे सफलता भी मिली। शिवा जी के सद्भावों के कारण समस्त मावली सरदार उसके अधिकार में आ गये और उस जाति के लोग शिवा जी के प्रभुत्व को स्वीकार करने लगे।

उन दिनों में औरंगजेब मुग़ल साम्राज्य का शासक था। मुग़ल बादशाहों की ओर से दक्षिण में बहुत दिनों से आक्रमण होते चले आ रहे थे। इसका परिणाम यह हुआ था कि दक्षिण से समस्त राज्य करीब-करीब मुग़लों के अधिकार में आ गये थे और जो बाकी रह गये थे, वे बिलकुल निर्बल हो गये थे। उन्हीं निर्बलों में बीजापुर राज्य भी था। पूना की जागीर में अब शिवा जी ने अपना प्रभुत्व कायम कर लिया था। उस जागीर में कोई दुर्ग न था। शिवा जी को अपना यह अभाव बार-बार खटकता था। वह जानता था कि बिना दुर्ग के सुरक्षा का और कोई साधन नहीं हो सकता। अपनी इस आवश्यकता को पूरा

करने के लिए बीजापुर-राज्य के तोरण दुर्ग पर उसने अपनी दृष्टि डाली। निकटवर्ती दूसरे दुर्गों की अपेक्षा यह दुर्ग अधिक मजबूत था। बीजापुर-राज्य की ओर से उस दुर्ग पर जो सेना रहती थी, उसके सरदार को मिला कर शिवा जी ने उस दुर्ग पर अधिकार कर लिया और बीजापुर के शासक आदिल शाह के पास अपने आदमियों से उसने एक पत्र भेज दिया। उसमें शिवा जी ने लिख दिया कि तोरण के दुर्ग पर मेरे अधिकार कर लेने पर आप किसी प्रकार का भ्रम न करें। आपके प्रति किसी शुभ कामना को प्रोत्साहन देने के लिए मुझे ऐसा करना पड़ा है। वहाँ के शासक ने इस पत्र के बाद किसी प्रकार का असंतोष अनुभव नहीं किया।

दूसरे दुर्गों पर अधिकार

पहले यह लिखा जा चुका है कि इन दिनों में दक्षिण के राज्य विपद् ग्रस्त हो रहे थे। बीजापुर राज्य की अवस्था भी अत्यन्त निर्बल हो चुकी थी। इन्हीं दिनों में शिवा जी ने बड़ी बुद्धिमानी से तोरण दुर्ग पर अधिकार कर लिया था। इस दुर्ग से उसे बहुत बड़ी सम्पत्ति प्राप्त हुई, जिससे उसने अस्त्र-शस्त्र और गोला-बारूद खरीदने का काम किया और बहुत-से वीरों को भर्ती करके उसने अपनी एक सेना तैयार कर ली।

तोरण दुर्ग से तीन कोस की दूरी पर महोरबद्ध नामक पहाड़ के ऊपर उसने सन् १६४७ ईसवी में एक दुर्ग तैयार कराया और उस दुर्ग का नाम उसने रायगढ़ रखा। इस दुर्ग की तैयारी का समाचार पाकर बीजापुर का शासक अप्रसन्न हुआ। लेकिन शिवा जी के पिता शाह जी ने अनेक प्रकार की बातें कह कर उसका सन्देह दूर कर दिया।

शिवा जी की अपनी एक योजना थी। उसके अनुसार उसने

बीजापुर-राज्य के अन्य दुर्गों पर भी अधिकार करने के उपाय सोचे। शिवा जी के पक्ष में इस समय अनेक बातें थीं। शाह जी के सिवा, उस राज्य के बहुत-से ऊँचे अधिकारी मरहठा थे। शिवा जी ने चाकन कोट के अधिकारी फिरंगी जी और सूपा परगने के अधिकारी बाजी मोहिते को मिलाने का प्रयत्न किया। चाकन कोट पर शिवा जी का अधिकार तो हो गया, परन्तु बाजी मोहिते उसके कहने में न आया। वह शिवा जी का सौतेला भाई था। इसलिए एक दिन रात को कुछ मावलियों को लेकर शिवा जी ने बाजी मोहिते पर आक्रमण किया और उसे परास्त करके उस परगने में अधिकार कर लिया। इसके बाद शिवा जी ने कोडाणा दुर्ग के लेने का विचार किया। उसका किलेदार एक मुसलमान था। शिवा जी ने ले-देकर उसको अपने अनुकूल कर लिया और उस दुर्ग पर अधिकार करके उसने उस दुर्ग का नाम सिंहगढ़ रखा। इस दुर्ग के चारों ओर मावली जाति के लोगों की बहुत बड़ी आबादी थी। इसलिए दुर्ग का अधिकार शिवा जी के हाथों में आते ही वहाँ के समस्त मावली उसके प्रभुत्व में आ गये।

लगातार दुर्गों पर अधिकार करने के बाद शिवा जी को अनेक लाभ हुए। प्रत्येक दुर्ग से उसको सम्पत्ति और युद्ध की सामग्री मिली। इस धन से उसने अपनी सेना के बढ़ाने का कार्य किया। इन दुर्गों के अतिरिक्त शिवा जी ने बारामती और इन्द्रपुर पर अधिकार करके उन दोनों स्थानों को उसने अपनी जागीर पूना और सूपा में शामिल कर लिया। उसके थोड़े दिनों के बाद ही रोहिड़ और कल्याण आदि दुर्ग भी उसके अधिकार में आ गये।

इन्हीं दिनों में शिवा जी को समाचार मिला कि कल्याण दुर्ग के सूबेदार मौलाना अहमद के साथ खजाना जा रहा है। अपनी

एक छोटी-सी सेना लेकर शिवा जी रवाना हुआ और उसने आक्रमण करके उस खजाने को अपने अधिकार में कर लिया। शिवा जी के इन कार्यों का एक ऐसा क्रम आरम्भ हुआ कि एक-एक दुर्ग उसके अधिकार में अपने आप आने लगा और काङ्गोडी, टोग, टिकोना, भूरूप और कारी के दुर्ग भी उसके अधिकार में आ गये। कोकन की लूट में उसने बहुत सम्पत्ति पायी; जिससे उसने अपनी सैन्य शक्ति में बहुत वृद्धि कर ली।

बीजापुर के साथ शत्रुता

शिवा जी के इन समस्त कार्यों के समाचार बीजापुर-राज्य के शासक को मिले। उसने शिवा जी के दमन का निर्णय किया और सब से पहले उसने शिवा जी के पिता शाह जी को कैद करके एक कोठरी में बन्द करा दिया। आदिल शाह ने शिवा जी के विरुद्ध अपनी कोई सेना नहीं भेजा। शाह जी को कैद करने के बाद, अपने जागीरदारों को शिवा जी के विरुद्ध उसने तैयार किया। वे जागीरदार हिन्दू थे। बाजीश्यामराजे और चन्द्रराव मोरे ने शिवा जी पर आक्रमण करने का भार अपने ऊपर लिया। इन्हीं दिनों में राज्य के अन्तर्गत कर्नाटक में विद्रोह हो गया। बीजापुर के सुलतान आदिल शाह के अनेक प्रयत्नों के बाद भी वहाँ की अशान्ति दूर न हुई। उसके बाद विद्रोह शांत कराने के लिए विवश होकर सुलतान ने शाह जी को भेजा। कर्नाटक का विद्रोह शांत हो गया और उसके फल-स्वरूप शाह जी बन्दी अवस्था से मुक्त कर दिया गया। लेकिन शिवा जी का विनाश करना सुलतान के लिए आवश्यक था। उसने बाजीराव राजे और चन्द्रराव मोरे को भेजकर शिवा जी पर आक्रमण कराया। लेकिन वे दोनों ही शिवा जी के मुकाबिले में परास्त हुए। शिवा जी ने उनको पराजित कर चन्द्रराव की जागीर जावाली पर

आक्रमण किया और उस जागीर के दुर्ग बसोता की सेना को परास्त करके उसने जाबाली पर अधिकार कर लिया और बसोता का नाम बदल कर उसने उसका नाम वज़ीरगढ़ रखा। जाबाली के आस-पास जो दूसरे दुर्ग थे और जिनसे किसी भी समय शिवा जी को हानि पहुँच सकती थी, उसने उन दुर्गों पर भी आक्रमण किया और उनको जीत कर उसने उन पर भी अधिकार कर लिया।

मुग़लों के साथ संघर्ष

मुग़ल सम्राटों में सब से पहले अकबर ने भारत के दक्षिणी राज्यों के साथ हस्तक्षेप किया था और खानदेश, असीरगढ़ और बरार को मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया था। अहमदनगर का दुर्ग भी उसके अधिकार में चला गया था। बीजापुर और गोलकुण्डा ने कर देना आरम्भ कर दिया था। अपने शासन-काल में जहाँगीर ने भी दक्षिण की ओर अपने पैर फैलाये थे, लेकिन उसे सफलता न मिली थी। अहमदनगर ने मुग़ल पराधीनता के बन्धनों को तोड़ने की कोशिश की थी, परन्तु वह असफल रहा और बाद में अधिक दृढ़ता के साथ वह पराधीनता में जकड़ दिया गया था।

सन् १६३६ ईसवी में शाहजहाँ का तीसरा पुत्र औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार होकर आया था। उस समय उसकी अवस्था अठारह वर्ष की थी। उसने दक्षिण पहुँच कर निर्बल अहमदनगर का अन्त किया और उसके सुलतान को कैद करके उसने ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया। सन् १६४३ ईसवी में औरंगजेब दक्षिण से लौट गया और सन् १६५५ ईसवी में वह फिर सूबेदार होकर दक्षिण में पहुँचा। उसने गोलकुण्डा पर आक्रमण किया और उसे परास्त कर उसको अपने एक सन्धि-पत्र को स्वीकार करने के

लिए विवश किया। वहाँ का वजीर मीर जुमला औरंगजेब की शरण में चला गया। इसके बाद औरंगजेब ने बीजापुर के विरुद्ध आक्रमण किया और कल्याणी तथा कुल वर्गा मुग़ल-राज्य में: शामिल कर लिए गये। इन्हीं दिनों में शिवा जी ने जावाली नामक जागीर पर अधिकार कर लिया था।

दक्षिण में बढ़ती हुई शिवा जी की शक्ति से औरंगजेब अपरिचित न था। जिन दिनों में उसने बीजापुर में आक्रमण किया था, उन्हीं दिनों में उसके पास शाहजहाँ की बीमारी का समाचार आया। प्रत्येक अवस्था में उसको दक्षिण से चला जाना आवश्यक मालूम हुआ। उस समय अली आदिल शाह बीजापुर का शासक था और वह युद्ध में मुग़ल सेना के सामने परास्त हो चुका था। औरंगजेब ने आक्रमण करते हुए उस पर अपराध यह लगाया कि तुम मोहम्मद आदिल शाह के वीर्य से उत्पन्न नहीं हो, इसलिए उसके मरने के बाद, उसके राज्य बीजापुर के राजसिंहासन पर बैठने का तुम्हें अधिकार नहीं है। इसी पर दोनों ओर से युद्ध हुआ और अली दादिलशाह पराजित हुआ।

शाहजहाँ की बीमारी के समाचार को सुनकर औरंगजेब ने शिवा जी की सहायता माँगी और उसने चाहा कि वह आकर मुग़ल बादशाह की ओर से बीजापुर की रक्षा का काम करे। स्वाभिमानी शिवा जी ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। विवश होकर औरंगजेब ने अली आदिल शाह के साथ सन्धि की और उसके बाद वह दक्षिण से लौट गया।

शिवा जी के आक्रमण

औरंगजेब के आगरा पहुँचने पर दाराशिकोह के साथ राज्याधिकार का उसने संघर्ष पैदा किया। पूना में बैठा हुआ शिवा जी मुग़ल साम्राज्य की इन परिस्थितियों को सावधानी

के साथ देख रहा था। दारा के साथ औरंगजेब का जो संघर्ष पैदा हुआ, उसके फल-स्वरूप दोनों में युद्ध हुआ और सामूगढ़ के मैदान में औरंगजेब ने दारा को पराजित किया।

दक्षिण से औरंगजेब के चले जाने पर शिवा जी ने मुग़लों के दक्षिणी राज्य पर आक्रमण करने का विचार किया। सन् १६५७ ईसवी में वह अपनी सेना के साथ रवाना हुआ और मुग़ल राज्य के कई सम्पन्न स्थानों को विजय करके उसने लूट-मार की। इन हमलों में शिवा जी को बहुत-से घोड़ों, हाथियों के साथ बहुत-सा धन प्राप्त हुआ। उसके बाद वह पूना लौट गया और अपनी सेना को शक्तिशाली बनाने का कार्य उसने आरम्भ किया।

सन् १६५८ ईसवी में औरंगजेब मुग़ल साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा। बीजापुर के साथ उसकी सन्धि हो चुकी थी। शिवा जी ने मुग़ल-सम्राट के विरुद्ध आक्रमण करके लूट-मार की थी। इसलिए उसने औरंगजेब के पास एक पत्र भेजा और सन्धि का प्रस्ताव किया। औरंगजेब शिवा जी से प्रसन्न न था। लेकिन उत्तरी भारत की अवस्था विद्रोहात्मक चल रही थी। इसलिए उसने दक्षिण में शिवा जी के साथ इस समय वैमनस्य पैदा करना उचित नहीं समझा। नतीजा यह हुआ कि शिवा जी और औरंगजेब में सन्धि हो गयी। बीजापुर की अवस्था दिन पर दिन खराब होती जा रही थी। प्रजा में असंतोष भी बढ़ रहा था और राज्य के प्रमुख अधिकारियों के ईर्षा-भाव भी राज्य के साथ चल रहे थे। जब राजा निर्बल और अकर्मण्य होता है, उस समय राज्य में चारों ओर से विपदाओं के आक्रमण होते हैं। बीजापुर की अशान्ति के इन दिनों में शिवा जी ने अनेक प्रकार के लाभ उठाये और उसके कुछ अन्य दुर्गों पर भी उसने अधिकार कर लिया।

अफ़ज़ल खाँ का आक्रमण

शिवा जी के लगातार आक्रमण और विद्रोह के कारण बीजापुर के सुलतान ने उसके साथ युद्ध करने का निश्चय किया। उसके दरबार में अफ़जल खाँ एक अत्यन्त युद्ध कुशल, राजनीतिज्ञ और बहादुर था। उसका शरीर विशाल था और उसके चेहरे से क्रूरता का स्पष्ट आभास होता था। उसकी अवस्था यौवन को पार कर चुकी थी। फिर भी उसके शारीरिक बल में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ा था।

सन् १६५९ ईसवी के अगस्त महीने में अपने साथ एक बड़ी सेना लेकर अफ़जल खाँ, शिवा जी पर आक्रमण करने के लिए बीजापुर से रवाना हुआ। प्रतापगढ़ की तरफ़ न जाकर उसने पुरन्दर का रास्ता पकड़ा। इसके पहले वह यहाँ का सूबेदार रह चुका था। इसलिए वह यहाँ की कठिनाइयों को भली भाँति जानता था। रास्ते मे उसने हिन्दुओं के मन्दिरों और देवस्थानों का विध्वंस किया। हिन्दुओं पर उसकी सेना ने भयानक अत्याचार किये।

शिवा जी पर आक्रमण करने के पहले अफ़जल खाँ ने राज-नीति की चालों के काम लिया। उसने सन्धि का प्रश्न उठाकर शिवा जी के साथ भेंट करने का निश्चय किया। उसने गम्भीरता के साथ अपने दृष्टि कोण पर विचार किया और सन्धि का जाल तैयार करना आरम्भ कर दिया।

अफ़ज़ल खाँ की सन्धि

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए-अफ़जल खाँ ने कृष्णा जी भास्कर को अपना प्रतिनिधि बनाया और कुछ समय तक उसके साथ बातें करके उसने भास्कर को शिवा जी के पास भेज

दिया। शिवा जी ने भास्कर के मुँह से अफ़ज़ल खाँ की सन्धि का प्रस्ताव सुना और सन्धि पर बात चीत करने के लिए उसने अपना प्रतिनिधि गोपीनाथ पंत को अफ़ज़ल खाँ के पास रवाना किया। दोनों ओर से ईमानदारी के आश्वासन दिये गये और सन्धि के प्रस्ताव को स्वीकार करके निश्चय हुआ कि शिवा जी और अफ़ज़ल खाँ मिलकर सन्धि की शर्तों का निर्णय करेंगे। गोपीनाथ पंत लौट कर शिवा जी के पास आ गया। मिलने के लिए प्रतापगढ़ के नीचे का स्थान मान लिया गया।

मिलने के स्थान पर खेमे लगे हुए थे और बड़ी सुन्दरता के साथ उसके भीतर लगे हुए शामियाने को सजाया गया था। शिवा जी को मालूम था कि अफ़ज़ल खाँ के साथ उसकी सेना है। यद्यपि उसका शिविर, मिलने के स्थान से कुछ दूरी पर था। उसने अपनी सेना को तैयार कर के और करीब ले जा कर एक जंगली स्थान पर छोड़ दिया।

भेंट का दिन पहले से निश्चित था। यह भी निश्चित था कि दोनों ही भेंट के समय अपने-अपने साथ, दो-दो अंग-रक्षक रख सकेंगे। इस निश्चय के अनुसार जीव महल और शम्भू जी कावजी नामक दो शूर-वीर योद्धा शिवा जी के साथ अंग-रक्षक हो कर चले और अफ़ज़ल खाँ भी दो विश्वस्त वीरों को अपने साथ ले कर भेंट के लिए रवाना हुआ। दोनों ओर के अंग-रक्षक खेमे के बाहर छोड़ दिये गये और अफ़ज़ल खाँ से भेंट करने के लिए शिवा जी ने खेमे के भीतर प्रवेश किया। एकाएक शामियाने के नीचे से चीत्कार सुनायी पड़ा। दोनों ओर के अंग-रक्षक दौड़ पड़े। भीतर जाकर देखा तो अफ़ज़ल खाँ का घायल शरीर जमीन पर पड़ा हुआ था।

इसी समय दोनों ओर की सेनायें दौड़ पड़ीं और युद्ध आरम्भ हो गया। अफ़ज़ल खाँ मारा गया था, इसलिए युद्ध में उसकी

सेना ठहर न सकी। उसके भागते ही शिवा जी की सेना ने उस पर भयानक आक्रमण किया और उसके पैंसठ हाथियों, चार हजार घोड़ों और बारह हजार ऊँटों के साथ-साथ उसके बहुत-से अस्त्र-शस्त्रों पर अधिकार कर लिया।

सुलतान के साथ सन्धि

अफ़ज़ल खाँ के मारे जाने के बाद बीजापुर-राज्य की ओर से और भी कई आक्रमण शिवा जी को परास्त करने के लिए किये गये। लेकिन सभी में बीजापुर की पराजय हुई। इसके बाद सन् १६६१ ईसवी में बीजापुर के सुलतान ने स्वयं अपनी एक विशाल सेना लेकर शिवा जी पर चढ़ाई की और अन्त में बुरी तरह से उसकी हार हुई। जब कोई उपाय सुलतान का बाकी न: रहा तो उसने शिवा जी के साथ सन्धि कर ली। उस सन्धि से कल्याण से गोवा तक का कोंकण प्रदेश शिवा जी के अधिकार में आ गया। सब मिलाकर एक बड़ा इलाका शिवा जी के अधिकार में हो जाने के कारण उसकी शक्तियाँ अब पहले से बहुत बड़ी हो गयी थीं।

सूरत में शिवा जी का आक्रमण

पहले यह लिखा जा चुका है कि शिवा जी और औरंगजेब के बीच सन्धि हो चुकी थी। मुग़लों की ओर से उस सन्धि का पालन उस समय तक हुआ, जब तक कि औरंगजेब घर से लेकर बाहर तक, विरोधी परिस्थितियों में जकड़ा रहा। उनके कुछ बदलते ही और मुग़ल-साम्राज्य के सिंहासन पर बैठते ही उसने शिवा जी के साथ सन्धि को ठुकरा दिया और सन् १६६१ ईसवी में मुग़ल-सेना ने कल्याण पर अधिकार कर लिया। कल्याण इन दिनों में शिवा जी के अधिकार में था। औरंगजेब के साथ

शिवा जी की शत्रुता का यहीं से सूत्रपात हुआ। दोनों तरफ़ तना-तनी बढ़ने लगी। मरहठों में युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं और मुग़लों ने पूना में एकत्रित होने की कोशिश की। यशवंतसिंह भी मुग़लों की सहायता के लिए पूना में पहुँच गया। पूना के निकट दोनों ओर की सेनायें एकत्रित हुईं।

कुछ घटनाओं के बाद शिवा जी ने अवसर पाकर सूरत पर आक्रमण किया। उन दिनों में सूरत व्यापार का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। योरप और एशिया के व्यापार का यह एक बड़ा बाजार था। यहीं पर पहले-पहल अँगरेजों ने आकर अपनी कोठियाँ खोली थीं। मक्का जाने के लिए यहाँ का बन्दरगाह मुख्य समझा जाता था। हालैण्ड और पुर्तगाल के लोगों ने भी यहाँ पर अपनी कोठियाँ खोल रखी थीं। इस होने वाले व्यवसाय ने इस नगर को सम्पत्तिशाली बना दिया था।

सन् १६६४ ईसवी में शिवा जी ने सूरत पर आक्रमण किया। चार हजार मरहठा सवारों के कारण सूरत में हाहाकर मच गया। अँगरेजी कम्पनी के अधिकारियों ने मरहठा सवारों का सामना किया और उन्होंने अपनी कोठियों की रक्षा की। सूरत को लूटकर मरहठा सेना लौट गयी और उसके कुछ दिनों के बाद मरहठों का फिर सूरत में आक्रमण हुआ। उन्हीं दिनों में शिवा जी के पिता शाह जी की मृत्यु हुई थी और उसकी सम्पत्ति तथा जागीर पर शिवा जी का अधिकार हो गया था।

मुग़लों के साथ फिर सन्धि

सन् १६६४ ईसवी में औरंगजेब ने अपने पुत्र मुअज्जम को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। उसकी सहायता के लिए यशवंतसिंह वहीं पर मौजूद था। अपनी शक्ति को अटूट बनाने के लिए मुग़ल-सम्राट ने राजा जयसिंह को एक बड़ी सेना के साथ

दक्षिण के लिए रवाना किया। पूना में मुग़लों की एक विशाल सेना एकत्रित हो गयी। जयसिंह ने सिंहगढ़ के दुर्ग पर आक्रमण किया और रायगढ़ तक उसकी सेना फैल गयी। इसके साथ ही सरदार दिलेर खाँ एक मुग़ल सेना लेकर पुरन्दर की ओर रवाना हुआ।

मुग़लों के इन भयानक आक्रमणों से शिवा जी के सामने बड़ी कठिनाई पैदा हो गयी। वह जयसिंह के साथ युद्ध नहीं करना चाहता था। इसलिए सन्धि का प्रस्ताव हुआ और दोनों ने आदर के साथ सन्धि को स्वीकार किया। शिवा जी ने मुग़लों के दुर्गों को वापस दे दिया और दूसरे जिन ३२ दुर्गों पर शिवा जी का अधिकार हो गया था, उनमें से भी २० दुर्ग औरंगजेब को दिये गये। औरंगजेब की ओर से बीजापुर-राज्य के कुछ प्रदेश शिवा जी को मिले और उसका लड़का शम्भा जी मुग़ल-साम्राज्य में पंच हजारी मनसबदार बनाया गया।

इस सन्धि के बाद जयसिंह और शिवा जी ने मिलकर बीजापुर में आक्रमण किया और उसके अनेक दुर्गों के साथ-साथ उसका दुर्गम पहाड़ी दुर्ग मण्डल किला भी छीन कर अधिकार में कर लिया गया।

औरङ्गजेब का विश्वासघात

शिवा जी ने जयसिंह के साथ सन्धि की थी, लेकिन वह सन्धि जयसिंह तक ही उस समय सीमित थी। उसके बाद दोनों ने मिलकर बीजापुर पर आक्रमण किया था। सन्धि की वे शर्तें जब औरंगजेब के पास पहुँची तो वह चुप हो गया। अपने विचारों को बिना प्रकट किये हुए उसने शिवा जी को अपने यहाँ आमंत्रित किया। शिवा जी ने बिना किसी सन्देह के उस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। इसके पहले ही शिवा जी ने जयसिंह के

मुँह से सुना था कि सम्राट ने दक्षिण का सम्पूर्ण अधिकार देने के लिए उसे आमंत्रित किया है। उसे बताया गया था कि सैनिक और आर्थिक शक्तियों के साथ उसे आगरा से दक्षिण वापस किया जायगा और वह मुग़ल-साम्राज्य की ओर से दक्षिण का शासक माना जायगा। सन् १६६६ ईसवी में अपनी एक छोटी-सी सेना के साथ शिवा जी आगरा के लिए रवाना हुआ। बसन्त के दिन थे। उसके साथ उसका पुत्र शम्भा जी भी था।

शिवा जी की मरहठा सेना आगरा में पहुँच कर रुक गयी और सम्राट से भेंट करने के लिए उसने दरबार-आम में प्रवेश किया। दरबार समाप्त होने के बाद शिवा जी को वहाँ पर कैद कर लिया गया। औरंगजेब के इस विश्वासघात से शिवा जी को एक भीषण आघात पहुँचा। उसने सहज ही अनुभव किया कि शत्रु का विश्वास करने का यह परिणाम है। कुछ दिनों तक बंदी रहकर शिवा जी ने वहाँ के अधिकारियों को धोखा दिया और चालाकी से वह बन्दी-घर से निकल कर चला गया।

कैद से छूट कर शिवा जी ने दक्षिण में मुग़लों के विरुद्ध युद्ध करने की तैयारी की। उसने समझ लिया कि औरंगजेब के शासन-काल में मुग़लों और मरहठों की कभी सन्धि नहीं हो सकती।

सन् १६६७ ईसवी की २ जूलाई को जयसिंह की मृत्यु हो गयी थी। वह एक शूर-वीर राजपूत था और मुग़लों की ओर से दक्षिण में युद्ध के लिए भेजा गया था। उसके साथ सन्धि करके जो दुर्ग और प्रदेश शिवा जी ने मुग़ल-सम्राट को दिये थे, एक साथ उसने सब पर अधिकार कर लिया। उनकी रक्षा के लिए यशवंतसिंह के साथ, मुअज्जम दक्षिण में था और उसके अधिकार में एक विशाल मुग़ल सेना थी। लेकिन शिवा जी को वह रोक न सका। सन्धि के बाद सिंहगढ़ का दुर्ग भी मुग़लों के

अधिकार में चला गया था। शिवा जी ने उस पर कब्जा करने की चेष्टा की। यशवंतसिंह और मुअज्जम के अधिकार में जितनी सेना थी, सब ने मिलकर सिंहगढ़ को बचाने की कोशिश की।

शिवा जी को कैद करके औरंगजेब सदा के लिए दक्षिण से छुटकारा पा गया था। लेकिन उसके कैद से छूटकर चले जाने पर औरंगजेब को बहुत रंज हुआ। शिवा जी का फिर युद्ध आरम्भ कर देना उसे असह्य हो गया। उसने अपनी पूरी शक्ति लगा कर शिवा जी के विनाश का प्रयत्न किया। ११ दिसम्बर सन् १६६९ ईसवी को उसे समाचार मिला कि शिवा जी सिंहगढ़ पर आक्रमण करके उस पर अधिकार करना चाहता है। यह समाचार पाकर सम्राट ने सेनापति दिलेर खाँ और दाऊद खाँ को आदेश भेजे कि वे अपनी शक्तिशाली सेनाओं को लेकर सिंहागढ़ में शाहजादा मुअज्जम और यशवंतसिंह की सहायता करें और किसी भी प्रकार वे शिवाजी का विध्वंस करें।

सिंहगढ़ के दुर्ग पर अधिकार

दोनों ओर की सेनाओं का सिंहगढ़ में सामना हुआ। सन् १६७० ईसवी में मुगलों के साथ शिवा जी ने यह भयानक युद्ध आरम्भ किया। मुअज्जम के साथ कई एक बहादुर सेनापति थे और शक्तिशाली विशाल मुगल सेना थी। शिवा जी और उसकी सेना का प्रत्येक सैनिक, सवार और सरदार, औरंगजेब के विश्वासघात के कारण रक्त का प्यासा हो रहा था। दोनों ओर से भयानक नर-संहार आरम्भ हुआ। मारे गये सैनिकों का रक्त प्रवाहित हो उठा।

मरहठा और मावली सैनिकों ने मुगल सेना के छक्के छुटा दिये। कई बार मुगल सेना घबराकर पीछे की ओर हट गयी।

परन्तु फिर साहस करके उसने युद्ध किया। उस विकराल युद्ध में दोनों ओर की सेनायें बहुत समय तक आगे बढ़ने की कोशिश करती रहीं। लेकिन किसी को सफलता न मिली। दोनों सेनायें बढ़कर एक दूसरे के निकट आ गयी थीं और उन्होंने बाणों की मार बन्द करके तलवारों की मार आरम्भ कर दी थी। कई घन्टे तक दोनों ओर की सेनाओं ने भयङ्कर मार-काट की। एक बार मरहठा सेना पीछे की ओर हटी। उस समय मुगल सेना कुछ दूर तक मरहठों को दबाकर पीछे ले गयी। लेकिन उसके बाद ही मरहठों और मावलियों ने अपनी तलवारों की मार से प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया। बहुत-से मुग़ल सैनिक मारे गये। मुअज्जम और यशवंत की सेनायें पीछे की ओर हटने लगीं। बाकी मुग़ल सैनिकों ने भी साहस तोड़ दिया और युद्ध के मैदान में उन्होंने हथियार डाल दिये। उसी समय शिवा जी की सेना ने युद्ध बन्द कर दिया और सिंहगढ़ के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। दक्षिण में मुग़ल सेना का यह युद्ध उसकी पराजय का एक ऐसा कारण बन गया कि फिर उसके बाद उसने साहस नहीं किया।

युद्ध बन्द होने के बाद मुगल सेना का कोई भी सैनिक मारा नहीं गया। युद्ध के बाद सिंहगढ़ के दुर्ग पर शिवा जी का फहराता हुआ झण्डा दिखायी देने लगा।

बीसवाँ परिच्छेद

देवारी का संग्राम

[१६८० ईसवी]

मेवाड़ और मुग़ल साम्राज्य, अकबर के वंशज, हिन्दुओं के साथ औरंगजेब की क्रूरता, प्रभावती के विवाह का युद्ध, मेवाड़ पर औरंगजेब का आक्रमण, औरंगजेब की पराजय !

मेवाड़-राज्य की स्वाधीनता

राणा प्रताप के सत्रह पुत्र थे। उसकी मृत्यु के पश्चात् सन् १५९७ ईसवी में उसका बड़ा लड़का अमरसिंह गद्दी पर बैठा। मेवाड़-राज्य ने अभी तक पराधीनता स्वीकार न की थी। वह लड़ कर पराजित हुआ था और पराधीनता में कुछ वर्ष व्यतीत कर चुका था। लेकिन प्रताप ने उसको फिर स्वतन्त्र करने में सफलता प्राप्त की थी। मृत्यु के समय अपने राज्य की स्वाधीनता की रक्षा के लिए वह चिन्तित हुआ था। अपने पुत्र अमरसिंह पर इसके लिए उसे अधिक विश्वास न था।

अमरसिंह ने चौबीस वर्ष तक मेवाड़ का शासन किया। वह अपने पिता—राणा प्रताप की तरह शूर-वीर न था। उसमें स्वाभिमान और राजनीतिक चातुर्य का अभाव था। सन् १६२१ ईसवी में अमरसिंह की मृत्यु हो गयी और उसके बाद, मेवाड़ के सिंहासन पर उसका जेष्ठ पुत्र कर्ण बैठा। उसका चरित्र ऊँचा

था। वह साहसी और बहादुर था। लेकिन उसकी शक्तियाँ निर्बल थीं। लगातार युद्धों के कारण मेवाड़-राज्य की आर्थिक परिस्थिति छिन्न-भिन्न हो गयी थी। कर्ण ने अपने राज्य की इस अवस्था को बदलने का प्रयत्न किया और उसे बहुत-कुछ सफलता भी मिली। उसके शासन-काल में दिल्ली के मुग़ल बादशाह के साथ कोई संघर्ष नहीं पैदा हुआ। साधारण मन-मोटाव की अवस्थायें सामने आयीं, उनको राणा कर्ण ने संघर्ष का रूप नहीं दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि मुग़ल बादशाह के साथ उसका साधारण सम्मान-पूर्ण व्यवहार चलता रहा। दोनों तरफ से इसकी रक्षा की गयी।

अकबर की मृत्यु

मुग़ल आधिपत्य के विरुद्ध, राजपूताना के राजाओं में मेवाड़-राज्य के संघर्ष ही अन्तिम संघर्ष रहे थे। परन्तु उनका अन्त राणा प्रताप और अकबर के जीवन-काल में ही हो चुका था। प्रताप की मृत्यु सन् १५९७ ईसवी में और अकबर की मृत्यु सन् १६०५ ईसवी में हुई थीं। इसके पहले ही मुग़ल-साम्राज्य का पूर्ण विस्तार भारत में हो चुका था और मेवाड़ को छोड़कर मुग़ल बादशाह अकबर का विरोधी कोई राजा और बादशाह बाकी न रहा था। देश में जो शासक थे, वे अकबर की अधीनता में अपने-अपने राज्यों का शासन कर रहे थे। अकबर ने अपनी बहुत बड़ी योग्यता और राजनीतिक चतुरता से अपने राज्य के विस्तार में इतनी बड़ी सफलता प्राप्त की थी। लेकिन जिस समय वह बीमार पड़ा और उसके जीवन का अन्तिम समय आ गया, उस समय साम्राज्य के प्रसिद्ध और ऊँचे अधिकारियों के साथ परिवार के सभी लोग आकर उसको घेर कर बैठ गये। जिस समय अकबर अपने जीवन की अन्तिम साँसे ले रहा था,

उसके जीवन की महानता और श्रेष्ठता की ओर किसी का ध्यान न था। उसकी शैय्या के निकट उसके पुत्रों में राज्याधिकार का संघर्ष पैदा हुआ। एक ओर अकबर के प्राण निकल रहे थे और दूसरी ओर उसके पुत्रों में राज्याधिकार का झगड़ा हो रहा था। जीवन के इस घृणित दृश्य को अकबर ने अपने नेत्रों से देखा और एक असह्य वेदना के साथ उसके प्राणों का अन्त हुआ। सलीम उसका बड़ा बेटा था। मृत्यु के पहले अकबर ने स्वयं सलीम को राज्याधिकार दिये जाने का निर्णय कर दिया था। इसलिए उसके मर जाने पर सलीम जहाँगीर के नाम से १६०५ ईसवी में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

जहाँगीर के साथ विद्रोह

मेवाड़ के राणा कर्ण के समय चित्तौर, मुग़ल-साम्राज्य के आधिपत्य में आ गया था, लेकिन दोनों ओर से मित्रता का ही व्यवहार चलता रहा। आवश्यकता पड़ने पर बादशाह की सहायता के लिए चित्तौर की ओर से सेनायें जाती थीं और उनका अधिकारी कर्ण का छोटा भाई भीम होता था। वह स्वभाव से ही साहसी, स्वाभिमानी और तेजस्वी था। जहाँगीर के पुत्र खुर्रम का—जो आगे चलकर शाहजहाँ के नाम से मुग़ल-साम्राज्य का बादशाह हुआ—भीम के साथ विशेष स्नेह था। दोनों एक दूसरे के साथ बन्धुत्व का व्यवहार करते थे।

शाहजादा खुर्रम के साथ भीम का गहरा स्नेह देखकर बादशाह जहाँगीर कभी-कभी सशंकित होता था। उसने भीम और खुर्रम के स्नेह में बाधा डालने की चेष्टा की, परन्तु वह सफल न हुआ। जहाँगीर के इस प्रकार के सन्देह का कारण था। उसके चार लड़के थे—खुसरो, परवेज, खुर्रम और शहरयार। विद्रोह करने के कारण जहाँगीर ने खुसरो को मरवा डाला था। परवेज़

उसका दूसरा बेटा था। जहाँगीर के बाद, मुग़ल-साम्राज्य के सिंहासन पर बैठने का वही अधिकारी था। खुर्रम की मनोवृत्ति कुछ और थी। जहाँगीर का अनुमान था कि परवेज़ और खुर्रम में राज्याधिकार के लिए संघर्ष होने पर भीम खुर्रम की सहायता करेगा।

भीम के प्रति जहाँगीर का सन्देह कुछ दिनों के बाद सही साबित हुआ। खुर्रम ने अपने कुछ आदमियों को लेकर परवेज़ पर आक्रमण किया और उसे जान से मार डाला। उसके बाद उसने अपने पिता जहाँगीर के साथ विद्रोह कर दिया। जहाँगीर ने खुर्रम को अधिकार में लाने के लिए अपनी एक सेना भेजी। उसके साथ खुर्रम ने युद्ध किया और भीम ने उसकी सहायता की। उस युद्ध में भीम मारा गया और खुर्रम युद्ध से भागकर उदयपुर चला गया। राणा कर्ण ने उसके साथ अत्यन्त उदारता के साथ व्यवहार किया। लेकिन उन दोनों के इस बन्धु-भाव से राणा कर्ण और बादशाह जहाँगीर के बीच कोई वैमनस्य नहीं पैदा हुआ। सन् १६२८ ईसवी में राणा कर्ण की मृत्यु हो गयी और उसके स्थान पर उसका पुत्र जगतसिंह चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। उसके कुछ ही दिनों के बाद, सन् १६२८ ईसवी में बादशाह जहाँगीर की भी मृत्यु हुई और शाहज़ादा खुर्रम शाहजहाँ के नाम से मुग़ल-सिंहासन पर बैठा।

औरङ्गजेब और राजसिंह

राणा जगतसिंह ने छब्बीस वर्ष शासन किया। उसने मारवाड़ की राज-कन्या के साथ विवाह किया था, उससे दो पुत्र उत्पन्न हुए। बड़े लड़के का नाम राजसिंह था। जगतसिंह के मरने के बाद वही मेवाड़ का राणा हुआ। इधर बहुत दिनों से मेवाड़ और दिल्ली के बीच में किसी प्रकार की अशान्ति न थी।

लेकिन राजसिंह के सिंहासन पर बैठते ही वह शान्ति एक साथ विलीन होती हुई दिखायी पड़ी। यद्यपि उस अशान्त वातावरण के उत्पन्न होने के विभिन्न कारण थे। फिर भी, उनकी जड़ में और अशान्त वातावरण को प्रोत्साहन देने में राजसिंह का हाथ था, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। उन दिनों में शाहजहाँ बादशाह मुगल-साम्राज्य के सिंहासन पर था, उसने अपने जीवन में राजपूतों के प्रति पुराने शत्रु-भाव को कभी स्थान नहीं दिया था।

शाहजहाँ के चार पुत्र थे। दाराशिकोह, शुजा, औरंगजेब और मुरादबख्श। शाहजहाँ ने अपने इन चारों पुत्रों को साम्राज्य में अलग-अलग अधिकारी बना दिया था। दाराशिकोह पंजाब तथा उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश का, शुजा बंगाल तथा उड़ीसा का, औरंगजेब साम्राज्य के दक्षिण प्रदेशों का और मुरादबख्श गुजरात का सूबेदार था। दारा का स्वभाव, शाहजहाँ के स्वभाव के साथ अधिक मिलता था, इसलिए वह सम्राट के साथ रहा करता था। वही अपने सब भाइयों में बड़ा था और साम्राज्य का अधिकारी था।

मेवाड़ के राणा राजसिंह और दारा में अधिक मेल रहता था। इसलिए सम्राट शाहजहाँ के चारों पुत्रों में जब राज्य के लिए संघर्ष उत्पन्न हुआ और युद्ध हुआ तो राजसिंह ने दाराशिकोह का साथ दिया। उस युद्ध में दारा की पराजय हुई। उसकी सहायता के लिए राजसिंह के साथ राजपूताना के अनेक राजपूत राजा अपनी सेनाओं के साथ आये थे। इसलिए उन सब के साथ औरंगजेब की शत्रुता उत्पन्न हो गयी।

अपने भाइयों को परास्त और सर्वनाश करके औरंगजेब सन् १६५८ ईसवी में सिंहासन पर बैठा। शाहजहाँ के सामने अब बुढ़ापे का संकट था—औरंगजेब के कारण अनेक असह्य

विपदाओं में उसे रहना पड़ा। इसके पहले उसका सम्पूर्ण जीवन सुखमय रहा था। वह एक विलासी सम्राट था। उसके शासन-काल में मुग़ल-साम्राज्य का खजाना बड़ी उन्नति पर था। हीरा, लाल और जवाहिरातों की अपार सम्पत्ति उसके अधिकार में थी। वर्ष गाँठ के दिन वह प्रति वर्ष जवाहिरातों से तौला जाता था और वे जवाहिरात दीन दुखियों को बाँट दिये जाते थे। उसका राज-सिंहासन चौदह लाख से भी अधिक समझा जाता था। मुग़ल बादशाहों में सब से अधिक और प्रसिद्ध इमारतें उसी ने बनवाईं थीं। ताजमहल उसी का बनवाया हुआ है, जो संसार की प्रसिद्ध इमारतों में माना जाता है।

औरङ्गजेब और हिन्दू नरेश

मुग़ल-साम्राज्य के सिंहासन पर बैठने के पहले औरंगजेब का धार्मिक पक्षपात बहुत-कुछ छिपा रहा था। शाहजहाँ और दाराशिकोह के साथ वह पहले से ही मतभेद रखता था। दारा के साथ संघर्ष पैदा होने पर हिन्दू राजाओं ने उसके विरुद्ध दारा का साथ दिया था। हिन्दुओं के साथ उसके विरोध का आरम्भ यहीं से हुआ और उसकी विरोधी भावना ने धार्मिक और जातीय पक्षपात का रूप धारण किया। शुरू में उसने कुछ ऐसे कार्य किये थे, जिनसे हिन्दू और मुसलमानों—दोनों का लाभ था। लेकिन उसकी यह प्रवृत्ति कुछ ही समय के बाद बदल गयी और धीरे-धीरे वह हिन्दुओं का शत्रु बन गया।

धार्मिक पक्षपात न होने के कारण ही अकबर ने मुग़ल-साम्राज्य की प्रतिष्ठा में अद्भुत सफलता पाई थी और समस्त राजा तथा नवाब उसकी अधीनता में आ गये थे। निष्पक्ष भावना ने अकबर की शक्तियों को महान बना दिया था और यह भावना ही उसकी सफलता का कारण बन गयी थी। जहाँगीर और

शाहजहाँ तक अकबर की वह भावना जीवित रही। औरंगजेब का शासन आरम्भ होते ही वह भावना निर्बल होने लगी और थोड़े समय के भीतर ही उसका शासन, हिन्दुओं का शत्रु हो गया। हिन्दुओं के प्रति औरंगजेब के अत्याचारों के कारण ही दक्षिणी भारत में मरहठों का विद्रोह उत्पन्न हो गया और उत्तरी भारत में भी हिन्दू उसके विरोधी हो गये। विद्रोह की यह आग साम्राज्य में चारों ओर फैलने लगी। औरंगजेब ने उसको बुझाने की चेष्टा न की। बल्कि उसके कार्यों से विद्रोह की वह साधारण आग धीरे-धीरे प्रज्वलित होने लगी।

जातीय और धार्मिक पक्षपात में आँखें बन्द करके औरंगजेब ने काम किया। उसके वे सारे कार्य अत्याचार के रूप में साम्राज्य के हिन्दुओं के सामने आये। सन् १६६८ ईसवी में उसने आज्ञा दी कि हिन्दुओं के समस्त मन्दिर, शिवालय और उनकी पाठशालायें तोड़ कर उनके स्थानों पर मस्जिदें और सरायें बनवाई जाय। इस आज्ञा के परिणाम-स्वरूप मथुरा, वृन्दावन, आगरा, बनारस और गुजरात आदि नगरों के मन्दिर गिरवा दिये गये और उनके स्थानों पर मस्जिदें बन गयीं। सन् १६७९ ईसवी में हिन्दुओं से जजिया कर फिर वसूल किया जाने लगा और उन पर बहुत-से नये कर लगाये गये। उनके अदा करने में किसी हिन्दू के आगा-पीछा करने पर अथवा न दे सकने पर उसको भयानक दण्ड दिया जाता। हिन्दुओं पर जो पुराने कर चले आ रहे थे, उनमें वृद्धि कर दी गयी और उनकी वसूलयाबी में बहुत सख्तियाँ की गईं। जबरदस्ती हिन्दुओं को मुसलमान बनाया गया। इन अत्याचारों के फल-स्वरूप, वही हिन्दू नरेश—जिनकी सहायता से अकबर ने विशाल मुग़ल साम्राज्य की स्थापना की थी—उसके वंशज औरंगजेब के शत्रु हो गये और उसके मिटाने की चेष्टा करने लगे।

विद्रोह की आँधियाँ

हिन्दुओं पर औरंगजेब के अत्याचार बढ़ते गये। उसने पीड़ित हिन्दुओं की ओर कभी आँख उठा कर न देखा। समस्त साम्राज्य मे हाहाकार मचा रहा। उसकी कहीं सुनवाही न थी। राज्य के अत्याचारी मुस्लिम अधिकारियों ने हिन्दुओं के साथ अमानुषिक अन्यायों में कुछ बाकी न रखा।

अन्याय और अत्याचार से शत्रुओं की उत्पत्ति होती है। सन् १६६९ ईसवी में मथुरा और दूसरे कई जिलों के जाटों ने संगठित होकर औरंगजेब के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और सन् १६७२ ईसवी में सतनामी नामक एक सम्प्रदय के लोगों ने मुग़ल बादशाह के साथ विप्लव किया। इन्हीं दिनों में पंजाब के सिख उठ खड़े हुए और उन्होंने मुग़ल-शासन का विद्रोह किया। देश की यह विरोधी शक्तियाँ बहुत साधारण थीं। यद्यपि उनके विद्रोहों को दबाने के लिए औरंगजेब को बहुत हानि उठानी पड़ी और बहुत-से उसके मुग़ल सैनिकों का संहार हुआ। लेकिन औरंगजेब ने इसकी कुछ परवाह न की और सन् १६७९ ईसवी में उसने राजपूतों के साथ भी संघर्ष पैदा कर दिया। जोधपुर के राजा जसवंतसिंह की मृत्यु के बाद, जिसने उसकी अधीनता स्वीकार की थी और उसकी सहायता में जिसने मराठों के साथ युद्ध करते-करते अपने प्राणों का अन्त किया था, उसने उसकी दोनों विधवा रानियों को बन्दी कर लिया और उनका मेवाड़ का राज्य दूसरों को सौंप दिया। जसवन्तसिंह के एक पुत्र को भी उसने मरवा डाला। लेकिन उसका दूसरा लड़का अजीतसिंह अपने मन्त्री दुर्गादास राठौर की सहायता से जीवन-भर मुग़लों के साथ युद्ध करता रहा। इस प्रकार के अनेक कारणों से राजपूताना के राजपूत भी उसके शत्रु हो गये।

राणा राजसिंह का गौरव

राजपूताना में मेवाड़-राज्य का गौरव बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था। उस राज्य की शक्तियाँ अनेक अवसरों पर लोप हो चुकी थी लेकिन कुछ समय के बाद, मेवाड़ फिर शक्तिशाली हो जाता था। राणा प्रताप के बाद मेवाड़ का गौरव फिर छिन्न-भिन्न हो गया था। लेकिन राणा राजसिंह के सिंहासन पर बैठते ही उसका फिर उत्थान हुआ। किसी भी राज्य का गौरव उसके राजा की योग्यता पर निर्भर होता है। राजसिंह बप्पा रावल का योग्य वंशधर था। उसकी वीरता और तेजस्विता शत्रुओं पर भी अपना प्रभाव डालती थी। वह अत्यन्त साहसी और निर्भीक था। राजपूताना के समस्त शासक और सरदार राजसिंह का सम्मान करते थे।

सन् १६१४ ईसवी में बादशाह जहाँगीर ने मेवाड़ पर आक्रमण करने के लिए शाहजादा खुर्रम के नेतृत्व में एक मुग़ल सेना भेजी थी। उन दिनों में वहाँ का शासन राणा अमरसिंह के हाथ में था। उसने राजपूत सेना को लेकर मुग़ल-सेना का सामना किया था और अन्त में पराजित हुआ था। उसके बाद अमरसिंह ने मुग़लों के साथ सन्धि कर ली थी।

राणा अमरसिंह के समय से ही मुग़ल-साम्राज्य का आधिपत्य मेवाड़ पर आ चुका था। लेकिन जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन-काल तक दोनों राज्यों के बीच एक मित्रता का सम्बन्ध चलता रहा। यह सम्बन्ध बादशाह औरंगज़ेब के समय में बिगड़ने लगा था। लेकिन संघर्ष की कोई परिस्थिति उत्पन्न न हुई थी, राणा राजसिंह औरंगजेब की मनोवृत्ति को खूब समझता था। वह शक्तिशाली मुग़ल-सम्राट से अपरिचित न था। परन्तु अपनी निर्भीकता के कारण वह कुछ परवा न करता था।

राजकुमारी प्रभावती

मारवाड़ के राठौर राजपूत, मारवाड़ छोड़कर रूपनगर चले गये थे और वे वहीं पर रहने लगे थे। रूपनगर मुग़ल-साम्राज्य में सम्मलित था। इसलिए जो राजपूत वहाँ पर रहते थे, वे मुग़ल-राज्य के सामन्त माने जाते थे। औरंगजेब के पहले उनको अनेक सुविधायें प्राप्त थीं। परन्तु औरंगजेब के शासन काल में उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण हो चुका था और वे सभी प्रकार के बन्धनों में जीवन व्यतीत कर रहे थे।

जिन दिनों में औरंगजेब का शासन बड़ी कठोरता के साथ चल रहा था, रूपनगर के राठौर वंश की राजकुमारी प्रभावती ने यौवनावस्था में प्रवेश किया था। वह अपने सुन्दर शरीर और आकर्षक स्वास्थ्य के लिए बड़ी प्रसिद्ध हो रही थी। प्रभावती के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर औरंगजेब ने उसके साथ विवाह करने का निश्चय किया।

रूपनगर में एक ओर प्रभावती अपने अपूर्व यौवन, अद्भुत स्वास्थ्य और आकर्षक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध हो रही थी, दूसरी ओर उसके साथ विवाह करने का औरंगजेब का निश्चय रूप-नगर और उसके आस-पास बड़ी तेजी के साथ फैल रहा था। औरंगजेब की यह अभिलाषा चारों ओर फैल कर प्रभावती के कानों में भी पहुँची। मुसलमान बादशाह के उस निर्णय को सुन कर वह अस्त-व्यस्त हो उठी।

प्रभावती ने किसी से उस सम्बन्ध में बातचीत न की। लेकिन उसे साफ-साफ यह मालूम हो गया था कि औरंगजेब मेरे साथ विवाह करना चाहता है। इसलिए वह प्रत्येक समय भयानक मानसिक चिन्ताओं में रहने लगी।

जिस प्रकृति ने प्रभावती को अद्भुत स्वास्थ्य और सौन्दर्य

दिया था, उसने उसको उसकी रक्षा के लिए शक्तियाँ न दी थी। जीवन का जो वैभव प्रभावती के सुख और सौभाग्य का साधन था, वही उसके दुख, दुर्भाग्य और विपदाओं का कारण बन गया। वह सोचने लगी : सम्पूर्ण मुग़ल-साम्राज्य के शासक-बादशाह औरंगजेब का कौन विरोध करेगा ? किसके पास इतनी बड़ी शक्तियाँ हैं, जो उसका सामना कर सके ? भगवान की क्या यही अभिलाषा है कि मेरे जीवन का सर्वस्व, उस मुसलमान बादशाह के लिए उत्सर्ग हो, जिसके नाम और स्मरण से मैं घृणा करती हूँ ! ऐसा नहीं हो सकता। अपनी रक्षा के लिए मेरे पास वह शक्ति है, जिस पर किसी का अधिकार नहीं है। अपनी उस शक्ति से मुझे कोई वञ्चित नहीं कर सकता ! बादशाह को अपने साम्राज्य का अहंकार है। उस अहंकार में उसने मनुष्यत्व को भुला दिया है ! बादशाह के अभिमान ने उसे प्रकृति के इस सत्य को समझने का अवसर नहीं दिया कि सम्पूर्ण प्रकृति की रचना में स्त्री-जीवन का निर्माण अद्भुत और अज्ञेय है। सम्पत्ति और राज्य के वैभव उसके परिष्कृत हृदय पर विजयी नहीं होते ! जब दूसरे तरीकों से मेरी रक्षा न हो सकेगी तो मैं अपने उस अस्त्र का प्रयोग करूँगी, जिससे मुझे कोई वञ्चित नहीं कर सकता। मैं आत्मघात करके इस संसार से बिदा हो जाऊँगी ! वह अस्त्र कभी असफल नहीं होता। संसार के दुराचारी अभिमानियों से अपनी रक्षा करने के लिए परम पिता भगवान ने यह अस्त्र स्वयं उन बालिकाओं और युवती स्त्रियों को दिया है, जिनके हृदय स्वच्छ होते हैं और संसार के विकारों से जिनका अन्तरंग और बहिरंग बहुत दूर रहा करता है। अपने इस अस्त्र का लड़कियों को जन्म से ही ज्ञान होता है !

इस प्रकार की कितनी ही बातों को सोचने और समझने के बाद प्रभावती को कुछ संतोष मिलता। लगातार, दिन बीत रहे

थे। रूपनगर के सभी स्त्रियों और पुरुषों ने समझ लिया था कि प्रभावती को औरंगजेब की बेगम बनना पड़ेगा। इसे कोई रोक नहीं सकता।

प्रभावती का निर्णय

लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ अधिक सजीव और भावुक होती हैं। वे स्वयं अपने जीवन का निर्णय करती हैं। यौवन की सुमधुर और शीतल वायु की तरङ्गों ने प्रभावती के अन्तःकरण को मेवाड़ के राणा राजसिंह की ओर पहले से ही प्रवाहित कर रखा था। राजसिंह के शौर्य और प्रताप ने उसको अपनी ओर आकर्षित किया था। वह प्रायः उसी के गुणों का चिन्तन किया करती थी। उन्हीं दिनों में मुग़ल-साम्राज्य की ओर से भयानक आँधी उठी और रूपनगर पहुँच कर सब के सामने उसने एक स्वच्छ वातावरण को धूलिसात बना दिया। उस भीषण धुन्ध में नवयौवना प्रभावती बार-बार मेवाड़ की ओर देखती और राजसिंह का ही स्मरण करती।

औरंगजेब को विश्वास था कि प्रभावती मेरे प्रस्ताव को सुनकर प्रसन्नता के साथ बेगम होना स्वीकार करेगी। लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि वह मेरे प्रस्ताव को स्वीकार न करेगी तो अपनी अभिलाषा को पूरा करने के लिए उसने अपनी एक पैदल सेना के साथ चुने हुए दो हजार सवार रूपनगर भेज दिये।

रूपनगर में मुग़ल-सेना के पहुँचते ही सन्नाटा छा गया। प्रभावती के पिता में क्या साहस था कि वह अपनी लड़की का विवाह बादशाह के साथ करने से इनकार करता। यह परिस्थिति प्रभावती के सामने बड़ी भयानक हो गयी। इतनी जल्दी यह संकट उसके सामने आ जायगा, इसको उसने कभी सोचा न था। सामने आने वाली भीषण परिस्थिति से प्रभावती काँप

उठी। वह अपने पिता की निर्बलता को पहले से जानती थी। उसने सावधानी और तत्परता से काम लिया। किसी अवाञ्छनीय दुर्घटना का आश्रय लेने ने पूर्व उसने मेवाड़ के राणा राजसिंह के पास पत्र भेजने का निश्चय किया और अपने एक विश्वस्त दूत को बुलाकर अपना लिखा हुआ पत्र उसने उसको दिया। उसे समझा-बुझा कर मेवाड़ के राणा राजसिंह के पास भेज दिया। मेवाड़ में पहुँच कर उस दूत ने राणा को प्रभावती का पत्र दिया। राणा ने उसे खोल कर पढ़ा। उसमें लिखा था :

'महाराज मैं नहीं जानती कि आप मुझे जानते हैं या नहीं। लेकिन मैं आपको जानती हूँ। मैं नहीं जानती कि मेरे किन पूर्व संस्कारों के कारण, आपकी प्रतिभा और योग्यता ने मेरे हृदय पर कुछ दिन पहले से अधिकार कर रखा है। सुना है, औरंगजेब बादशाह ने मुझे अपनी बेगम बनाने का निश्चय किया है और उसी उद्देश्य से उसने अपनी एक बड़ी सेना रूपनगर में भेज दी है। इस यन्त्रता से छुटकारा पाने के लिए संसार में कोई दूसरा नहीं है, जिससे कह सकने का मुझे अधिकार हो। इसलिए यह पत्र आपके पास भेज रही हूँ। यदि अपनी इस चेष्टा में मैं असफल रही तो आत्मघात के अतिरिक्त अपनी रक्षा के लिए मेरे पास दूसरा और कोई उपाय नहीं है।'

आपकी—प्रभावती

पत्र पढ़ते ही राजसिंह गम्भीर हो उठा। उसके शरीर में मानों बिजली का स्पर्श हुआ हो। उसने औरङ्गजेब की शक्तियों का एक बार स्मरण किया और फिर अपने विश्वासी और शक्तिशाली सरदार चूड़ावत, शक्तावत, राणावत, दूदावत, झाला, परमार, हाड़ा और राठौर को बुलाकर उसने परामर्श किया। सभी ने एकमत होकर किसी भी अवस्था में प्रभावती के उद्धार का निश्चय किया।

मुग़ल सवारों का संहार

राणा राजसिंह ने राजपूतों की एक सेना तैयार की और वह स्वयं रूपनगर जाने के लिए तैयार हुआ। राजपूतों की तलवारों की झनकारों से चित्तौर का स्वाभिमान फिर जागरित हुआ। अपनी सेना लेकर राजसिंह रूपनगर की ओर रवाना हुआ। वह नगर अरावली शैलमाला की तलैटी में बसा हुआ था। बीच के लम्बे रास्ते को पाकर राजसिंह रूपनगर पहुँचा और अकस्मात् वहाँ जाकर उसने मुग़ल सेना पर आक्रमण किया। दोनों ओर की सेनाओं में बहुत समय तक युद्ध हुआ। अन्त में मुग़ल सेना की पराजय हुई। बहुत से मुग़ल सैनिक और सवार जान से मारे गये और जो बचे, वे रूपनगर से भाग गये। औरंगजेब की भेजी हुई सेना का संहार करके राजसिंह रूपनगर से अपनी सेना के साथ उदयपुर लौट गया।

विवाह का निर्णय

रूपनगर में मुग़ल-सेना का विध्वंस हुआ। बचे हुए मुग़लों ने भागकर औरंगजेब को अपने सर्वनाश का समाचार सुनाया। औरंगजेब ने इसका बदला लेने और प्रभावती के साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा की। उसके इस संकल्प से रूपनगर की अवस्था और भी भयानक हो उठी। एक छोटी-सी सेना के परास्त होने से ही औरंगजेब प्रभावती के साथ होने वाले विवाह का विचार समाप्त कर देगा, यह सर्वथा असम्भव था। रूपनगर के सभी लोग इस बात को खूब समझते थे और यह भी जानते थे कि प्रभावती के विवाह को लेकर रूपनगर में अब प्रलय के दृश्य उपस्थित होंगे। औरंगजेब किसी प्रकार मान नहीं सकता।

इस परिस्थिति को समझने में प्रभावती को देर न लगी।

अपने चाचा को बुलाकर उसने बातें कीं। उसके बाद सगों, सम्बन्धियों से परामर्श करके मेवाड़ के राणा राजसिंह के साथ प्रभावती के विवाह का निर्णय किया गया और पुरोहित को बुलाकर एक पत्र के साथ राणा राजसिंह के पास प्रभावती के विवाह का नियमानुसार प्रस्ताव भेजा गया। साँड़िनी पर बैठकर पुरोहित दिन-भर की पूरी यात्रा करके राजसिंह के दरबार में पहुँच गया और उसने प्रभावती के विवाह का पत्र राणा के हाथ में दिया। राणा ने उस पत्र को पढ़ा और उसके बाद, उसने उस पत्र को अपने सरदार चूड़ावत के हाथ में दे दिया। उसने दरबार के सभी सरदारों के सामने उस पत्र को पढ़ा और कुछ समय तक परामर्श होता रहा। अन्त में विवाह के उस प्रस्ताव को स्वीकार किया गया और पुरोहित स्वीकृति ले कर रूपनगर चला गया।

विवाह की तैयारी

यह सब को मालूम था कि अपनी सेना के परास्त होने का समाचार पाकर औरंगजेब चुप होकर न बैठेगा। यह भी सब को मालूम था कि प्रभावती के विवाह के संघर्ष में मुगल बादशाह अपनी विशाल सेना लेकर रूपनगर पर आक्रमण करेगा और उस भयंकर युद्ध में दोनों ओर का सर्व-संहार होगा। इसलिए राणा राजसिंह और उसके सरदारों में निश्चय हुआ कि राणा एक छोटी-सी सेना लेकर रूपनगर के लिए प्रस्थान करे और सरदार चूड़ावत मेवाड़ की शक्तिशाली सेना लेकर रूपनगर और आगरा के बीच में मुकाम करे। जिस समय औरंगजेब अपनी सेना के साथ रूपनगर के रास्ते पर मिले, उस समय राजपूत सेना उसके साथ एक निश्चित समय तक युद्ध करे। इसी बीच में राजसिंह प्रभावती को ब्याह करके लौट आवेगा।

चूड़ावत राणा राजसिंह की सेना का शूर-वीर सरदार था। प्रभावती के साथ राजसिंह के विवाह की समस्त योजना का निश्चय हो गया। सरदार चूड़ावत के साथ मुग़ल बादशाह से युद्ध करने के लिए पचास हजार की संख्या में सेना तैयार हुई। चुने हुए सैनिकों और सरदारों की संख्या में सेना तैयार हुई। चुने हुए सैनिकों और सरदारों की सेना को साथ में लेकर चूड़ावत वहाँ से रवाना हुआ और पूर्व निर्णय के अनुसार, राणा राजसिंह ने एक छोटी-सी सेना के साथ रूपनगर के लिए प्रस्थान किया। रूपनगर और आगरा के मार्ग पर जाकर एक विस्तृत मैदान में चूड़ावत ने अपनी सेना को रोका और दो दिनों का विश्राम देकर उसने मुग़ल बादशाह की आने वाली सेना का पता लगाने के लिए अपने कुछ आदमियों को भेजा। उन आदमियों ने लौटकर बताया कि औरंगजेब बादशाह अपने हाथी पर आ रहा है और उसके साथ एक बहुत बड़ी सेना है।

चूड़ावत बादशाह की सेना पर आक्रमण करने के उपायों को सोचने लगा। वह इस बात को सुन चुका था कि बादशाह के साथ जो सेना आ रही है, वह राजपूत सेना से बहुत बड़ी है। फिर भी चूड़ावत के साहस और उत्साह में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी। बादशाह के भारी लश्कर के आने के पहले तक राजपूत सरदार बराबर यही सोचता रहा कि वह विशाल मुग़ल सेना को रोक कर किस प्रकार युद्ध करेगा।

मुग़लों के साथ युद्ध

राजपूत सेना पहले से ही तैयार थी। बादशाह का लश्कर जब निकट आ गया तो उसने अपने आदमियों को भेजकर पता लगाया कि आगे कौन-सी सेना पड़ी है और उसके यहाँ रुकने का कारण क्या है?

आदमियों ने लौटकर बताया कि मेवाड़ के राणा राजसिंह की यह सेना है और उदयपुर से आयी है। उसने मुग़ल सेना का रास्ता रोक रखा है और ऐसा मालूम होता है कि बिना युद्ध के राजपूत सेना निकलने न देगी।

दोनों ओर के प्रतिनिधियों ने बातचीत की। लेकिन कोई सन्तोषजनक निष्कर्ष नहीं निकला। आगरा की तरफ बादशाह की सेना थी और रूपनगर की ओर उदयपुर की। बातचीत में पूरा एक दिन बीत गया। दोनों सेनाओं के अधिकारियों को मालूम हो गया कि प्रत्येक अवस्था में युद्ध अनिवार्य है। इस-लिए संग्राम के लिए दोनों ओर की सेनायें तैयार होने लगीं। कुछ समय के बाद मुग़ल सेना एक मैदान की ओर बढ़ती हुई दिखायी पड़ी। उसी समय राजपूत सेना ने आगे बढ़कर उस पर आक्रमण किया। दोनों सेनाओं में युद्ध आरम्भ हो गया। प्रातःकाल से लेकर युद्ध करते-करते सांयकाल हो गया। अँधेरा हो जाने के कारण दोनों सेनायें हटकर अपने-अपने शिविर में पहुँच गयीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही एक बार फिर बादशाह ने अपने आदमियों को भेजकर बातचीत करने की कोशिश की और अपनी फौज के निकल जाने के लिए रास्ता माँगा। परन्तु चूड़ा-वत ने रास्ता देने से साफ-साफ इनकार कर दिया। इसका परि-णाम यह हुआ कि दूसरे दिन सवेरा होते-ही फिर युद्ध शुरू हो गया। सम्पूर्ण दिन भयानक युद्ध में बीत गया। लेकिन दो में एक भी सेना पीछे की ओर न हटी। दोनों ओर के हजारों आदमी जान से मारे गये।

बादशाह औरंगजेब किसी प्रकार रूपनगर पहुँचना चाहता था। उसका उद्देश्य रास्ते में युद्ध करना न था और सरदार चूड़ावत किसी भी अवस्था में एक निर्धारित समय तक बाद-

शाही फौज को रास्ते में रोक कर युद्ध करना चाहता था। दोनों के सामने अपने-अपने उद्देश्य थे। युद्ध में दूसरा दिन भी समाप्त हो गया और रात हो जाने के कारण दोनों सेनाओं को युद्ध बन्द कर देना पड़ा।

तीसरे दिन प्रातःकाल होते ही फिर युद्ध छिड़ गया। तीसरे दिन के भयानक युद्ध में दोनों ओर के बहुत आदमी मारे गये। उनमें राजपूतों की संख्या अधिक थी। सरदार चूड़ावत ने बड़ी सावधानी से काम लिया। और उसने मुग़ल सेना को रूपनगर की तरफ बढ़ने न दिया।

चूड़ावत के साथ सन्धि

दोनों सेनाओं में तीन दिन तक बराबर युद्ध होता रहा। राजपूत सैनिकों की संख्या कम होती जाती थी। लेकिन जय-पराजय के लक्षण किसी तरफ दिखायी न देते थे। औरंगजेब जिस उद्देश्य से इतने बड़े लश्कर को अपने साथ में लेकर चला था, वह उद्देश्य रास्ते में ही नष्ट हो रहा था। उसने तीन दिनों के युद्ध में राजपूत सेना को पराजित करके निकल जाने की चेष्टा की परन्तु उसे सफलता न मिल सकी। समय निकल जाने पर रूपनगर पहुँचना व्यर्थ हो जायगा, यह सोचकर बादशाह ने चौथे दिन युद्ध आरम्भ करने के पहले ही सन्धि का प्रस्ताव किया।

चूड़ावत की सेना बहुत मारी जा चुकी थी और उसके शरीर में भी सैकड़ों घाव थे। उसने बादशाह के प्रस्ताव पर विचार किया। उसने भलीभाँति समझ लिया कि राणा राजसिंह के साथ जो समय निर्धारित हुआ था, वह समाप्त हो चुका है। राजसिंह और प्रभावती के रूपनगर में मिलने की अब सम्भावना नहीं है। रूपनगर का रास्ता यहाँ से किसी प्रकार तीन दिनों से कम का नहीं है। इस दशा में सन्धि से अपनी कोई हानि नहीं

है। प्रभावती के विवाह के लिए जो समय पहले से निश्चित् हुआ था, उसके समझने में बादशाह भूल करता है।

चूड़ावत सरदार ने सन्धि के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। युद्ध बन्द हो गया। राजपूत सेना उदयपुर की ओर और मुग़ल-सेना रूपनगर की ओर रवाना हुई। चौथे रोज़ दोपहर को जब मुग़ल-सेना रूपनगर पहुँची तो उसे मालूम हुआ कि प्रभावती के विवाह के कई दिन बीत चुके हैं और मेवाड़ का राणा राजसिंह उसे ब्याह कर अपने साथ उदयपुर ले गया है। निराश होकर बादशाह औरंगजेब रूपनगर से वापस चला गया।

मुग़ल-सेना के साथ युद्ध करके सरदार चूड़ावत भयानक रूप से घायल हो चुका था। उदयपुर पहुँचने के पहले ही उसके प्राणों का अन्त हो गया। बचे हुए राजपूत सैनिकों और सरदारों ने युद्ध के सम्बन्ध में राजसिंह को पूरा समाचार सुनाया। सरदार चूड़ावत की मृत्यु का समाचार सुनकर उसे बहुत दुःख हुआ।

राजसिंह के साथ शत्रुता

प्रभावती के विवाह के कारण राजसिंह के साथ औरंगजेब की शत्रुता पैदा हो चुकी थी। लेकिन मेवाड़ के विरुद्ध आक्रमण करना औरंगजेब के लिए बहुत सरल न था। इसके कई एक कारण थे। राजसिंह स्वयं एक शक्तिशाली शासक था और राजपूताना के दूसरे शासक और सरदार उसके बहुत-कुछ अनुयायी थे। साम्राज्य के अनेक स्थानों पर विद्रोहियों के उत्पात हो रहे थे। इसलिए औरंगजेब ने राजसिंह के प्रति तरह देना ही उस समय आवश्यक समझा।

राजपूताना के अन्य राजपूत राजाओं के साथ औरंगजेब के संघर्ष चल रहे थे। उसने मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह का

नाश किया था और उसके लड़कों का भी विनाश करना चाहता था। राजा जसवन्तसिंह के बड़े लड़के अजितसिंह ने मेवाड़ के राणा राजसिंह से सहायता की प्रार्थना की। राणा ने उसकी रक्षा का भार स्वीकार किया और उस बालक अजितसिंह को मेवाड़ मे आकर रहने का उसने परामर्श दिया। अजितसिंह अपने दो हजार सवारों के साथ मेवाड़ राज्य के लिए रवाना हुआ। जिस समय वह अरावली शैलमाला के दुर्गम पहाड़ों को लाँघते हुए जा रहा था, कूटगिरि के एक संकीर्ण पथ में मुग़ल-सेना ने आकर आक्रमण किया और अजितसिंह को कैद करने की उसने चेष्टा की। अजितसिंह के सवार सैनिकों ने मुग़ल-सेना के साथ कुछ समय तक भयानक युद्ध किया और उसे मार-काट कर वे मेवाड़ की तरफ बढ़े। मुग़ल-सेना ने कुछ दूर तक उनका पीछा किया। उसके बाद वह लौटकर चली गयी। राजसिंह ने आदर पूर्वक अजितसिंह का स्वागत किया और उसके रहने के लिए उसने अपने राज्य का कैलवाड़ा नामक स्थान दे दिया।

मेवाड़-राज्य पर आक्रमण

मेवाड़-राज्य की शक्तियाँ उन दिनों में बहुत साधारण थीं। मुग़ल सेनाओं के बार-बार आक्रमण से वह राज्य क्षत-विक्षत हो चुका था। फिर भी राणा राजसिंह की निर्भीकता के कारण वह राज्य अपना मस्तक ऊँचा किये था।

औरंगजेब मेवाड़ के राणा राजसिंह के अनेक कार्यों को अशिष्टता के रूप में देख चुका था। मेवाड़ की शक्तियों को कुछ न समझने पर भी बादशाह ने कई अवसरों पर तरह दी थी। लेकिन राजा जसवन्तसिंह के बड़े पुत्र अजितसिंह को अपने यहाँ शरण दे कर राजसिंह ने जो अपराध किया था, औरंगजेब उसे क्षमा नहीं करना चाहता था। उसने समझ लिया था कि

राजपूताना के राजाओं की ओर से जो उत्पात चल रहे हैं, उनकी जड़ में राजसिंह की सहायता है। यह समझ कर औरंगजेब ने मेवाड़ पर आक्रमण करने की तैयारी शुरू कर दी और उसने राजसिंह को गिरफ्तार करने की प्रतिज्ञा की।

औरंगजेब ने अपने प्रधान सेनापति को बुला कर कहा कि हमारी समस्त सेना को युद्ध के लिए तैयार करो, जो मेवाड़-राज्य में जाकर उसका संहार और विनाश करेगी। उदयपुर की सेना को परास्त कर राजसिंह को बंदी करेगी। मेवाड़ के इस आक्रमण में हमारी कोई शक्ति बाकी न रहेगी।

सेनापति ने सेनाओं के तैयार होने का आदेश दिया। समस्त सेनापति अपनी-अपनी सेनायें तैयार करने लगे। इस युद्ध के लिए औरंगजेब का पुत्र बंगाल से और अजीम काबुल से बुलाया गया। सुलतान मुअज्जम दक्षिण में शिवा जी के साथ युद्ध कर रहा था, बादशाह का आदेश मिलने से उस युद्ध को छोड़ कर वह चला आया और इस युद्ध में वह शामिल हुआ।

सम्पूर्ण तैयारी हो चुकने पर बादशाह औरंगजेब अपनी विशाल और प्रचण्ड सेना को लेकर मेवाड़-राज्य की ओर रवाना हुआ। राणा राजसिंह को मालूम हुआ कि मेवाड़-राज्य का विध्वंस और विनाश करने के लिए औरंगजेब अपनी प्रचण्ड सेना के साथ आ रहा है। उसने तुरन्त अपने सरदारों, सामन्तों और सेनापतियों को संग्राम के लिए तैयार होने की आज्ञा दी।

औरंगजेब ने अभी तक जितने युद्ध किये थे, यह युद्ध उनमें सब से भयानक था। मुगल बादशाह का सामना करने के लिए राजपूताना के अनेक राजा, सरदार और सामन्त अपनी-अपनी सेनाओं को ले कर उदयपुर में आये और राजसिंह के झण्डे के नीचे खड़े होने लगे। राणा संग्रामसिंह के बाद, राजपूताना के राजपूतों के संगठित होने का यह पहला अवसर था। मेवाड़ के

पश्चिम और विस्तृत पर्वत के अरण्यवासी अपनी संगठित शक्तियों के साथ, कई हजार की संख्या में धनुष-बाण ले लेकर, मुग़लों के साथ युद्ध करने के लिए उदयपुर पहुँच गये। इस प्रकार सैनिकों, सरदारों, सेनापतियों और सामन्तों के विशाल लड़ाकू जन-समूह ने उदयपुर में एकत्रित होकर जब जय-जयकार की गगन-भेदी आवाजें कीं तो उन सब का एक साथ सिंह-नाद मिल कर पर्वत माला की तलैटी में प्रवेश करके पहाड़ी चट्टानों में टकराता हुआ बड़ी दूर तक पहुँचा और उसे सुन कर औरंग-जेब की विशाल सेना ने 'अल्ला हो अकबर' की आवाज लगा कर उसका उत्तर दिया। दोनों सेनायें एक दूसरे की ओर बढ़ने लगीं।

युद्ध-क्षेत्र में दोनों सेनायें

संग्राम-भूमि में पहुँच कर राणा राजसिंह ने अपनी विशाल सेना को तीन भागों में विभाजित किया। अपने बड़े पुत्र जयसिंह के अधिकार में एक सेना देकर अरावली के शिखर पर उसे उसने खड़ा किया। धनुर्धारी गुर्जरों और भीलों की प्रचण्ड सेना राज-कुमार भीमसिंह के अधिकार में देकर पर्वत के पश्चिम ओर खड़ा किया और शेष सेना लेकर राणा राजसिंह स्वयं शत्रुओं का सामना करने के लिए जयसिंह और भीमसिंह के बीच में खड़ा हुआ। बादशाह औरंगजेब राजसिंह की यह व्यूह-रचना देख कर आगे न बढ़ा और अपनी सेना के साथ बहुत दूरी पर खड़ा रहा। इसी समय सेनापति तहव्वर खाँ की सलाह से उसने अपनी पचास हजार सेना पुत्र अकबर के नेतृत्व में देकर उसे उदयपुर की ओर भेज दिया। दोनों सेनाओं के बीच का मैदान चौदह मील लम्बा और ग्यारह मील चौड़ा था और देबारी नामक स्थान के नाम से वह प्रसिद्ध था। यहीं पर मार्च सन् १६८० ईसवी में

एकत्रित हो कर दोनों ओर की सेनायें एक दूसरे के सर्वनाश का उपाय सोचने लगीं।

भयानक संग्राम

औरंगजेब की आज्ञा से शाहजादा अकबर अपने साथ पचास हजार मुग़ल-सेना लेकर उदयपुर की तरफ़ चला गया था। उसको परास्त करने के लिए राजसिंह ने अपने पुत्र जयसिंह को उसकी सेना के साथ रवाना किया। उसने अचानक अकबर की सेना पर आक्रमण किया और बहुत-से मुग़ल सैनिक तलवारों से काट-काट कर फेंक दिये गये। इधर देवारी के मैदान में औरंगजेब की फ़ौज के साथ राजसिंह ने युद्ध आरम्भ कर दिया था। जयसिंह के मुकाबिले में अकबर की सेना परास्त होकर भागी और स्वयं अकबर ने भाग कर देवारी के मैदान में औरंगजेब के पास आकर साँस ली। अकबर ने देवारी के गिरि-मार्ग से आगे बढ़ने की कोशिश की। लेकिन राजसिंह की सेना ने भीषण रूप से उस पर आक्रमण किया और उसके हजारों आदमी मार डाले गये।

अकबर घबरा गया। उसने अपनी रक्षा का कोई उपाय न देखकर गोगुण्डा के भीतर से मारवाड़ की तरफ़ भागने की चेष्टा की। उधर बढ़ते ही राजसिंह के भयानक भील सैनिकों ने अपने बाणों की मार आरम्भ कर दी। इसी अवसर पर जयसिंह अपनी सेना के साथ वहाँ पर पहुँच गया था। उसने पीछे से अकबर की सेना पर आक्रमण किया। अकबर इस समय भीषण संकटों में फँस गया। अपनी रक्षा का कोई उपाय न दिखाई पड़ने पर उसने जयसिंह से प्रार्थना की। उसने अकबर पर दयालु होकर अपना आक्रमण रोक दिया। अकबर वहाँ से भाग कर चित्तौर के परकोटे की तरफ़ चला गया।

औरङ्गजेब की पराजय

देवारी के इस विकट संग्राम में अकबर के साथ ही दिलेर खाँ भी पराजित हुआ। इसके पश्चात् राजसिंह ने औरंगजेब पर आक्रमण किया। इस समय दोनों ओर से संग्राम भयानक हो उठा। बड़ी तेजी के साथ, राजपूत और मुग़ल सैनिक मारे जाने लगे। राजा जसवन्तसिंह के पुत्र अजितसिंह के साथ वीर दुर्गादास उदयपुर आया था। उसने इस युद्ध में मुग़लों का भयानक रूप में संहार किया। इस अवसर पर मुग़ल सेना की ओर से भीषण गोलों की वर्षा की गई। तोपों की उस मार से थोड़े समय में ही बहुत-से राजपूतों का नाश हुआ। फिर भी उन्होंने मुग़लों को आगे नहीं बढ़ने दिया। तोपों की भयङ्करता देख कर कुछ देर के लिए राजसिंह सशंकित हुआ। उसने अपने राजपूतों को एक साथ मुग़ल-सेना पर आक्रमण करने का आदेश दिया। उन्मत्त राजपूत तुरन्त आगे बढ़े और सब के सब तोपों पर टूट पड़े। औरङ्गज़ेब के तोपची मारे गये और जिन जंजीरों से बाँध कर तोपों को खड़ा किया गया था, उनके टुकड़े-टुकड़े हो गये। मुग़ल सेना का व्यूह टूट गया। राजपूत सैनिकों और सरदारों ने मुग़ल सेना के भीतर प्रवेश करके शत्रुओं का भयङ्कर रूप से संहार करना आरम्भ कर दिया। यह देख कर औरङ्गजेब घबरा गया। और अपनी बची हुई सेना को लेकर वह युद्ध-भूमि से बड़ी तेजी के साथ भागा। उसकी तोपों, अस्त्र-शस्त्रों और पताका को राजपूत सेना ने अपने अधिकार में कर लिया। औरङ्गजेब के बहुत-से हाथी राजपूतों के अधिकार में आ गये। देवारी के इस भयङ्कर युद्ध में राणा राजसिंह की विजय हुई। परन्तु इस युद्ध में उसके बहुत-से राजपूतों का संहार हुआ।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

करनाल के युद्ध का भयंकर परिणाम

[१७३९ ईसवी]

औरंगजेब के बाद मुग़ल-शासन, निर्बल शासकों की दशा, मराठों की शक्ति, राजपूतों का विनाश, पुर्तगालियों की पराजय, नादिरशाह का आक्रमण।

मुग़ल-साम्राज्य का पतन

पानीपत के युद्ध मे विजयी होने के बाद बाबर ने भारत में जिस मुग़ल-राज्य की स्थापना की थी और अकबर ने अपनी शक्ति, राजनीति एवम बुद्धिमत्ता से चारों ओर राजाओं तथा बादशाहों को जीतकर जिस राज्य को साम्राज्य बना दिया था, उसका अधःपतन औरंगजेब के शासनकाल में ही आरम्भ हो गया था।

मुग़ल-साम्राज्य के गौरव का कारण बाबर की वीरता और अकबर की राजनीति थी। इसीलिए उसका समस्त भारत में विस्तार हो चुका था और अकबर ने उत्तरी भारत, दक्षिणी भारत एवम् मध्य भारत में अपने साम्राज्य को मजबूत बनाकर, क़ाबुल और कन्धहार तक शासन किया था। वीरता से राज्य की प्रतिष्ठा होती है और श्रेष्ठ राजनीति के द्वारा उसकी रक्षा की जाती है। औरंगजेब में इन दोनों गुणों का अभाव था और उनके स्थानों पर निर्दय क्रूरता ने अधिकार कर रखा था। वह क्रूर था

अपने पिता के साथ, सगे भाइयों और बहनों के साथ और उन मुसलमानों के साथ भी, जो उसके जातीय भाई थे। इस दशा में, वह हिन्दुओं के साथ कितना क्रूर और अमानुषिक था, इसे यहाँ पर लिखना अनावश्यक मालूम होता है। बादशाह जहाँगीर और शाहजहाँ के समय मुग़ल-साम्राज्य सुरक्षित रहा। लेकिन औरंगजेब का शासन आरम्भ होते ही उसमें जिन कीटाणुओं ने प्रवेश किया, उनके द्वारा एक दिन उसका अन्त हो गया।

सन् १७०७ ईसवी में औरंगजेब की मृत्यु हुई थी। उसके पाँच लड़कों में सब से बड़ा मोहम्मद था, वह पहले ही मर चुका था। अकबर विद्रोही होकर अन्त में फ़ारस भाग गया था। इन दोनों के अतिरिक्त उसके तीन पुत्र बाकी रह गये थे—आज़म, मुअज़्ज़म और कामबख्श। औरङ्गजेब के मरते ही इन तीनों लड़कों में राज्य के लिए युद्ध आरम्भ हो गया। आज़म आगरे में मारा गया। कामबख्श की हैदराबाद में मृत्यु हो गयी। औरङ्गजेब की मृत्यु के बाद उसका लड़का मुअज़्ज़म बाकी था। इसीलिए वही बुढ़ापे में—सन् १७०७ ईसवी में बहादुर शाह के नाम से मुग़ल-साम्राज्य के सिंहासन पर बैठा।

साम्राज्य का नाटकीय दृश्य

बहादुर शाह में शक्ति, साहस और अनुभव का अभाव था। उसको उस राजनीति का ज्ञान न था, जो एक शासक के लिए आवश्यक होती है। इसीलिए उसके सिंहासन पर बैठते ही उसका राज्य निर्बल पड़ने लगा। बहादुर शाह विलासी था और उसका अधिकाँश समय महलों में ही व्यतीत होता था। विलासिता सभी प्रकार की निर्बलता की कारण होती है। बहादुर शाह दिन-पर-दिन निर्बल होता गया। राज्य पर आने वाली कठिनाइयों और विपदाओं के नाम से वह घबराता था। उसकी इन कमजोरियों ने

मुग़ल-साम्राज्य को निर्बल बनाया और उसके परिणाम-स्वरूप मरहठों, सिखों, राजपूतों और जाटों की शक्तियाँ लगातार बढ़ने लगीं। समस्त साम्राज्य में अराजकता और अशान्ति की वृद्धि हुई। मराठों के उत्पातों को उसने किसी प्रकार रोका और राजपूतों के साथ उसने सन्धि की। लेकिन सिखों के संघर्ष बराबर बढ़ते रहे और अन्त में उनके साथ युद्ध करते हुए वह सन् १७१२ ईसवी में मारा गया।

बहादुर शाह के बाद, उसका लड़का जहाँदार शाह सिंहासन पर बैठा। विलासिता में वह अपने पिता बहादुर शाह से भी आगे बढ़ गया। सिंहासन पर बैठने के बाद कुछ ही महीनों में उसके भतीजे फ़र्रुखसियर ने उसे मार डाला और १७१३ ईसवी में वह दिल्ली का बादशाह हो गया।

शासन के कार्यों में फ़र्रुखसियर सर्वथा अयोग्य और विलासी था। अब्दुल्ला खाँ और हुसेनअली खाँ नामक दो सैयद बन्धुओं ने उसके बादशाह होने में उसकी सहायता की थी। उसकी अयोग्यता और कायरता के कारण साम्राज्य का प्रबन्ध सैय्यद बन्धुओं ने अपने हाथों में ले लिया। वे दोनों भाई बहुत पहले से मुग़ल-साम्राज्य के अधिकारियों में रहे थे। फ़र्रुखसियर के शासन काल में अब्दुल्ला खाँ प्रधान मन्त्री हो गया और उसने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। वे दोनों भाई अत्यन्त चतुर और दूरदर्शी थे।

फ़र्रुखसियर नें अपने शासन-काल में हिन्दुओं के साथ अनेक अत्याचार किये और उन पर कितने ही कर लगाकर उसने अपनी क्रूरता का परिचय दिया। सैय्यद बन्धुओं के द्वारा वह मारा गया।

उन दिनों में मुग़ल-साम्राज्य के शासन की बागडोर सैय्यद बन्धुओं के हाथों में थी। फ़र्रुखसियर के पश्चात् उसके दो चचेरे भाइयों को सिंहासन पर बिठाया गया, परन्तु कुछ ही महीनों के

बाद उन्हें भी मरवा डाला गया। उसके बाद जहाँदार शाह के चचेरे भाई मोहम्मद शाह को बादशाह बनाया गया। वह पहले से ही जानता था कि सैय्यद बन्धु मुग़ल-साम्राज्य के शासन के साथ खेल कर रहे हैं। इसलिए वह सैय्यद बन्धुओं से प्रसन्न न था। लेकिन उसके सामने कोई ऐसे साधन न थे, जिनके द्वारा वह साम्राज्य का उद्धार कर सकता और वह स्वयं सैय्यद बन्धुओं से छुटकारा पाता।

सैय्यद बन्धुओं ने जो अपराध अब तक किये थे, उनसे मोहम्मद शाह भली-भाँति परिचित था और वह किसी अवसर की खोज में था। सन् १७२२ ईसवी में दक्षिणी भारत के मुग़ल-राज्य में विद्रोह हो जाने के समाचार मिले। मोहम्मद शाह अपनी सेना के साथ उस विद्रोह को शान्त करने के लिए दक्षिण की ओर रवाना हुआ और अपने साथ उसने हुसेनअली को भी ले लिया। दक्षिण में पहुँचने के पहले ही मोहम्मद शाह ने उसे मरवा दिया। यह समाचार अब्दुल्ला को दिल्ली में मिला। उसने तुरन्त मोहम्मद शाह के साथ बदला लेने की चेष्टा की और मुग़ल-साम्राज्य के सिंहासन पर उसने किसी दूसरे को बिठा दिया। मोहम्मद शाह ने दक्षिण से लौट कर उस नये सम्राट को परास्त कर कैद कर लिया और उसी मौके पर अब्दुल्ला मारा गया।

साम्राज्य की बढ़ती हुई निर्बलता

सैय्यद बन्धुओं का अन्त करके मुग़ल-सम्राट मोहम्मद शाह क शान्ति मिली। उसने निज़ामुल्मुल्क नामक एक मुग़ल सरदार को अपना प्रधान मन्त्री नियुक्त किया। उसकी अवस्था बुढ़ापे की थी और दक्षिण की एक जागीर का वह मालिक था। मोहम्मद शाह को एक ऐसी शक्ति की आवश्यकता थी, जो मुग़ल-साम्राज्य की

इस बढ़ती हुई कमजोरी के दिनों में सहायता कर सके। उसने सैय्यद बन्धुओं को मिटाकर उनके आतंक और आधिपत्य से छुटकारा पा लिया था। लेकिन साम्राज्य में जो चारों ओर विद्रोह पैदा हो रहे थे; उनके दबाने और अधिकार में लाने के लिए वह अपने आपको निर्बल पाता था। कुछ इसी प्रकार की आशाओं से उसने निजामुल्मुल्क को अपना प्रमुख मन्त्री बनाया था। लेकिन वह इस योग्य साबित न हो सका।

अवसर से लाभ उठाना कौन नहीं चाहता। सम्राट मोहम्मद शाह ने निजामुल्मुल्क पर विश्वास करके उसको अपना प्रधान मन्त्री बनाया था और उसका कर्त्तव्य था कि वह गिरते हुए दिनों में साम्राज्य की सहायता करके उसे शक्तिशाली बनाता। लेकिन साम्राज्य में होने वाले उत्पातों, विद्रोहों और युद्धों को देखकर उसने अपने स्वार्थों की रक्षा का उपाय सोचा। दिल्ली से वह हैदराबाद चला गया और अपनी जागीर को स्वतन्त्र राज्य कह कर उसने सन् १७२४ ईसवी में स्वाधीनता की घोषणा कर दी।

इन्हीं दिनों में साम्राज्य के विरुद्ध और भी कितनी घटनायें घटीं। निजाम का दमन करने के लिए मुग़ल सेनापति मुबारिज खाँ मुग़ल-सेना के साथ देहली से भेजा गया था। वह स्वयं वहाँ पर मारा गया। निजामुल्मुल्क ने मोहम्मद शाह को बिल्कुल निर्बल समझ लिया था। फिर भी उसने राजनीति से काम लिया और अपनी स्वाधीनता को सुदृढ़ तथा स्थायी बनाने के लिए उसने राजपूत राजाओं के साथ सन्धि कर ली थी। इसके साथ-साथ उसने मुग़लों के विरोध में मरहठों को उकसाया। उसके फल-स्वरूप, बाजीराव ने मालवा पर आक्रमण किया और वहाँ के शासक दयाराम बहादुर को परास्त किया। उन्हीं दिनों में अम्बेर के राजा जयसिंह को मालवा का राज्य दिया गया।

लेकिन जयसिंह ने उसे स्वीकार न किया और मालवा मरहठों के हाथों में आ गया।

ठीक यही अवस्था गुजरात-राज्य की भी हुई। अजितसिंह के पुत्र अभयसिंह ने गुजरात पर चढ़ाई की और वहाँ के अधिकारी बुलन्द खाँ को परास्त कर उसने भगा दिया। परन्तु इसी समय मरहठों ने गुजरात पर आक्रमण किया और मारवाड़ के राजा अभयसिंह से गुजरात लेकर अपने अधिकार में कर लिया।

जिन दिनों में दक्षिण और राजपूताना में इस प्रकार की उथल-पुथल मची हुई थी, उन दिनों में बंगाल बिहार और उड़ीसा में शुजाउद्दौला का प्रभुत्व चल रहा था। अयोध्या में सआदत खाँ का लड़का सफदर जंग शासक था। सआदत खाँ इस बात को भूल गया था कि उसने मुग़ल बादशाह की सहायता से ही अयोध्या का राज्य प्राप्त किया है। उस उपकार के बदले उसके हृदय में कृतघ्नता उत्पन्न हुई। उसने भारत में मुग़ल-सत्ता को मिटाने के लिए फ़ारस के विजयी बादशाह नादिरशाह को बुलाया।

मालवा और गुजरात में अपने प्रभुत्व को मजबूत बनाकर मराठों ने दूसरे प्रदेशों पर भी आक्रमण करना आरम्भ किया। उनका साहस और उत्साह बढ़ रहा था। नर्मदा नदी को पार कर मराठे उत्तरी भारत में चारों ओर फैलने लगे। उनको अवसर अनुकूल मालूम हुआ और विरोधी शक्तियाँ चारों ओर क्षीण हो रही थीं। आक्रमणकारी मराठों की संख्या लगातार बढ़ती जाती थी। उनकी विजय और सफलता के कारण दक्षिणी भारत की अनेक जातियों के लोग—जो पहले कभी युद्ध के मैदानों में पास न आये थे, भाला और तलवारें लिए हुए मराठे सैनिक सवारों के बीच में घोड़ों पर दिखायी दे रहे थे। इस प्रकार मराठों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी और उनके आक्रमणों से उत्तरी भारत

के राजपूत अक्रान्त हो उठे थे। उन मराठों के द्वारा राजपूताना के निर्बल राज्यों में भयानक विनाश और विध्वंस हुआ था।

दिल्ली पर बाजीराव की चढ़ाई

मराठों का आतंक उन दिनों में लगातार बढ़ता जाता था। सन् १७३७ ईसवी में बाजीराव प्रथम ने अपने साथ एक विशाल मराठी सेना लेकर चम्बल नदी को पार किया और दिल्ली के निकट पहुँच गया। मुग़ल-सम्राट की निर्बलता को वह जानता था। मराठों के द्वारा दिल्ली का विध्वंस देखकर बादशाह ने दिल्ली की फौज को तैयार किया और युद्ध के लिए उसने रवाना किया। रिकाबगंज के मैदान में दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। मराठों के मुकाबिले में दिल्ली की सेना ठहर न सकी और अन्त में वह भयानक रूप से पराजित हुई।

रिकाबगञ्ज में परास्त होने के कारण बाजीराव के साथ युद्ध करने के लिए दिल्ली में दूसरी एक विशाल मुग़ल-सेना तैयार हुई और मराठों से लड़ने के लिए वह रवाना हुई। बाजीराव ने अपना विचार बदल दिया और वह दिल्ली से अजमेर की तरफ चला गया और फिर ग्वालियर की ओर लौट पड़ा। यहाँ से वह फिर दिल्ली जाकर आक्रमण करना चाहता था। लेकिन उसके दिल्ली आने के पहले ही मराठों की एक विशाल सेना कोंकण में पुर्तगालियों के विरुद्ध रवाना हो चुकी थी, इसलिए बाजीराव को अपना रास्ता बदल कर कोंकण की ओर रवाना होना पड़ा।

दक्षिण में मराठों की शत्रुता आसफ़जाह के साथ थी। उसने हैदराबाद राज्य की प्रतिष्ठा की थी। दिल्ली पर बाजीराव के चढ़ाई करने पर निजाम को बाजीराव पर सन्देह पैदा हो गया था। उसने सोचा कि बाजीराव दिल्ली के पश्चात् हैदराबाद पर

आक्रमण कर सकता है। इसलिए मालवा से उसका प्रभुत्व किसी प्रकार मिटा देना चाहिए। निज़ाम बाजीराव के साथ युद्ध करने की तैयारी करने लगा।

उन्हीं दिनों में बाजीराव के आतङ्क से भयभीत होकर दिल्ली में मोहम्मद शाह ने अपने मन्त्रियों के साथ निश्चय किया कि मराठों के साथ युद्ध करने के लिए निज़ाम को फिर बुलाया जाय और उसको प्रसन्न करने के लिए आगरा और मालवा के प्रान्त निज़ाम के लड़के गाज़ीउद्दीन को दे दिये जायँ।

यही किया गया। निज़ाम ने दिल्ली आकर मराठों के साथ युद्ध की तैयारी की और एक फौज को अपने साथ लेकर वह मालवा की ओर चलता हुआ। निज़ाम ने अपने दूसरे लड़के नासिर जङ्ग को लिखकर भेजा कि जैसे भी हो, बाजीराव को दक्षिण में ही रोको। लेकिन बाजीराव पहले ही दक्षिण से चल चुका था। मालवा की ओर निज़ाम की बढ़ती हुई सेना का समाचार पाकर उसने नर्मदा नदी को पार किया और भोपाल में पहुँच कर उसने निज़ाम की फौज को रोका। तुरन्त युद्ध आरम्भ हो गया। बाजीराव ने निज़ाम की सेना को भली प्रकार घेर लिया था। इसलिए युद्ध में उसकी सेना कुछ कर न सकी। निज़ाम की सेना ने कुछ समय तक तोपों की मार की और अन्त में घबराकर उसने सन्धि की प्रार्थना की। इस सन्धि के अनुसार जनवरी सन् १७३८ ईसवी में मुग़ल बादशाह की ओर से निज़ाम ने नर्बदा नदी से चम्बल नदी तक के समस्त प्रान्त और प्रदेश बाजीराव को देकर पचास लाख रुपया वार्षिक कर देना स्वीकार किया।

पुर्तगालियों के साथ मराठों का युद्ध

ऊपर लिखा जा चुका है कि दक्षिण से बाजीराव के दिल्ली की ओर चले जाने पर चिम्मा जी अप्पा के नेतृत्व में एक बड़ी

मराठा सेना पुर्तगालियों को परास्त करने के लिए कोंकण की तरफ गयी थी। इस समाचार के मिलने पर बाजीराव ने दिल्ली के आक्रमण का निर्णय स्थगित कर दिया था और वह कोंकण पहुँच कर पुर्तगालियों के साथ युद्ध करना चाहता था। लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि एक मुग़ल सेना लेकर निज़ाम मालवा के मराठों पर आक्रमण करने के लिए जा रहा है तो उसने भोपाल में जाकर निज़ाम के साथ युद्ध किया था; जिसका विवरण ऊपर लिखा जा चुका है। निज़ाम को परास्त कर अपनी विजयी सेना के साथ बाजीराव कोंकण की ओर चला। चिम्मा जी अप्पा और बाजीराव की सेनाओं के सामने पुर्तगालियों की पराजय हुई। उनका उत्तरी प्रान्त मराठों के अधिकार में आ गया। बसई के लेने में मराठों को पुर्तगालियों के साथ भीषण युद्ध करना पड़ा और बहुत हानि उठानी पड़ी।

नादिरशाह का आक्रमण

जिन दिनों में दक्षिण और उत्तर से मुग़ल-साम्राज्य पर विद्रोहों और आक्रमणों की आँधियाँ आ रही थीं, दिल्ली के मुग़ल बादशाह मोहम्मद का ध्यान अफ़ग़ानिस्तान की ओर न था। उसे यह भी मालूम न था कि वहाँ पर क्या हो रहा है। उस समय तक काबुल और ग़ज़नी में भारत के मुग़लों का राज्य था। सन् १६४८ ईसवी से कन्दहार फ़ारस के शाह वंशजों के अधिकार में चला आ रहा था। लेकिन सन् १७२२ ईसवी में गिलज़ाई अफ़ग़ानों ने उस पर अपना अधिकार कर लिया था। सन् १७२९ ईसवी में वह विजय, प्रसिद्ध सैनिक नादिरशाह को प्राप्त हुई। उसने न केवल फ़ारस पर अपना अधिकार किया, बल्कि सन् १७३८ ईसवी में उसने कन्दहार को भी लेकर अपने राज्य में मिला लिया। उसके बाद काबुल तथा ग़ज़नी पर आक्रमण करके

उनको अपने राज्य में शामिल कर लिया। मुग़ल बादशाहों ने इनकी रक्षा का भार बहुत-कुछ पहाड़ी जातियों पर छोड़ रखा था। वे लोग किसी बाहरी आक्रमण के समय मुग़लों के इन प्रदेशों की रक्षा करते थे और उसके बदले में मुग़ल बादशाह धन से उनकी सहायता किया करते थे। पहाड़ी जातियों की इस सहायता का सम्बन्ध मुग़ल-साम्राज्य के साथ इन दिनों में टूट चुका था।

नादिरशाह ने उसके बाद भारत की ओर बढ़ने का विचार किया और नवम्बर सन् १७३८ ईसवी में सिन्ध नदी को पार कर वह अपनी सेना के साथ पञ्जाब की ओर आगे बढ़ा। नादिरशाह के आक्रमण का समाचार जब दिल्ली पहुँचा तो उसके साथ युद्ध करने के लिए कमरुद्दीन, निज़ाम और खाने-दौरान के सेनापतित्व में दिल्ली से मुग़ल सेनायें भेजी गयीं। उन सेनाओं ने शाहदरा पहुँच कर मुकाम किया। उनको वहाँ पहुँचे हुए एक महीना बीत गया। इन्हीं दिनों में लाहौर भी नादिरशाह के अधिकार में चला गया। मुग़लों की पराजय के समाचार दिल्ली में लगातार पहुँचते रहे। मोहम्मद शाह ने घबरा कर राजपूतों और मराठों से सहायता माँगी। मुग़ल बादशाह की सहायता के लिए राजपूत राजाओं की ओर से कोई नहीं गया। मराठों ने सहायता देना स्वीकार तो किया, लेकिन पुर्तगालियों के साथ कोंकण का सङ्घर्ष अभी तक चल रहा था। इसलिए उनकी कोई सहायता बादशाह को मिल न सकी। निराश होकर मोहम्मद शाह स्वयं अपनी सेना के साथ नादिरशाह के मुकाबिले में पहुँचा। करनाल में दोनों ओर की सेनाओं का मुकाबिला हुआ। बहुत समय तक भयानक संग्राम होने के बाद अन्त में मुग़ल सेनाओं की पराजय हुई।

नादिरशाह के सैनिक अधिक संख्या में घोड़ों और ऊँटों पर

सवार थे और वे लम्बी बन्दूकों की मार करते थे। भारतीय सैनिकों के पास भाला, तलवार और तीर थे। नादिरशाह के पास हलकी तोपें भी थीं। उनकी मारों से उसकी सेना ने मुग़ल सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया था।

मोहम्मदशाह का आत्म-समर्पण

मुग़ल-सेनाओं के पराजित होने पर मोहम्मदशाह की समझ में अपनी रक्षा का कोई उपाय न आया। उसने फरवरी सन् १७३९ को नादिरशाह के पास जाकर व्यक्तिगत रूप से आत्म-समर्पण किया। नादिरशाह की आज्ञा से वह कैद कर लिया गया और फ़ारस की विजयी सेना ने करनाल से चलकर दिल्ली में प्रवेश किया। मोहम्मदशाह राज्य का सर्वनाश नहीं चाहता था। इसीलिए उसने नादिरशाह के पास जाकर आत्म-समर्पण किया था। उसने आशा की थी कि इसके बाद सन्धि हो जायगी और सार्वजनिक विनाश रुक जायगा। परन्तु मोहम्मदशाह का यह अनुमान सही न निकला। नादिरशाह की फौज ने दिल्ली पहुँच कर मार-काट और लूट आरम्भ कर दी। दिल्ली राजधानी में हाहाकार मच गया। आक्रमणकारी सैनिकों ने दिल्ली नगर के प्रत्येक घर में घुसकर अमानुषिक अत्याचार किये, घरों को लूटा और बड़ी निर्दयता के साथ स्त्रियों, बच्चों और पुरुषों का वध किया।

दिल्ली का सर्वनाश

जिस सर्वनाश को बचाने के लिए सम्राट मोहम्मद शाह ने स्वयं नादिर शाह के पास जाकर अपने आपको कैदी बनाया था, उस बध, विनाश और विध्वंस को वह बचा न सका। शत्रु के हाथों में कैदी होकर उसे स्वयम् अपने नेत्रों से अमानुषिक अत्या-

चारों के वीभत्स दृश्य देखने पड़े। वह नादिरशाह की क्रूरता और निर्दयता को पहले से जानता न था। आक्रमण के पहले दिन दिल्ली की विशाल और सम्पत्तिशाली नगरी में कत्ले-आम होता रहा। घरों में घुस कर शत्रु के सैनिकों ने एक तरफ से सब को काट डाला और उस घर को लूट कर बाद में आग लगा दी। उस आग में कटे हुए स्त्री, बच्चे और पुरुष असहाय अवस्था में जलते रहे। ठीक यही अवस्था सारे शहर में की गई। दूसरे दिन शहर के प्रमुख व्यक्ति, सम्पत्तिशाली और राज्य के अधिकारी खोज-खोज कर काटे गये। उनके परिवारों को लूट कर उनके घरों पर भी आग लगा दी गई। बादशाह के फ़र्राशख़ाने में जाकर शत्रुओं ने लूट की और जो सामान ले जाने के योग्य न था; उसमें आग लगा दी। केवल उस फ़र्राशखाने में आग में जल जाने के कारण एक करोड़ रुपये की हानि हुई। नादिरशाह के इस कत्ले-आम से दिल्ली में जो स्त्री, पुरुष और बच्चे काट कर फेंक दिये गये थे, उनकी संख्या लगभग एक लाख के पहुँच गयी थी।

जिस सआदत खाँ ने आक्रमण के लिए नादिरशाह को भारत में बुलाया था, उसके साथ हैदराबाद का शासक आसफ़जाह मिला हुआ था और नादिरशाह के बुलाने में दोनों का हाथ था। दोनों ही ऊपर से मोहम्मदशाह के साथ मेल रखते थे और आसफ़जाह तो मुग़ल साम्राज्य के प्रधान मन्त्री की हैसियत से उस समय काम कर रहा था, जब नादिरशाह ने भारत में आकर आक्रमण किया था। मुग़ल-सम्राट मोहम्मदशाह की पराजय का मुख्य कारण यह हुआ कि नादिरशाह के आक्रमण करने पर उससे लड़ने के लिए जो सेनायें दिल्ली से भेजी गयी थीं, उनमें सआदत खाँ और आसफ़जाह—दोनों ही सेनापति थे। करनाल के युद्ध में दोनों ही नादिर शाह के साथ मिल गये थे। इस

विश्वासघात की भयानक अवस्था में मोहम्मदशाह के सामने आत्म-समर्पण करने के सिवा और कोई रास्ता ही न था।

नादिरशाह के साथ सन्धि

लूट-मार और सर्व संहार के बाद नादिरशाह ने मोहम्मदशाह के साथ सन्धि की और उस सन्धि के अनुसार, मोहम्मदशाह को ५० लाख रुपये वार्षिक देना स्वीकार करना पड़ा।

दो महीने तक लगातार लूट-मार के बाद कुल मिला कर बाईस करोड़ पचास लाख रुपये की सम्पत्ति नकद और हीरे-जवाहिरात मिला कर जिसमें साम्राज्य का रत्नाभूषणों से बना हुआ बहुमूल्य राज-सिंहासन भी शामिल था, दिल्ली से नादिरशाह ले गया। इसके अतिरिक्त, लूट की मूल्यवान बहुत-सी सामग्री, प्रसिद्ध शिल्पकार, हाथियों, घोड़ों और ऊँटों के झुण्ड भी दिल्ली से उसके साथ फ़ारस देश गये।

भारत में पहले भी बहुत-से विदेशी आक्रमण हुए थे और तैमूरलंग ने तो भारत में अत्याचारों ो सीमा तक पहुँचा दिया था। लेकिन नादिरशाह की क्रूरता और निर्दयता के जो भयानक दृश्य इस देश को देखने पड़े, उनकी स्मृतियाँ दो सौ वर्षों के बाद भी इस देश के निवासियों को देख कर आज भी इस देश के निवासी नादिरशाह के साथ उसकी उपमा देते हैं।

बाईसवाँ परिच्छेद

प्लासी की लड़ाई

[१७५७ ईसवी]

अँगरेजों के षड़यन्त्रों का जाल, सिराजुद्दौला और अँगरेज, नवाब के किलों पर अँगरेजों के अधिकार, मीरजाफ़र के साथ सन्धि, नवाब के साथ अँगरेजों का युद्ध, नवाब सिराजुद्दौला की पराजय।

बङ्गाल की हलचल

पिछले पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि औरंगजेब की मृत्यु के बाद, मुग़ल-साम्राज्य का जो पतन आरम्भ हो गया था, वह पतन फिर रोका नहीं जा सका। जो राज्य साम्राज्य की अधीनता में थे, वे एक-एक करके स्वतन्त्र हो रहे थे और जो सूबेदार अथवा नवाब, अलग-अलग सूबों में शासन कर रहे थे, साम्राज्य के साथ उनके राजनीतिक बन्धन बहुत निर्बल और ढीले पड़ गये थे।

नवाब अलीवर्दी खाँ बंगाल, बिहार और उड़ीसा—तीनों प्रान्तों का सूबेदार था। लेकिन उसकी अवस्था भी साम्राज्य के साथ वही थी, जो अन्य नवाबों और सूबेदारों की थी। दक्षिण में मराठों ने उन दिनों में अपनी शक्तियाँ मजबूत बना ली थीं। उन्होंने बंगाल पर आक्रमण आरम्भ कर दिये। उस समय अलीवर्दी खाँ को मुग़ल सम्राट से सहायता माँगनी पड़ी। लेकिन उसे दिल्ली से कोई सहायता मिल न सकी। इस अवस्था में उसने मालगुजारी का दिल्ली भेजना बन्द कर दिया।

भारत में इँगलैण्ड से जो अँगरेज आये थे, वे सब से पहले यहाँ के पश्चिमी किनारे पर उतरे थे। परन्तु इस देश में उन्होंने राजनीतिक अधिकार पहले-पहल बङ्गाल में प्राप्त किये। इसका कारण यह था कि भारत में उनके आने के समय पश्चिमी किनारे पर मराठों की एक शक्तिशाली जल सेना मौजूद थी और उन दिनों में उनकी जल-सेना बहुत श्रेष्ठ समझी जाती थी। मुग़लों के पास जल-सेना की कोई शक्ति न थी, जिसके कारण समुद्र के रास्ते पर आने वालों के लिए बङ्गाल का मार्ग खुला हुआ था।

बङ्गाल में पहुँच कर अँगरेजों ने हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाना आरम्भ कर दिया था। किसी को भी फोड़ने और मिलाने के कार्य में वे बड़े अभ्यासी और चतुर थे। आरम्भ से ही लोगों को मिला कर वे आसानी के साथ अपना काम चलाने लगे थे। उन्होंने हिन्दुओं को मिला कर मुसलमानों के विरुद्ध और मुसलमानों को मिला कर हिन्दुओं के विरुद्ध वातावरण उत्पन्न करने का काम खूब किया। वे जिससे अपना काम निकालना चाहते थे, उसकी वे खूब खुशामद करते थे।

खुशामद और अच्छे व्यवहारों के बहाने अँगरेजों के षड्-यन्त्र अठारहवीं शताब्दी के मध्यकालीन दिनों तक खूब चलने लगे थे और नवाब के कितने ही अधिकारियों को मिला कर उन्होंने अपने हाथों में कर लिया था। इन षड्यन्त्रों में उनके झूठे वादों का एक जाल फैला हुआ था। अपने इस जाल के बल पर उन्होंने चन्द्रनगर में किलेबन्दी आरम्भ कर दी। उनके इन कामों के समाचार जब नवाब को मालूम हुए तो उसने दरबार में बुला कर किलेबन्दी करने से उनको रोक दिया। नवाब अलीवर्दी खाँ की अवस्था बुढ़ापे की थी। १० अप्रैल सन् १७५६ ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका नाती सिराजुद्दौला नवाब हुआ।

मुग़ल-साम्राज्य की जड़ें जितनी निर्बल होती जाती थीं, अँग-रेजों के षड़यन्त्रों का जाल उतना ही फैलता जाता था। नवाब अलीवर्दी खाँ के समय अँगरेजों ने जो साजिशें शुरू की थीं, वे सिराजुद्दौला के समय अटूट षड़यन्त्रों के रूप में बदलने लगीं।

अँगरेजों के विरोधी आचरण

बङ्गाल में अँगरेजों के सभी व्यवहार नवाब और सम्राट के विरुद्ध चलने लगे। किलेबन्दी को रोके जाने के बाद भी अँगरेजों ने कुछ परवा न की और अपना काम उन्होंने बराबर जारी रखा। कलकत्ते में किलेबन्दी करने के बाद उन्होंने उसके चारों तरफ गहरी खाई खोदकर तैयार कर ली। मुग़ल-सम्राट ने बंगाल में अँगरेजी माल पर चुंगी माफ कर दी थी। उसका अँगरेजों ने बहुत अनुचित लाभ उठाना आरम्भ कर दिया था। मुग़ल-शासन की अनेक बातों में अँगरेजों ने बड़ी धाँधली मचा रखी थी, जिसमें भारतीय जनता को, भारतीय व्यापारियों को और मुग़ल साम्राज्य को लम्बी क्षति उठानी पड़ रही थी। बहुत-सी बातों में उन्होंने नवाब तथा साम्राज्य के विरुद्ध खुले तौर पर अराजकता फैला रखी थी। उनका एक षड़यन्त्र यह भी चल रहा था कि पूर्निया के नवाब शौकतजंग को सिराजुद्दौला के साथ लड़ा कर शौकत-जंग को मुर्शिदाबाद का नवाब बनाना चाहते थे। सिराजुद्दौला के बहुत-से अधीन अधिकारियों को मिला कर अँगरेजों ने सिराजुद्दौला का विरोधी बना दिया था।

अँगरेजों के इस प्रकार के आचरणों से नवाब सिराजुद्दौला अपरिचित न था। फिर भी वह अँगरेजों पर अपना नियन्त्रण रख सका। इसका कारण या तो यह था कि वह शासन नहीं जानता था अथवा अँगरेज इतने अधिक राजनीतिज्ञ थे कि उन्होंने नवाब को भुलावे में डाल रखा था। किसी भी अवस्था में नवाब

की यह दया और सहानुभूति, उसकी अयोग्यता का सुबूत दे रही थी। जो लोग नवाब सिराजुद्दौला के साथ अपराध करते थे, वे भागकर कलकत्ते में अँगरेजों के पास चले जाते थे। नवाब के अपराधियों को शरण देना अँगरेजों का खुलकर विद्रोह करना था। नवाब कलकत्ते के अँगरेजों से अनुरोध करता था कि अमुक अपराधियों को अपने यहाँ से निकाल दो, लेकिन अँगरेज नवाब के इस प्रकार के अनुरोधों की भी परवा न करते थे। इसी प्रकार के उत्पातों में सिराजुद्दौला ने एक बार कलकत्ते में अँगरेजों के विरुद्ध आक्रमण किया। अँगरेजों ने उस मौके पर नवाब का विरोध किया। कुछ इसी प्रकार की परिस्थितियों में हुगली के निकट तान्नाह के किले पर अँगरेजों के साथ नवाब का सामना हुआ। उस लड़ाई में अँगरेजों की हार हो गयी।

इसके बाद भी नवाब ने अपराधी अँगरेजों को दण्ड न दिया। वह सुलहनामे के द्वारा शान्ति बनाये रखने की चेष्टा करता रहा। यद्यपि अँगरेजों की ओर से इस प्रकार की चेष्टा कभी न हुई। कलकत्ता के अँगरेज, नवाब को छिपे तौर पर निर्बल बनाने में लगे हुए थे। उनका सब से बड़ा अस्त्र था रिश्वतें देकर, प्रलोभनों में लाकर और झूठे वादे करके नवाब के प्रमुख अधिकारियों को फोड़ना और मिला लेना।

सिराजुद्दौला की दूसरी निर्बलता

नवाब सिराजुद्दौला के सम्बन्ध में ऊपर जो बातें लिखी गयी हैं, उनको जानकर कोई भी विचारशील व्यक्ति इस बात को स्वीकार करेगा कि नवाब में शासन-शक्ति का अभाव था। उसके साथ इतनी ही कमजोरी न थी। एक भयानक निर्बलता उसके साथ यह थी कि उसकी सेना और तोपखाने में बहुत-से अँगरेज काम करते थे। कलकत्ता के मातहत अँगरेजों के विद्रोही होने पर

भी नवाब ने न तो अँगरेजों को परास्त करके उनको सभी प्रकार अयोग्य बनाया और न अपनी सेना तथा तोपखाने से अँगरेजों को ही अलग किया।

नवाब की सेना में जो अँगरेज काम करते थे, वे तो कलकत्ता के अँगरेजों से मिले हुए थे ही, उसकी सेना और दरबार के जाने कितने अधिकारी हिन्दू और मुसलमान अँगरेजों की रिश्वतों के जाल में फँसे हुए थे। इन कमजोरियों ने नवाब की शक्ति को निर्बल और छिन्न-भिन्न कर दिया था। उसकी भीतरी अवस्था से अँगरेज पूरी तौर पर परिचित थे, इसलिए नवाब की शक्ति का उनको कुछ भी भय न था।

एक बात और भी दुर्भाग्य की नवाब के साथ चल रही थी। उसका कोई साथी न था। मुग़ल-साम्राज्य के खम्भे अपने-आप हिल रहे थे। इसलिए अँगरेजों को उस तरफ का भी कोई भय न था। इस अनुकूल परिस्थिति में अँगरेज सिराजुद्दौला को मिटा कर बङ्गाल में अपनी सत्ता स्थापित करना चाहते थे।

अङ्गरेजों के साथ संघर्ष

अँगरेजों के उत्पातों और विद्रोहों से ऊबकर नवाब ने उनको परास्त करने का विचार किया और अपनी सेना लेकर वह १६ जून सन् १७५६ ईसवी को कलकत्ता पहुँच गया। अँगरेजों ने अपनी सेना लेकर नवाब की सेना का सामना किया। दो दिनों तक दोनों ओर से संघर्ष रहा और अन्त में अँगरेजों की पराजय हुई।

नवाब की सेना ने उसके बाद कलकत्ता में अँगरेजों की कोठी पर २० जून को धावा मारा और वहाँ पर जो अँगरेज मिले, वे कैद कर लिये गये। लेकिन अन्त में नवाब ने उनको छोड़ दिया। २४ जून को नवाब कलकत्ता से अपनी राजधानी के लिए रवाना

हुआ और ११ जुलाई सन् १७५६ ईसवी को वह मुर्शिदाबाद पहुँच गया।

राजमहल की लड़ाई

कलकत्ता से लौटे हुए नवाब सिराजुद्दौला को अभी तीन महीन ही बीते थे, वहाँ के अँगरेजों ने फिर एक नया उत्पात खड़ा कर दिया। पूर्निया का नवाब शौकतजंग उनके हाथों में था और उन्होंने उसको बड़े-बड़े लालच दे रखे थे। उनके उभारने से नवाब शौकतजंग ने सिराजुद्दौला के साथ युद्ध छेड़ दिया। १६ अक्टूबर सन् १७५६ ईसवी को राजमहल नामक स्थान पर दोनों नवाबों की सेनाओं का सामना हुआ।

नवाब शौकतजंग की अपनी कोई शक्ति न थी। जिनके उभारने से उसने यह लड़ाई आरम्भ की थी, वे समय पर काम न आये। सिराजुद्दौला के मुकाबिले में शौकतजंग की सेना कमजोर पड़ने लगी और अन्त में उसकी पराजय हुई। शौकतजंग स्वयं उस लड़ाई में मारा गया और उसके स्थान पर युगलसिंह पूर्निया का नवाब बनाया गया।

कलकत्ता से भागे हुए अङ्गरेज

२० जून को नवाब की सेना ने जिन अँगरेजों को कैद किया था, नवाब ने उनको छोड़ दिया था। वे सभी अँगरेज कलकत्ता छोड़ कर भागे और जहाज में बैठ कर बङ्गाल की खाड़ी के पास फल्ता नामक स्थान पर चले गये। यह स्थान कलकत्ता से २० मील की दूरी पर हुगली नदी पर बसा हुआ था। वहाँ पर वे अँगरेज छः महीने तक ठहरे रहे।

फल्ता से इन अँगरेजों ने मद्रास के अँगरेजों को लिखा और अपनी सहायता के लिए उन लोगों ने वहाँ से एक सेना मँगाई।

इसके साथ-साथ इन लोगों ने नवाब सिराजुद्दौला के सेनापतियों, दरबारियों और सामन्तों को फोड़ना और मिलाना आरम्भ किया। एक ओर वे नवाब के साथ अनेक प्रकार के षड़यन्त्रों की रचना करते थे और दूसरी ओर उन्होंने प्रार्थना-पत्र भेज कर नवाब से कलकत्ता आ जाने की आज्ञा माँगी। नवाब ने उनकी माँग को स्वीकार कर लिया और उनको कलकत्ता चले जाने का आदेश दे दिया।

२० जून सन् १७५६ ईसवी को कलकत्ता से अँगरेज निकाले गये थे। यह समाचार मद्रास के अँगरेजों को १६ अगस्त को मिला। उनकी सहायता के लिए मद्रास से आठ सौ अँगरेज और तेरह सौ भारतीय सिपाही सेनापति क्लाइव की अधीनता में भेजे गये। फल्ता पहुँच कर अँगरेज अधिकारियों ने नवाब के पास पत्र भेजे और उनमें उन्होंने नवाब को अनेक प्रकार की धमकियाँ दीं।

नवाब के किलों पर अधिकार

कलकत्ता से बाहर कुछ दूरी पर बजबज का एक पुराना और मजबूत किला था और उसके चारों ओर गहरी खाई थी। राजा मानिकचन्द उस किले का नवाब सिराजुद्दौला की तरफ से अधिकारी था, जिसे अँगरेजों ने पहले ही मिला लिया था। अँगरेजी सेना के दो सौ साठ सैनिकों ने उस किले पर आक्रमण किया। मानिकचन्द के साथ के दो हजार सैनिकों ने उनका मुकाबिला किया। थोड़ी-सी लड़ाई के बाद मानिकचन्द अपनी सेना के साथ पीछे हट गया और अँगरेज सैनिकों ने २९ दिसम्बर को उसमें प्रवेश करके अपना अधिकार कर लिया। उसके बाद अँगरेजों ने टानाह और कलकत्ता के किलों को भी अपने हाथों में लेकर २ जनवरी सन् १७५७ ईसवी को उन पर उन्होंने अपने झण्डे फहराये।

नवाब के किलों के अधिकारियों को फोड़ कर मिला लेने में

अँगरेजों को बहुत सफलता मिली। अनेक प्रकार के वादों झूठे प्रलोभनों और लालच देकर अँगरेज अधिकारी किलों के अधिकारियों को मिला लेते थे और जब अँगरेजों का आक्रमण होता था तो वे एक साधारण लड़ाई के बाद युद्ध से हट जाते थे। हुगली के किले की दशा तो अन्य किलों से भी आश्चर्यजनक साबित हुई। वहाँ के किले के अधिकारी ने किले को अरक्षित छोड़ दिया और अँगरेजों ने ११ जनवरी को उस पर अधिकार कर लिया। १२ जनवरी से १८ जनवरी तक पूरे एक सप्ताह अँगरेजी सैनिकों ने हुगली नगर में लूट-मार की।

सन्धि का षड्यन्त्र

नवाब सिराजुद्दौला की यह निर्बलता और अयोग्यता थी कि उन विदेशी अँगरेजों ने, जिनकी कोई सत्ता न थी, मदारी बनकर उसे बन्दर की तरह नाचने के लिए विवश कर रखा था। कई एक किलों पर अँगरेजों के अधिकार हो जाने के समाचार नवाब को मिले। उसे यह भी मालूम हुआ कि मेरे किले के अधिकारियों ने मेरे साथ विश्वासघात किया है और अँगरेजों ने रिश्वतें देकर उनसे यह विश्वासघात कराया है।

इन सब बातों के मालूम होने पर भी नवाब ने बिना किसी संघर्ष के अँगरेजों से निपटारा करने की कोशिश की। राजनीतिज्ञ अँगरेजों ने इसका लाभ उठाया और अपनी माँगों को पेश करते हुए उन्होंने कुछ शर्तों के साथ सन्धि कर लेना स्वीकार किया। साथ ही सन्धि की बातों का निर्णय करने के लिए उन्होंने सिराजुद्दौला को कलकत्ता बुलाया।

४ फरवरी सन् १७५७ ईसवी को सिराजुद्दौला कलकत्ता पहुँच गया। अँगरेजों ने आवश्यकता से अधिक आदर देकर नवाब को अमीचन्द के बाग में ठहराया और उस पर आक्रमण

करने के लिए वे एक षड़यन्त्र की रचना करने लगे। अँगरेजों की अनेक शर्तों से भरी हुई सन्धि को नवाब ने स्वीकार कर लिया और उसे यह भी स्वीकार करना पड़ा कि मुर्शिदाबाद में अँगरेजों का एक एलची रहा करेगा।

नवाब के विरुद्ध खुले तौर पर विद्रोह करने के लिए अँगरेज कोशिश कर रहे थे। मुर्शिदाबाद में एलची रखे जाने की शर्त स्वीकार करवा कर अँगरेजों ने अपने उद्देश्य की पूर्ति का सीधा रास्ता खोल लिया।

मीरजाफ़र के साथ निर्णय

सिराजुद्दौला की अयोग्यता और निर्बलत ।का अँगरेजों ने बहुत लाभ उठाया। उनका उद्देश्य कुछ और था। वे चाहते थे कि सिराजुद्दौला की नवाबी को मिटाकर उसके स्थान पर ऐसे आदमी को बिठाया जाय, जिसमें अँगरेजों को अपने उद्देश्य के लिए आगे बढ़ने में अधिक सुभीता मिले। वे असल में उसे नवाब बनाना चाहते थे, जो स्वयं अँगरेजों की अधीनता में रहकर अपना शासन करे। मीरजाफर नवाब की सेनाओं में प्रधान सेनापति था। उसके साथ अँगरेजों की साजिश पहले से चल रही थी। उन्होंने मीरजाफर को नवाब बनाने का निश्चय किया। ऐसा करने में अँगरेजों के दो लाभ थे। एक तो यह कि मीरजाफर स्वयं नवाब बनने के लिए तैयार था और इसके लिए वह अँगरेजों की शर्तों को मन्जूर करता था। दूसरी बात यह भी थी कि नवाब सिराजुद्दौला की तरफ से वही सेना लेकर युद्ध के लिए आएगा।

मीरजाफर सिराजुद्दौला के नाना अलीवर्दी खाँ का बहनोई था। अँगरेजों ने उसके साथ एक गुप्त सन्धि की। उस सन्धि में अँगरेज़ों की सभी शर्तों को उसने स्वीकार किया। दोनों ओर से

निश्चय हुआ कि अँगरेज सिराजुद्दौला के साथ युद्ध करेंगे और मीरजाफ़र उस युद्ध में अँगरेजों की सहायता करेगा। सिराजुद्दौला के पराजित होने पर उसके स्थान पर मीरजाफ़र नवाब होगा और इसके बदले में वह अँगरेजों को सभी प्रकार के व्यावसायिक अधिकार प्रदान करेगा। इसके साथ-साथ सिराजुद्दौला से लड़ने में अँगरेजों का जो व्यय होगा, मीरजाफ़र उसको अदा करेगा।

सिराजुद्दौला के साथ युद्ध

मीरजाफ़र के साथ सन्धि करने के बाद अँगरेजों ने सिराजुद्दौला पर आक्रमण करने की तैयारी की। १३ जून सन् १७५७ ईसवी को क्लाइव अपनी सेना लेकर कलकत्ता से रवाना हुआ। सिराजुद्दौला अपनी सेना के साथ प्लासी नामक स्थान में मौजूद था। यह स्थान मुर्शिदाबाद से २० मील की दूरी पर था। २३ जून को दोनों ओर की सेनाओं का सामना हुआ। सिराजुद्दौला की सेनाओं में मीरजाफ़र प्रधान सेनापति था। उसके सिवा तीन सेनापति और थे। पैंतालीस हजार सेना मीरजाफ़र, यार लुत्फ़ खाँ और राजा दुर्लभराय के अधिकार में थी। बारह हजार सेना मीरमदन के नेतृत्व में थी। सिराजुद्दौला की इस विशाल सेना के साथ ५३ तोपें भी थीं। अँगरेजों के साथ कुल मिलाकर बत्तीस सौ सैनिक और १० तोपें थीं।

युद्ध आरम्भ हो गया और कुछ समय के बाद ही सिराजुद्दौला को कुछ दूसरे ही दृश्य दिखायी देने लगे। मीरजाफ़र के साथ-साथ राजा दुर्लभराय और यार लुत्फ़ खाँ भी अँगरेजों के हाथ बिक चुके थे। कुछ समय तक युद्ध साधारण रूप से चलता रहा और उसके बाद एकाएक मीरजाफ़र, दुर्लभराय, तथा यार-लुत्फ़ खाँ अपनी पैंतालीस हजार सेना के साथ अँगरेजों में

जाकर मिल गये। इस समय अँगरेजी सेना ने जोर के साथ सिराजुद्दौला की बाकी सेना पर आक्रमण किया। सिराजुद्दौला का विश्वासी सेनापति मीरमदन लड़ाई में मारा गया। अब सिराजुद्दौला के साथ कोई सेनापति न रह गया था। मीरजाफर के भयानक विश्वासघात से उसका साहस भंग हो गया। वह अपने हाथी पर बैठा हुआ मुर्शिदाबाद की तरफ भाग गया। युद्ध-क्षेत्र से उसके हटते ही उसकी बाकी सेना इधर-उधर भाग गयी। युद्ध में क्लाइव की विजय हुई।

सिराजुद्दौला को पराजित कर अँगरेजी सेना मुर्शिदाबाद पहुँची और वहाँ के खजाने को लूटकर कलकत्ता की अँगरेजी कमेटी के सामने जो चाँदी के रुपये जमा किये गये; उनकी संख्या बहत्तर लाख एकहत्तर हजार छः सौ छाछठ थी। इतना बड़ा खजाना इसके पहले कभी अँगरेजों को एक साथ लूट में न मिला था। २४ जून को आधी रात के समय सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद के महल से भागा और भगवान गोला के पास मीर कासिम के द्वारा गिरफ्तार कर मुर्शिदाबाद वापस लाया गया। २ जुलाई सन् १७५७ को क्लाइव की आज्ञा से मुहम्मद बेग नामक एक सरदार के द्वारा उसको कत्ल करवा दिया गया।

इस परिस्थिति में और इन उपायों द्वारा पलासी के सुप्रसिद्ध मैदान में हिन्दुस्तान के अन्दर अँगरेजी साम्राज्य की नींव रक्खी गई और फिर भारत में कोई ऐसी संगठित शक्ति न रही जो अँगरेजों को देश के बाहर निकालने के समर्थ होती।

तेईसवाँ परिच्छेद

पानीपत का तीसरा युद्ध

[१७६१ ईसवी]

देश में उत्थान और पतन के ज्वारभाटे, निर्बल मुग़ल-साम्राज्य, भारत में अफ़ग़ानों के आक्रमण, मराठों के साथ अफ़ग़ानों का युद्ध, मराठों की पराजय ।

मराठों की शासन-सत्ता

शिवा जी के समय दक्षिण भारत में मराठों की शासन-शक्तियाँ बहुत उन्नति पर पहुँच गयी थीं। परन्तु शिवा जी के मरने के बाद, उसका लड़का सम्भा जी उस विस्तृत राज्य की रक्षा न कर सका। उसके मारे जाने के बाद, सन् १६८९ से १७०८ ईसवी तक उसके भाई राजाराम ने शासन किया।

सन् १७०८ ईसवी में साहू मराठा राज्य के सिंहासन पर बैठा। उसमें शासन की योग्यता न थी। उसकी अकर्मण्यता और विलास-प्रियता ने उसको मुग़ल-शासन की अधीनता में रहने के लिए विवश कर दिया था। उसके मरने के पश्चात् पेशवाओं का शासन आरम्भ हुआ। सब से पहला पेशवा बाला जी विश्वनाथ राव था। उसके पश्चात् छै पेशवा और भी हुए। बाला जी विश्वनाथ ने सफलतापूर्वक शासन किया और खानदेश, बरार, बीदर, बीजापुर, औरंगाबाद के राज्यों से उसने कर वसूल

किये। उसने मराठा सरदारों में एकता उत्पन्न की और मराठा संघ की स्थापना की।

बाला जी विश्वनाथ राव का पुत्र बाजीराव ने सन् १७२० ईसवी में पेशवा का पद प्राप्त किया। वह रणकुशल और राजनीतिज्ञ था। उसने मराठों की शक्तियाँ बढ़ा दी थीं और मुग़ल-सम्राट मोहम्मद शाह ने मालवा तथा गुजरात उसे दे दिया था। सन् १७४० ईसवी में बाजीराव का लड़का बाला जी बाजीराव पेशवा की गद्दी पर बैठा। विलासी होने पर भी वह राज्य के प्रबन्ध में चतुर था। उसके शासन-काल में मराठा राज्य ने बड़ी उन्नति की थी। सन् १७५८ ईसवी में पेशवा के भाई रघुनाथराव ने अफ़ग़ानों को पराजित करके उनसे पंजाब छीनकर अपने राज्य में मिला लिया था। दक्षिण भारत में पेशवा के भतीजे सदाशिव राव भाऊ ने निज़ाम से कई एक जिलों को छीनकर अपना अधिकार कर लिया था और मैसूर तथा कर्नाटक के राजाओं को अधीनता स्वीकार करने के लिए उसने विवश किया था। सन् १७६० ईसवी में मराठों की शक्तियाँ चरम सीमा पर पहुँच चुकी थीं।

मुग़ल-साम्राज्य की अवस्था

मुग़लों का शासन उन दिनों में बहुत बिगड़ी हुई दशा में था। उसका पतन औरंगज़ेब के शासन-काल में आरम्भ हुआ था और उसके बाद फिर वह लगातार गिरता गया। अनेक छोटे-बड़े राजाओं और नरेशों के सिवा, अवध के नवाब और दक्षिण के निज़ाम अपने-अपने राज्यों के स्वतन्त्र शासक बन गये थे। बंगाल का सम्बन्ध-टूटा न था, लेकिन वहाँ के नवाब ने मालगुजारी भेजना कई साल से बन्द कर दिया था। दिल्ली के निकट भरतपुर के जाट नरेश और रामपुर के रुहेला नवाब

अपने राज्यों को स्वाधीन बना रहे थे। दक्षिण में मराठों की शक्तियाँ स्वतन्त्र होकर अत्यन्त प्रबल हो चुकी थीं। भारत के पश्चिम में सिंध और पंजाब के प्रान्त अफ़ग़ानों के अधिकार में हो चुके थे। पूर्व में बंगाल और बिहार की अवस्था बहुत भयानक थी। वहाँ पर अँगरेजों के षड्यन्त्रों का जाल फैला हुआ था और वहाँ के नवाबों की सत्ता पत्तों की तरह हिल रही थी।

इस प्रकार सम्पूर्ण भारत में उत्थान और पतन का एक भयानक संघर्ष चल रहा था और उस संघर्ष में मुग़ल शासन डूबता हुआ दिखायी देता था। देश की इन परिस्थितियों में दक्षिण में मराठों का आतंक बढ़ रहा था, पूर्व में अँगरेजों के भीषण षड्यन्त्र फैल चुके थे और पश्चिम में अफ़ग़ानों के आक्रमण चल रहे थे। उत्तर में राजपूतों की दशा एक विचित्र हो रही थी। समस्त देश की अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी।

अफ़ग़ानोंके आक्रमण

अफ़ग़ानिस्तान के बादशाह नादिर शाह ने सन् १७३८ ईसवी में भारत में आक्रमण किया था और दिल्ली का सर्वनाश करके लूट की अपरिमित सम्पत्ति के साथ दूसरे वर्ष वह अपने देश को लौट गया था। सन् १७४७ ईसवी में उसका क़त्ल हो गया। अफ़ग़ानों में अब्दाली वंश के सरदार अहमद शाह ने कन्दहार का राज्य प्राप्त करके वहाँ के अन्य प्रदेशों पर अधिकार कर लिया और भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया। कन्दहार से वह सन् १७४८ ईसवी में रवाना हुआ। उसके भारत में पहुँचते ही दिल्ली के शाहजादा अहमद शाह ने सरहिन्द नामक स्थान में उसका सामना किया। उस लड़ाई में वह बुरी तरह पराजित हो कर भारत से भाग गया।

अहमद शाह के लौट जाने के बाद एक महीने में मुग़ल सम्राट

मोहम्मद शाह की मृत्यु हो गयी और उसका लड़का जिसका नाम भी अहमद शाह था, गद्दी पर बैठा। उसके सिंहासन पर बैठते ही अहमद शाह अब्दाली ने जो बाद में अहमद शाह दुर्रानी के नाम से प्रसिद्ध हुआ, भारत में दूसरा आक्रमण किया। मुग़ल-साम्राज्य की भीतरी परिस्थितियाँ उन दिनों में बहुत खराब हो गयी थीं। इसलिए उसका बादशाह युद्ध न कर सका और उसे मुलतान, सिन्ध और पंजाब के सूबे अहमद शाह अब्दाली को देने पड़े। सन् १७५४ ईसवी में मुग़ल-सम्राट अहमद शाह की मृत्यु हो गयी और उसके स्थान पर जहाँदार शाह के लड़के आलमगीर द्वितीय को सिंहासन पर बिठाया गया।

निज़ाम का देहिता गाज़ीउद्दीन मुग़ल-साम्राज्य का प्रधान मन्त्री था। उसमें और रुहेलों के सरदार नजीबुद्दौला में ईर्षा चल रही थी। दोनों ही आलमगीर पर अपना-अपना प्रभुत्व रखना चाहते थे। गाज़ीउद्दीन ने मुलतान पर आक्रमण किया और अहमद शाह अब्दाली के अधिकारी को कैद कर लिया। यह समाचार सुनकर अहमद शाह ने तीसरी बार भारत में सन् १७५६ ईसवी में आक्रमण किया। उसके आने का समाचार सुनकर गाज़ीउद्दीन दिल्ली से भाग कर मराठों के पास चला गया।

दिल्ली में आकर अहमद शाह ने लूट-मार की और गाज़ीउद्दीन के स्थान पर नजीबुद्दौला को प्रधान मन्त्री बनाकर वह अपने देश को लौट गया। उसके चले जाने पर गाज़ीउद्दीन ने पेशवा के भाई रघुनाथराव की सहायता से आलमगीर द्वितीय को मरवा डाला और उसके स्थान पर कामबख्श के लड़के को सिंहासन पर बिठाया। नजीबुद्दौला दिल्ली से भाग गया और गाज़ीउद्दीन फिर प्रधान मन्त्री बन बैठा।

इन्हीं दिनों में रघुनाथ राव ने अपनी सेना लेकर पञ्जाब में हमला किया और अफ़ग़ान सेना को परास्त कर उसने उस प्रान्त

पर अपना अधिकार कर लिया। इन दिनों में महाराष्ट्र, गुजरात, मालवा, मध्य भारत, उड़ीसा और पञ्जाब में मराठों का फण्डा फहरा रहा था। दिल्ली से भाग कर अपना सारा समाचार नजीबुद्दौला ने अहमद शाह अब्दाली के पास भेजा और उन्हीं दिनों में मराठों ने पञ्जाब पर अधिकार कर लिया था। इसलिए सन् १७५९ ईसवी में फिर एक बार भारत में आक्रमण करने के लिए अहमद शाह अब्दाली रवाना हुआ और पञ्जाब पर अधिकार कर के वह दिल्ली की ओर बढ़ा।

अफ़ग़ानों और मराठों की सेनायें

उन दिनों में मराठा सरदार सदाशिव राव भाऊ और विश्वास राव ने दिल्ली में अधिकार कर लिया था और कामबख्श के लड़के को हटा कर शाहआलम को इसी बीच में दिल्ली के सिंहासन पर बिठाया था।

अहमद शाह के आक्रमण का समाचार पूना में पहुँचा। उसके साथ युद्ध करने के लिए मराठा सरदार सदाशिव राव भाऊ एक विशाल सेना लेकर रवाना हुआ, जिसमें सत्तर हजार सवार और पन्द्रह हजार पैदल सैनिक थे। उनके सिवा उसके साथ नौ हजार चुने हुए युद्ध-कुशल और भी सैनिक थे जो एक मुस्लिम सरदार के नेतृत्व में थे और जिन्होंने फ्राँसीसी सेना में रह कर लड़ाई का काम सीखा था। पेशवा का पुत्र विश्वास राव भी उसके साथ था।

अहमद शाह अब्दाली के साथ अफग़ानों और मुग़लों को मिला कर सेना में तिरपन हजार सवार और लगभग चालीस हजार पैदल सैनिक थे, उनमें भारतीय मुसलमानों की सेनायें भी शामिल थीं।

पानीपत के ऐतिहासिक युद्ध-क्षेत्र में दोनों ओर की सेनायें

एकत्रित हुईं। लेकिन किसी ओर से आक्रमण नहीं हुआ। एक-एक करके कई दिन बीत गये। दोनों ओर की सेनाओं ने अपने-अपने शिविर बना लिए थे। युद्ध को रोककर दोनों ओर के सेना नायक एक दूसरे की शक्तियों को तौलने में लगे थे और पानीपत का यह तीसरा युद्ध धार्मिक युद्ध अथवा हिन्दू-मुस्लिम युद्ध का रूप धारण करता जा रहा था।

रसद की कठिनाई

अहमद शाह अब्दाली को इस अन्तिम बार आक्रमण करने के लिए बुलाया गया था और आरम्भ से ही उसमें धार्मिक अथवा जातीय मनोवृत्तियाँ काम करती हुई दिखाई पड़ने लगी थीं। मराठों को यह मालूम हो गया था कि भारत की मुस्लिम शक्तियाँ अहमद शाह का साथ देंगी। इसीलिए भरतपुर के जाट राजा से और राजपूत राजाओं से मराठों ने सहायता माँगी थी। लेकिन किसी से कोई सहायता उनको न मिली। जाटों और राजपूतों ने तटस्थ रह कर दूर से ही तमाशा देखा। वे युद्ध के पास नहीं आये। इन सहायताओं के न मिलने का कारण था। भारत में मुग़ल-साम्राज्य के निर्बल पड़ जाने पर मराठों ने संगठित हो कर अपनी शक्तियाँ मजबूत बना ली थीं और नादिरशाह के आक्रमण के पहले ही उन्होंने भारत के अनेक निर्बल राज्यों पर आक्रमण करके उनका विनाश किया था। इस विध्वंस और विनाश का दृश्य उत्तर भारत के राजपूत देख चुके थे और मराठों की उन्नत शक्तियों से वे अब तक भयभीत थे।

पानीपत के इस तीसरे युद्ध को जीतने के लिए एक योजना यह भी थी कि सेनाओं को रसद मिलने में बाधा डाली जावे। यह योजना दोनों ओर काम में लायी गयी थी। लेकिन मराठों को इसमें सफलता न मिली। इसका कारण यह था कि उनके

साथ मराठों के सिवा और कोई न था। युद्ध के पहले उन्होंने 'हिन्दुस्तान के लिए' के नारे लगाये थे। लेकिन उनके कार्यों से बाकी हिन्दुओं को जाहिर होता था कि वे देश में हिन्दुओं के नाम पर मराठी सत्ता कायम करना चाहते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि मराठों के सिवा हिन्दुओं में किसी ने उनका साथ न दिया।

रसद की रोक में मुसलमानों को सफलता मिली। मराठा सेना को रसद मिलने के जितने रास्ते थे, वे सब रोक दिये गये। और मराठा सेना के पास कहीं से भी रसद का आना बन्द हो गया। दक्षिण में हैदराबाद में और दूसरी रियासतें मुसलमानों की थीं, उनके द्वारा दक्षिण से मराठा सेना के पास जो रसद आ सकती थी, वह भी बन्द हो गयी। अगर कहीं से रसद आती थी तो वह रास्ते में लूट ली जाती थी। मराठा सेना के सामने यह भयङ्कर विपद थी। लेकिन रसद की योजना में मराठों की असफलता के कारण अहमद शाह अब्दाली के साथ की सेनाओं के सामने रसद की कोई परेशानी न थी। इसलिए वह युद्ध को कुछ दिनों तक रोकना चाहता था। जो आक्रमण होते थे, वे साधारण युद्ध के बाद बन्द हो जाते थे।

युद्ध का आरम्भ

रसद की कोई व्यवस्था न हो सकने पर मराठों के सामने भीषण कठिनाई पैदा हो गई। विवश होकर मराठों ने युद्ध करने का निश्चय किया। अब्दाली को सूचना मिली कि मराठों की सेना आ रही है। अपनी सेना को तैयार करके वह आगे बढ़ा। उसकी दाहिनी ओर रुहेलों की सेना थी और बाईं ओर नजीबुद्दौला और शुजाउद्दौला अपनी सेनाओं के साथ मौजूद थे।

६ जनवरी सन् १७६१ ईसवी को पानीपत के ऐतिहासिक

मैदान में दोनों सेनाओं का युद्ध आरम्भ हुआ। सब से पहले बन्दूकों और तोपों की मार शुरू हुई। उसके कुछ समय बाद दोनों सेनाओं ने आगे बढ़ कर एक दूसरे पर आक्रमण किया। उस घमासान युद्ध में मराठी सेना कुछ दूर तक अफग़ान सेना को पीछे की ओर ढकेल कर ले गयी और शत्रुओं के आठ हजार सैनिकों को उसने काट कर फेंक दिया। इसके बाद अहमद शाह की सेना फिर आगे की ओर बढ़ी और उसने मराठों के साथ भयानक मार की। सदाशिव राव भाऊ और युवक विश्वास राव ने अब्दाली की सेना पर जोर के साथ आक्रमण किया। उस समय मराठों की मार को देख कर अब्दाली की सेना का साहस टूटने लगा। लेकिन पठान आसानी के साथ युद्ध से हटने वाले न थे। उन्होंने पीछे की ओर हट कर मराठों पर भीषण आक्रमण किया। उसमें बहुत-से मराठा सैनिक एक साथ मारे गये। युद्ध की यह अवस्था देख कर सदाशिव राव भाऊ अपनी सेना के साथ भयंकर मार-काट करता हुआ आगे बढ़ा और उसकी सेना ने अब्दाली के बहुत-से आदमियों को काट कर गिरा दिया। शाहनवाज खाँ वजीर का जवान लड़का इसी समय युद्ध में मारा गया और घायल होकर घोड़े के गिर जाने के कारण वह स्वयं पैदल हो गया।

युद्ध की भयंकरता बढ़ती जा रही थी और दोनों ओर की सेनायें भीषण मार करने में लगी थीं। बड़ी तेजी के साथ दोनों ओर के सैनिक मारे जा रहे थे और उनका रक्त भूमि पर गिर कर बह रहा था। युद्ध की परिस्थिति अत्यन्त विकराल हो गयी थी। अफग़ान सेना का मध्य भाग निर्बल पड़ने लगा और मराठों के जोर मारने पर वह बार-बार पीछे हट जाता। शाहनवाज खाँ के पैदल हो जाने पर मराठों ने उसको मारने की कोशिश की। उसी समय उसकी रक्षा के लिए नजीबुद्दौला अपनी सेना के साथ

आगे बढ़ा। उसको आगे बढ़ते हुए देख कर सदाशिव राव भाऊ कुछ शूर-वीर मराठों के साथ सामने आया। उस स्थान पर युद्ध की दशा और भी भयानक हो उठी।

अब्दाली की सेना का मध्य भाग कमजोर पड़ते ही दाहिना और बाँया भाग भी निर्बल पड़ने लगा। यह देख कर अहमद शाह अब्दाली ने अपनी सेना को सम्हाने की चेष्टा की और उसके बाद उसके सैनिकों ने फिर भयंकर मार आरम्भ की। प्रातःकाल होते ही युद्ध आरम्भ हुआ था और दोपहर के बाद तीसरे पहर तक लड़ाई की एक-सी हालत चलती रही। दोनों ओर के सैनिकों को जरा देर के लिए विश्राम लेने अथवा मार बन्द करने का अवसर न मिला। कट कर गिरने वाले घायलों की भयानक चीत्कारों, मरने वालों की कराहने की आवाजों, युद्ध के मारू बाजों, नरसिंहों तथा बन्दूकों के भयानक स्वरों और दोनों ओर के वीर सैनिकों की ललकारों ने एक साथ मिल कर पानीपत के इस युद्ध-क्षेत्र को भयंकर बना दिया था।

संग्राम की इस भीषण परिस्थिति में भी अहमदशाह अब्दाली के साहस और उत्साह में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी। निर्भीकता के साथ बहुत समय तक वह युद्ध-क्षेत्र की अवस्था का अध्ययन करता रहा। उसने पहले से ही किसी विशेष अवसर के लिए अपनी एक सुरक्षित सेना, जिसमें दस हजार लड़ाकू और आक्रमणकारी सैनिक थे, पानीपत में छिपाकर रखी थी। इसी अवसर पर उसकी वह सेना प्रकट हुई और अचानक आकर उसने मराठा सेना पर भयानक आक्रमण किया। मराठों के बहुत-से आदमी इस आक्रमण से मारे गये। लेकिन सदाशिवराव भाऊ की सेना में किसी प्रकार की घबराहट और निर्बलता नहीं पैदा हुई।

भयानक रूप से युद्ध हो रहा था। अपनी सुरक्षित सेना के

आक्रमण से अब्दाली ने तुरन्त मराठों को पराजित करने का अनुमान लगाया था। लेकिन युद्ध की परिस्थिति में कोई अन्तर न पड़ा। इसी दशा में बन्दूक की एक गोली राजकुमार विश्वास-राव की छाती में आकर लगी। उसी समय राजकुमार अपने हाथी के हौदे पर गिर गया। सदाशिवराव भाऊ को राजकुमार के मारे जाने का समाचार मिला। उसका हृदय सहम उठा। उसने राजकुमार विश्वासराव से बड़ी-बड़ी आशायें लगा रखी थीं। भाऊ शत्रुओं के साथ युद्ध करने में लगा रहा।

अफगानों की सुरक्षित सेना का अचानक आक्रमण व्यर्थ नहीं गया। मराठों ने साहस और वीरता के साथ उसका सामना किया। परन्तु वे शत्रुओं के घेरे में आ गये। सदाशिवराव भाऊ लड़ते हुए मारा गया। होल्कर और सींधिया की सेनाओं ने युद्ध से निकल कर बाहर का रास्ता पकड़ा। अब मराठों का कोई सेनापति न रह गया था। जो सरदार बाकी रह गये थे, वे भी मारे गये। यह देख कर मराठों की बची हुई सेना युद्ध-क्षेत्र से हट गई और इस युद्ध में अहमद शाह अब्दाली विजयी हुआ।

चौबीसवाँ परिच्छेद

ऊदवानाला का युद्ध

[१७६३ ईसवी]

कम्पनी का व्यावसायिक जाल, मीरकासिम और अँगरेज, नवाब को भुलावे में रखने की कोशिश, मीरकासिम का पतन।

मराठों की पराजय के बाद

सन् १७६१ ईसवी में पानीपत का तीसरा युद्ध समाप्त हो चुका था और अहमद शाह अब्दाली की जीत हो चुकी थी। अफग़ानिस्तान लौट जाने के पहले उसने शाह आलम दूसरे को भारत का सम्राट बनाया और ग़ाजीउद्दीन के स्थान पर शुजाउद्दौला को उसने दिल्ली का मन्त्री नियुक्त किया।

पानीपत की तीसरी लड़ाई के पहले तक दक्षिण में मराठों की शक्तियाँ जिस प्रकार उन्नत हो रही थीं, उनसे मुग़ल साम्राज्य और उत्तर भारत के राजाओं को ही भय न पैदा हुआ था, बल्कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियों ने अपनी दग़ाबाजी का जो जाल देश के भीतर बिछाया था और यहाँ के राजाओं तथा नवाबों के सामने जो संकट उत्पन्न कर दिया था, उसको सफल बनाने में उन अधिकारियों के सामने भी एक कठिन समस्या पैदा हो गयी थी। लेकिन अहमद शाह के मुकाबिले में मराठों के पराजित होने के बाद अँगरेजों के सामने का वह संकट कमजोर पड़ गया। उनकी साजिश और दग़ाबाजी का चक्र बिना किसी भय के इस देश में चलने लगा।

अँगरेजों ने सिराजुद्दौला को मिट्टी में मिलाकर और दुनिया

से उसे बिदाकर उसके स्थान पर मीरजाफर को नवाब बनाया था और कुछ इने-गिने दिनों के भीतर ही इस मिट्टी के देवता को फिर मिट्टी में मिलाकर उसके दामाद मीरकासिम को मुर्शिदाबाद का शासक मुकर्रर किया।

अहमद शाह के द्वारा दिल्ली का सम्राट होने के बाद शाह-आलम पटना पहुँचा। मीरकासिम वहाँ पर मौजूद था। उसके इलाके से दिल्ली भेजे जाने वाली मालगुजारी बहुत दिनों से बन्द थी। मीरकासिम ने सम्राट के पास हाजिर होकर एक लम्बी रकम उसको भेंट की। सम्राट इसके बाद दिल्ली लौट गया।

मीरकासिम के साथ कम्पनी के अधिकारियों की चालें आरम्भ हो गयीं। वह मीरजाफर की तरह अयोग्य और अदूर-दर्शी न था। उसने सावधानी के साथ अँगरेजों की चालों को देखा। बहुत पहले से ही अँगरेजों ने मुर्शिदाबाद की राजधानी में अपना आधिपत्य बढ़ा रखा था। यह अवस्था मीरकासिम को किसी प्रकार स्वीकार न थी। उसने इस परिस्थिति से सुरक्षित रहने के लिए मुर्शिदाबाद से राजधानी हटाकर मुंगेर पहुँचा दी। वहाँ की किले बन्दी को उसने मजबूत बनाया। वहाँ पर रहकर उसने सैनिक शक्ति को भी मजबूत किया और अपनी फौज की संख्या उसने चालीस हजार तक पहुँचा दी। अपने सैनिकों को योरप वालों की भाँति लड़ाई की शिक्षा देने का काम आरम्भ किया और इसके लिए उसने कुछ योरप वालों को अपने यहाँ नौकर रखा।

मीरकासिम के सामने संकट

अँगरेज मीरकासिम का योग्यता के साथ शासन नहीं देखना चाहते थे। उसके नवाब होने में उन्होंने इसलिए सहायता की थी कि उसकी नवाबी में कम्पनी मनमानी करेगी। मीरकासिम प्रजा

को प्रसन्न करने और अपने अधीकृत सूबों की हालत को अच्छी बनाने की कोशिश में था। लेकिन अँगरेज उसे अन्धा बनाकर उसके यहाँ लूट करना चाहते थे। इन परिस्थितियों ने नवाब और अँगरेजों के बीच संघर्ष पैदा किया। नवाब होने के पहले मीरकासिम ने अँगरेजों के साथ जो वादे किये थे, उनको उसने ईमानदारी के साथ पूरा किया। लेकिन अँगरेजों की माँग बढ़ती जाती थी, जिसको पूरा करने में नवाब असमर्थ हो रहा था।

नवाब और अँगरेजों के बीच असन्तोष पैदा हुआ। नतीजा यह हुआ कि कम्पनी के अधिकारियों ने मीरकासिम के विरुद्ध उसी प्रकार की चालें आरम्भ कर दीं, जैसी वे सिराजुद्दौला और मीरजाफर के साथ चल चुके थे और दोनों का वे सत्यानाश कर चुके थे। मीरकासिम को हटाकर किसी दूसरे को नवाब बनाने के उपाय कम्पनी के अधिकारी सोचने लगे।

१५ दिसम्बर, सन् १७६२ ईसवी को कम्पनी और नवाब मीरकासिम के बीच एक सन्धि हुई, उसमें नवाब की कमजोरियों का लाभ उठाकर उसे सन्धि के बन्धनों में जकड़ दिया गया। यह सन्धि मुंगेर में की गयी, लेकिन जिन शर्तों को कम्पनी ने स्वीकार किया था, अँगरेजों की ओर से उनको व्यवहार में नहीं लाया गया। सन्धि की शर्तों को तोड़कर भारतीय माल पर लम्बा महसूल चल रहा था और इंगलैण्ड से आने वाला माल बिना किसी महसूल के बिक रहा था। यह देखकर नवाब ने अपने समस्त इलाकों में देशी माल पर भी महसूल उठा दिया। इससे नवाब की आमदनी में बहुत कमी हो गयी।

देशी माल पर चुंगी उठा देने का यह परिणाम हुआ कि उसके मुकाबिले में विदेशी माल की खपत कम होने लगी। इस पर कम्पनी ने नवाब के विरोध का निश्चय किया और नवाब को इस बात के लिए फिर विवश करने का विचार किया कि वह भारतीय

माल पर पहले वाला महसूल फिर से कायम करे। इस कोशिश के साथ नवाब के विरुद्ध अँगरेज विद्रोह की तैयारी करने लगे।

कम्पनी की युद्ध की तैयारी

नवाब मीरकासिम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को प्रसन्न रखने की लगातार कोशिशें कीं। लेकिन उसको अपनी चेष्टा में सफलता न मिली। कम्पनी के अधिकारी नवाब के विरुद्ध जिस प्रकार का व्यवहार कर रहे थे, वे न केवल घृणा पूर्ण थे, बल्कि वे शासन करने मे नवाब के सामने एक मजबूरी पैदा कर रहे थे। वे नवाब को मिटाना चाहते थे और इसके लिए वे चुपके-चुपके युद्ध की तैयारी कर रहे थे। १४ अप्रैल सन् १७६३ को अँगरेजों ने अपनी फौज तैयार की। एलिस पटना में कम्पनी का एजेण्ट था। उसने वहाँ के नाजिम के विरुद्ध काम करना आरम्भ कर दिया। इसी बीच में कम्पनी की एक सेना पटना में पहुँच चुकी थी।

कम्पनी की ओर से भयानक कूटनीति का व्यवहार हो रहा था। पटना में अँगरेजी सेनायें जमा हो रही थीं और मुंगेर में नवाब मीरकासिम के साथ सुलहनामा की बातचीत चल रही थी। एकाएक कलकत्ता की अँगरेज-काउन्सिल ने एलिस को पटना में अधिकार कर लेने के लिए लिखा।

एलिस ने अपनी अँगरेजी सेना के साथ पटना में आक्रमण किया और समूचे शहर पर उसने अधिकार कर लिया। यह समाचार पाते ही नवाब मीरकासिम अपनी एक फौज लेकर पटना की ओर रवाना हुआ और वहाँ पहुँच कर उसने अँगरेजी सेना पर हमला किया। दोनों ओर से लड़ाई हुई और अन्त में अँगरेजों की पराजय हुई। उस लड़ाई में ३०० अँगरेज और ढाई हजार से अधिक उसके भारतीय सिपाही मारे गये। एलिस कैद करके मुंगेर भेज दिया गया।

परिस्थितियों की भीषणता

कम्पनी के अधिकारियों ने मीरकासिम के सामने परि-स्थितियों का एक संकट पैदा कर दिया था। नवाब कम्पनी की साजिशों और दगाबाजियों को खूब जानता था। कूटनीति का जाल बिछाकर मीरजाफर को नवाबी के पद से हटाया गया था और उसके स्थान पर मीरकासिम को नवाब बनाया गया था। कम्पनी के इस चक्रव्यूह को वह भूला न था। अँगरेजों के साथ युद्ध करने में वह डरता न था। लेकिन उनकी चालों से वह भय खाता था। इसीलिए सूबेदार होने के बाद वह सदा कम्पनी के अधिकारियों को सन्तुष्ट रखने की कोशिश करता रहा। लेकिन अब उसने समझ लिया था कि अँगरेजों के साथ अब कोई भी सन्धि चल नहीं सकती। उसे साफ-साफ यह जाहिर हो गया था कि कम्पनी से अब युद्ध अनिवार्य हो गया।

कम्पनी को युद्ध की अपेक्षा अपनी कूटनीति का अधिक विश्वास था। उसके अधिकारियों ने उसी का सहारा लिया। मीरकासिम के साथ युद्ध करके कम्पनी अपनी विजय का विश्वास नहीं करती थी। इसीलिए उसने बूढ़े मीरजाफर को फिर से तैयार किया। उसे उलटा-सीधा पढ़ाकर अँगरेजों ने राज़ी कर लिया और उसके साथ एक नयी सन्धि कर ली।

युद्ध के लिए सेनाओं की रवानगी

सन्धि के साथ-साथ, मीरजाफर को जो प्रलोभन दिये गये, उन पर वह फिर सूबेदार होने के लिए तैयार हो गया। उसके बाद युद्ध की घोषणा की गयी और यह जाहिर किया गया कि मीरकासिम के स्थान पर मीरजाफर को अब फिर बंगाल का सूबेदार बना दिया गया है। मीरकासिम के साथ युद्ध की तैयारी

की गयी और उस होने वाले युद्ध में मीरजाफर का ही नाम सब के सामने लाया गया। उसी के नाम पर युद्ध की तैयारी हुई और मीरजाफर की सहायता करने के लिए प्रजा के प्रार्थना का गयी।

५ जुलाई सन् १७६३ ईसवी को कलकत्ता से कम्पनी की एक सेना मुर्शिदाबाद के लिए रवाना हुई और मीरकासिम की सेना मोहम्मद तकी खाँ के नेतृत्व में मुँगेर से आगे बढ़ी। वह एक सुयोग्य, दूरदर्शी और शूर-वीर सेनापति था। लेकिन उसके साथ जो सेना अँगरेजों से युद्ध करने के लिए भेजी गयी थी, उसमें बहुत-से फौजी अफसर कम्पनी के द्वारा मिलाये जा चुके थे।

दोनों सेनाओं में तीन स्थानों पर सामना हुआ। मोहम्मद तकी खाँ की फौज में २०० योरोपियन अफसर थे और जो उसकी तोपों पर काम करते थे, वे भी ईसाई थे। ये सब के सब युद्ध के खास मौके पर अँगरेजी सेना के साथ जाकर मिल गये। इसका नतीजा यह हुआ कि मोहम्मद तकी खाँ युद्ध में मारा गया।

ऊदवानाला की पराजय

मीरकासिम की सेना ने अन्त में ऊदवानाला पहुँच कर मुकाम किया। इस स्थान का युद्ध कई बातों की विशेषता के कारण, मीरकासिम की बुद्धिमानी का परिचय देता था। उस मैदान के एक ओर गंगा थी। दूसरी ओर ऊदवानाला की गहरी नदी थी, जो गंगा में ही जाकर गिरती थी। तीसरी ओर पहाड़ियाँ और चौथी ओर मीरकासिम की मजबूत किले बन्दी थी। उसके ऊपर बहुत-सी तोपें लगी हुई थीं। किले में जाने का रास्ता पहाड़ियों के नीचे एक भयानक दलदल से होकर था। मीरकासिम की सेना एक महीने तक उस किले में पड़ी रही। ऊदवानाला के बाहर अँगरेजों की सेना थी और उसके साथ बूढ़ा मीरजाफर मौजूद था। एक महीने तक किसी तरफ से आक्रमण न हुआ।

मीरकासिम की सेना में बहुत-से योरोपियन और दूसरे विदेशी अफसर थे। वे सब के सब अँगरेजों के साथ पहले से ही मिल गये थे और मीरकासिम को धोखा देने के लिए उसकी सेना में युद्ध के समय मौजूद थे। कुछ अँगरेज सैनिक भी मीरकासिम के साथ सेना में थे, जो कम्पनी की ओर से मिलाने का काम करते रहते थे।

४ सितम्बर सन् १७६३ ईसवी को मीरकासिम की सेना के विश्वासघाती अँगरेज सैनिकों ने अँगरेजी सेना की सहायता की और उसी दिन आधी रात के पहले अँगरेजी सेना ने दुर्ग में पहुँच कर नवाब की सेना पर अचानक आक्रमण किया। नवाब की सेना के विदेशी सैनिक और अफसर अँगरेजी सेना में मिल गये और नवाब की बाकी पन्द्रह हजार सेना उस आक्रमण में मारी गयी।

ऊद्वानाला के युद्ध में मीरकासिम की पराजय के दो मुख्य कारण थे। उसकी सेना का सेनापति मोहम्मद तकी खाँ पहले ही मारा जा चुका था, इसलिए नवाब की सेना में कोई सेनापति न था और दूसरा कारण यह था कि मीरकासिम अपनी सेना के साथ स्वयं न था। इन दो अवस्थाओं में नवाब की सेना की पराजय हुई। विस्वासघातियों के कारण उसकी सेना को लड़ने का अवसर न मिला। रात के अचानक आक्रमण में उसका संहार हुआ। जिन साजिशों और दगाबाजियों से अँगरेजों ने प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला को पराजित किया था, उन्हीं के द्वारा वे ऊद्वानाला के युद्ध में भी विजयी हुए।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

बक्सर का पेचीदा युद्ध

नवाबी अथवा गुलामी, मीरकासिम की असफल चेष्टा, दिल्ली-सम्राट की घबराहट, शुजाउद्दौला के साथ संधि, मीरजाफर की मृत्यु !

नवाब मीरजाफर की मजबूरियाँ

मीरकासिम की पराजय हो चुकी थी और उसके स्थान पर मीरजाफर फिर से सूबेदारी के आसन पर बैठा था। इसके पहले ही कम्पनी के अधिकारियों ने मीरजाफर के साथ सन्धि की थी, जिसमें वह अँगरेजों के विरुद्ध कभी हिल-डुल न सकता था। सन्धि की शर्तों में यह लिखा गया था कि नवाब मीरजाफर छै हजार सवार और बारह हजार पैदल से अधिक सेना नहीं रख सकेगा। भारतीय माल पर २५ प्रतिशत महसूल लिया जायगा और अँगरेजों को बिना महसूल दिये हुए देश में अपने माल के बेचने का अधिकार होगा। युद्ध के खर्च में मीरजाफर अँगरेजों को तीस लाख, अँगरेजी स्थल-सेना के लिए पचीस लाख और जल सेना के लिए साढ़े बारह लाख रुपये देगा। मीरकासिम के शासन-काल में अँगरेज व्यापारियों की जो हानि, भारतीय माल पर महसूल उठा देने के कारण हुई है, उसे मीरजाफर अदा करेगा।

इस प्रकार की शर्तों को मन्जूर करने के बाद, मीरजाफर को सूबेदारी मिली थी। इसका नतीजा यह हुआ कि उसके सूबेदार

होते ही अँगरेजों की लूट शुरू हो गयी और प्रजा को बुरे दिनों के प्रकोप ने घेर लिया।

मीरजाफर को अपने सम्मान और स्वाभिमान का ध्यान न था। बुढ़ापे में उसे फिर सूबेदार बनने का शौक हुआ था, जिसे अँगरेज अधिकारियों ने स्वयं उसके हृदय में पैदा किया था। जिस विश्वासघात के द्वारा मीरकासिम उसे निकाल कर नवाब बना था, उसकी पीड़ा मीरजाफर के अन्तःकरण में अभी तक बाकी थी। इस पीड़ा का लाभ अँगरेज अधिकारियों ने उठाया और ठोंक-पीटकर मीरजाफर को उन्होंने सूबेदारी के लिए तैयार कर दिया था। सूबेदार होने के बाद, मीरजाफर के सामने जो भयानक दृश्य आये, उनका अन्दाज पहले से उसे न था। सन्धि की शर्तों को मन्जूर करने के बाद भी उसने अँगरेजों को आदमी समझा था। एक मनुष्य कहाँ तक निर्दय और क्रूर हो सकता है, इसका अनुमान लगाने में बूढ़े मीरजाफर ने जो भयानक भूल की थी, उसके परिणाम-स्वरूप, एक नवाब की हैसियत में वह अँगरेज अधिकारियों का गुलाम था।

अँगरेजों की लूट से प्रजा की त्राहि को सुनकर और अपने नेत्रों से देखकर मीरजाफर ने फिर एक बार अँगरेजों के मनुष्यत्व का विश्वास किया और उसने कलकत्ता की अँगरेज काउन्सिल के पास अपनी प्रार्थनाओं का एक बण्डल भेजकर, कम्पनी की ओर से होने वाले अत्याचारों को दूर करने की फरयाद की। लेकिन बिना पूरा पढ़े हुए उसकी प्रार्थनाओं को जब ठुकरा दिया गया, उस समय उसे मालूम हुआ कि मैं मीरकासिम के स्थान पर सूबेदार नहीं, अँगरेजों का एक कैदी बनाया गया हूँ।

मीरकासिम की अन्तिम चेष्टा

अपनी पराजय के बाद भी मीरकासिम ने साहस नहीं छोड़ा।

सम्राट शाह आलम ने उसे सूबेदारी का पद दिया था। वह अब भी अपने आपको अधिकारी समझता था। वह जानता था कि अँगरेजों ने अन्याय के साथ मीरजाफर को सूबेदार बनाया है। ऐसा करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है।

अपनी सीमा से बाहर निकल कर मीरकासिम ने सम्राट शाह आलम से मिलने का निश्चय किया। सम्राट उन दिनों में कानपुर और इलाहाबाद के बीच फाफामऊ में था। अवध का नवाब शुजाउद्दौला सम्राट का प्रधान मन्त्री था और इस समय उसके साथ था। मीरकासिम ने सम्राट और शुजाउद्दौला से मिल कर अपनी सब कथा कही और शुजाउद्दौला ने उसे फिर से मुर्शिदाबाद का शासक बनाने का विश्वास दिलाया। दिल्ली पहुँच कर सम्राट ने अँगरेजों के विरुद्ध बंगाल पर आक्रमण करने की तैयारी शुरू कर दी। लेकिन चढ़ाई करने के पहले अँगरेजों से उनके ऐसा करने का कारण पूछना और उनसे जवाब तलब करना जरूरी था, इसलिए सम्राट के मन्त्री शुजाउद्दौला ने कलकत्ता की अँगरेज काउन्सिल के नाम एक लम्बा पत्र रवाना किया। परन्तु उसका कोई उत्तर उसे न मिला।

पराजित हो कर मीरकासिम जब अपना प्रान्त छोड़ कर बाहर चला गया था, उस समय अँगरेजों ने पटना से आगे बढ़कर और सोन नदी को पार कर बक्सर में अपनी सेना के साथ मुकाम किया था और उसके बाद वे बक्सर से लौट कर पटना की सीमा में आ गये थे। इसी मौके पर मीरकासिम को लेकर प्रधान मन्त्री शुजाउद्दौला अपनी सेना के साथ रवाना हुआ और उसने पटना को जाकर घेर लिया।

सम्राट शाह आलम की तरफ से होने वाले इस आक्रमण का पता अँगरेजों को पहले से न था। शुजाउद्दौला अपनी बहादुरी के लिए प्रसिद्ध था। अँगरेज अधिकारी भारतीय नवाबों

की कमजोरियों को भली भाँति जानते थे। उन्होंने शुजाउद्दौला को मिलाने की कोशिश की।

सम्राट को परिस्थितियों का भय

व्यक्तिगत स्वार्थ और समाज का स्वार्थ—प्रायः दो प्रतिकूल स्वार्थ होते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण, भारत के राजा और नवाब देश की बरबादी और विदेशियों की विजय के कारण बन गये थे। विदेशियों ने इस कमजोरी का इस देश में हमेशा लाभ उठाया। प्रधान मन्त्री शुजाउद्दौला को अँगरेजों की तरफ से तरह-तरह के प्रलोभन दिये गये। नतीजा यह हुआ कि वह बदल गया और अँगरेजों के साथ सहानुभूति प्रकट करने लगा। अँगरेजों का पक्ष लेकर उसने सम्राट को उसकी राजनीतिक परिस्थितियाँ समझायीं और उसने उसको समझाया कि अगर अँगरेज इस देश के विरोधी राजाओं से मिल जायँगे तो एक भयंकर संकट पैदा हो जायगा। सम्राट की समझ में यह बात आ गयी और उसने अँगरेजों पर आक्रमण करने का उस समय विचार छोड़ दिया।

अँगरेजों ने अपनी साजिशों का जाल इसके आगे भी विस्तृत कर लिया था। शुजाउद्दौला की सेना के एक अधिकारी राजा कल्यानसिंह की तरह कितने ही फौजी अफसरों को अँगरेजों ने अपनी तरफ फोड़ लिया था। फूट और प्रलोभन के कारण इसी देश के लोग देश और समाज की बरबादी का ख्याल न करते थे।

शुजाउद्दौला की चढ़ाई के समय अँगरेज अधिकारियों के सामने जो भय उत्पन्न हुआ था, वह बहुत-कुछ कम हो गया। इन दिनों में बरसात भी शुरू हो गई थी, इसलिए शुजाउद्दौला अपन सेना के साथ पटना छोड़ कर बक्सर चला आया और बरसात के दिनों के कारण वह कुछ समय के लिए वहाँ रुक गया।

रोहतास के किले पर अधिकार

मुर्शिदाबाद का फिर से अधिकार प्राप्त करने के बाद मीर-जाफर ने महाराजा नन्दकुमार को अपना दीवान बनाया। नन्द-कुमार समझदार और दूरदर्शी था। वह अँगरेजों की चालों को खूब समझता था। उसके परामर्श से मीरजाफर ने सम्राट शाह-आलम से अपनी सूबेदारी का परवाना प्राप्त करने की कोशिश की। अँगरेज अधिकारी मीरजाफर और सम्राट का मेल नहीं चाहते थे। वे जानते थे कि नन्दकुमार ही मीरजाफर का सहायक है। इसलिए उन्होंने उसे मुर्शिदाबाद की दीवानी से अलग करा दिया। मीरजाफर ऐसा नहीं चाहता था। लेकिन उसे स्वीकार करना पड़ा।

पटना में जो अँगरेजों की सेना थी, इन दिनों में मेजर मनरो उसका सेनापति होकर वहाँ पहुँचा। अभी तक शुजाउद्दौला के साथ अँगरेजों की सन्धि नहीं हुई थी। दोनों ओर से एक सन्दिग्ध अवस्था चल रही थी। मेजर मनरो ने रोहतास का किला ले लेने का इरादा किया। राजा साहूमल उस किले का अधिकारी था। अनेक प्रलोभन देकर अँगरेजों ने साहूमल को मिला लिया और बिना किसी युद्ध के उस किले पर उन्होंने अधिकार कर लिया।

शुजाउद्दौला पर अविश्वास

आरम्भ में मीरकासिम ने शुजाउद्दौला पर विश्वास किया था। लेकिन बाद में जब उसने शुजाउद्दौला के रंग-ढंग में परिवर्तन देखा तो उसका दिल टूट गया और वह अपनी कोशिशों में निराश हो गया। अभी तक वह शुजाउद्दौला के साथ ही था; लेकिन उसकी आशायें ठंढी हो रही थीं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि दोनों की ओर से होने वाले व्यवहारों में बहुत अन्तर पड़ गया।

शुजाउद्दौला की हार

अँगरेजों को अपनी कूटनीति में पूरी सफलता मिली। सम्राट स्वयं एक निर्बल हृदय का आदमी था। वह अब अँगरेजों के साथ युद्ध नहीं करना चाहता था। शुजाउद्दौला और मीरकासिम के बीच भी अविश्वास पैदा हो गया था। इस दशा में शुजाउद्दौला की शक्ति निर्बल हो गयी थी। यह देखकर जो अँगरेज अधिकारी शुजाउद्दौला की खुशामद में थे, वे उसकी उपेक्षा करने लगे।

अभी कुछ दिन पहले जो अँगरेज शुजाउद्दौला को अपना मित्र बनाने की कोशिश में थे। वे अब शुजाउद्दौला के चाहने पर भी उसका मित्र बनने के लिए तैयार न थे। दोनों ओर से परिस्थितियाँ बिगड़ीं और संघर्ष गम्भीर होता गया। १५ सितम्बर सन् १७६४ ईसवी को दोनों ओर की सेनायें युद्ध के लिए रवाना हुईं और बक्सर के मैदान में लड़ाई आरम्भ हो गयी।

सम्राट आलम शाह को अँगरेजों ने मिला लिया था। मीर-कासिम का शुजाउद्दौला पर अब विश्वास नहीं रहा था। शुजाउ-द्दौला की सेना के कितने ही हिन्दू, मुस्लिम अफसर अँगरेजों के साथ मिल गये थे। इस दशा में शुजाउद्दौला को पराजित कर लेना ही अँगरेजों ने अपने लिए अच्छा समझा।

१५ सितम्बर को शुजाउद्दौला ने अँगरेजों के साथ भयानक युद्ध किया और दोनों ओर के बहुत-से आदमी मारे गये। लेकिन जिन परिस्थितियों में शुजाउद्दौला को अँगरेजों से युद्ध करना पड़ा; उनमें वह कितनी देर ठहर सकता था। बारह घण्टे के लगातार युद्ध में उसके छै हजार से अधिक सैनिक मारे गये और अन्त में उसे युद्ध-क्षेत्र से पीछे हट जाना पड़ा।

चुनारगढ़ में अंगरेजों की हार

शुजाउद्दौला को पराजय के बाद, मीरकासिम बक्सर से

भागकर इलाहाबाद चला गया और कुछ दिनों के बाद वह बरेली पहुँच गया। अनेक वर्ष उसने निर्वासित अवस्था में काटीं और जिन्दगी की मुसीबतों को उसने सहन किया। लेकिन स्वाभिमान छोड़कर उसने विदेशियों की गुलामी मन्जूर नहीं की। सन् १७७७ ईसवी में दिल्ली में उसकी मृत्यु हो गयी।

सम्राट शाह आलम ने शुजाउद्दौला का सम्बन्ध छोड़कर अँगरेजों का सहारा लिया। सम्राट और अँगरेजों की सेनाओं ने गंगा-पार करके शुजाउद्दौला का पता लगाया और उसके साथ सुलह करने की कोशिश की। शुजाउद्दौला अब भी अँगरेजों के साथ युद्ध करने की तैयारी में था। इसी बीच में अँगरेजी सेना ने चुनार के किले को अधिकार में लेना चाहा और वहाँ पहुँच कर उसने उस किले को घेर लिया।

मोहम्मद बशीर खाँ चुनार के दुर्ग का किलेदार था। अँगरेज सेनापति ने उसको एक परवाना दिया, जिसमें सम्राट के हस्ताक्षर थे। किले की सेना उस परवाने को मानने के लिए तैयार न थी। किलेदार ने सेना का विरोध किया। लेकिन सेना इसके लिए तैयार न हुई। किले की फौज लड़ाई के लिए तैयार हो गयी और वह किले के बाहर निकल आयी। उसी समय अँगरेजों की तोपों ने गोलों की वर्षा आरम्भ कर दी। अपनी रक्षा करते हुए किले की सेना ने कई दिनों तक अँगरेजी सेना को रोक रखा।

एक दिन रात को अँगरेजी सेना ने धोखा देकर किले में प्रवेश करने की कोशिश की। किले की सेना ने बड़ी तत्परता के साथ सजग होकर अँगरेजी सेना पर भयंकर गोलियों की वर्षा की। उस समय शत्रु सेना के बहुत-से सैनिक मारे गये और जो बचे वे भीतर प्रवेश करने का इरादा छोड़कर बाहर लौट आये। उसके बाद भी किले की सेना अँगरेजी सेना पर गोलियों की मार करती रही। अँगरेजी सेना को हार मानकर पीछे हटना

पड़ा और किले पर अधिकार करने का इरादा छोड़कर वह इलाहाबाद की तरफ चली गयी।

शुजाउद्दौला का आक्रमण

बक्सर की पराजय के बाद, शुजाउद्दौला के हृदय में अँगरेजों के विरुद्ध आग जल रही थी। वह किसी प्रकार उनसे बदला लेना चाहता था। वह इन दिनों में बरेली पहुँच गया था। वहाँ से लौटकर उसने कड़ा नामक स्थान पर एकाएक अँगरेजी सेना पर हमला किया। इस समय उसकी सहायता में एक मराठा सेना भी थी। कई दिनों तक दोनों ओर से लड़ाइयाँ हुईं और अन्त में अँगरेजों ने उसके साथ सन्धि कर ली।

मीरजाफर का अन्त

सूबेदारी की अभिलाषा अब मीरजाफर की समाप्त हो चुकी थी। मीरकासिम को मिटाकर वह स्वयं मिट चुका था। अब तक के जीवन में अपमान के जो दृश्य उसने कभी न देखे थे, उन्हें भी अब वह देख चुका था। वह अब न केवल सूबेदारी से बेजार था, बल्कि वह अपने जीवन से ऊब चुका था। अँगरेजों के अत्याचारों के कारण उसकी अब बाकी जिन्दगी शिकायतों और प्रार्थनाओं में ही बीत रही थी। लेकिन उनका कोई परिणाम न निकलता था। सन् १७६५ ईसवी के फरवरी महीने में एक दिन मुर्शिदाबाद के महल में उसकी मृत्यु हो गयी। उस समय उसकी अवस्था ६५ वर्ष की थी।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

मैसूर की लड़ाइयाँ

[१७६७ से १७९९ ईसवी तक]

हैदरअली और मैसूर की रियासत, लड़ाइयों का प्रारम्भ, विश्वासघात के परिणाम, मराठे और हैदरअली, टीपू और अँगरेज, अँगरेजी सेना का आक्रमण, टीपू का अन्त !

हैदरअली

किसी समय वलीमोहम्मद नाम का एक साधारण मुसलमान फकीर हजरत बन्दानवाज गेसूदराज की दरगाह में रहा करता था। दरगाह की आमदनी से ही वलीमोहम्मद का खर्च चलता था। उसके एक लड़का था, जिसका नाम शेख मोहम्मदअली था। अपने जीवन काल में उसे बहुत ख्याति मिली थी। उसे लोग शेखअली भी कहते थे। उसके चार लड़के थे। सन् १६९५ ईसवी में शेखअली की मृत्यु हो गयी। उसका बड़ा लड़का शेख इलियास अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ। सब से छोटे लड़के का नाम फतह मोहम्मद था। वह अरकाट के नवाब सआदतउल्ला खाँ की फौज में भरती हो गया और जमादार के पद पर काम करने लगा। फतह मोहम्मद के दो लड़के हुए। एक का नाम शहबाज और दूसरे का हैदरअली था। हैदरअली का जन्म लगभग १७२२ ईसवी में हुआ था।

जिस समय शहबाज़ और हैदरअली के जन्म न हुए थे, फ़तह मोहम्मद ने अरकाट के नवाब की नौकरी छोड़ दी थी और पहले उसने मैसूर की रियासत में नौकरी की। लेकिन उसके बाद, सीरा प्रान्त के नवाब दरगाह कुली खाँ के यहाँ जाकर उसने नौकरी कर ली थी। वहाँ पर वह बालापुरकलाँ के किले का किलेदार बना दिया गया था। दक्षिण के राजाओं की लड़ाइयों में वह मारा गया; उस समय शहबाज़ की अवस्था आठ साल की और हैदरअली की तीन साल की थी। उन्हीं लड़ाइयों के कारण फ़तह मोहम्मद का सब माल-असबाब भी चला गया और उसके दोनों लड़के अपनी विधवा माता के साथ अनाथ होकर रह गये थे।

हैदरअली का चचेरा भाई, उसके चाचा शेख़ इलियास का लड़का हैदर साहब इन दिनों में मैसूर के राजा के यहाँ फौज में नायक था। हैदरअली अपने भाई और माँ के साथ उसके यहाँ चला गया और वहीं पर रहने लगा। वहीं पर उसने घोड़े की सवारी, निशाने बाजी और युद्ध करने की सभी बातें सीखीं। बड़े होने पर दोनों भाइयों ने राजा मैसूर की सेना में नौकरी कर ली।

मैसूर की हिन्दू रियासत दिल्ली-सम्राट का आधिपत्य मानती थी और अपने बाकी अधिकारों में वह स्वतन्त्र थी। दक्षिण के सूबेदार निज़ामुल्मुल्क के साथ उसका बराबरी का सम्बन्ध था। किसी पर किसी का आधिपत्य न था।

मैसूर का राजा शासन में अयोग्य था और अपनी कायरता के ही कारण वह अपने राज्य में नाम के लिए राजा था। राज्य के समस्त अधिकार वहाँ के प्रधान मन्त्री के हाथ में थे। इन दिनों में नन्दीराज वहाँ का प्रधान मन्त्री था और उसने हैदरअली की योग्यता तथा वीरता लड़ाई में देखी थी। इसलिए प्रसन्न होकर उसने हैदरअली को सन् १७५५ ईसवी में डिण्डीगल का फौजदार बना दिया था। हैदरअली ने फ्राँसीसियों की सैनिक व्यवस्था और

उनकी लड़ाई का तरीका देखा था, इसलिए उसने अपने यहाँ फौज को इन सभी बातों की शिक्षा देने और युद्ध करने का तरीका सिखाने के लिए फ्राँसीसी अफसरों को अपने यहाँ नौकर रखा।

अपनी योग्यता और वीरता के कारण कुछ दिनों में हैदरअली मैसूर रियासत का प्रधान सेनापति हो गया। इसके बाद कुछ ही दिनों में उस रियासत के मन्त्रियों में आपसी संघर्ष पैदा हो गये। उस समय हैदरअली मैसूर का प्रधान मन्त्री हो गया।

बेदनूर की रियासत पर अधिकार

मैसूर के राजा की अयोग्यता और कायरता के कारण उसके अनेक सामन्त विद्रोही हो रहे थे और मैसूर के राजा का प्रभाव उन पर कुछ काम न करता था। हैदरअली ने प्रधान मन्त्री होने के बाद, उन विद्रोही सामंतों पर नियन्त्रण करने के लिए अपनी एक सेना भेजी। उसने सभी विद्रोहियों को परास्त करके अधीन बनाया और उसके बाद राज्य में शान्ति की प्रतिष्ठा हुई।

इन्हीं दिनों में बेदनूर का राजा भी मैसूर राज्य के साथ विद्रोही हो गया था। इस रियासत में राजा के साथ प्रजा ने भी बगावत कर रखी थी। हैदरअली स्वयं अपनी सेना लेकर वहाँ गया और वहाँ के विद्रोहियों का दमन किया। उस रियासत पर अधिकार करके उसने राजाराम नामक एक आदमी को वहाँ का अधिकारी बना दिया। बेदनूर के किले में हैदरअली को नगद रुपये के साथ-साथ सोना चाँदी और जवाहिरात मिले, उनकी कीमत सब को मिलाकर बारह करोड़ रुपये से कम न थी। इस सम्पत्ति का उपयोग हैदरअली ने मैसूर राज्य के अनेक सुधारों में किया और बहुत-सा धन सेना में इनाम के तौर पर बाँटा गया। हैदरअली ने बेदनूर का नाम बदलकर हैदरनगर रखा।

उसने मैसूर राज्य की सीमा को बढ़ाने और वहाँ की सुव्यवस्था को दृढ़ करने का काम किया।

मराठों साथ युद्ध

इन दिनों में मराठों की शक्तियाँ दक्षिण में बढ़ रही थीं, इसलिए उनके साथ हैदरअली का संघर्ष पैदा होना स्वाभाविक था। मराठों ने चार बार मैसूर पर आक्रमण किया। लेकिन इन हमलों से मैसूर को कोई बड़ी क्षति नहीं पहुँची। हैदरअली ने अपने राज्य का कुछ इलाका देकर मराठों को शान्त किया। उसके बाद हैदरअली और मराठों में सन्धि हो गयी।

मैसूर की पहली लड़ाई

मैसूर में हैदरअली की बढ़ती हुई शक्तियाँ देख कर कम्पनी के अँगरेजों को डाह होने लगी थी। वे किसी स्वतन्त्र भारतीय राजा की उन्नति को देखना नहीं चाहते थे। हैदरअली को बरबाद करने के लिए वे अनेक प्रकार के उपाय सोचने लगे।

हैदरअली में स्वाभिमान था वह किसी प्रकार अँगरेजों का आधिपत्य स्वीकार करने के लिए तैयार न था। इसलिए दोनों ओर से संघर्ष बढ़ने लगा। अँगरेजी सेना ने सन् १७६७ ईसवी में मैसूर के बारामहल के इलाके पर आक्रमण किया। करनाटक का नवाब मोहम्मद अली हैदरअली से मित्रता रखता था। लेकिन अँगरेजों ने उसे फोड़ कर अपने पक्ष में कर लिया और उसे यह प्रलोभन दिया कि विजय के बाद, बारामहल का इलाका उसे दे दिया जायगा।

अँगरेजों के साथ मोहम्मदअली के मिल जाने पर हैदरअली ने निजाम के साथ सन्धि की और दोनों में यह तय हो गया कि निजाम और हैदरअली की सेनायें करनाटक और अँगरेजी

इलाकों पर हमला करें और मोहम्मदअली को नवाबी के आसन से हटा कर, हैदरअली के लड़के टीपू को करनाटक का नवाब बनाया जाय।

युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो गयी। निजाम की तरफ से उसका वजीर रुकनुद्दौला अपने साथ पचास हजार सैनिकों की फौज लेकर रवाना हुआ। इस बीच में हैदरअली के साथ अँगरेजों का पत्र-व्यवहार चल रहा था, फिर भी एक विशाल अँगरेजी सेना लेकर जनरल स्मिथ युद्ध के लिए रवाना हुआ और बनियमबाड़ी, कावेरीपट्टम आदि कई एक मैसूर के दुर्गों पर उसने अधिकार कर लिया। यह जानकर हैदरअली अपने साथ साठ हजार बहादुर सैनिकों की सेना लेकर अँगरेजों के साथ युद्ध करने के लिए रवाना हुआ। उसके साथ ही निजाम की फौज भी युद्ध करने के लिए आयी।

युद्ध आरम्भ होने के पहले ही अँगरेज अधिकारियों ने निजाम की फौज को मिला कर अपनी ओर कर लिया और हैदरअली को इस बात का कुछ भी पता न चला। इसके बाद दोनों ओर से सेनायें युद्ध के लिए बढ़ीं और घमासान मार-काट आरम्भ हो गयी। लड़ाई के कुछ ही समय बात, हैदरअली को रुकनुद्दौला और उसकी सेना पर सन्देह पैदा हुआ। अँगरेजी सेना के साथ छोटी-बड़ी कई एक लड़ाइयाँ हुईं और उसमें निजाम की फौज के धोखा देने के कारण हैदरअली की पराजय हुई। अँगरेजी सेना ने मैसूर-राज्य का बहुत-सा इलाका अपने अधिकार में कर लिया।

हैदरअली को समय की परिस्थितियाँ प्रतिकूल मालूम हुईं। नवाब मोहम्मद अली अँगरेजों के साथ था और निजाम की सेना भी दगा कर रही थी। मराठों के साथ मैसूर की पहले से ही शत्रुता थी। इसलिए अँगरेजों के साथ हैदरअली ने सुलहनामा की बातचीत शुरू कर दी। उसकी विरोधी परिस्थितियाँ अँगरेजों

से छिपी न थीं। इसलिए अँगरेजों ने सन्धि करने से इनकार कर दिया। इस दशा में हैदरअली ने अपने भरोसे पर युद्ध करने की तैयारी की और मैसूर से अँगरेजी सेना को बाहर निकालने के लिए उसने एक जोरदार फौज के साथ अपने सेनापति फजलुल्लाह खाँ को रवाना किया और उसके बाद हैदरअली स्वयं एक दूसरी सेना के साथ युद्ध के लिए चला।

अंगरेजों की पराजय

मैसूर के जिन किलों पर अँगरेजी सेना ने अधिकार कर लिया था, हैदरअली ने उन पर आक्रमण करके उनको अपने अधिकार में लेना आरम्भ कर दिया। कावेरीपट्टम के किले पर अँगरेजी फौजें एकत्रित थीं। हैदरअली ने अपनी सेना के साथ वहाँ जाकर उस किले को घेर लिया और शत्रुओं पर उसने गोले बरसाने शुरू कर दिये। कई घन्टे तक लगातार गोलों की मार से अँगरेजी सेना का साहस टूट गया। उसने युद्ध से पीछे हटकर सन्धि के लिए सफेद झण्डा फहराया। हैदरअली ने उस किले पर अधिकार कर लिया और लड़ाई बन्द कर दी। किले के भीतर जो अँगरेजी सेना मौजूद थी, उस पर आक्रमण न करके उसे हथियार छोड़कर मद्रास चले जाने की उसने आज्ञा दे दी। अँगरेजों की इस पराजय से उनके बहुत-से हथियार, गोले-बारूद और घोड़े हैदरअली के अधिकार में आ गये और अँगरेजी सेना के सिपाही और अफसर जान बचाकर वहाँ से भाग गये। कावेरीपट्टम का किला हैदरअली के अधिकार में आ चुका था। बाकी किलों पर भी उसने अपना अधिकार कर लिया।

मद्रास पर आक्रमण

इन दिनों में हैदरअली के बड़े लड़के फतहअली की अवस्था

१८ वर्ष की थी। अपने पिता के साथ वह लड़ाई में मौजूद था। जनरल स्मिथ को मैसूर की सीमा से बाहर निकालने के लिए हैदरअली वहीं पर मौजूद रहा और टीपू को पाँच हजार सवारों के साथ मद्रास की तरफ भेजा। उसके मद्रास पहुँचते ही वहाँ की अँगरेज-काउन्सिल के अधिकारी वहाँ से भाग गये। नवाब मोहम्मदअली भी वहाँ मौजूद था, वह अपने घोड़े पर बैठ कर वहाँ से भाग गया। टीपू ने वहाँ पर अँगरेजों के कुछ हिस्सों पर अधिकार कर लिया।

त्रिनमल्ली नामक स्थान पर हैदरअली ने जनरल स्मिथ का सामना किया। निजाम की सेना अभी तक हैदरअली के साथ थी। उसने युद्ध में धोखा दिया और उसके विश्वासघात के कारण, हैदरअली की सेना को पीछे की ओर हटना पड़ा।

त्रिनमल्ली में पराजित होने के बाद हैदरअली ने फिर तैयारी की और वनियम बाड़ी के किले पर हमला किया। पराजित होने की अवस्था में अँगरेजों ने सफेद झण्डा दिखाया। हैदरअली ने उस किले पर कब्जा कर लिया और अँगरेजों को छोड़ दिया।

हैदरअली के साथ सन्धि

बम्बई की अँगरेजी सेना के साथ मँगलोर में टीपू का एक भयानक संग्राम हुआ। उसमें अँगरेजों की हार हुई और अँगरेज सेनापति के साथ-साथ, उसके ४६ अँगरेज अफसर, छः सौ अस्सी अँगरेज सैनिक और छः हजार हिन्दुस्तानी सिपाही कैद कर लिए गये। अँगरेजी सेना के अस्त्र-शस्त्र और युद्ध की बहुत-सी सामग्री टीपू के अधिकार में आगयी। मँगलोर के किले और नगर पर हैदरअली का कब्जा हो गया। इसके बाद टीपू की सेना बँगलोर की ओर रवाना हुई। वहाँ पर जनरल स्मिथ और करनल वुड

की सेनाओं के साथ युद्ध हुआ। अन्त में अँगरेजों की यहाँ पर भी पराजय हुई।

अब अँगरेज सेनापतियों और नवाब मोहम्मद अली में इतनी ताक़त न रह गयी थी जो वे हैदरअली के साथ आगे युद्ध करते। अँगरेज दूतों ने हैदरअली के पास जाकर सुलह की प्रार्थना की। कुछ शर्तों के साथ सन्धि हो गयी और हैदरअली ने अँगरेजों का जीता हुआ हिस्सा उनको लौटा दिया। नवाब मोहम्मद-अली का एक प्रान्त कारूड़ का सूबा सन्धि के अनुसार अँगरेजों को दिया गया।

इस सन्धि के साथ ही नवाब मोहम्मदअली के साथ भी सन्धि हुई। उसमें निश्चय हुआ कि नवाब मोहम्मदअली छै लाख रुपये वार्षिक मैसूर को दिया करेगा।

मैसूर का दूसरा युद्ध

हैदरअली के साथ अगरेजों की सन्धि के अभी बहुत थोड़े दिन बीते थे, मराठों ने मैसूर पर आक्रमण कर दिया। सन्धि के अनुसार हैदरअली ने अँगरेजों से सहायता की माँग की। लेकिन मद्रास की अँगरेज-काउन्सिल ने सहायता देने से इनकार कर दिया। इस अवस्था में हैदरअली ने मैसूर का कुछ इलाका देकर मराठों के साथ सन्धि कर ली। लेकिन अंगरेजों पर उसका सन्देह पैदा हो गया।

सन् १७७८ ईसवी में मराठों के साथ टीपू ने फिर युद्ध किया और सन्धि में दिया हुआ मैसूर का इलाका उसने मराठों से जीत लिया। उसके बाद हैदरअली और मराठों में सन्धि हो गयी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी और नवाब मोहम्मदअली के साथ हैदरअली की जो सन्धि हुई थी, वह कुछ दिन भी न चल सकी।

अँगरेजों ने एक भी शर्त को पूरा नहीं किया और नवाब मोहम्मद-अली अँगरेजों का अनुयायी था। कुछ ही दिनों में अँगरेजों ने हैदरअली के विरुद्ध विष उगलना आरम्भ कर दिया। जो राजा मैसूर के सामन्त थे, वे मैसूर के खिलाफ विद्रोही किये जाने लगे। यह जानकर हैदरअली ने अँगरेजों पर हमला करने का इरादा किया।

अँगरेजों की चालों और साजिशों से मराठे भी ऊब चुके थे। इसलिए नाना फड़नवीस ने अँगरेजों से उनकी दगाबाजियों का बदला देने के लिए हैदरअली से सन्धि कर लेना बहुत आवश्यक समझा और अपना दूत गनेशराव को भेजकर उसने हैदरअली से सन्धि की बातचीत की। सन् १७८० ईसवी में हैदरअली और मराठों के बीच सन्धि हो गयी और उन्होंने मिलकर भारत से अँगरेजों को निकालने का विचार किया।

नवाब मोहम्मदअली अँगरेजों का साथी था और हैदरअली अपनी सेना के साथ करनाटक की ओर चला। वहाँ के किले की रक्षा में अँगरेजी सेना थी और उसका अधिकारी सेनापति कास्बी था। शूर-वीर मराठों की सेना को साथ लेकर हैदरअली ने करनाटक के किले पर १० जूलाई सन् १७८० ईसवी को हमला किया। उस युद्ध में अँगरेजों की हार हुई। हैदरअली ने करनाटक के किले पर अधिकार किया और उसकी समस्त सामग्री और सम्पत्ति पर उसने कब्जा कर लिया। उसके बाद हैदर की सेना करनाटक की राजधानी अरकाट की तरफ रवाना हुई। नवाब मोहम्मदअली वहाँ से भागकर मद्रास चला गया।

पूरिमपाक का संग्राम

१० अगस्त १७८० ईसवी को हैदरअली की एक सेना मद्रास पहुँच गयी। हैदरअली स्वयं अपनी सेना के साथ अरकाट के

पास था। १० सितम्बर को अँगरेजी सेनाओं के साथ हैदरअली का पूरिमपाक के मैदान में भयानक युद्ध हुआ। उस लड़ाई में अँगरेजों को भयानक हानि उठाकर पराजित होना पड़ा। उसके बाद भी कई एक छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ अँगरेजों ने हैदरअली के साथ लड़ीं और उनमें भी उनकी लगातार हार हुई। उन लड़ाइयों को जीतकर हैदरअली ने अपनी विजयी सेना के साथ जाकर आरकाट को घेर लिया और तीन महीने तक वहाँ पर बराबर युद्ध हुआ। अन्त में विजयी होकर हैदरअली ने आरकाट के नगर और किले पर अधिकार कर लिया।

आरकाट को विजय करने के पहले और पीछे हैदर की सेना ने अनेक स्थानों पर अँगरेजी सेनाओं को पराजित किया और चितोर तथा चन्दरगिरि के किलों को जीतकर नवाब मोहम्मद-अली के भाई अब्दुलवहाब खाँ को कैद कर लिया। थोड़े दिनों के युद्ध में ही टीपू ने महीमण्डलगढ़, कैलाशगढ़ और सातगढ़ के किलों को विजय कर उन पर अधिकार कर लिया। हैदरअली की इस लगातार विजय का आरम्भ उस समय हुआ था, जब नाना फड़नवीस के साथ उसने सन्धि कर ली थी और सुलह की शर्तों के अनुसार, अँगरेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए मराठों की बहादुर सेनाओं ने हैदरअली के साथ रहकर अँगरेजी सेनाओं से युद्ध किया था।

६ दिसम्बर सन् १७८२ की रात को आरकाट के दुर्ग में हैदरअली की मृत्यु हो गयी। आरनी की विजय के बाद, हैदर-अली की कमर में फोड़ा पैदा हुआ था और उसका कष्ट बढ़ जाने के बाद उसे आरकाट के किले में आ जाना पड़ा था। वहीं पर उसकी मृत्यु हो गयी। हैदरअली के मर जाने के बाद, अँग-रेजों को भारत से निकालने के लिए नाना फड़नवीस की जो योजना थी, वह निर्बल पड़ गयी।

टीपू के साथ युद्ध

सन् १७८६ ईसवी के सितम्बर में कार्नवालिस भारत में तीसरा गवर्नर-जनरल होकर आया और आने के बाद थोड़े ही दिनों में उसने टीपू के साथ युद्ध करने की तैयारी की। वह भारत में अँगरेजी शासन को मजबूत बनाने के लिए आया था। अमेरिका की संयुक्त रियासतें अभी कुछ वर्ष पहले तक इंगलैण्ड की अधीनता में थीं। उन रियासतों के निवासी योरोप के अनेक देशों से अमेरिका में जाकर बसे थे और उनके द्वारा वहाँ की अलग-अलग बसी हुई रियासतें, अमेरिका की संयुक्त रियासतें कहलाती थीं। उन सभी रियासतों ने मिलकर अपनी आजादी के लिए इंगलैण्ड के साथ युद्ध किया और भयंकर रक्तपात के बाद उन रियासतों को सदा के लिए स्वतन्त्रता मिली। ४ जुलाई सन् १७७६ ईसवी को उनकी स्वाधीनता की घोषणा की गयी। इन संयुक्त रियासतों के स्वाधीन हो जाने से इंगलैण्ड की बड़ी हानि हुई थी और कार्नवालिस भारत को अधीन बनाकर इंगलैण्ड के उस हानि की पूर्ति करना चाहता था।

सन् १७८४ में टीपू के साथ कम्पनी की एक सन्धि हुई थी। उस सन्धि को ठुकरा कर कम्पनी के अधिकारियों ने उसके साथ युद्ध की तैयारियाँ कर दीं। युद्ध होने के पहले टीपू से मराठों को फोड़ने और अलग करने की कोशिशें की गयीं। जून सन् १७९० ईसवी में अँगरेजों की एक फौज जनरल-मीडोज के सेनापतित्व में मद्रास से मैसूर पर हमला करने के लिए रवाना हुई। उसकी सहायता के लिए करनल मेक्सवेल के अधिकार में बंगाल से एक अँगरेजी फौज भी आयी थी। अपनी सेना लेकर टीपू मुकाबिले के लिए रवाना हुआ। कई स्थानों पर दोनों ओर की सेनाओं में लड़ाइयाँ हुईं। अँगरेजी सेनायें टीपू के मुकाबिले में

ठहर न सकीं। उनके बहुत-से आदमी मारे गये और वे युद्ध के मैदान से मद्रास की ओर भागीं। टीपू ने करनाटक के कई प्रदेशों पर अधिकार कर लिया।

टीपू के साथ सन्धि

अँगरेजी सेनाओं की इस पराजय का समाचार सुनकर कार्नवालिस स्वयं युद्ध के लिए तैयार हुआ। १२ दिसम्बर सन् १७९० को वह अपने साथ एक शक्तिशाली सेना लेकर कलकत्ते से मद्रास की तरफ चला। निजाम और मराठों के साथ कम्पनी ने सन्धि कर ली थी। इसलिए, मराठों के साथ न देने के कारण, टीपू की शक्ति कमजोर पड़ गयी। फिर भी उसने साहस नहीं तोड़ा। कार्नवालिस की सेना के साथ टीपू का भयानक युद्ध हुआ। लेकिन बाद में टीपू को युद्ध से पीछे हटना पड़ा। अँगरेजी सेना ने बँगलोर पर कब्जा कर लिया।

मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टन में थी। अँगरेजी सेना ने वहाँ पर चढ़ाई की। टीपू अपनी कमजोरी को समझता था। उसने अँगरेजों के साथ सन्धि कर लेना चाहा और दूत भेजकर उसके लिए उसने कोशिश की। लेकिन कार्नवालिस ने सन्धि करने से इनकार कर दिया। अब युद्ध के सिवा टीपू के सामने कोई रास्ता न था। जिन मराठों की सहायता पर उसने किसी समय अँगरेजों के छक्के छुटा दिये थे, वे मराठे आज उसके साथ न थे। निजाम भी अँगरेजों का ही साथ दे रहा था।

मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टन को अँगरेजी सेना ने घेर लिया। उसी मौके पर जनरल मीडोज ने अपनी सेना लेकर सोमरपीठ के मशहूर बुर्ज पर आक्रमण किया। उसकी रक्षा के लिए टीपू की जो सेना वहाँ पर थी, उसने अँगरेजी सेना के साथ युद्ध किया। दोनों ओर के बहुत-से आदमी मारे गये। उस बुर्ज

में मैसूर की सेना का अध्यक्ष सैयद गफ्फार था। उसके मुकाबिले मे मीडोज़ पराजित होकर अपनी सेना के साथ वहाँ से भागा। वह इस समय बहुत हताश हो चुका था।

कम्पनी के साथ मराठों की सन्धि से टीपू बहुत कमजोर पड़ चुका था। इसलिए उसने मराठों के साथ फिर से सन्धि का प्रस्ताव किया। नाना फड़नवीस के बीच में पड़ने से दोनों दलों में सन्धि की मन्जूरी हुई। टीपू का आधा राज्य अँगरेजों, मराठों और निजाम में बाँटा गया। तीन करोड़, तीस हजार रुपये की अदायगी दण्ड-स्वरूप टीपू पर लादी गयी और इस अदायगी के समय तक के लिए टीपू को अपने दो बेटे, अब्दुल खालिक जिसकी आयु दस वर्ष की थी और मुईजुद्दीन जिसकी आयु आठ वर्ष की थी, रेहन करके अँगरेजों की सुपुर्दगी में देने पड़े। इस प्रकार मैसूर के दूसरे युद्ध का अन्त हुआ और सन् १७९२ ईसवी में इन शर्तों को स्वीकार करके टीपू को श्रीरंगपट्टन में सन्धि करनी पड़ी।

मैसूर का तीसरा युद्ध

सन् १७९२ ईसवी में अँगरेजों, मराठों और निजाम के साथ टीपू सुलतान की सन्धि हो चुकी थी और उस सन्धि की शर्तों को उसे अपनी विवशता और निर्बलता में मन्जूर करना पड़ा था, उसके सामने दूसरा कोई रास्ता न था। रुपये की अदायगी में टीपू ने एक करोड़ रुपये उसी समय दिये थे और बाकी रुपयों की अदायगी के लिए, बेटों को रहन पर दे देने के बाद भी, उसे दो साल का समय मिला था। इसके बाद भी कम्पनी के अधिकारी टीपू को मिटा देने की कोशिश करते रहे। एक ओर अँगरेज अधिकारी टीपू के साथ युद्ध करने के बहाने ढूँढ़ रहे थे और दूसरी ओर उन्हीं दिनों में उसके पास स्नेह और सहानु-

भूति भरे पत्र भेजे जा रहे थे। शत्रु को धोखे में रखने के लिए राजनीति की यह एक भयानक चाल थी।

टीपू से युद्ध करने के लिए अँगरेजों को अभी तक कोई बहाना न मिला था। इसलिए वेल्सली ने उसे लिखा कि 'आपके दरबार में अँगरेज अफसर मेजर डवटन भेजा जायगा। वह शांति कायम रखने के लिए अपनी आवश्यकतानुसार, आपसे कुछ जिले माँग लेगा।' इसके बाद वेल्सली कलकत्ते से रवाना हुआ और ३१ दिसम्बर सन् १७९८ ईसवी को वह मद्रास पहुँच गया।

टीपू मजबूर था और अपनी बेबसी में अँगरेजों की धमकियाँ सुनकर दर्दभरी आहें ले रहा था। वह साफ-साफ कुछ कह न सकता था। ९ जनवरी सन् १७९९ को टीपू के पास वेल्सली का एक पत्र पहुँचा, उसमें लिखा था--

"आप अपने समुद्र के किनारे के सब नगर और बन्दरगाह अँगरेजों को सुपुर्द कर दें।"

यह पत्र भेजकर चौबीस घन्टे के भीतर जवाब माँगा गया था। वास्तव मे यह माँग न थी, युद्ध के लिए तैयार होने की सूचना थी। ३ फरवरी १७९९ ईसवी को अँगरेजी सेना टीपू के राज्य पर आक्रमण करने के इरादे से रवाना हुई। इस बीच में टीपू अँगरेजों की माँग को पूरा करने के लिए भी तैयार था और किसी प्रकार सिर पर आने वाले संकट को वह बचाना चाहता था। उसकी प्रार्थनाओं की वेल्सली ने कुछ परवा न की और २२ फरवरी सन् १७९९ ईसवी को टीपू के विरुद्ध युद्ध करने की घोषणा कर दी गयी। मरता क्या न करता! टीपू को युद्ध के लिए तैयार होना पड़ा।

अंगरेजी सेना का आक्रमण

अँगरेजों के साथ युद्ध करने के लिए टीपू ने अपनी एक सेना,

अपने ब्राह्मण मन्त्री पूर्निया के सेनापतित्व में रवाना की। रायकोट नामक स्थान से कुछ दूरी पर एक मैदान में दोनों सेनाओं का मुकाबिला हुआ। कम्पनी की सेना ने तेजी के साथ आक्रमण किया और उसी मौके पर सेनापति पूर्निया को मिलाने की भी कोशिश की गयी। सेनापति पूर्निया टीपू की निर्बलता को जानता था। अपने प्राण बचाने के लिए वह अँगरेजों के साथ मिल गया। उसी मौके पर टीपू की एक दूसरी सेना युद्ध के लिए पहुँच गयी। उसका सञ्चालन स्वयं टीपू कर रहा था।

अङ्गरेजी सेना का सेनापति जनरल हेरिस था। वह मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टन की ओर बढ़ रहा था। टीपू की सेना के अनेक अफसर युद्ध नहीं करना चाहते थे। इसलिए वे धोखा देकर टीपू को एक दूसरे ही रास्ते पर ले गये। लेकिन कुछ समय के बाद ही टीपू को इस दगाबाजी का पता चल गया। वह अपनी सेना के साथ बड़ी तेजी में वहाँ से रवाना हुआ और गुलशनाबाद के पास पहुँच कर उसने अङ्गरेजी सेना को आगे बढ़ने से रोका। दोनों ओर से युद्ध आरम्भ हो गया। उस मार-काट में दोनों सेनाओं के बहुत-से सैनिक और अफसर मारे गये। टीपू ने अपने सेनापति कमरुद्दीन को सेना के साथ आगे बढ़ने और शत्रु पर जोरदार आक्रमण करने की आज्ञा दी। वह अङ्गरेजों के साथ पहले से ही मिला हुआ था। अनेक प्रलोभन देकर अङ्गरेजों ने उसे फोड़ लिया था। कमरुद्दीन अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा और घूमकर उसने टीपू की सेना पर आक्रमण किया। इस समय अपने सेनापति के विश्वासघात के कारण टीपू के अचानक बहुत-से आदमी मारे गये और उसे युद्ध में पराजित होना पड़ा। लेकिन पीछे हटकर टीपू ने युद्ध को जारी रखा।

इसके बाद उसे समाचार मिला कि बम्बई की एक अङ्गरेजी

सेना को लेकर जनरल स्टुअर्ट श्रीरंगपट्टन पर आक्रमण करने आ रहा है। तुरन्त हेरिस के मुकाबिले में अपनी एक फौज छोड़ कर टीपू वहाँ से रवाना हुआ।

बड़ी तेजी से चल कर टीपू ने बम्बई की सेना को मार्ग में ही जाकर रोका और उस पर भयानक हमला किया। बहुत देर तक घमासान युद्ध करने के बाद उसने अँगरेजी सेना को पराजित किया और जनरल स्टुअर्ट की सेना को इधर-उधर भागने के लिए मजबूर कर दिया। टीपू उसके बाद श्रीरंगपट्टन की तरफ रवाना हुआ।

श्रीरङ्गपट्टन का संग्राम

इस समय तक जनरल हेरिस की सेना श्रीरंगपट्टन के करीब पहुँच चुकी थी। अँगरेजी सेना ने राजधानी के किले और नगर पर गोले बरसाने शुरू कर दिये। टीपू के सेनापति और सरदार युद्ध नहीं करना चाहते थे। उनको अपनी विरोधी परिस्थितियों का ज्ञान हो चुका था। उनके दिल टूट चुके थे। उन सब ने टीपू को अँगरेजों से सन्धि करने की सलाह दी। लेकिन टीपू ने इस सलाह को मंजूर नहीं किया।

बम्बई की अँगरेजी सेना भी वहाँ पर पहुँच गयी। युद्ध आरम्भ हो गया। अँगरेजों के अपमानपूर्ण व्यवहारों से टीपू बहुत ऊब चुका था। वह अब लड़ कर मर जाना पसन्द करता था। जीवन की इस निराश अवस्था में उसने भयानक संग्राम किया। लेकिन अपने विश्वासी शूरमाओं की दगाबाजियों का उसके पास कोई उपाय न था। जिनके बल-भरोसे पर युद्ध करके वह एक बार अँगरेजों को परास्त करने का हौसला रखता था, वे सब अँगरेजों के जाल में फँस चुके थे और उन्हें जो प्रलोभन दिये गये थे, उनको पाने के लिए वे सब के सब टीपू का अन्त

चाहते थे। इस दशा में युद्ध का जो नतीजा हो सकता था, उसे टीपू खूब समझ रहा था। उसकी सारी शक्तियाँ अँगरेजों के हाथों में चली गयी थीं। इसलिए जो युद्ध उसने आरम्भ किया था, वह युद्ध उसके जीवन का अन्तिम युद्ध हो रहा था।

टीपू ने अन्त में भली प्रकार समझ लिया कि मेरे आदमी अब खुल कर मेरे साथ दगा कर रहे हैं। वह निराश हो गया। इसी दशा में उसने देखा कि श्रीरंगपट्टन का मजबूत किला शत्रुओं के हाथों में चला गया। उसने वहाँ से निकलने की कोशिश की। लेकिन उसको निकल कर बाहर जाने का रास्ता नहीं मिला। अँगरेजी सेना किले में प्रवेश कर चुकी थी और टीपू के बहुत-से आदमी मारे जा चुके थे। जो बाक़ी थे, वे अङ्गरेजों के साथ मिले हुए थे।

टीपू ने आख़ीर समय तक युद्ध किया। उसका शरीर अब थक चुका था। उसके हाथ लगातार निकम्मे होते जाते थे। वह अपने मरने का समय निकट समझ रहा था। फिर भी, उसने अपने सरदारों और शूरों को ललकार कर शत्रुओं को मारने का आदेश दिया। इसी समय एक गोली टीपू की छाती में बाईं ओर आकर लगी। वह बुरी तरह से घायल हो गया। उसके बाद दूसरी गोली उसके दाहिनी ओर छाती में लगी। टीपू का घोड़ा घायल हो कर जमीन पर गिर गया। टीपू के गिरने में अब देर न थी। इसी समय तीसरी गोली उसके सिर में लगी। टीपू अचेत हो कर जमीन में गिर गया और सदा के लिए इस संसार को छोड़ कर वह चला गया। उसका मृत शरीर लाशों के ढेर में पड़ा था। लेकिन वीरात्मा टीपू अब इस संसार में न था।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

मराठों की लड़ाइयाँ

[१७७५ से १७८१ ईसवी तक]

मराठों को कमजोर बनाने की कोशिश, आपस में अँगरेजों की हार, झूठी सन्धियाँ, पूना में अँगरेजों का आक्रमण, अँगरेजों की पराजय !

पेशवा के साथ संधि

सन् १७६१ ईसवी में अहमदशाह अब्दाली के मुकाबिले में पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय हो चुकी थी। उस समय तक दक्षिण में मराठों की शक्तियाँ संगठित और सुदृढ़ थीं। उस युद्ध से मराठों की संयुक्त शक्ति को एक करारा धक्का लगा था। दिल्ली के मुग़ल साम्राज्य से उनका प्रभाव उठ गया था और उसके बाद से गायकवाड़, भोंसला, होलकर और सींधिया के राज्य पेशवा की अधीनता से एक-एक करके अलग होने लगे थे।

पानीपत के युद्ध के बाद कुछ ही दिनों में पेशवा बाला जी बाजीराव की मृत्यु हो गयी थी। उसका नाबालिग़ लड़का माधव राव उसके स्थान पर अधिकारी हुआ। उसके नाबालिग होने के कारण, उसका चाचा रघुनाथ राव उसका संरक्षक बनाया गया। रघुनाथ राव बहादुर था, लेकिन दूरदर्शी न था।

अङ्गरेजों का फायदा इसमें था कि इस देश में कोई दूसरा राज्य शक्तिशाली न रहे। इसीलिए उन्होंने मराठों को निर्बल

बनाने की कोशिश की और इस उद्देश्य में उन्होंने रघुनाथ राव को मिला कर लाभ उठाया। साष्टी का टापू और बसईं का किला मराठों के अधिकार में था। अङ्गरेज उनको अपने अधिकार में लेना चाहते थे। इसलिए उन्होंने तरह तरह के जाल फैलाने आरम्भ कर दिये। दक्षिण में मराठों का शासन था और निजाम की हुकूमत भी चल रही थी। अँगरेजों ने दोनों के बीच शत्रुता का भाव पैदा करने की चेष्टा की और झूठी अफवाह फैला कर उन्होंने माधव राव के साथ एक सन्धि कर ली। उसमें निश्चय हो गया कि निजाम के साथ संघर्ष पैदा होने में अँगरेज माधवराव की सहायता करेंगे और माधवराव पेशवा इसके बदले में साष्टी का टापू और बसईं का किला अँगरेजों को दे देगा।

मराठों को लड़ाने की चेष्टा

सन् १७७२ ईसवी में इंगलैण्ड का चतुर राजनीतिज्ञ मास्टिन भारत में आया। उसने बम्बई से अपना एक प्रतिनिधि पेशवा-दरबार में भेजा। उसका यह काम था कि वह पेशवा माधवराव के साथ सहानुभूति प्रकट करे और उस दरबार में रहकर वह पेशवा-दरबार की भीतरी और बाहरी कमजोरियों को जानने की कोशिश करे। वह इस बात की भी कोशिश करे कि मराठों में आपस में फूट पैदा हो, वे एक-दूसरे के साथ लड़ें और हैदरअली तथा निजाम के साथ भी मराठों की शत्रुता पैदा हो। अपने इस उद्देश्य को लेकर वह अँगरेज पेशवा-दरबार में चला गया।

कुछ समय के बाद माधवराव बालिग हो गया। उसके दरबार में उस समय दूरदर्शी नाना फड़नवीस मौजूद था। वह अँगरेजों की चालों को समझता था। माधवराव के बालिग होने पर नाना ने उसके नेत्रों को खोलने की चेष्टा की। अँगरेजों ने रघुनाथ राव को बेवकूफ बना रखा था और इसके लिए उन्होंने

उसे बहुत महत्व दिया था। उस समय अँगरेजों के सामने एक ही आसान रास्ता था कि वे रघुनाथ राव को अपने अधिकार में रखकर पेशवा के दरबार में मनमानी करें। नाना फड़नवीस इसका विरोधी था। माधवराव भी बालिग़ हो चुका था। इसलिए पेशवा और रघुनाथ के बीच तनातनी बढ़ गयी और एक बार रघुनाथ राव कैद भी हो गया। लेकिन फिर छोड़ दिया गया।

अचानक पेशवा माधवराव की मृत्यु हो गयी। उसके स्थान पर उसका भाई नारायण राव गद्दी पर बैठा और रघुनाथ राव उसका भी संरक्षक माना गया। अँगरेजों की फिर बन आयी। रघुनाथ राव ने नारायण राव को ३० अगस्त सन् १७७३ ईसवी में मरवा डाला। अँगरेजों से परामर्श लेकर रघुनाथ राव अब स्वयं पेशवा की गद्दी पर बैठा। अँगरेज पहले से ही एक मौका चाहते थे। मास्टिन ने निज़ाम और हैदरअली के साथ रघुनाथ राव की लड़ाई करवा दी। अँगरेजों के इशारे पर चलने के सिवा उसके सामने और कोई रास्ता न था। उस लड़ाई का इतना ही नतीजा निकला कि हैदरअली के साथ पेशवा की एक शत्रुता पैदा हो गयी। मॉस्टिन यही चाहता था।

पेशवा-दरबार का विद्रोह

मास्टिन के कहने पर रघुनाथ राव ने अपने आपको पेशवा बनाकर घोषणा की थी। उसके दरबार के लोग ऐसा नहीं चाहते थे। नाना फड़नवीस स्वयं उसका विरोधी था। वह जानता था कि रघुनाथ राव अँगरेजों की मर्जी पर चलकर पेशवा-राज्य की जड़ को कमजोर बना रहा है। हैदरअली और निज़ाम के साथ युद्ध करने के पक्ष में पेशवा-दरबार के मन्त्री न थे। इसलिए अपनी सेना लेकर, केवल अँगरेजों के कहने पर, पूना से रघुनाथ राव के रवाना हो जाने पर दरबार के सभी लोगों ने नाना के

साथ परामर्श किया और सभी ने एक मत होकर नारायणराव के पुत्र को गद्दी पर बिठाकर उसके पेशवा होने की घोषणा कर दी। यह घटना १८ अप्रैल सन् १७७४ ईसवी की है।

नाना फड़नवीस और दूसरे लोगों का उद्देश्य मास्टिन से छिपा न रहा। वह किसी प्रकार इसे बरदाश्त नहीं करना चाहता था। भारत में आकर अपने उद्देश्य में वह अभी तक सफल न हुआ था। उसका उद्देश्य था कि दक्षिण का शक्तिशाली पेशवा-राज्य नष्ट हो जाय। इसके लिए उसने दो रास्ते पैदा किये। एक रास्ता तो यह था कि वह हैदरअली तथा निज़ाम से लड़ाकर पेशवा को उनका शत्रु बनाना चाहता था। इसमें वह सफल हो चुका था। दूसरा रास्ता यह था कि पेशवा-दरबार में वह फूट पैदा करना चाहता था। वह बात भी उसको पूरी हो गयी। अब अँगरेजों के लिए रघुनाथ राव का पक्ष लेकर लड़ने और पेशवा राज्य को बरबाद करने का सीधा रास्ता खुल गया।

मास्टिन ने रघुनाथ राव को सूरत में बुलाया। दोनों में बहुत समय तक परामर्श हुआ। ६ मार्च सन् १७७५ ईसवी को रघुनाथ राव और कम्पनी के बीच एक सन्धि हुई। उसमें तय हुआ कि कम्पनी अँगरेजी फौज की सहायता से रघुनाथ राव को फिर से पेशवा की गद्दी पर बिठावे और रघुनाथ राव इसके बदले में साष्टी, बसई और सूरत के कुछ प्रदेश कम्पनी को दे दें।

पेशवा की विजय

हैदरअली से युद्ध करने के लिए अपनी सेना लेकर जिस समय रघुनाथराव पूना से निकला था, अभी तक वह लौट कर पूना न पहुँचा था। सन्धि के बाद पूना पर आक्रमण करने और रघुनाथराव को पेशवा बनाने के लिए करनल कीटिंग के नेतृत्व

में अँगरेजों की एक फौज तैयार हुई। रघुनाथराव के साथ एक सेना थी ही। दोनों सेनायें पूना की तरफ रवाना हो गयीं।

इस आक्रमण का समाचार पूना पहुँचा। उन सेनाओं के साथ युद्ध करने के लिए सेनापति हरिपंत फड़के के साथ पेशवा की एक सेना पूना से निकली। १८ मई सन् १७७५ ईसवी को आरस नामक स्थान पर दोनों सेनाओं का सामना हुआ। युद्ध आरम्भ हो गया।

रघुनाथ राव के साथ जो पूना की सेना थी, वह अँगरेजों की चालों को समझती थी। वह पेशवा-राज्य की एक सेना थी और अँगरेजों की चालों से वह पूना की सेना के साथ युद्ध करने के लिए मजबूर की गयी थी। युद्ध आरम्भ हुआ और कुछ समय तक भयानक संग्राम हुआ। लेकिन अँगरेजों ने जो अनुमान लगाया था, वह पलटा खाता हुआ दिखायी देने लगा। रघुनाथ राव के साथ की सेना ने युद्ध में जोर नहीं पकड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि सारा बोझ अँगरेजी सेना पर आता हुआ दिखायी देने लगा। करनल कीटिंग के बहुत जोर मारने पर भी अँगरेजी सेना आगे बढ़ न सकी। दोनों ओर से अब तक जो लोग मारे गये, उनमें अँगरेजों की संख्या अधिक थी। कई एक अँगरेज अफसर भी उस युद्ध में काम आये। सेनापति फड़के की सेना ने जोर पकड़ा। वह आगे बढ़ने लगी और रघुनाथ राव के पक्ष की दोनों सेनाओं को पीछे हटना पड़ा। रघुनाथ राव के बहुत चाहने पर भी उसको सफलता न मिली। पूना की सेना बराबर आगे बढ़ती हुई आ रही थी। अंत में अँगरेजी सेना ने साहस तोड़ दिया और करनल कीटिंग पराजित होकर युद्ध-क्षेत्र से हट गया।

युद्ध के लिए अँगरेजों की तैयारी

सूरत में रघुनाथ राव के साथ सन्धि होने के बाद, अँगरेजों

ने साष्टी और बसई पर अधिकार कर लिया था। लेकिन इस सन्धि को पेशवा-सरकार ने मानने से इनकार कर दिया था। इसलिए मास्टिन की कूटनीति असफल हो गयी थी। वारन हेस्टिंग्स इन दिनों में कलकत्ता में था। उसने एक नया रास्ता निकाला। कलकत्ता से करनल अपटन को पूना भेजकर उसने उस लड़ाई पर अफसोस जाहिर किया जो रघुनाथ राव को पेशवा बनाने के लिए की गयी थी। उसने पूना में जाकर यह जाहिर किया कि बम्बई-काउन्सिल की आज्ञा के बिना यह सब किया गया है। काउन्सिल न तो रघुनाथ राव का साथ देना चाहती है और न पेशवा-सरकार से लड़ना चाहती है।

करनल अपटन को अपने कार्य में सफलता न मिली। पेशवा राज्य के प्रधान मन्त्री सखाराम बापू ने करनल अपटन को आदेश दिया कि साष्टी और बसई अँगरेजों को तुरन्त खाली कर देना चाहिए। वारन हेस्टिंग्स को जब अपनी चालों में सफलता न मिली तो उस ने एक बड़े युद्ध की तैयारी की। कलकत्ता और मद्रास में अँगरेजों की फौजी तैयारी आरम्भ हो गयी। भोंसले, सींधिया और होलकर मराठों की तीन शक्तियाँ मराठा मण्डल से अलग हो चुकी थीं और उनसे अँगरेज कुछ अधिक आशायें रखते थे। इसलिए उनको मिलाने के लिए अँगरेज कोशिश करने लगे। रघुनाथ राव हैदरअली के साथ युद्ध करके पूना के साथ उसको शत्रु बना चुका था, इसलिए कम्पनी के अधिकारियों ने पूना के विरुद्ध युद्ध करने में हैदरअल और निजाम से सहायता माँगी।

अँगरेज युद्ध की तैयारी भी कर रहे थे और पेशवा-सरकार के साथ सन्धि भी चाहते थे। युद्ध को बचाने के अभिप्राय से प्रधान मन्त्री सखाराम बापू और नाना फड़नवीस सन्धि के लिए तैयार हो गये। ३ जून सन् १७७६ ईसवी को कम्पनी और पूना-

सरकार के बीच पुरन्धर में एक सन्धि हुई। उसमें सूरत की सन्धि को नामन्जूर किया गया। कम्पनी ने स्वीकार किया कि वह रघुनाथ राव की सहायता न करेगी, बसई का किला छोड़ देगी और पूना-सरकार के साथ सदा मित्रता रखेगी। इस सन्धि के अनुसार पेशवा-सरकार ने साष्टी का टापू, भड़ोच की माल गुजारी और अपने कुछ प्रदेश कम्पनी को दे दिये। इसके साथ-साथ रघुनाथ राव की गुजर के लिए भी प्रबन्ध कर दिया गया।

सन्धि का जाल

कम्पनी और पेशवा-सरकार के बीच पुरन्धर की सन्धि हो चुकी थी और पेशवा सरकार ने सन्धि के बाद, संतोष के साथ कुछ दिन बिताने का अनुमान किया था। लेकिन अँगरेजों की सन्धियाँ एक जाल का काम करती थीं और भारत में राजाओं के साथ उन्होंने जो अब तक सन्धियाँ की थीं, वे सब इसका प्रमाण देती थीं। पुरन्धर की सन्धि में भी यही हुआ। अँगरेजों ने न तो रघुनाथ राव का साथ छोड़ा और न बसई के किले को ही खाली किया। उस सन्धि में एक अँगरेजी दूत के पूना-दरबार में रखने का निर्णय हुआ था, इसलिए मास्टिन को दूत बनाकर बम्बई से पूना भेज दिया गया। मास्टिन की चालों से पेशवा-दरबार परिचित था, इसलिए दरबार ने उसका विरोध किया। लेकिन उस विरोध का अँगरेजों पर कोई प्रभाव न पड़ा और दरबार के मन्त्री लोग मास्टिन को अपने यहाँ रखने के लिए मजबूर किये गये।

मास्टिन पूना-दरबार में पहुँच गया। फूट डालने, आपस में लड़ाने और शत्रुता पैदा करा देने में वह एक सफल राजनीतिज्ञ माना जाता था। पूना पहुँचने के बाद उसने यही किया और वह सफल हुआ। दरबार के एक मन्त्री मोराबा को उसने अपने

पक्ष में मिला लिया। नाना फड़नवीस और मोराबा के बीच उसने शत्रुता पैदा कर दी और सखाराम बापू तथा नाना के बीच भी उसने कलह के बीज बो दिये। इन झगड़ों के कारण ही नाना पूना से पुरन्धर चला गया। उसके न रहने पर मास्टिन का षड़यन्त्र पेशवा-दरबार में काम करने लगा। मोराबा उसके साथ मिल चुका था। मास्टिन ने मोराबा से बम्बई काउन्सिल के नाम एक पत्र भेजवा दिया कि रघुनाथ राव को पूना की गद्दी पर बिठाने के लिए तैयारी कीजिए।

बम्बई की काउन्सिल अवसर की ताक में थी। पुरन्धर की सन्धि को ठुकरा कर उसने रघुनाथ राव को पेशवा बनाने की तैयारी शुरू कर दी और इस कार्य की सहायता के लिए बङ्गाल से एक बड़ी अँगरेजी सेना मँगायी गयी।

पेशवा-दरबार में परिवर्तन

मास्टिन ने पूना पहुँच कर पेशवा-दरबार में फूट डालकर और उसके अधिकारियों को आपस में लड़ाकर जो छिन्न-भिन्न कर दिया था, वह अवस्था बहुत दिनों तक न चली। पुराने मन्त्रि-मण्डल को बदलकर नया मन्त्रि-मण्डल बनाया गया। बम्बई-काउन्सिल के नाम मन्त्री मोराबा ने जो पत्र भेजा था, उस अपराध के कारण वह कैद करके अहमदनगर के किले में बन्द कर दिया गया। सखाराम बापू और नाना फड़नवीस में फिर से मेल हो गया। सखाराम के वृद्ध होने के कारण नाना फड़नवीस पेशवा का प्रधान मन्त्री बनाया गया। इस नये मन्त्रि-मण्डल में रघुनाथ राव के पक्ष में कोई न था। पूना में अब भी अँगरेजों की कूटनीति चल रही थी और मास्टिन पेशवा-दरबार को बराबर विश्वास दिला रहा था कि पुरन्धर में होने वाली सन्धि की एक-एक बात को पूरा करने के लिए कम्पनी पूरे तौर पर

तैयार है; जब कि उस सन्धि के खिलाफ कम्पनी के अधिकारी अँगरेज रघुनाथ राव को पेशवा बनाने में अपनी पूरी शक्ति लगाकर कोशिश कर रहे थे।

अँगरेजों की पराजय

रघुनाथ राव को पेशवा और पूना की सेनाओं को परास्त करने के लिए इस बार अँगरेज अधिकारियों ने बड़ी मजबूती के साथ इन्तजाम किया। बंगाल, मद्रास और बम्बई की अँगरेजी सेनायें युद्ध के लिए तैयार हो चुकी थीं। भोंसले, सींधिया और होलकर को किसी प्रकार अँगरेजों ने अपने साथ कर लिया था। आपस के झगड़ों में कई एक राजाओं की सहायता करके पेशवा के साथ युद्ध करने में उनसे सहायता माँगी थी। इस प्रकार युद्ध की बहुत बड़ी तैयारी कर चुकने के बाद कम्पनी ने रघुनाथ राव से एक पट्टा लिखा लिया और २२ नवम्बर सन् १७७८ ईसवी को रघुनाथ राव और करनल इजर्टन के साथ देकर बम्बई से उनको पूना के लिए रवाना कर दिया। मास्टिन अभी तक पूना में ही था, वह अचानक बीमार पड़ा और बम्बई में जाकर १ जनवरी सन् १७७९ ईसवी को उसकी मृत्यु हो गयी।

नाना फड़नवीस एक असाधारण राजनीतिज्ञ था। उसने सींधिया और होलकर को अपने पक्ष में कर लिया। अँगरेजों की युद्ध सम्बन्धी तैयारी की सब बातों का उसे पता था। वह चुप न था और युद्ध के लिए वह अपनी तैयारी कर रहा था। अँगरेजी सेनाओं के आगमन का समाचार जानकर उसने अपने यहाँ तैयारी की और सींधिया तथा होलकर के सेनापतित्व में उसने सेनायें देकर युद्ध के लिए रवाना कर दिया।

पूना से आगे बढ़कर दोनों तरफ की सेनाओं का मुकाबिला हुआ। अँगरेजी फौजों ने बड़े जोर का आक्रमण किया और

कुछ समय तक युद्ध करके पूना की सेनायें पीछे की ओर हटने लगीं। यह देखकर अँगरेजी सेना का उत्साह बढ़ गया। उसने अब की बार और भी जोर के साथ पूना की सेनाओं पर प्रहार किया और उनको बहुत दूरी तक पीछे की ओर हटा दिया।

विजय के उल्लास में अँगरेजी फौजें बराबर आगे की ओर बढ़ती गयीं और पूना की सेनाओं को पीछे की ओर हटाकर वे ताले गाँव के विस्तृत मैदान तक ले गयीं। उस स्थान से पूना की दूरी १८ मील से अधिक न थी। उस मैदान में पहुँच कर पूना की जोरदार सेनाओं ने ९ जनवरी सन् १७७९ ईसवी को अँगरेजी सेनाओं के साथ इतना भयानक युद्ध किया कि अँगरेजी फौजों के बहुत-से सिपाही और अफसर काट-काटकर फेंक दिये गये। उस दिन पूना के बहादुर सैनिकों और सरदारों ने जिस भीषण रूप से नर-संहार किया, उसे देखकर अँगरेज सेनापति का साहस टूट गया। उसकी फौजों ने पीछे हटना शुरू कर दिया। थोड़े समय के बाद पूना की विशाल सेनाओं ने अँगरेजी फौजों को तीन ओर से घेर लिया और भयानक मार शुरू कर दी।

अँगरेजी सेना के सैनिक अधिक संख्या में मारे गये और उनके अस्त्र-शस्त्र छीन लिए गये। अँगरेज सेनापति ने घबराकर सन्धि के लिए प्रार्थना की। उसी समय पूना की सेनाओं ने युद्ध बन्द कर दिया। १३ जनवरी को सन्धि की बातचीत हुई और कुछ शर्तों के साथ दोनों पक्षों ने उसे मन्जूर कर लिया।

भोरघाट में अङ्गरेजों की हार

ताले गाँव में पराजित होने और सन्धि करने के बाद अँगरेज अपनी चालों से बाज न आये। सन्धि के विरुद्ध उनकी हरकतें बराबर जारी रहीं। वारन हेस्टिंग्स इस कोशिश में था कि

हिन्दू-नरेश पेशवा के साथ युद्ध करें और बरबाद हों। वह अँगरेजों का इसी में लाभ समझता था।

मराठा-मण्डल में जो पाँच मराठा नरेश शामिल
महाराज गायकवाड़ को कम्पनी ने फोड़कर अपने [illegible] में कर लिया था। बरार के महाराजा भोंसले पर अँगरेजों का कोई प्रभाव न पड़ा था। लेकिन वह पेशवा की सहायता से भी अलग हो गया था। अब होलकर और सींधिया को छोड़कर पेशवा की सहायता में और कोई राजा न था। उसके साथ जो सेनापति थे, उनमें माधव जी सींधिया योग्य और शूर-वीर था। लेकिन वारन हेस्टिंग्स ने अनेक तरह के प्रलोभन देकर उसे अपनी ओर मिला लिया।

अँगरेजों ने माधव जी सींधिया के साथ एक गुप्त बैठक की। उस बैठक में तय हुआ कि माधव राव नारायण, जो इस समय पेशवा है और जिसकी अवस्था इस समय पाँच वर्ष से अधिक नहीं है, पेशवा बना रहे; लेकिन रघुनाथ राव का लड़का, बाजीराव जिसकी आयु लगभग चार वर्ष की है, पेशवा का दीवान बना दिया जाय। इस नाबालिग दीवान का संरक्षक माधव जी सींधिया रहे और रघुनाथ राव को बारह लाख वार्षिक की पेन्शन देकर झाँसी भेज दिया जाय। इसके साथ ही अँगरेजों ने माधव जी को भड़ोच का इलाका और एकतालीस हजार रुपये नकद देना स्वीकार किया। इन शर्तों के साथ माधव जी सींधिया, रघुनाथ राव और अँगरेजों में सन्धि हो गयी।

जब माधव जी सींधिया के साथ अँगरेजों ने ऊपर की सन्धि कर ली तो उन्होंने रघुनाथ राव और दोनों अँगरेज अफसरों को पेशवा की कैद से छुड़ा लिया। इसी बीच में नाना फड़नवीस को मालूम हुआ कि अँगरेज सेनापति करनल गाडर्ड अपनी सेना लेकर आक्रमण करने के लिए गुजरात पहुँच गया है, इसलिए उसने तुरन्त माधव जी सींधिया को एक सेना देकर उसके साथ

युद्ध करने को भेजा और एक दूसरी सेना मूदा जी भोंसला को देकर बंगाल पर आक्रमण करने के लिए रवाना किया।

नाना फड़नवीस को जब मालूम हुआ कि माधव जी सींधिया कम्पनी के साथ मिल गया है तो उसने महाराजा होलकर को अपनी एक सेना देकर गुजरात भेजा। लेकिन उसे सफलता न मिली। अँगरेजी सेना ने गुजरात का विध्वंस किया और पूना पर चढ़ाई करने का इरादा किया। नाना फड़नवीस साधारण आदमी न था। उसने भारत के सभी राजाओं और बादशाहों को मिलाकर और एक संयुक्त मोर्चा बनाकर अँगरेजों को भारत से निकालने का प्रयत्न किया।

गुजरात को बरबाद करके और वहाँ पर अपना आतङ्क जमाकर करनल गाडर्ड अपनी विशाल सेना के साथ पूना की ओर रवाना हुआ। उसका मुकाबिला करने के लिए हरिपन्त फड़के, परशुराम भाऊ और होलकर के नेतृत्व में पूना से सेनायें रवाना हुईं। भोरघाट के पास इन सेनाओं ने जाकर अँगरेजी सेना को आगे बढ़ने से रोका। उसी समय दोनों ओर से विकट संग्राम आरम्भ हो गया। बहुत समय तक दोनों ओर से भयंकर मार-काट हुई और हजारों सैनिक और सवार मारे गये।

अँगरेजी सेना ने इन दिनों में जिस प्रकार अत्याचार किये थे, पूना के वीर सैनिकों ने उनका खूब बदला उनको दिया। कई एक अङ्गरेज अफसर और उनके बहुत-से आदमी उस युद्ध में काम आये। अन्त में अङ्गरेजी सेना कमजोर पड़ने लगी। यह देखकर पूना की सेनाओं ने एक बार भयानक मार-काट की। करनल गाडर्ड की हिम्मत टूट गयी और अङ्गरेजी सेना वहाँ से भागकर बम्बई की तरफ चली गयी। अन्त में पूना की सेनायें पूना लौट गयीं।

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

स्वाधीनता का संग्राम

[१८५७ ईसवी]

अँगरेजी राज्यका विस्तार, देशकी राजनीतिक दशा, क्रान्तिकी आग, शुरुआत और विस्तार, रक्तपात और अत्याचार, देशद्रोही राजा, क्रान्तिका अन्त।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन

सन् १८५६ ईसवी के मार्च महीने तक लार्ड डलहौजी भारत का गवर्नर-जनरल रहा था। उस समय तक अंगरेजों का भारतीय साम्राज्य पूरे तौर पर विस्तार पा चुका था। प्लासी के युद्ध के पहले से ही अँगरेजों ने जिस प्रकार के षड़यंत्रों से काम लिया था, उनके फल-स्वरूप इस देश के निवासियों-हिन्दुओं और मुसलमानों के हृदयों में असंतोष और क्रोध की भावनायें उत्पन्न हुई थीं। क्लाइव के समय से लेकर लार्ड डलहौजी के समय तक कम्पनी के अधिकारियों ने जिस कूटनीति का सहारा लिया था, उसने भारतीयों के मनोभावों में उनके प्रति घृणा उत्पन्न कर दी थी। जो वादे कम्पनी की तरफ से किये जाते थे, वे झूठे होते थे। जो संधियाँ होती थीं, उनका कोई भी अस्तित्व न होता था। भारत के राज-परिवारों का विनाश किया गया था, भयानक षड़यंत्रों और लज्जापूर्ण उपायों के द्वारा उनकी रियासतें लेकर अँगरेजी राज्य में शामिल की गयी थीं। देश के प्राचीन व्यवसायों को नष्ट करके उसके निवासियों की जीविका नष्ट की गयी थी।

राजमहलों में आक्रमण करके रानियों और बेगमों को लूटा गया था। जमीदारियों को नष्ट करके जमीदारों को बरबाद किया गया था। किसानों के अधिकारों को छीनकर उनको मिटाया गया था। इन सभी बातों ने मिलकर भारतीयों के दिलों में अँगरेजों के प्रति आग उत्पन्न कर दी थी।

इसके बाद डलहौजी का शासन आरम्भ हुआ। महाराजा रणजीतसिंह के साथ बेईमानी करके उसने पंजाब को मिट्टी में मिलाया। लाहौर के अधिकारियों में उसने फूट पैदा की। दलीप-सिंह और उसकी विधवा माता को उसने देश से निकाल दिया और पंजाब का उपजाऊ प्रान्त उसने अँगरेजी राज्य में मिला लिया। बिना किसी कारण के उसने बरमा पर आक्रमण किया। भारत के राजाओं में गोद लेने की प्रथा को नष्ट करके उसने सतारा, झाँसी, नागपुर के राज्यों को अपने अधिकार में कर लिया। अवध के नवाब को अयोग्य कहकर उसने उसके राज्य पर कब्जा किया। नवाब वाजिदअली शाह को कैद करके कल-कत्ता भेज दिया। इस प्रकार एक-एक करके उसने भारत की सम-स्त रियासतों को लेकर अँगरेजी राज्य का विस्तार किया।

साधारण प्रजा के साथ भी जो अत्याचार किये गये, वे भया-नक क्रूरता और निर्दयता से भरे हुए थे। तरह-तरह के अन्यायों से देश तबाह और बरबाद किया गया। प्रत्येक मनुष्य असंतोष की आहें ले रहा था। प्रजा से ले कर राजाओं और नवाबों तक—सब के सब असंतुष्ट और दुखी थे। इस अवस्था में कम्पनी का शासन देश में चल रहा था।

देश में युद्ध की शक्तियाँ

संगठन और सहानुभूति की बुद्धि इस देश के निवासियों को कदाचित् भगवान ने न दी थी। अत्यंत प्राचीन काल से इस देश

के निवासी सभी प्रकार समर्थ और सुखी थे, लेकिन विपदाओं में एक-दूसरे के साथ मिलकर और एकता की शक्ति को मजबूत बनाकर वे विपदाओं का सामना करना न जानते थे। इसका लाभ विदेशियों ने सदा उठाया और अँगरेजों ने उसी का लाभ उठाकर इस देश में अपना साम्राज्य कायम किया।

देश में युद्ध करने की शक्तियाँ न थीं। जो थीं, उनको अँगरेजों ने अपनी भीषण कूटनीति के द्वारा नष्ट कर दिया। राजाओं की शक्तियाँ इस देश में अलग-अलग काम करती थीं। कोई एक बड़ी शक्ति न थी। बाबर ने आकर मुगल राज्य की स्थापना की थी और अकबर ने उसे सुदृढ़ तथा अजेय बनाया था। लेकिन ईस्ट-इंडिया कम्पनी के आने के समय उस साम्राज्य की इमारत पुरानी और धीरे-धीरे निर्बल होती जा रही थी। उसकी निर्बलता के दिनों में बहुत-से राजा और नवाब स्वतंत्र हो गये थे और देश की एक शक्ति सैकड़ों भागों में फिर विभाजित हो चुकी थी। इस प्रकार उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक देश में जो छोटे और बड़े राज्य थे, वे आपस में खूब लड़ रहे थे और एक दूसरे को मिटाने में लगे थे। देश के इन्हीं दुर्दिनों में विदेशी व्यापारियों ने इस देश में प्रवेश किया था और उनमें इंगलैण्ड की ईस्ट-इन्डिया-कम्पनी ने अवसर का लाभ उठाकर अपनी दूषित कूटनीति के बल पर उसने अपना राज्य कायम किया था।

प्रजा से लेकर राजाओं और नवाबों तक—सब-के-सब निर्बल, अनाथ और असहाय हो चुके थे। कम्पनी के अत्याचारों की भयानक आँधियों के कारण किसी को कुछ दिखायी न पड़ता था। युद्ध की शक्तियाँ नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थीं। उस असहाय अवस्था में कम्पनी के अधिकारी जैसा चाहते थे, देश के हिन्दुओं और मुसलमानों को वही करना पड़ता था। वे सभी मिलकर एक अटूट शक्ति का निर्माण न कर सकते थे। अपनी-अपनी

शक्तियों को एक, दूसरे से अलग रखकर ये अपना जीवन बिता रहे थे। देश में युद्ध करने की कोई शक्ति न रह गयी थी।

युद्ध के रूप में क्रान्ति

कम्पनी के अधिकारियों ने देश में जो अन्याय और अत्याचार किये, उनके कारण अशान्ति और असन्तोष की उत्पत्ति हुई। यह असंतोष चिनगारियों के रूप में बदला और कुछ समय के बाद उसने धुआँ देना आरम्भ किया। उस धुआँ से क्रान्ति की लपटें उठती हुई दिखायी देने लगीं। जिन लोगों की रियासतें जब्त हुई थीं और जिनके अधिकार छीने गये थे, उनके दिलों में क्रान्ति की आग सुलगने लगी और उन्हीं में से कुछ लोग होने वाली क्रान्ति के सञ्चालक बन गये।

कम्पनी ने सम्पूर्ण देश का विनाश किया था। एक सौ वर्ष तक अँगरेजी आधिपत्य में रहने के कारण बङ्गाल अपनी जीवन शक्ति को खो चुका था। मद्रास और बम्बई की भी कुछ यही अवस्था हो गयी थी। लेकिन पूर्वी प्रान्तों में जीवन बाकी था। इसलिए क्रान्ति की आग वहीं पर सुलगी और प्रज्वलित हुई। कम्पनी के शासन में मराठा-शक्तियों का विनाश अन्त में हुआ था। पेशवा का राज्य छीना गया था। उसका दत्तक पुत्र नाना साहब अपने न्यायपूर्ण अधिकारों से वञ्चित किया गया था। सतारा, नागपुर और झाँसी की रियासतें अँगरेजी राज्य में मिला ली गयी थीं। संयुक्त प्रान्त—आगरा और अवध के मुसलमानों ने दिल्ली और लखनऊ के शाही खान्दानों को लुटते, मिटते और विध्वंस होते हुए अपने नेत्रों से देखा था। इसलिए उनके दिलों में जो आग लगी हुई थी, उसने सन् १८५७ ईसवी का भयानक विप्लव उत्पन्न किया।

देश में युद्ध की शक्तियाँ मिट चुकी थीं, फिर भी देश की

स्वाधीनता के लिए युद्ध का आविर्भाव हुआ। उसने क्रान्ति के रूप में युद्ध का काम किया। इसीलिए सन् १८५७ ईसवी के स्वाधीनता के युद्ध को क्रान्ति का नाम दिया गया।

क्रान्ति की तैयारियाँ

देश में अँगरेजों के प्रति राजनीतिक असन्तोष था। लेकिन राजनीति के स्थान पर धार्मिक भावना ने अधिकार कर रखा था। इस धार्मिकता के प्रवाह की दिशा कोई एक न थी। हिन्दू, सिख और मुसलमान—तीनों धर्म के नाम पर एक दूसरे के विपरीत मार्गों पर चलते थे। हिन्दुओं और सिखों के मतभेद का कारण यह हुआ कि इस क्रान्ति में हिन्दू और मुसलमान एक साथ एक होकर चले और सिख, मुसलमानों के साथ एक मार्ग पर चलना नहीं चाहते थे। इसीलिए वे इस क्रान्ति में शामिल न हो सके और कम्पनी के अँगरेजों ने इसका तुरन्त लाभ उठाया।

प्रत्येक अवस्था में देश में क्रान्ति की आग सुलग रही थी। लेकिन किसी एक शक्ति की आवश्यकता थी, जो इस सुलगती हुई आग को प्रज्वलित कर सके। समय आ जाने पर आवश्यकता की पूर्त्ति होती है। सन् १८५१ ईसवी में अन्तिम पेशवा बाजीराव की मृत्यु हो गयी थी। मृत्यु के पहले ही, सन् १८२७ ईसवी में पेशवा बाजीराव ने नाना धुन्धपन्त को गोद लिया था। नाना की अवस्था उस समय तीन वर्ष की थी। सन् १८१८ ईसवी में राज्य के छीने जाने पर बाजीराव कानपुर के निकट बिठूर में चला गया था और वहीं पर वह रहा करता था। पेशवा के साथ उस समय लगभग आठ हजार स्त्री, पुरुष और बच्चे थे, जो उसके साथ रहते थे। बाजीराव के राज्य के बदले में कम्पनी ने उसको और उसके उत्तराधिकारियों को पेन्शन में आठ लाख रुपये वार्षिक देते रहने का लिखकर वादा किया था।

बाजीराव के मरते ही लार्ड डलहौजी ने इस पेन्शन को बन्द कर दिया था और इस पेन्शन के सिलसिले में ही बाजीराव के जो ६२ हजार रुपये बाकी थे, उनके अदा करने से भी डलहौजी ने इनकार कर दिया। इसके साथ-साथ नाना साहब को नोटिस दे दिया कि बाजीराव की जागीर बिठूर पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। वह तुमसे छीन ली जायगी।

नाना साहब स्वयं अँगरेजों का शुभचिंतक था। बिठूर में आने वाले अँगरेजों और उनके परिवार के लोगों के आतिथ्य-सत्कार में वह जिस प्रकार सम्पत्ति को पानी की तरह बहाता था, उससे कोई भी अँगरेज अपरिचित न था। इतना सब होने पर भी लार्ड डलहौजी ने उसके साथ जिस प्रकार का अन्याय आरम्भ किया, उस पर नाना साहब ने डलहौजी से बहुत-कुछ पत्र व्यवहार किया और किसी प्रकार की सफलता न मिलने पर उसने अपनी अपील के लिए अजीमुल्ला खाँ को इंगलैण्ड भेजा। लेकिन वहाँ पर भी उसे कोई सफलता न मिली। अजीमुल्ला खाँ इंगलैण्ड से लौटकर आ गया और नाना साहब के साथ बैठकर उसने परामर्श किया। उसी समय से क्रान्ति की रूप-रेखा तैयार होने लगी।

क्रान्ति की जो योजना तैयार की गयी, उसका एक साधारण रूप यह था कि देश के समस्त हिन्दू और मुसलमान वृद्ध मुगल-सम्राट बहादुर शाह को अपना नेता स्वीकार करें और एक होकर मुल्क से अँगरेजों को निकाल कर बाहर करने का सफल विद्रोह करें। इसके संगठन और प्रचार के लिए नाना साहब ने अजीमुल्ला खाँ और दूसरे सहयोगियों के साथ देश का भ्रमण किया और बड़े-बड़े स्थानों की यात्रा करके उसने समस्त भारत में क्रान्ति की लहर पैदा की। इसके साथ-साथ समस्त देश में विप्लव करने के लिए ३१ मई, सन् १८५७ का दिन निर्धारित किया गया।

प्रारम्भ और विस्तार

सन् १८५३ ईसवी में कारतूस तैयार करने के लिए भारत में कारखाने खोले गये थे। इन दिनों में जो कारतूस यहाँ तैयार होते थे, वे पहले के कारतूसों से कुछ भिन्न थे। पहले जो कारतूस चलते थे, वे हाथों से तोड़े जाते थे। लेकिन नये कारतूसों को दाँतों से काटना पड़ता था।

बैरकपुर के कारतूसों के कारखाने से एकाएक अफवाह उड़ी कि इन नये कारतूसों में गाय और सुअर की चरबी डाली जाती है। इस अफवाह ने हिन्दू-मुस्लिम सिपाहियों में एक सनसनी पैदा कर दी। अधिकारियों ने इस सनसनी को दूर करने की कोशिश की और बताया कि यह अफवाह बिल्कुल झूठी है, लेकिन लोगों ने अधिकारियों का विश्वास न किया।

भारत के हिन्दू-मुस्लिम सिपाहियों में चर्बी के कारण पैदा होने वाली सनसनी बढ़ती गयी। विद्रोह का प्रचार भारतीय पलटनों में पहले से ही चल रहा था। उसके लिए यह एक अच्छा अवसर मिला। विद्रोह के लिए ३१ मार्च पहले से निश्चित थी। लेकिन चर्बी के कारण विद्रोह की आग भड़कती हुई मालूम हुई। क्रान्ति के अधिकारियों ने निश्चित तारीख तक विद्रोह को रोकने की कोशिश की। लेकिन परिस्थितियाँ रोजाना बदलने लगीं। बैरकपुर की छावनी में १९ नम्बर की पलटन को नये कारतूस प्रयोग करने के लिए दिये गये। पलटन ने कारतूसों को प्रयोग करने से इनकार कर दिया इस पर उस पलटन के हथियार रखा लेने के लिए अँगरेजी पलटन बुलायी गयी और २९ मार्च सन् १८५७ ईसवी को परेड करने के लिये उस पलटन को आज्ञा दी गयी।

परेड के समय एक भारतीय सिपाही ने कारतूसों को धर्म-विरोधी कहकर नारा लगाया। अँगरेज अधिकारी ने उसको कैद

करने का आदेश दिया। लेकिन किसी भारतीय सिपाही ने उसको कैद नहीं किया। उस समय उस अँगरेज अधिकारी पर गोली चलायी गयी वह तुरन्त मर गया। यहीं से अँगरेज अधिकारियों और भारतीय सिपाहियों के बीच में संघर्ष उत्पन्न हुआ। विरोधी नारा लगाने वाले भारतीय सिपाही को फाँसी दी गयी।

मई महीने के आरम्भ में दूसरी पटलनों को भी नये कारतूस दिये गये। उन्होंने भी उसके प्रयोग से इनकार किया।। इनकार करने वालों को लम्बी सजायें दी गयीं। भारतीय सिपाही बड़े धैर्य के साथ ३१ मई का रास्ता देखते रहे। छावनी के बाहर गावों में क्रान्ति की पूरी तैयारियाँ थीं।

१० मई के दिन मेरठ में विद्रोह की आग भड़क उठी। जेलखानों की दीवारें गिरायी गयीं। कैदी निकाले गये। मेरठ में रहने वाले अँगरेजों का सर्वनाश किया गया। छावनी के भीतर से लेकर बाहर गावों तक विद्रोह आरम्भ हो गया। हिन्दू और मुसलमान अँगरेजों का विनाश करने में जुट गये। क्रान्ति की जो योजना तैयार की गयी थी, विद्रोह उसी के आधार पर आरम्भ हुआ। विद्रोही हिन्दू-मुसलमान ३१ मई का इन्तजार न कर सके।

दिल्ली में क्रान्तिकारी

मेरठ से दो हजार सिपाही अपने हथियारों के साथ दिल्ली के लिए रवाना हुए। ११ मई को वे सबेरे वहाँ पहुँच गये दिल्ली की छावनी में जितने अँगरेज अफसर थे, मार डाले गये और वहाँ के किले पर क्रान्तिकारियों ने कब्जा कर विद्रोही सिपाहियों ने लाल किले में प्रवेश करके सम्राट बहादुर शाह को तोपों की सलामी दी। दिल्ली शहर के निवासियों ने क्रान्तिकारियों का स्वागत किया और वे अधिक संख्या में उन्हीं के साथ मिल गये। अँगरेजों का विध्वंस और विनाश जारी हो गया।

दिल्ली के बाद विद्रोह की आग चारों ओर फैलने लगी। ३१ मई तक उत्तरी भारत में सर्वत्र क्रान्ति की आग फैल गयी। विद्रोही सिपाहियों के गरोह अलीगढ़, मैनपुरी, इटावा और बुलन्द शहर तक पहुँच गये। अजमेर के निकट नसीराबाद की छावनी में भारतीय और अँगरेजी—दोनों फौजें रहा करती थीं। २८ मई को गोरी फौज के साथ हिन्दुस्तानी फौज की लड़ाई हुई। अँगरेजों की पराजय हुई। रुहेलखण्ड की राजधानी बरेली में ३१ मई के दिन विद्रोह शुरू हो गया। अँगरेज मारे गये, उनके बँगलों में आग लगायी गयी। शाहजहाँपुर, मुरादाबाद, बदायूँ, आजमगढ़ और गोरखपुर में भी क्रान्ति शुरू हो गयी। ३१ मई को बनारस में भीषण रूप से विद्रोह आरम्भ हुआ। अँगरेजों की एक विशाल सेना जनरल नील के साथ बनारस भेजी गयी। उसने वहाँ जाकर विद्रोहियों का सामना किया। बनारस के निवासी विद्रोहियों का साथ दे रहे थे। लेकिन वहाँ के राजा चेतसिंह और उसके साथियों ने अँगरेजों का साथ दिया।

बनारस, इलाहाबाद और कानपुर

जनरल नील के साथ एक अँगरेजों की सेना बनारस भेजी गयी थी। उसने रास्ते में मिलने वाले गावों, कस्बों और नगरों का विनाश किया और बनारस पहुँच कर अँगरेजी सेना ने वहाँ के निवासियों पर भयानक गोलियों की वर्षा की। बहुत बड़ी संख्या में लोगों को कैद किया गया और उन कैदियों को पेड़ों पर लटका कर उनका कत्ल किया गया। उसके बाद जनरल नील अपनी सेना के साथ इलाहाबाद की ओर चला।

इलाहाबाद पहुँच कर अँगरेजी सेना ने भीषण अत्याचार किये।। १८ जून को उस सेना ने नगर में प्रवेश किया और जो लोग मिले, उनको गोलियों से उड़ा दिया। छोटे-छोटे लड़कों को

पकड़कर फाँसियाँ दी गयीं। बनारस की तरह जनरल नील ने इलाहाबाद में भी कई दिनों तक भयानक मार-काट की और स्त्री, बच्चों तथा पुरुषों का संहार किया। इलाहाबाद के खुशरोबाग में अँगरेजी सेना के साथ भारतीय विद्रोही सैनिकों ने जमकर युद्ध किया और उसके बाद वे अपने साथ तीस लाख रुपये का खजाना लेकर कानपुर की तरफ चले गये।

नाना साहब, उसके दो भाई बाला साहब और बाबा साहब, भतीजा राव साहब और अज़ीमुल्ला खाँ कानपुर-क्रान्ति के नेता थे। मराठा सेनापति तात्या टोपे कानपुर में नाना साहब का मददगार हो गया था। उन दिनों में वह बिठूर में रहा करता था।

कानपुर की छावनी में ४ जून की रात के १२ बजे तीन फायरें हुईं। विद्रोह आरम्भ करने की यह सूचना थी। इसके साथ ही कानपुर में क्रान्ति शुरू हो गयी। अँगरेजों के बँगलों पर आक्रमण किये गये और उनको मारा गया। ५ जून को कानपुर का खजाना और मेगज़ीन वहाँ के क्रान्तिकारियों के हाथों में आ गया।

कानपुर के किले में शहर के अँगरेजों और उनके परिवार के लोग बन्द थे। ६ जून को वहाँ के क्रान्तिकारियों ने किले को घेर लिया और उनकी तोपें उस किले पर गोलों की वर्षा करने लगीं। १८ जून और २३ जून को कानपुर के क्रान्तिकारियों ने अँगरेज़ी सेना के साथ युद्ध किया। अन्त में युद्ध को रोक कर नाना साहब ने अँगरेजों और उनके परिवारों को कानपुर छोड़ कर इलाहाबाद चले जाने का मौका दे दिया।

झाँसी में क्रान्ति

झाँसी का राज्य छीन कर अँगरेजों ने अपने राज्य में मिला लिया था। वहाँ की विधवा रानी लक्ष्मी बाई की अवस्था उस समय बीस वर्ष की थी। कम्पनी ने रानी को राज्य के बदले में

पाँच हजार रुपये वार्षिक देने का वादा किया था। लेकिन रानी ने नामजूर कर दिया था।

४ जून को झाँसी में क्रान्ति आरम्भ हुई। वहाँ के मेगजीन और खजाने पर विद्रोहियों ने कब्जा कर लिया। लक्ष्मी बाई के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने झाँसी के किले पर आक्रमण किया। उसके भीतर जो अँगरेज थे, वे सब मारे गये।

क्रान्ति को दबाने की चेष्टा

सन् १८५७ की इस महान क्रान्ति में बहादुर शाह को सम्राट माना गया था और उसी के नाम पर इस क्रान्ति का संगठन और और प्रारम्भ हुआ था। इसीलिए विद्रोहियों की अधिक संख्या, दिल्ली में आकर एकत्रित हुई थी।

इस क्रान्ति को दबाने के लिए गवर्नर-जनरल लार्ड केनिंग ने बड़ी राजनीति से काम लिया था। उसने मद्रास, रंगून और बंगाल की सेनाओं को मिलाकर एक विशाल सेना का आयोजन किया था। जनरल नील की सेना आगरा और अवध के सूबे में क्रान्ति को दबाने का काम कर रही थी। दिल्ली के विद्रोहियों को परास्त करने के लिए लार्ड केनिंग ने एक दूसरी सेना रवाना की।

क्रान्तिकारियों को मिटाने और उनका संहार करने के लिए कैनिंग ने दो प्रकार की नीति से काम लिया था। एक ओर वह अपनी सैन्य शक्ति को मजबूत बनाकर विद्रोहियों को परास्त करने का काम कर रहा था और दूसरी ओर वह भारतीयों के साथ साजिश करके उनको फोड़ने और अपने साथ मिलाने में लगा हुआ था। फूट डालने और मिलाने की नीति में अँगरेज सदा सफल होते रहे थे। क्रान्ति में भी उनको इसी अस्त्र से अधिक सफलता मिली। उनकी इस नीति का प्रभाव जादू की तरह पंजाबी

फौजों पर पड़ा और उन्होंने अँगरेजों का पक्ष लेकर अन्त तक विद्रोहियों के साथ युद्ध किया।

अँगरेजों को अपनी तोड़-फोड़ वाली कूटनीति का बहुत बड़ा विश्वास था। भारत में आकर उन्होंने अपने इसी अस्त्र का आश्रय लिया था और सफलता पायी थी। विद्रोह को मिटाने के लिए भी उन्होंने उसी का उपयोग किया। हिन्दू और मुसलमान एक होकर न रह सके, इसके लिए बड़े-बड़े उपायों के आविष्कार किये गये। जो उपाय काम में लाये गये, उनका प्रभाव सब से पहले सिखों और पंजाबियों पर पड़ा। सिखों और पंजाबी रियासतों ने अँगरेजों के जादू में आकर क्रान्तिकारियों के विरुद्ध उनका साथ दिया और देश में बढ़ते हुए विद्रोह को छिन्न-भिन्न किया। कम्पनी की ओर से पण्डितों और मौलवियों को लम्बी-लम्बी तनख्वाहें देकर हिन्दुओं को मुसलमानों के खिलाफ और मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध करने का प्रयत्न किया गया। सम्पत्ति के नाम पर बिके हुए इन लोगों ने अँगरेजों के पक्ष में प्रचार का भी काम किया।

अंगरेजी सेनाओं के अत्याचार

एक ओर अँगरेजों की कूटनीति चल रही थी और दूसरी ओर अँगरेजी फौजें क्रान्तिकारियों पर आक्रमण कर रही थीं। कुछ भारतीय पलटनें ऐसी भी थीं, जो अभी तक दुविधा में थीं। उनको मिला लेने के लिए अँगरेजों को मौका मिला। जो सिपाही न मिल सके, उनको कैद कर लिया गया और उनको तोप के सामने लाकर उड़ा दिया गया। कुछ पंजाबी पलटनें ऐसी भी थीं, जो विद्रोह करना चाहती थीं।। उनको परास्त करने के लिए अँगरेजी सेना के साथ सिखों की सेना और नाभा नरेश की फौज भेजी गयी। उन फौजों ने सतलज नदी पर जाकर विद्रोही सिपाहियों पर

गोलों की वर्षा की। दोनों ओर से डटकर युद्ध हुआ। विद्रोही सैनिकों की संख्या बहुत थोड़ी थी, उनके पास तोपें न थीं। युद्ध की सामग्री भी काफी न थी। फिर भी वे अन्त तक लड़े और अँगरेजी तथा सिखों की सेना को पराजित होकर भागना पड़ा।

अँगरेजी सेनाओं के साथ पंजाब में विद्रोही सेनाओं ने अनेक स्थानों पर युद्ध किये और उनकी जीत हुई। लेकिन पंजाब की देशी रियासतों ने अँगरेजों का ही साथ दिया। पटियाला, नाभा और झींद के राजाओं ने अँगरेजों की सहायता के लिए धन के साथ अपने सैनिक भी भेजे थे। इसलिए पंजाब में अँगरेजों की ताकत बढ़ गयी और उसकी एक विशाल सेना दिल्ली की ओर रवाना हुई। १२ जून को दिल्ली में अँगरेजी सेनाओं के साथ क्रान्तिकारियों का घमासान युद्ध हुआ। उसके बाद दिल्ली के कई स्थानों पर लड़ाइयाँ हुईं। लेकिन उनमें १७, २० और ३० जून के युद्ध अधिक भयानक थे। दिल्ली में गोरखा पलटन भी अङ्गरेजों के पक्ष में आ गयी थी।

दिल्ली का सर्वनाश

दिल्ली में इस क्रान्ति का केन्द्र था। इसीलिए अँगरेजी सेनाओं ने उस केन्द्र को मिटाने में कुछ उठा न रखा। भीतर से बाहर तक दोनों ओर से खूब मार-काट हुई और क्रान्तिकारियों ने अँगरेजी सेनाओं के छक्के छुड़ा दिये। सम्राट बहादुर शाह क्रान्ति का सब से बड़ा नेता माना गया था और वह बूढ़ा था। दिल्ली में क्रान्तिकारियों की शक्तियाँ निर्बल न थीं, लेकिन कोई नेता अथवा अधिकारी उनको व्यवस्था देने वाला न था।

लार्ड केनिंग ने क्रान्ति का नाश करने के लिए अपनी कूट-नीति, बहकाने, फोड़ने और मिलाने को अधिक महत्व दिया था और इस कार्य के लिए उसने धन को पानी की तरह बहाया

था। उसने हिन्दुओं और मुसलमानों को गुप्तचर बनाकर उनकी संख्या बहुत बढ़ा दी थी और उसका नतीजा यह हुआ था कि सम्राट बहादुर शाह की कोई बात—महलों से लेकर शहर तक अङ्गरेजों से छिपी न थी।

दिल्ली मे मार-काट के साथ-साथ अँगरेजों ने कोई अत्याचार बाकी नहीं रखा। बूढ़ा सम्राट बहादुर शाह कैद किया गया और उसके तीनों शाहजादों को कत्ल करके और उनके सिर काटकर अँगरेजों के गुप्त विभाग के प्रधान अधिकारी हडसन ने लाल किले में सम्राट और उसकी बेगम के सामने—जहाँ वे दोनों कैद थे—रखते हुए कहा :—

"कम्पनी ने बहुत दिनों से आपका नजराना नहीं दिया था। उसी को अदा करने के लिए मैं नजराने में इनको लाया हूँ।"

यह कहकर हडसन ने शाहजादों के कटे हुए सिरों को बादशाह के सामने रख दिया। बादशाह ने उन कटे हुए सिरों की तरफ देखा और कहा :—

"अलहम्दोलिल्लाह, तैमूर की औलाद इसी खूबी के साथ हमेशा अपने मुल्क पर कुर्बान होकर अपने बुजुर्गों के सामने आवे।"

दिल्ली शहर को उजाड़ कर बादशाह बहादुर शाह और उसकी बेगम जीनत महल को कैदी हालत में दिल्ली के लाल किले से निकाल कर रंगून भेजा गया और वहाँ पर सन् १८६२ ईसवी में बहादुर शाह की मृत्यु हो गयी।

लखनऊ में क्रान्ति

लखनऊ में विद्रोहियों ने २० जुलाई सन् १८५७ से रेजीडेन्सी पर आक्रमण आरम्भ कर दिये थे। वहाँ का चीफ कमिश्नर हेनरी लारेन्स मारा गया था। उसके स्थान पर मेजर बैंक्स वहाँ पहुँचा, लेकिन वह भी मार दिया गया। यह सुनकर सेनापति हैवलाक

कानपुर से २९ जूलाई को लखनऊ के लिए रवाना हुआ। रास्ते में उसे अनेक स्थानों पर क्रान्तिकारियों के साथ युद्ध करने पड़े।

लखनऊ पहुँच कर अँगरेजी सेना ने कई स्थानों पर विद्रोहियों के साथ युद्ध किया। जनरल नील भी कानपुर से अपनी सेना के साथ लखनऊ आ गया था। सेनापति नील युद्ध करते हुए मारा गया। लखनऊ की हालत लगातार भयानक होती जा रही थी। इसलिए अङ्गरेजी सेनाओं का कमाण्डर-इन-चीफ सर कालिन कैम्पवेल कलकत्ते से अपनी एक बड़ी अँगरेजी सेना के साथ लखनऊ में पहुँच गया। लखनऊ में इस समय अनेक अँगरेज सेनापति अपनी-अपनी सेनाओं के साथ मौजूद थे और उनके साथ में पंजाबी और सिखों की पलटनें भी थीं।

लखनऊ के सिकन्दर बाग, दिलखुश बाग, आलम बाग, शाहनफज और मोतीमहल में अँगरेजी सेनाओं के साथ विद्रोही सैनिकों के भयानक युद्ध हुए। उसके बाद सर कालिन कैम्पवेल कानपुर अपनी सेना के साथ चला गया। वहाँ पर मराठा सेनापति तात्या टोपे ने अपनी क्रान्तिकारी सेना के साथ उसका मुकाबिला किया। इन दिनों में इटावा, फरुखाबाद और फतहगढ़ में भी विद्रोहियों के युद्ध हो रहे थे।

कानपुर से कैम्पवेल की सेना फिर लखनऊ पहुँच गयी। उसके साथ सत्रह हजार पैदल और पाँच हजार सवार थे और १३५ तोपें थीं। लखनऊ के विद्रोहियों को परास्त करने के लिए अनेक अँगरेजी सेनाओं के साथ एक गोरखा पलटन भी पहुँच गयी थी। लखनऊ में अँगरेजी सेनाओं के साथ लगातार क्रान्तिकारियों की भयानक मार-काट हुई। सम्राट बहादुर शाह को कैद करने वाला और उसके शाहजादों को कत्ल करने वाला हडसन युद्ध करते हुए यहाँ पर मारा गया।

बिहार में विद्रोह की आग

दिल्ली में क्रान्तिकारियों के शिकस्त हो जाने पर लखनऊ में विद्रोही कई महीने तक अँगरेजी सेनाओं के साथ युद्ध करते रहे और लखनऊ में क्रान्ति के कमजोर पड़ जाने के बाद बिहार स्वाधीनता का युद्ध करता रहा।

बिहार के करीब-करीब सभी बड़े नगरों में स्वाधीनता के युद्ध हो रहे थे। ३ जूलाई को पटना में विद्रोह आरम्भ हुआ था। दानापुर की छावनी में गोरी और देशी पलटनें थीं। भारतीय सैनिकों ने विद्रोह की घोषणा कर दी थी। बिहार के कई एक नेताओं में कुँवरसिंह ने अँगरेजों के साथ भयानक युद्ध किये थे और कई स्थानों पर उसने अँगरेजी सेना को परास्त किया। उसके बाद उसने आरा शहर में कब्जा कर लिया। उसके पश्चात् बीबीगंज में दोनों ओर की सेनाओं का भयानक युद्ध हुआ। अतरौलिया के मैदान में कुँवरसिंह ने अँगरेजी सेना को भीषण रूप में पराजित किया और आजमगढ़ के पास उसने फिर अँगरेजी सेना को परास्त किया।

बिहार के अनेक स्थानों में अँगरेजी सेनाओं के साथ कुँवर-सिंह ने युद्ध किये और अधिकाँश युद्धों में अँगरेजी सेनाओं की पराजय हुई। उसके कटे हुए दाहिने हाथ के सेहत न हो सकने पर २६ अप्रैल सन् १८५८ ईसवी को कुँवरसिंह की मृत्यु हो गयी।

शाहजहाँपुर और बरेलीमें भी क्रान्तिकारियोंके साथ अँगरेजी सेना के युद्ध हुए थे। लेकिन वहाँ पर विद्रोहियों की हार हुई।

स्वाधीनता के युद्ध में लक्ष्मी बाई

अँगरेजी सेनापति सर ह्यू रोज अपनी एक विशाल सेना को लेकर अर्से से क्रान्ति को दबाने और निर्मूल करने के लिए घूम रहा था। उसके अधिकार में अङ्गरेजी सेना के साथ हैदराबाद,

भोपाल और दूसरी रियासतों की सेनायें भी थीं। रायगढ़, सागर, चन्देरी और बानापुर आदि शहरों में विद्रोहियों को परास्त करते हुए सर ह्यू रोज २० मार्च सन् १८५८ को झाँसी के निकट पहुँचा। अपने आस-पास के इलाकों में झाँसी का शहर विद्रोहियों का एक केन्द्र था। वहाँ की क्रान्ति का सञ्चालन महारानी लक्ष्मी बाई के हाथ में था और बानापुर के राजा मरदानसिंह तथा दूसरे नरेश भी वहाँ की क्रान्ति में शामिल थे।

२४ मार्च को अँगरेजी सेना के साथ वहाँ के विद्रोहियों का सामना हुआ। क्रान्तिकारियों का युद्ध लक्ष्मी बाई के नेतृत्व में आरम्भ हुआ और एक सप्ताह चलता रहा। इन्हीं दिनों में तात्या टोपे चरखारी के राजा को शिकस्त देकर वहाँ से विजयी होकर लौटा था। लक्ष्मी बाई के सहायता माँगने पर टोपे अपनी सेना के साथ कालपी से झाँसी के लिए रवाना हुआ। वहाँ पहुँचने पर अँगरेजी सेना के मुकाबिले में टोपे को सफलता न मिली और वह कालपी लौट गया।

झाँसी के युद्ध में अँगरेजी सेनाओं का जोर बढ़ता जा रहा था। ३ अप्रैल से वहाँ पर भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। कई दिनों के युद्ध में लक्ष्मी बाई ने जिस प्रकार युद्ध किया, वह आश्चर्यजनक था। अँगरेजी सेनाओं के मुकाबिले में वहाँ पर क्रान्तिकारी सेना बहुत कम थी और युद्ध के साधनों का भी उसके पास अभाव था। इसलिए विद्रोहियों की अन्त में वहाँ पराजय हुई।

लक्ष्मी बाई झाँसी से कालपी चली गयी। वहाँ पर तात्या टोपे, राव साहब, बाँदा का नवाब, शाहगढ़ और बानापुर के राजा उपस्थित थे। झाँसी पर अधिकार करके अँगरेजी सेना कालपी पहुँची। कालपी की विद्रोही सेना लेकर लक्ष्मी बाई ने कञ्च गाँव में सर ह्यू रोज की सेना का मुकाबिला किया। कालपी की सेना की हार हुई।

ग्वालियर में युद्ध

क्रान्तिकारियों की संख्या दिन पर दिन घटती जा रही थी। युद्ध के हथियारों और उनकी सामग्री का बिलकुल अभाव हो गया था। इस निर्बलता और निराशा को देखकर तात्या टोपे कालपी छोड़कर ग्वालियर की तरफ चला गया। ग्वालियर-रियासत की पलटनों और विद्रोहियों ने टोपे का साथ दिया। वहाँ पहुँच कर अरब, रुहेला, राजपूत और मराठा पलटनों को मिलाकर तात्या टोपे ने एक बड़ी सेना तैयार की।

सर ह्यू रोज़ यह सुनकर अपनी सेनाओं के साथ ग्वालियर की तरफ चला और वहाँ पर उसने आक्रमण किया। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। ग्वालियर के युद्ध में कई दिनों तक लक्ष्मी बाई ने भयानक मार-काट की और अँगरेज सेनापति स्मिथ लक्ष्मी बाई के मुकाबिले में एक बार हार कर लौट गया। उसके बाद अङ्गरेजों की समस्त सेनायें लक्ष्मी बाई के मुकाबिले में पहुँच गयीं और सभी ने मिलकर लक्ष्मी बाई को परास्त करने का प्रयत्न किया। उस दिन की भयंकर मार-काट में क्रान्तिकारियों का संहार हुआ और उनकी संख्या बहुत कम रह गयी। अन्त में युद्ध करते हुए लक्ष्मी बाई मारी गयी।

कोल्हापुर और बेल गाँव में भी क्रान्ति आरम्भ हुई। लेकिन अँगरेजों के भयंकर दमन के कारण कुछ ही समय के बाद वह दब गयी। बम्बई और नागपुर की क्रान्ति भी भयंकर दमन के कारण अधिक समय तक ठहर न सकी। जबलपुर में भी क्रान्ति का उभार हुआ। वहाँ की एक देशी पलटन विद्रोही हो गयी और क्रान्तिकारियों में जाकर मिल गयी। हैदराबाद में भी विद्रोह शुरू हुआ था। लेकिन वहाँ के निज़ाम और वज़ीरों ने अँगरेजों का साथ दिया। बहुत-से आदमी कैद किये गये और उन्हें फाँसियाँ दी गयीं।

विक्टोरिया की घोषणा

अठारह महीने तक देश में क्रान्ति बराबर चलती रही। अँगरेजों के दमन, अत्याचार और युद्ध से उसका अन्त नहीं हुआ। यह देखकर इंगलैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने भारतीय राजाओं और देश की प्रजा के नाम एक घोषणा प्रकाशित की और उसके अनुसार, उसने भारत में कम्पनी का राज्य समाप्त कर दिया। जिन अन्यायों और अत्याचारों के कारण भारत में विप्लव हुआ था; उनको मिटाकर घोषणा में विश्वास दिलाया गया कि भविष्य में सरकार ऐसा अवसर न देगी, जिससे असन्तोष पैदा हो सके।

उस घोषणा के बाद भी अवध में विद्रोह चलता रहा और शंकरपुर, ढुँढ़ियाखेरा, रायबरेली और सीतापुर में क्रान्तिकारी घटनायें होती रहीं। घोषणा के बाद छः महीने और बीत गये।

क्रान्ति के अंतिम दिन

विद्रोह के अन्तिम दिनों में केवल एक तात्या टोपे दिखायी देता था। उसके दो सहायक थे, लक्ष्मी बाई और नाना साहब। लक्ष्मी बाई मारी गयी थी और नाना साहब नैपाल के भयानक जंगलों में पहुँच कर विलीन हो गया था।

तात्या टोपे के साथ विद्रोहियों की एक सेना थी। उसको साथ में लेकर उसने नर्मदा की तरफ का रास्ता पकड़ा। एक स्थान पर अँगरेजी सेना ने उसको घेरना चाहा। लेकिन वह निकल गया। अँगरेजी सेनाओं ने उसका पीछा किया। वह जहाँ कहीं भी जाता, प्रत्येक रास्ते में उसे अँगरेजी सेना का सामना करना पड़ता। तात्या टोपे को कैद करने के लिए अँगरेजी सेनाओं का एक अद्भुत जाल बिछा दिया गया था। अँगरेज

उसको कैद करने की कोशिश मे थे। लेकिन उसका कोई एक स्थान न था। भरतपुर, जयपुर, इन्द्रगढ़, बूँदी, नीमच, नसीराबाद, भीलवाड़ा, उदयपुर, कोटरा, झालरापट्टन, नागपुर, प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा और अलवर के रास्ते में चक्कर मारता हुआ, अन्त तक सुरक्षित बना रहा। अनेक स्थानों पर अँगरेजी सेनाओं ने उसे घेर लिया; लेकिन युद्ध करता हुआ वह अपने विद्रोही सैनिकों के साथ निकल कर चला गया। अँगरेजी सेनायें उसको रोक न सकीं। अँगरेजों का जब कोई बस न चला तो उन्होंने हिन्दुस्तानियों को मिलाने की कोशिश की। इसमें उनको सफलता मिली और मानसिंह के विश्वासघात करने पर १७ अप्रैल सन् १८५९ ईसवी की रात को तात्या टोपे अँगरेजों के हाथों में कैद हो गया और १८ अप्रैल सन् १८५९ ईसवी को उसे फाँसी दी गयी।

सन् १८५७ की भारतीय क्रान्ति का यह अन्तिम दृश्य था। जिसके साथ-साथ क्रान्ति का अन्त हो गया और भयानक रक्तपात एवम् नर-संहार के बाद देश की स्वाधीनता के लिए होने वाली एक महान् और व्यापक क्रान्ति देश के शत्रुओं के द्वारा, असफल क्रान्ति के नाम से पुकारी गयी।